

Barcode : 99999990030524  
Title - Mahaveer Parichya Aur Vani  
Author - Rajneesh  
Language - Hindi  
Pages - 323  
Publication Year - 1923  
Barcode EAN.UCC-13



प्रिस्करण वाराणसी, १९७४

मूल्य • रु० २०.००

परम मानववानी

पितकल्प

श्रद्धेय देवेन्द्र प्रसाद सिंह

कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय

को

सादर, सभक्ति

—रामचन्द्र







## निवेदन

प्रस्तुत ग्रंथ भगवान् श्री रजनीश की नव्यतम कृति है। इसमें महावीर वाणी के तप-नप अर्थों का पांडित्यमंडित विश्लेषण हुआ है और पुरातनपथी टीकाकारों की तद्विषयक भात धारणाएँ ध्वस्त कर दी गई हैं।

इसमें पूर्ववर्ती टीकाओं की भाव-क्षीणता की जगह मंत्रपूत व्याख्या और नयता एवं मौलिकता का चमत्कार है।

भगवान् श्री रजनीश की व्याख्यानशैली जितनी ही सरल एवं अष्टनिम है, उतनी ही उदात्त एवं हृदयहारिणी भी। इसमें यत्रतत्र उपनिबद्ध बाधक-याएँ विषय का अत्यधिक गह्र और रोचक बनाने में समर्थ हुई हैं।

भगवान् श्री सवथा विरुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थों के भी प्रकाशक हैं—  
“तच्छुभ्र ज्योतिषा ज्योतिस्तद्यदात्मविदा विदुः।” विश्वेतिहास में पहली बार उनके द्वारा महावीरवाणी को वह अथ-गौरव मिला है जो स्वयं भगवान् श्री महावीर का अथ था। अपने योगबल से तथा जन्म-जन्मांतर की तपस्या-साधना के पुण्यप्रताप से भगवान् श्री रजनीश ने महावीर के स्वरूप में झाँककर उनके मत-या को प्रकट किया है और महावीरमय होकर महावीर की व्याख्या प्रस्तुत की है।

अंत में इतना ही कहना अलम् होगा कि इस कृति के दो आयाम हैं—जहाँ एक ओर तो यह भगवान् श्री महावीर का परिचय देती है, ऐसा परिचय जो सूक्ष्मता, रोचकता और बहुप्य के त्रिविध तत्त्वा में उपर है वहीं दूसरी ओर यह भगवान् श्री रजनीश के रजनीशत्व पर भी प्रचुर प्रकाश डालती है और उनका दिव्य व्यक्तित्व को शब्दों की परि सीमित रेखाओं में मूर्त करने का असफल प्रयास करती है।

आप इस व्याख्या की रसात्मिकता पर मुग्ध हो उठेंगे, रसाभिभूत हो जाएँगे।

मुझे विश्वास है कि यह कृति रजनीश-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में पावतेय होगी और शास्त्रीय शुद्धिवालों को झकझोर देगी। ये बातें शास्त्रों में हाथी या गधा, स्वयं में खोजनेवाले उन्हें अवश्य पा लेंगे और स्वयं से बना न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता।”

मैं स्वामी चैतन्य वेदांत (राजेश रजनीश) का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ के सम्पादन में मेरी यथान्वय सहायता की है।

स्वामी आनंद बीतराग



# अन्तर्वस्तु

प० स०

१ प्रास्ताविक

१-१५

२ प्रथम खंड

१६-१७८

|        |    |                                     |     |
|--------|----|-------------------------------------|-----|
| अध्याय | १  | महावीर की जीवनधारा आर भाग           | १९  |
| अध्याय | २  | महावीर का त्याग पिछले जन्म की साधना | ३९  |
| अध्याय | ३  | मूक जगत से तादात्म्य और सापेक्षवाद  | ५३  |
| अध्याय | ४  | सामायिक , प्रतिग्रमण और चारित्र्य   | ७१  |
| अध्याय | ५  | व्रमवाद                             | ९३  |
| अध्याय | ६  | महावीर का व्यक्तित्व के नए आयाम     | १०८ |
| अध्याय | ७  | अस्तित्व और अहिंसा                  | १२२ |
| अध्याय | ८  | निगोद और अतर्पिता                   | १३६ |
| अध्याय | ९  | महावीर की भाषा                      | १५२ |
| अध्याय | १० | गंगालव की कथा का महत्त्व            | १५६ |
| अध्याय | ११ | महावीर की दृष्टि आर भाग             | १६१ |
| अध्याय | १२ | उपसंहार                             | १७१ |

३ द्वितीय खंड

१७९-२१८

|        |   |          |     |
|--------|---|----------|-----|
| अध्याय | १ | अहिंसा   | १८१ |
| अध्याय | २ | अपरिग्रह | १९० |
| अध्याय | ३ | अनीय     | १९७ |
| अध्याय | ४ | अकाम     | २०४ |
| अध्याय | ५ | अप्रमाद  | २१२ |

४ तृतीय खंड

२१९-३३०

|        |   |                                  |     |
|--------|---|----------------------------------|-----|
| अध्याय | १ | पच नमाकार सूत्र                  | २२१ |
| अध्याय | २ | धम्मो योगुत्तमो                  | २३० |
| अध्याय | ३ | गरण की स्वीकृति                  | २४१ |
| अध्याय | ४ | धम का परम सूत्र अहिंसा और स्वभाव | २४८ |
| अध्याय | ५ | जीवेपणा और महावीर का अहिंसा      | २५७ |



|                                       | पृ० सं० |
|---------------------------------------|---------|
| अध्याय ६ : समस्वरता और सम्यगाजीव      | २६४     |
| अध्याय ७ : सयम की विधायक दृष्टि       | २७५     |
| अध्याय ८ : तपञ्चर्या                  | २८३     |
| अध्याय ९ : तप की वैज्ञानिक प्रक्रिया  | २८९     |
| अध्याय १० : महावीर की दृष्टि में अनशन | २९४     |
| अध्याय ११ : उणोदरी आदि शेष बाह्य तप   | ३०५     |
| अध्याय १२ : अतर्-तप                   | ३१३     |

# प्रास्ताविक

१

मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूँ, प्रेमी हूँ, वस ही जमे काइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का, लाओत्से का और मेरी दृष्टि में अनुयायी कभी भी उसे समझ नहीं पाता जिसका वह अनुगमन करता है।

दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। साधारणतया या तो वे अनुयायी होते हैं या विरोधी। न तो अनुयायी भग्न पाता है और न विरोधी। अनुयायी उससे बँध जाता है जिसका वह अनुसरण करता है और विरोधी उससे जिसका वह विरोध करता है। केवल प्रेमी नहीं बँधता। वह प्रेम का वाक्ता है प्रेम नहीं हाता। महावीर से प्रेम करने में महावीर से बँधना नहीं हाता। उनसे प्रेम करते हुए ही बुद्ध, कृष्ण और काइस्ट से प्रेम किया जा सकता है। महावीर में जो चीज प्रकट हुई और जिससे हम प्रेम करते हैं वह हजार हजार लोग भी उसी तरह प्रकट हुई है। सच धृष्टि तो हम महावीर से भी प्रेम नहीं करते। वह जो शरीर है वर्तमान का वह जो जन्मतिथि में बँधा हुआ शरीर है उनका, वह तो इतिहास की एक रेखा मात्र है। एक दिन पला हाता और एक क्षण मर जाना। प्रेम करते हैं हम उस ज्योति से जो उस मिट्टी के दीए में प्रकट हुई थी। जो ज्योति से प्रेम करेगा वह दीए में नहीं बँधेगा और जो दीए में बँधेगा, उस ज्योति के महत्त्व का भान न हागा। निश्चित है कि जो दीए से बँध रहा है उसे ज्योति का पता नहीं। जिस ज्योति का पता चल जाय उस क्या दीए की याद भी रहेगी? उसे दीया फिर दिखाई भी पड़ेगा?

इसी सन्दर्भ में एक और बात कह देना चाहता हूँ। मैंने महावीर का ही चर्चा के लिए क्या चुना? यह तो बहाना है सिर्फ। वे तो वस ही हैं जमे कोई मूर्ख हानी है। पण्डा टाँगना प्रयोजन है मेरा। कोई भी खूटी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण में, बुद्ध भी कृष्ण भी काइस्ट भी। किसी भी खूटी से काम लिया जा सकता है। स्मरण प्रेम मागता है, अनुकरण नहीं। और मैं कहता हूँ यह स्मरण महावीर का स्मरण नहीं है। स्मरण है उस तत्त्व का जो महावीर में प्रकट हुआ। इस तत्त्व का स्मरण तत्वाल आत्मस्मरण बन जाता है। महावीर में प्रकट हुआ ज्योति की यही साक्ष्यता है कि वह आत्मस्मरण की आरंभ जाय। लेकिन महावीर की पूजा में यह समझ नहीं आता। पूजा आत्मविस्मरण का उपाय है। अनुयायी मत्त आदि भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूटियाँ का उपयोग कर रहे हैं आत्मविस्मरण के लिए। पूजा, प्रायना, अर्चना—

सब विस्मरण है। स्मरण का अर्थ है महावीर में उग दिव्य नाग को योजना जो उनमें अभिव्यक्त हुआ था, मनुष्य की सम्भावनाओं के प्रति मजग हो उठना और उन बात की प्रतीति करना कि जो एक मनुष्य में सम्भव है, वह फिर मेरी भी सम्भावना बन सकती है। स्मरण करनेवाले पूजा में न जाकर एक अन्तर्वेदना में, 'अन्तर मफरिंग' में उतर आते हैं। वे उस बुझे हुए दीए के समान होते हैं जो एक बल्लते हुए, ज्योतिर्मय दीए को देखकर व्यथित हो उठता है और सोचता है कि मैं व्यर्थ हूँ, मैं नाममात्र का दीया हूँ, क्योंकि मुझमें वह ज्योति कहाँ, वह प्रकाश कहाँ? मैं निरंकुश अन्तर हूँ जिसमें ज्योति प्रकट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नहीं है। लेकिन बुझे हुए दीयों के बीच बुझा हुआ दीया रखा रहे तो उसे अपनी दशा का ग्याल भी नहीं आता, पता भी नहीं चलता। तो करोड़ बुझे हुए दीयों के बीच में भी जो स्मरण नहीं आ सकता वह एक जले हुए दीए के निकट आ सकता है। महावीर या बुद्ध या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं कि वे जले हुए दीए हैं। उनका खयाल, उनके बल्लते हुए दीए की लपट एक बार भी हमारी आँखों में पहुँच जाय तो हम फिर वही आदमी नहीं रह सकते जो कल थे। हमारी सम्भावनाओं के नए गवाक्ष खुल जाते हैं, ऐसे अनेक द्वार खुल जाते हैं जिनका हमें पता तक न था। और तब उनकी प्यास भी जग जाती है जो हम हो सकते हैं। यह प्यास जग जाय तो कोई भी वहाना बनता हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं।

तो मैं महावीर को भी, काइस्ट को भी वहाना बनाऊँगा, कृष्ण, बुद्ध और लाओत्से को भी। फिर हममें तरह-तरह के लोग हैं, और कई बार ऐसा होता है कि जिसे लाओत्से में ज्योति दिख सकती है, उसे बुद्ध में न दिखे, और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर में ज्योति दिख सकती है, उसे लाओत्से में न दिखे। एक बार अपनी ही ज्योति दिख जाय तो लाओत्से और बुद्ध में ही नहीं, साधारण-से-साधारण मनुष्यों में भी वह ज्योति दिखने लगती है। पशु-पक्षी ही नहीं, पत्थर भी ज्योतिर्मय हो जाते हैं। लेकिन, जब तक स्वयं में यह ज्योति नहीं दिखती तब तक जरूरी नहीं कि सभी लोगों को महावीर में ज्योति दिखे। इसके कारण हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के देखने के ढंग में भेद है, व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता में भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि में भेद है। जरूरी नहीं कि एक सुन्दर युवती सभी को सुन्दर मालूम पड़े। मजनु की आँखों ने लैला के सौन्दर्य को जन्म दिया था—यानी लैला होने के लिए मजनु की आँखें चाहिए। एक-एक व्यक्ति में बुनियादी भेद है। इसलिए दुनिया में इतने तीर्थंकर, इतने अवतार, इतने गुरु हुए हैं। हो सकता है बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही जगह में एक ही दिन ठहरे और गुजरे हो, एक ही प्रदेश में वर्ष-वर्ष घूमे हो। फिर भी, गाँव में किसी ने बुद्ध को देखा हो, किसी ने महावीर को और किसी ने इनमें किसी को भी नहीं।



मेरे पास देखने की एक विनिष्ट दृष्टि है।

हो सकता है कि किसी को महावीर में कुछ भी दिखाई न पड़े। महावीर में जो है उसे देखने के लिए विनिष्ट आँख चाहिए। हा, पृथ्वी पर भिन्न भिन्न तरह के लोग हैं। इनकी जातियाँ बताना भी मुश्किल है। लेकिन एक बार देख जाय साम्य तो सभी भिन्नताएँ खो जाती हैं। सभी भिन्नताएँ दीए की भिन्नताएँ हैं—ज्योति की भिन्नता नहीं। दीए का अनुभव आकार का अनुभव है किंतु ज्योतिमय का अनुभव आकार का अनुभव नहीं। दीया जड़ है, पदार्थ है—ठहरा हुआ, रुका हुआ, ज्योति चेतन है सत्य है—जीवन्त, भागती हुई। दीया रुका हुआ है ज्योति जा रही है भाग रही है ऊपर की ओर। ज्योति है ऊर्ध्वगमन का प्रतीक निराकार की अनुमति। किन्ती जल्ली ज्योति का आकार खो जाता है? पहचान भी नहीं पात कि उसका आकार खो जाता है। वह मिलन है आकार निराकार का। अभी थी, अब नहीं है। प्रतिफल आकार निराकार में खोता जा रहा है। आकार के पार निराकार में जो सन्निभ हो रहा है वही ज्योति है।

जात में दीया को पहचाननेवाले लोग ज्योतियाँ के सम्बन्ध में झगडा करते रहते हैं दीया को पकड़नेवाले ज्योतियाँ के नाम पर पथ और सम्प्रदाय बना लेते हैं। वे भूल जाते हैं कि दीया एक अवसर था ज्योति के घटने का और ज्योति का जो आकार लिखा था वह भी सिर्फ एक अवसर था ज्योति के निराकार में खोने का। वर्धमान तो दीया है महावीर ज्योति, सिद्धार्थ दीया है, बुद्ध ज्योति जीजस दीया है, क्राइस्ट ज्योति। लेकिन हम दीए को पकड़ लेते हैं और महावीर के सम्बन्ध में सोचते-सावत वर्धमान के सम्बन्ध में साचन लगत हैं। वर्धमान को पकड़नेवाले लोग महावीर को पकड़ नहीं पाते। सिद्धार्थ को पकड़नेवाले सिद्ध बुद्ध से और मरियम के बेटे जीजस का पहचाननेवाले पुजारी परमात्मा के बेटे क्राइस्ट से जन्मिन्न रह जाते हैं। हम सब दीया में ही लवलीन रहते हैं। हम दीया हैं सही पर ज्योति भी हो सकती है। ज्योति की चिन्ता करनी चाहिए, दीय की नहीं। महावीर का निमित्त बनाकर ज्योति पर विचार करना होगा। जिन्हें महावीर की ओर से ज्योति पहचान में आ सकती है, अच्छा है वहाँ से पहचान में आ जाय। जिन्हें नहीं आ सकती, उनके लिए किसी और का निमित्त बनाया जा सकता है। सब निमित्त काम में आ सकते हैं।

बहुत विनिष्ट हैं महावीर इसलिए साचना बहुत जरूरी है उन पर, लेकिन वे विनिष्ट हैं किसी दूसरे की तुलना में नहीं। हम अविनिष्ट हैं साधारण लोग हैं। साधारण इस अर्थ में कि हम दीया हैं और हमारा साधारण असाधारण का अवसर है मौका है बीज है। विनिष्ट और असाधारण वह है जो ज्योति बन गया और गया वहाँ, उस घर की ओर जहाँ शांति है जानना है जहाँ राज का जन्म है, उपलब्धि है। महावीर किसी की तुलना में विनिष्ट नहीं—किसी में विनिष्ट नहीं। मरा

विशिष्ट असाधारण का पर्याय है। हम सब साधारण हैं, पर हम सब असाधारण हो सकते हैं। जब तक हम साधारण हैं, तब तक साधारण-असाधारण के बीच गड़ा गया हमारा भेद नासमझी का भेद है। साधारण वन साधारण ही है। वह चपगनी है कि राष्ट्रपति, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। दोनों साधारण के ही दो रूप हैं। चपरासी पहली सीढ़ी पर और राष्ट्रपति आखिरी सीढ़ी पर। साधारण की सीढ़ी पर ननी साधारण है, चाहे वे किसी भी पायदान पर गड़े क्यों न हों। असाधारण की कोई सीढ़ी नहीं होती। इसलिए दो असाधारण व्यक्तियों में कोई नीचे-ऊपर नहीं होता। लोग पूछते हैं कि बुद्ध ऊँचे कि महावीर, कृष्ण ऊँचे कि नाज़द। वे भूल जाते हैं कि साधारण की सीढ़ी का गणित असाधारण लोगों पर घटित नहीं होता। फिर भी कई पागलों ने अपनी पुस्तकों में किसी को ऊँचा घोषित किया है, किसी को नीचा। उन्हें पता नहीं कि ऊँचे और नीचे का खयाल साधारण दुनिया का खयाल है। असाधारण ऊँचा और नीचा नहीं होता। अमल में जो इस ऊँच-नीच की दुनिया से बाहर चला जाता है, वही असाधारण है। जहाँ तक कोई दीया है, वही तक ऊँच-नीच का भेद है पार्थक्य है। ज्योति बड़ी और छोटी होती नहीं। निराकार में खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है जितनी बड़ी-से-बड़ी ज्योति की। और निराकार में खो जाना ही असाधारण हो जाना है।

जिस प्रकार पृथ्वी में एक कशिश है, नीचे खींचने का गुरुत्वाकर्षण है, उन्ही प्रकार परमात्मा में भी एक कशिश है। वह जो निराकार है और फैला हुआ है ऊपर, वह चीजों को अपनी ओर ऊपर-खींचता है। इसी कशिश का नाम प्रभुप्रसाद या ग्रेस है। उसके लिए छोटी और बड़ी ज्योति में कोई अन्तर नहीं। ज्योति होनी चाहिए। जिस तरह पृथ्वी की कशिश छोटे-बड़े का भेद न मानकर बड़े पत्थर को छोटे पत्थर के साथ ही गिरने को मजबूर करती है, उसी तरह परमात्मा की कशिश भी छोटी ज्योति को उतनी ही गति से खींचती है जितनी गति से बड़ी ज्योति को। लेकिन, अनुयायी का मन साधारण दीए का मन होता है। तोलता है, तुलना करता है। इसलिए वह कभी समझ नहीं पाता, समझ ही नहीं सकता। समझने के लिए बड़ा सरल चित्त चाहिए; अनुयायी के पास सरल चित्त नहीं। वह कुछ थोपता है अपनी तरफ से। विरोधी भी नहीं समझ पाता, क्योंकि उसमें छोटा करने का आग्रह होता है, अपनी ओर से थोपने की जगह कम करने की जिद होती है। इसलिए जिसे समझना हो, उसे प्रेम करना है, और प्रेम रादा वेशर्त होता है। प्रेम यह नहीं कहता कि तुम मुझे कुछ देना, भवसागर से पार ले चलना, धन-धान्य से परिपूर्ण कर देना। प्रेम का माँग से कोई सम्बन्ध ही नहीं। इसलिए कोई अनुयायी प्रेम नहीं कर पाता। और विरोधी किसी और से मौदा कर लेता है, इसलिए वह विरोध में खड़ा हो जाता है। वह विरोधी इसलिए हो गया है कि उसे लाभ का आश्वासन नहीं मिला।



महावीर को समझने के लिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहूँगा कि हमारी कोई माँग न हा, सौदा करने की हममें कोई भावना न हो। न हम अनुकरण करें जार न अनुयायी बनें। केवल सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखें कि उनमें क्या घटा—पहचानें कि क्या घटा, खोजें की क्या घटा। इसलिए जन महावीर को समझ नहीं पाते। बौद्ध बुद्ध को नहीं समझते। इनका प्रेम बशत नहा हाता। प्रत्येक ज्योति के आसपास अनुयायियों का जो समूह इकट्ठा जा जाता है वह ज्योति का घुमाने में सहयोगी होता है उस प्रादीप्त रखने में नहीं। महावीर का जन होना से क्या सम्बन्ध? कुछ भी नहीं। महावीर को इसका पता भी न होगा कि मैं जैन हूँ। ब्राह्मण का पता ही न हागा कि मैं इसाई हूँ। इसलिए मैं कहता हूँ कि किसी को समझना हो तो उसके पास खाली मन जाजा और याद रखा कि जो जैन नहीं है, बौद्ध नहीं है हिन्दू या मुसलमान नहीं है, वह पूर्वाग्रह से मुक्त रहने के कारण सहानुभूति से देख सकता है। उसका दृष्टि प्रेमपूर्ण हो सकती है। और बड़े मजे की बात है कि हम जन्म से ही जन हो जाते हैं, जन्म से ही बौद्ध हो जाते हैं। मतलब यह है कि जन्म से ही हमारे धार्मिक होने की सम्भावना सम्पत्त हा जाती है। अगर कभी भी मनुष्य का धार्मिक बनाना हो तो जन्म से धर्म का सम्बन्ध बिल्कुल ही तोड़ देना जरूरी है। जन्म से कोई धार्मिक बस हो सकता है? जन्म से ही जिसने पकड़ लिया धर्म को वह उस समयका क्या? समझन का मौका कहा रहा? अब तो उसके आग्रह उसकी पूर्व आरणाएँ निमित्त हो गई। वह महावीर को समझ ही नहा सकता क्योंकि महावीर को समझने के पहले उसमें उन्हें तीथकर बना लिया, परम गुरु समझ लिया, सबज्ञ मान लिया परमात्मा कह दिया। परमात्मा को पूजा जा सकता है समझा नहीं जा सकता। समझने के लिए तो अत्यन्त सरल दृष्टि चाहिए अत्यन्त पक्षपात रहित दृष्टि। मैं कह सकता हूँ कि मैंने महावीर को समझा है क्योंकि मेरा कोई पक्षपात नहा, कोई आग्रह नहीं। हो सकता है कि जो मेरी समझ हो वह शास्त्रा में मिले। मिलेगी भी नहीं क्योंकि शास्त्र उन्होंने लिखे ह जा बचे हैं अनुयायी हैं जना हैं। शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जिनके लिए महावीर तीथकर हैं सबन हैं और जिन्होंने महावीर का समझने के पहले कुछ मान लिया है। समय कभी भी शास्त्र से मेल नहीं लाती। समय और शास्त्र में युनियानी विराघ रहा है। शास्त्रा के रचयिता नासमय, पक्षपातपूर्ण आग्रही होत है जो कुछ मिद्ध करने का आतुर हैं। उनमें समझने की उत्तरी उत्सुकता नहीं हाती जितनी बुद्ध सिद्ध करने की। शास्त्राय बुद्धि इसलिए अवधानिक हो जाती है कि वह कुछ मिद्ध करना चाहती है जो है उसे जानना नहा चाहता। शास्त्रीय बुद्धि का आदमी परम्परा से बंधा हाता है सम्प्रदाय से बंधा होना है और यह सोचकर कि सत्य पता नहीं क्या है नयभीन होता है। तो मेरी बात न मालूम कितने तला पर मेल नहीं लायगा। कभी मेल ना जाय तो यही आश्चर्य की बात हागी। मेल न पाता ही अधिक स्वाभाविक हागा।

महावीर को खोजने का एक ढंग तो यह है कि उनके सम्बन्ध में जो परम्परा है, जो शास्त्र है, जो शब्द संगृहीत हैं, हम उनमें जायें और उन नारी परम्परा के गहरे पहाड़ को तोड़े, तोड़ें और महावीर को पकड़ें। महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हुए। इन ढाई हजार वर्षों में महावीर के सम्बन्ध में जो भी लिखा गया, हम उस सबमें गुजरें और महावीर तक जायें। यह शास्त्र के द्वारा जाने का रास्ता होगा। यद्यपि यही आम रास्ता है, फिर भी मैं मानता हूँ कि उन रास्तों में कभी जाया ही नहीं जा सकता। इस रास्ते पर चलनेवाले वहाँ पहुँचते हैं जहाँ महावीर से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसके कारण हैं। महावीर ने जो अनुभव किया है, किसी ने भी जो अनुभव किया है, उसे शब्दों की चारदीवारी में बंद करना कठिन है। जिसे भी कोई गहरी अनुभूति हुई है, उसे शब्द की असमर्थता का भी तत्काल ज्ञान हुआ है। परमात्मा का, सत्य का, मोक्ष का अनुभव बहुत गहरा अनुभव है। प्रेम का साधारण अनुभव भी मनुष्य को कुछ कह सकने में असमर्थ बना देता है। प्रेम के सम्बन्ध में अक्सर वे ही लोग मुखर पाए गए हैं जिन्होंने प्रेम का अनुभव नहीं किया। यदि प्रेम के सम्बन्ध में कोई बहुत आश्वासन से बातें करता हो तो समझ ही लो कि उसे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ। प्रेम के अनुभव के बाद सकोच आता है, आश्वासन नहीं रह जाता। प्रेमी चिन्तित होता है कि कैसे कहूँ, क्या कहूँ? जो बात कहना चाहता हूँ वह पीछे छूट जाती है, जिसे कभी सोचा भी नहीं था वह बरबस निकल आती है। जितनी गहरी अनुभूति, उतने ही थोथे और व्यर्थ हैं शब्द। शब्द हैं सतह पर निर्मित, उनके द्वारा निर्मित जो सतह पर जीते रहे हैं। इसी कारण अब तक सन्तों की कोई भाषा विकसित नहीं हो सकी।

जब कोई व्यक्ति अतीन्द्रिय सत्य को जानता है तो उसकी सभी इन्द्रियाँ एकदम व्यर्थ हो जाती हैं, वह मौन हो जाता है। बोलना पड़ता है इन्द्रिय से और सत्य जाना गया है वहाँ से जहाँ कोई इन्द्रिय माध्यम नहीं। अगर इन्द्रिय माध्यम ही नहीं हो अनुभव का, तो फिर इन्द्रिय कैसी रही? इसलिए जो जानता है, मुश्किल में पड़ जाता है। उसका मौन भी बड़ी पीड़ा देता है। चारों ओर रुग्ण, विक्षुब्ध मनुष्यों को देखकर उसे लगता है कि कहूँ और इन्हें भी अपनी अनुभूतियों का साझेदार बनाऊँ। वह अपने उस अन्तरतम में झाँकता है जहाँ परम आनन्द घटित हो गया है और उसे लगता है कि वह व्यक्ति भी उसे देख सकता है जो निकट खड़ा है। कोई भी ऐसा नहीं जिसे ऐसी अनुभूति नहीं हो सकती। परन्तु उसके शब्द उसकी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाने में एकदम असमर्थ होते हैं।

महावीर-जैसा व्यक्ति जो बोलता है वह एक प्रतिशत भी वह नहीं है जिसकी

उसे अनुमति हुई है, जिसे उमने जाना है, फिर भी वह हिम्मत करता है, साहस जुटाकर बोलता है और सोचता है कि हजार विरण मले ही न पहुँचे, एक विरण तो पहुँचगी ही। अगर महावीर की बाणी पकड़कर ही कोई महावीर की खाज करने जाय तो भी महावीर नहा मिलेगा। ठेठ महावीर का तुनकर ही बाइ अगर उनका बाणी पकड़कर खाजने जाय तो भी बाण त्रिलुल बदल जायगा और वह वहाँ जा पहुँचेगा जहाँ महावीर नहा हागे। क्याकि शब्दों ने उस नहीं जाना जिसे महावीर ने जाना है उसे जाना है निशब्द ने और हमने पकड़ा है शब्दों का। और फिर अनुमान है कि जिहाने महावीर के शब्द सुन उनमें व लग मोन में चले गए हागे जिन्हें थोड़ी भी समझ आई होगी और निशब्द की शक्ति का जरा भी इशारा मिला होगा। निश्चय ही वे निशब्द में भाग गए हागे। जिनकी समझ में नहीं आई होगी वे शब्द-संग्रह में लग गए हागे। जिसने नहीं समझा होगा वह गणघर<sup>१</sup> बन गया हागा। आम तौर से हम साक्ष्य हैं कि महावीर के पास जो गणघर हैं वे उनके सबसे अधिक समझने वाले लोग हैं। शूठ इसमें क्या नहीं हो सकता। महावीर के पास जो सबसे ज्यादा समझनेवाला हागा वह मोन में चला गया हागा। जो सबसे कम समझनेवाला होगा वह महावीर के शब्दों का दूसरा तब पहुँचाने की व्यवस्था में लग गया हागा। तो गणघर वे नहीं हैं जिहाने महावीर को सर्वाधिक समझा है। गणघर वे हैं जो महावीर की बाणी का यथायथ मर्म तो समझ न पाये, किन्तु उनके शब्दों को पकड़ बैठे और उनका संग्रह करने में लग गए।

जिस अनुभव से महावीर गुजरे हैं वह अपरिश्रम में घटा है। जो उनके शब्दों का झकझका करने में लगा है वह परिश्रमी बलि का व्यक्ति है।

महावीर को उत्सुकता नहीं है शब्द-संग्रह का, न बुद्ध को है और न प्राइमेट को। कम तो महावीर भी बिताव लिख सकते थे लेकिन महावीर न बिताव नहा लिखी वृत्ता न भी नहीं लिखी बुद्ध और जीजस ने भी नहीं। इन समाधारण लोगों में सिर्फ लाओत्स ने बिताव लिखी और वह भी जबरदस्ती में लिखी। जब वह अपनी अंतिम सन्न में चीन की सीमा के पार जा रहा था तब चीन के सम्राट ने उस अपनी चुर्गी चौकी पर रक्वा लिया और कहा कि तुम्हें टैक्स देना पड़ेगा। लाओत्स ने कहा—क्या टैक्स? हम न तो कोई सामान ला जाते हैं बाहर न कुछ लाते हैं अकने जा रहे हैं रातों रातों। सब तो यह है कि जिहाना परमात्मा रह। गद्गाट न लिखी थी—जाना सम्पत्ति कभी कोई आत्मा में हा नहा गया जितनी तुम लिये ता रहे हा सब कुछ-न-कुछ दे ही जाते हैं। तुम याद रखो कि तुम्हारा मानव क्या है। वह सब धूना दो कर्म-मे-कर्म टकम द दो, सम्पत्ति मत लो। लाओत्स ने



होना । उसने पूछा, 'कौन-कौन सा विचार है, जो तुमने अपना जीवन समस्त इस विचार पर  
"बड़ी मृत्यु के आगे है, जो जीवन है जो मरने के बाद जीवन और इस दुनिया में जीवन है  
कही कहा जा रहा है । मैं बोलता हूँ कि मैं मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के  
बाद मरने नहीं, जो मरने । इसलिए मैं भी अपने जीवन, जो मैं मरने के बाद जीवन है  
सर्व जीवन नहीं, जो मरने, जो मैं मरने । मैं मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद जीवन है  
मरने के ही नहीं मरने । मैं मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद जीवन है । मरने के बाद  
मैं मरने कि हम नहीं के जाने । जो मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद जीवन है । मैं  
मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद जीवन है । मैं मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद  
मरने के । जो मरने मरने के बाद जीवन है, जो मैं मरने के बाद जीवन है । मैं मरने के बाद जीवन है ।

[illegible]

अगर सारे शास्त्र खो जायें तो साधु, सन्यासियों और पंडितों के हिमाद से महावीर खो जायेंगे । लेकिन क्या सत्य का अनुभव खो सकता है ? क्या यह सम्भव है कि महावीर-जैसी अनुभूति घटे और अस्तित्व के किमी कोने में सुरक्षित न रह जाय ? क्या यह सम्भव है कि कृष्ण-जैसा आदमी पैदा हो और सिर्फ आदमी की

जिन्ही वितावा में जीवित रहे और अगर वितावें ग्यो जायें तो कृष्ण खो जाय ? अगर ऐसा है तो न कृष्ण का काइ मूल्य है और न महावीर का । आदमी के रक्ता, कर्कों के रेवाड गणधरा के रक्वाड ही अगर मज कुछ हैं तो ठीक है विताव खा जायेंगी और ये आदमी भी खा जायेंगे । मगर इतना सस्ता नहीं है यह मामला कि इतनी बड़ी घटनाएँ घटें कोई परम सत्य का उपलब्ध हो और यह बात केवल कमजोर आदमिया की कमजोर भाषा में सुरक्षित रहे । मेरा कहना है कि जगत् में जो भी घटता है चाहे वह महत्त्वपूर्ण हो या अमहत्त्वपूर्ण वह कभी नष्ट नहीं होता और न उसे मनुष्य पर ही छोड़ दिया जाता है कि वह उसे सुरक्षित रखे । अबे भला उस व्यक्ति के अनुभव का सुरक्षित रख सकते हैं जो कभी उनके समाज में था और जिस अब आग भित गई है, प्रकाश के दान हो गए हैं ? हम उस व्यक्ति को तुलना में अबे हैं जिस सत्य की उपस्थिति हुई है अथवा जिसने ज्ञान प्रशुभा से सत्य का मायात्कार किया है ।

तो मैं कहना चाहता हूँ कि अस्तित्व में कुछ भी नहीं रहता । सच तो यह है कि भले ये शब्द भी बराबर मुँह पर रहेंगे । जो शब्द एक बार पैदा हो गया है वह कभी लुप्त नहीं होगा । कृष्ण ने अगर कभी भी कुछ कहा है तो आज भी उसकी ध्वनि तरंगें किन्हीं तारों के निकट से गुजर रही हैं । ध्यान रहे कि लन्दन में जा बारा गया है जाग उसे ठीक उसी वक्त नहीं सुन लेंगे, क्योंकि ध्वनि-तरंगों को आन में समय लगता है । जो कभी भी बोला गया है उसकी ध्वनि-तरंगें आज भी बतमान हैं किन्हीं तारों के पास से गुजर रही हैं । यानी कि जो तार पर महावीर के वचन आज भी सुन जा रहे हैं । इसका क्या मतलब हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि इस अनन्त आकाश में—अन्त है इसलिए इसमें कुछ नहीं होता—जो भी पैदा होता है, वह यात्रा करता रहता है ।

इसी प्रकार और भी दूसरे तरंगें हैं जो ध्वनि की नया अनुभूति की तरंगें हैं । जब हम बालक हैं तब ध्वनि का तरंगें पैदा होती हैं लेकिन जब अनुभव करने हैं तब अनुभूति की ऐसी तरंगें पैदा होती हैं जो और भी सूक्ष्म आकाश में यात्रा करती हैं । जिस प्रकार गहिरा सख्त आकाश में घूमती हुई ध्वनि-तरंगों का पकड़ा जाता है उसी प्रकार अगर बाद यात्रिक व्यवस्था हो सब तो सूक्ष्म आकाश में हुए अनुभव की तरंगों का पकड़ा जा सकता है । इसका मतलब यह हुआ कि अनुभूति का भी पैदा होता हुआ और न यह आकाश पर पैदा होता है कि वह उन्हें जित्त कर सुरक्षित रखे । यदि हम विविध ध्यान रखकर अपना भीतर तारों तक विविध ध्वनियों की अनुभूति से हम सबका प्रत्यक्ष सम्पर्क पा सकते हैं । तब तब हम बिना विविध ध्वनियों के ज्ञान न रखकर उत्तरें तो हम अपनी ही आंतर अनुभूति में उत्तर जाते हैं । जहाँ मात्र महाराष्ट्र में जाते-जाते ध्वनि ऐसी व्यवस्था

कर सकता है कि वह महावीर, बुद्ध, जीजन या कृष्ण में गम्यस्त हो जाय। गम्यस्त होने का मतलब यह नहीं कि महावीर कहीं बैठे हैं जिनमें गम्योग हो जायगा। वह दीया तो टूट गया और वह ज्योति भी लो गई। लेकिन उन ज्योति में लो जन्मन किया था, उन अनुभव की सूक्ष्म तरंगे अस्तित्व की गहराइयों में आज भी सुरक्षित हैं। महावीर का पूर्ण ध्यान लेकर अगर आप उन गहराइयों में उतरें तो आप के लिए द्वार खुल सकते हैं, महावीर के अन्तर्गत की सूक्ष्म तरंगे आपकी उन्नति हो सकती है और आप को एहनाम हो जाना है कि महावीर के अनुभवों से गुजरने का वस यही रास्ता है। अस्तित्व की गहराइयों में अनुभूतियाँ गुरद्विन रह जाती हैं, वहाँ से उन्हें वापस पकड़ा जा सकता है, वहाँ से उनमें पुन जीवन-सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मेरा मार्ग शास्त्र के मार्ग से विच्युत गिन है। इसलिए मेरी चर्चा सुनकर ज्ञानियों में उनके ताजमेल की योजना न करें। ज्ञानियों में मेरी चर्चा का कोई सम्बन्ध ही नहीं। निम्नी और मार्ग से चलने की नेट्टा में मुझे जो कुछ दिखाई पड़ेगा, वह मैं आसने कहता चरूंगा। किन्तु, जब तक कुछ और लोग मेरे साथ इस प्रयोग को करने के लिए राजी न होंगे, तब तक यह निर्णय नहीं हो सकेगा कि मेरी बात प्रामाणिक है या नहीं।

## ३

महावीर के बाह्य जीवन की घटनाओं को जानना एक बात है और उनके अन्तर्जीवन को जानना दूसरी बात। महावीर के बाह्य जीवन में मुझे न तो प्रयोजन है और न उसे जानने की उत्सुकता ही। लेकिन उनके अन्तर्जीवन में क्या घटा, उससे मेरा प्रयोजन है, उत्सुकता है और उन और दृष्टि भी। मत्र बात तो यह है कि जिसे हम बाहर का जीवन कहते हैं, वह एक स्वप्न से ज्यादा मूत्य नहीं रखता।

मेरे लिए इसका कोई अर्थ ही नहीं कि महावीर कब पैदा हुए, कब मरे; उन्होंने शादी की या नहीं, बेटी पैदा हुई या नहीं। हुई हो तो ठीक, न हुई हो तो ठीक। मैं तो यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि महावीर भी हुए हो तो ठीक, न हुए हो तो ठीक। महत्त्वपूर्ण है अन्तर की गति, चेतना का विकास, उनका रूपान्तरण। जिसने महावीर के वहिर्जीवन को पकड़ लिया है, वह बुद्ध के जीवन को समझने में असमर्थ हो जायगा। वह नोचता है कि जो महावीर के वहिर्जीवन में है, वह उनके अन्तर्जीवन से अनिवार्य रूप से बँधा हुआ है। जब वह देखता है कि महावीर नग्न खड़े हैं तब उसके मन में यह बात जम जाती है कि परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति नग्न खड़ा होता है। और वह पूछता



है, यदि बुद्ध न वस्त्र पहन रहा है तो व परम नान का कैसे उपलब्ध हुए ? बहिर्जीवन की परत के कारण ही अन्तर्जीवन के सम्बन्ध में इतनी ग्राह्यां गड़ी हो गई हैं।

महावीर के सम्बन्ध में मैं ठीक कह रहा हूँ या नहीं इस बात की जाँच का भी कोई अर्थ नहीं है। मैं कुछ सिद्ध करने के लिए कहा कह रहा हूँ, बल्कि कह इसलिए रहा हूँ कि तुम जहाँ हो वहाँ से सरक सको और किसी दूसरी दिशा में गति कर सका। इसलिए यदि यह बातचीत तुम्हें अन्तर्ज्ञान में गति देनेवाली बन जाती है तो मैं मान लूँगा कि काफी प्रमाण मिल गए। यानी मर लिए अथक्ता इसमें है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध में मैं जा कहूँ वह किसी रूप में तुम्हारे जीवन का स्फूर्तिरहित करनेवाला बने।

यही बात है कि जो लोग जानते रहते हैं उन्होंने इतिहास लिखने पर जोर नहीं दिया। इतिहास की तरह उन्होंने पुराण पर—मिथ्य' पर—प्रश्न किया। इतिहास का आग्रह है कि बाहर घटी घटनाएँ तथ्य (फैक्ट्स) की तरह सगोचर की जायें पुराण इस बात पर बल देता है कि बाहर की घटनाएँ इस भाँति सगोचर हैं कि जब कोई उनसे गुजरता उसमें भीतर कुछ घटित हो जाय। पौराणिक घटनाएँ किसी दृष्टि से अप्रामाणिक मालूम पड़ सकती हैं। ऐतिहासिक तथ्य की तरह ग्राइस्ट का मूला पर चढ़ना और फिर तीन दिन बाद जीवित हो उठना प्रमाणित नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक तथ्य का तरह इसे भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कोई ऐसी कसौटी लटकी से पता हो सकता है जिसमें पुष्प का सम्पर्क न हुआ हो। किन्तु पुराण का दृष्टि बड़ी गहरा है। उसका कहना है कि जोजस जैसा बेटा अत्यन्त बवारी आत्मा में ही जन्म ले सकता है। यदि किसी में जोजस-जम बेट की जन्म देता है तो उसके चित्त का अत्यन्त कुँआरा होना जरूरी है और कुँआरेपन का कोई सम्बन्ध शरीर में है ही नहीं। गरीब तो यथ है, कुँआरापन आंतरिक मोहना है। हो सकता है कि शरीर कुँआरा न हो और चित्त बिबुल कुँआरा हो।

अब एक और उदाहरण ला। महावीर के पर का मस काट जाता है और दूध बहता है। हम ऐतिहासिक तथ्य की तरह का सिद्ध नहीं कर सकते। करने का करत हा पर गन्त करत हैं। व महावीर का व्यय करदा देगे जो मिथ है गाथा है वह हो जायगी। हम गटना का एत गहरा अर्थ है। वह यह है कि यदि मस भी काटे या कोई महावीर का जहर तो द, मारन का यत्न भी करे तो भी महावीर का मन ही व मन में निर नही हो पाता। दूध निकलना का कुल अर्थ होता है कि महावीर का मन मातृर से भरपूर है। यह पुन पुन जो कर —बहर हा मनुष्य का घट पुराणे—महावीर के करवा म प्रेम आर करवा ही प्रमाणित हा। जोर का दूध की तरह पापक हा सिद्ध होने पाय ही रहे। यह सिद्ध कर

निरर्थक है कि महावीर के पैर स्तन का काम कर रहे थे। एक मुनि ने यह मित्र करने की कोशिश भी की है। लेकिन उनके तर्कों को सुनने के बाद मैंने उनसे कहा कि यदि यह प्रमाणित भी हो जाय तो इसमें महावीर का मूल्य बढ़ता नहीं, बिल्कुल गी जाता है। अगर किसी के भी पैर स्तन का काम कर रहे हों तो उनसे दूध निकल आयेगा। यदि महावीर के चरणों में इसी कारण दूध निकला कि वे स्तन का काम कर रहे थे तो इसमें महावीर का अनावोरणत्व लुप्त हो गया।

पुराण की दृष्टि महावीर के मर्म पर है, तथ्य पर नहीं। तथ्य में जानें पर यह भी जरूरी नहीं कि किसी सर्प ने उन्हें काटा ही हो। यह भी जरूरी नहीं कि उनके चरणों से दूध निकला ही हो। जरूरी केवल इतना है कि महावीर का हृदय करुणा से ओतप्रोत था, स्नेह में लबालब भरा था, उसमें प्रेम की अमृतधारा प्रवाहित होती थी—चरणों तक से मानो दूध निकलता था। यह न कहकर कि महावीर हिंसा का प्रत्युत्तर स्नेह में, विष का प्रत्युत्तर दूध से देते थे, पुराण ने उसे ही जिविता में कहा कि नर्प ने काटा महावीर को तो दूध ही निकला उनके चरणों में।

मेरी दृष्टि भी महावीर के अन्तर्जीवन पर, उनके महत्त्व पर, उनके जीवन की अर्थवत्ता पर है, न कि उनके बहिर्जीवन के तथ्यों पर। अगर मेरी बातचीत से तुममें बेचैनी पैदा हो जाय और यह जानने की उत्सुकता तुम्हें कचोटने लगे कि यह बात सच है या झूठ, तो तुम मुझसे प्रमाण मत पूछना। स्वयं प्रमाण की तलाश में निकल जाना। अगर बात झूठी भी हुई तो तुम वहां पहुँच जाओगे जहाँ पहुँचना चाहिए। और यदि बात सही हुई तो लक्ष्य की प्राप्ति आप ही हो गई। जिस दिन तुम वहां पहुँच जाओगे उस दिन जरूरी नहीं कि तुम लौटकर मुझसे यह कहने ही आओ।

मैंने कहा है कि मेरी दृष्टि शास्त्रीय नहीं है। मैं शास्त्रों की निंदा नहीं करता, क्योंकि उन्हें मैं निंदा योग्य भी नहीं मानता। निंदा हम उसकी करते हैं जिससे कुछ मिलने की सम्भावना थी और वह चीज न मिली। शास्त्र से मिल ही नहीं सकती। शास्त्र की निंदा का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि शास्त्र से न मिलना शास्त्र का स्वभाव है। जाम्बू का स्वभाव है कि उससे सत्य नहीं मिल सकता। मिल जाय तो आश्चर्य हो जायगा, असम्भव घटना हो जायगी। शास्त्र का रास्ता प्रज्ञा को नहीं जाता, पांडित्य को जाता है, और पांडित्य प्रज्ञा से बिल्कुल उल्टी चीज है। पांडित्य है उदार और प्रज्ञा है निजी। मेरे शब्दों को मानकर जो शास्त्र निर्मित होंगे उनका स्वभाव भी ऐसा ही होगा। शास्त्रों का यही स्वभाव है। चाहे वे शास्त्र महावीर के हों, चाहे बुद्ध के, चाहे कृष्ण के, चाहे मेरे, चाहे तुम्हारे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हाँ, अगर किसी को सत्य दिखाई पड़ जाय पहले तो वह बाद में शास्त्र में भी दिखाई पड़ सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि शास्त्र किसी को दिखला



नहा सकता, लेकिन जिस दीख पड़ा है उसे शास्त्र में भी दीख सकता है। उस शास्त्र में ही नहा, ककड़, पत्थर, पहान, दीवार सब में दिखाई पड़ता है। यानी यह मवाल फिर शास्त्र का नहा रह जाता। जिसे दिखाई पड़ गया उसे सब में दिखाई पड़ता है। शास्त्र में हम वही पड़ते हैं जो हम पड़ सकते हैं, वह हमारे ज्ञान की वृद्धि नहा करता। अनानी आदमी शास्त्र के सामने खड़ा होकर यह न सोचे कि उसे पकड़कर वह ज्ञानी हो जायगा। हा, जहां ज्ञानी को शास्त्र में ज्ञान मिलेगा वहीं अनानी को अज्ञान ही दिखता रहेगा। और मजा यह है कि ज्ञानी शास्त्र में देखने नहीं जाता, पर अनानी उसे अपना सहारा बना लेता है। अक्सर ऐसा होता है कि सुंदर आदमी दण से मुक्त हो जाता है और बुरूप आदमी उसका आस पाम घूमता रहता है।

हा मयना है किसी दिन मेरे मा शत्रु सगहीन हो जायें और लोग उन्हें पकड़कर शास्त्र बना लें। उसी दिन मेरे शत्रु की हत्या हो जायगी। फिर भी, ध्यान रहे कि मैं किताब का विराधी नहा शास्त्र का विराधी हूँ। किताब दावा नहा करती सत्य देने का। उसका दावा है सिर्फ सग्राहक होने का। शास्त्र का दावा सिर्फ सग्राहक होने का नहीं सत्य देने का है। लाओ से की किताब की तरह जो केवल विनम्र सग्रह है वह शास्त्र नहा, मात्र किताब है। शास्त्र किसी के कुछ बोलने से नहीं बनता शास्त्र बनता है शत्रु को पकड़ने से। महावीर के बोलने से शास्त्र नहीं बना, गणधरा के पकड़ने से बना है। इसलिए वाणी ही ऐसी कांटा वाली हो, जगारा में ऐसा मरी हा कि पकड़ना मुश्किल हो जाय। लेकिन अगर भी बुझ जाते हैं, एक न एक दिन राख हो जाते हैं और पकड़नेवाले उन्हें भी मुट्ठी में पकड़ लेते हैं। इसी कारण ज्ञानी को पुराने ज्ञानिया की दुश्मनी में बार बार खड़ा होता पड़ना है। सब पूछो ना यह दुश्मनी नहा है, मित्रता है। और इसमें बड़ी मित्रता हो नहा मयनी क्योंकि इस भाति जा राख पकड़ ली गई है उसमें ज्ञानिया द्वारा ही छुटकारा होता है। इसलिए जिस महावीर से प्रेम है वह ज्ञानिया के खिलाफ खड़ा होता ही। अगर महावीर भा ठोड़ जाय ता उन्हें भी उनके खिलाफ खड़ा होता पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जा दिया था वह जीवित अगर था वह पकड़ा नहीं जा सकता था सिर्फ किया जा सकता था समझा जा सकता था। वह अब राख रहे पड़े हैं। लागा न उस पकड़ लिया है और वे उस पकड़ बैठ गए हैं। न बुद्ध महावीर के खिलाफ हैं न महावीर वृष्ण के। खिलाफ हैं शास्त्र का ज्ञान के। और जहाँ भी शास्त्र बन जाता है वहाँ सत्य मर जाता है। इसलिए लड़ाई जारी रहती है। किसी ज्ञानी पर वह खाम नहा हो जाना। आनवाले ज्ञानिया का अतीत के ज्ञानिया का सण्डन करना ही होगा। यह बड़ा कठोर वृत्त्य है लेकिन प्रेम इतना कठोर भी होता है।

जेन फकीर बुद्ध के अनुयायी होते हैं। फिर भी एक जेन फकीर ने अपने अनुयायियों से कहा है कि अगर बुद्ध भी तुम्हारे बीच मृत्यु के बीच आ जायें तो एक चाँदा मारकर उन्हें अलग कर देना। एक दूसरे जेन फकीर का जहाना है कि यदि बुद्ध का नाम भी मुँह में आ जाय तो पहले कुत्ला करके मुख नाफ कर लेना। वह एक आँसू तो अपने मन्दिर में बुद्ध की मूर्ति रखता है, फिर दूसरी ओर लोगों को नम्रता है कि बुद्ध से वचना और कहता है कि इनके लिए मुझे बुद्ध का आशीर्वाद प्राप्त है। असल में जो सीढ़ी है वह मार्ग का पत्थर भी बन सकती है और जो पत्थर है उसे सीढ़ी बनाया जा सकता है। सब-कुछ बनानेवाले के ऊपर निर्भर है। जब पुरानी सीढ़ी पत्थर बन जाती है तब उसे मिटाने की बात करनी ही पड़ती है। यह लड़ाई निरन्तर जारी रहेगी। मैं जो आज कह रहा हूँ उसे बल गलत कहने की हिम्मत जुटानी ही पड़ेगी। मुझसे प्रेम करनेवाले किसी व्यक्ति को मेरे खिलाफ लड़ना ही पड़ेगा। जो व्यक्ति हमारे लिए मुक्तिदायी सिद्ध हो सकता है उसे ही हम बधन बना लेते हैं और जब उसे बधन बना लेते हैं तब उसमें भी मुक्ति दिलानी पड़ती है।

## ४

ऐतिहासिक तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित रखनेवाले पुराण और अध्यात्म की सांकेतिक भाषा समझ नहीं पाते। मिसाल के तौर पर तीर्थंकरों की मूर्तियों को ही लो। तुम कोई फर्क नहीं बता सकते उनमें, सिवाय चिह्नों के। अगर चिह्न अलग कर दिए जायें तो मूर्तियाँ एक जैसी हों। क्या ये चौबीसो तीर्थंकर एक-जैसे रहे होंगे? क्या यह ऐतिहासिक मामला हो सकता है कि इन चौबीस आदमियों की एक-जैसी आँखें, एक जैसी नाक, एक जैसे चेहरे, एक जैसे बाल रहे हों? नहीं, यह ऐतिहासिक नहीं, आन्तरिक तथ्य है। जैसे ही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, सब भेद विलीन हो जाते हैं। हमारे भीतर एक ऐसी जगह है जहाँ नाक, चेहरे आदि मिल जाते हैं। जो लोग एक-जैसे हो गए, उन्हें कैसे बताएँ? तो हमने मूर्तियाँ एक जैसी बना दी। महावीर का चेहरा कैसा था, यह सवाल ही नहीं रहा। मूर्तियों में तीर्थंकरों के भीतरी साम्य को प्रकाशित किया गया। जैसे ही चेतना एक तल पर पहुँच गई, सब एक हो गए—उनके चेहरे एक हो गए, अलग-अलग आँखों से झाँकनेवाले चौबीस तीर्थंकर एकरूप हो गए। होठ अलग-अलग, लेकिन जो वाणी निकलने लगी, वह एक हो गई, भीतर भिन्नताएँ लुप्त हो गई। मूर्तियाँ सब शान्त हैं, स्थिर हैं। उनमें कोई गति नहीं, कोई कम्पन नहीं। पत्थर की मूर्तियाँ चुनी गई, क्योंकि पत्थर सबसे ज्यादा ठहरा हुआ तत्त्व है और उस ठहराव में भी हमने जो रूपरेखा चुनी, वह बिल्कुल ठहरी हुई है। हाथ जुड़े हुए हैं, पैर जुड़े हुए हैं, पद्मासन लगा है, आँखें आधी बंद हैं। ध्यान रहे, आँखें अगर पूरी बंद हो तो खोलनी पड़ेगी, अगर पूरी खुली हो तो बन्द करनी पड़ेगी, क्योंकि अति से लौटना ही पड़ता है—अति पर कोई ठहर नहीं







प्रथम खंड





## प्रथम अध्याय

### महावीर की जीवनधारा महावीर का मार्ग

कह चरे ? कह चिट्ठे ? कहमासे ? कह मए ?

कह भुजन्तो भामन्तो पाव कम्म न वधइ ?<sup>१</sup>

—दण० अ० ४ गा० ७

१

महावीर की जा जीवनधारा है वह पुरुष की है। पुरुष और स्त्री के मानस में धुनिषादी भेद है। स्त्री के पास जो मन है वह निष्क्रिय है, 'पसिव' है, पुरुष का मन आक्रामक—ऐग्रसिव—है। स्त्री प्रेम भी करे तो आक्रमण नही करेगी—वह बटकर अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करेगी। वह जा रहा सकती उठकर उसके पास। वह प्रेम करती है सही पर विवाह का प्रस्ताव नही करती प्रतीक्षा करती है कि जब उसका प्रेमी प्रस्ताव करे। हाँ वह प्रस्ताव के लिए योजनाएँ बनाती है प्रयत्न करती है कि प्रस्ताव किया जाय। लेकिन प्रस्ताव किए जान पर वह सीधे 'हाँ' नही मरती क्योंकि 'हाँ' भी आक्रामक है। ना' को वह धार धीरे 'हाँ' के करीब जानती है। निगटिव है उसका मानस। उसका धारोत्थि रचना भी निगेटिव है 'पाजिटिव' नहीं। इसलिए वह पुरुष पर वगात्कार नहीं करती हमला नही करती। यदि पुरुष राजी नहीं है तो उसका साथ वह काम सम्बन्ध स्थापित नही कर सकती। लेकिन यदि स्त्री राजी हो तो पुरुष उसके साथ सम्भाग कर सकता है व्यवहार कर सकता है।

महावीर की जीवित चित्तता पुरुष की जीवन चित्तता है। इसलिए उत्तर मार्ग में स्त्री का मार्ग पाप का न्याय ना नहीं है। इसका मतलब यह रहा कि स्त्री मार्ग की अधिकारिणी नहीं। इसका मतलब बसल इतना ही है कि मनुष्य के मार्ग में उस मार्ग नहीं मिल सकता। उस एक बार पुरुष पापि म न म रना हा हाता, स हा वर मार्ग की ओर अग्रसर हो सकती है।

महावीर की व्यवस्था महान्य का है, इच्छा और आक्रमण का है। इसका आधार वही महान्य आक्रमण है। उसका मार्ग उसका लिए लायागी है जो मार्ग न मय है जो निराला हो सकता है। इसलिए उठ महावीर कहा गया। यह व

१ नत्त ! कस मए ? कसे गइ हो ? कसे घट ? कसे माए ? कस भाग्न कर ? कसे पाए ?—निगो पाव-अमो का दण्ड न हों।

करने की जो चरम क्षमता है, उसके कारण ही वे महावीर कहलाए। उनकी व्यवस्था में न तो भय की कोई गुजाइश है और न समर्पण की। इसीलिए वे परमात्मा को भी इनकार करते हैं। अगर भगवान है तो समर्पण करना पड़ेगा। महावीर मान नहीं सकते कि हमसे भी कोई ऊपर है। पुरुष-चित्त समर्पण नहीं करता। यह कोई दर्शन की बात नहीं है कि परमात्मा नहीं है। तुम ही परमात्मा हो, मैं ही परमात्मा हूँ ! आत्मा ही शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है। आत्मा ही जब पूर्ण रूप से जीत लेती है तो परमात्मा होजाती है। ऐसा कोई परमात्मा नहीं जिसके पैरो में तुम सिर झुकाओ और प्रार्थना करो।

अतः महावीर का ढंग है दृढ सकल्प का और वे कहते हैं कि अगर किसी भी चीज के लिए पूर्ण सकल्प हो गया हो तो उपलब्धि हो ही जायगी। बुद्ध की बातें और हैं, क्राइस्ट की कुछ और। क्राइस्ट विना सूली पर चढ़े सार्थक ही नहीं होते। परन्तु अगर महावीर सूली पर चढ़े तो हमारे लिए व्यर्थ हो जायँगे। कृष्ण का व्यक्तित्व इन सबमें भिन्न है। कृष्ण और महावीर में मेल बिठाना सम्भव नहीं, क्योंकि इनमें कोई मेल ही नहीं। फिर भी इन सबका महत्त्व है, ये सब इस अर्थ में सार्थक हैं कि पता नहीं, कौन-सा व्यक्तित्व ज्योति की अनुमति कराए—किस व्यक्तित्व से आपको ज्योति दीखे। किन्तु याद रहे, आपको उसमें ही ज्योति दीखेगी जिसके व्यक्तित्व का प्रकार आपके व्यक्तित्व के किस्म के अनुकूल है।

जहाँ महावीर की व्यवस्था में पूर्ण सकल्प का महत्त्व असंदिग्ध है, वही बुद्ध के लिए सकल्प सधर्प है। बुद्ध कहते हैं सधर्प से सत्य कैसे मिलेगा ? इसलिए सकल्प छोड़ो, शान्त हो जाओ। सकल्प ही न करो तो उस शान्ति में सत्य फलित हो सकता है। यह भी ठीक है, यह भी एक खिडकी है और ऐसे भी सत्य मिल सकता है। महावीर भी इसे ठीक बतलाते हैं। किन्तु, यदि आप महावीर से प्रेम करते हैं तो आप क्राइस्ट की मूर्ति महावीर-जैसी ढाँगे, क्राइस्ट से प्रेम करते हैं तो महावीर की मूर्ति क्राइस्ट-जैसी ढाँगे। तभी बात गड़बड़ हो जाती है। क्राइस्ट से प्रेम करनेवाला व्यक्ति अगर महावीर की मूर्ति ढालेगा तो वह महावीर को सूली पर लटका देगा। इसका कारण है कि अभी वह साकेतिक भाषा—‘कोड लैंग्वेज’—बैदा नहीं हो सकती जो सारी मूर्तियों में काम आ सके। अगर हम झाँकना चाहे सबके भीतर समानता के लिए तो हमें मूर्ति मिटा देनी पड़ेगी। फिर हमें एक नया कोड विकसित करना होगा। आरम्भ में बुद्ध की मूर्ति नहीं थी, परन्तु बुद्ध के मरने के बाद पाँच-छह सौ साल में उनके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई और मूर्ति आ गई। मुसलमानों ने बड़ी हिम्मत जाहिर की। चौदह सौ साल हो गए, किन्तु उन्होंने मूर्ति को प्रवेश करने नहीं दिया। मन मूर्ति के लिए लालायित रहता है। उसकी इच्छा होती है कोई रूप बने। कुछ लोग हैं जिनके लिए सभी रूपों में भूल दिखाई पड़ी है। उन्होंने रूप हटाकर भी



दसा है—रूप उही रखा, मुहम्मद का विदा कर दिया, मस्जिद गाली रह गई। कुछ लोग न मंदिर जीर मस्जिद को भी विदा करके दण्ड लिया तीर्थ भी त्याग दिए। सब पूछा तो जैम-जस मनुष्यता विरुद्ध होगी, वैसे वस ध्यक्ति का जाग्रह छाड़ना ही होगा भूतियाँ त्यागनी ही पढ़ेंगी। जना ने कुछ प्रतीक बचा रखे हैं। उनका चौरीस तायकर हैं। अच्छा ता यह होता कि य प्रतीक भी न रहत किन्तु ऐसा न हो सका। थोड़े से चिह्न बन रह, किन्तु उनमें भी भेद हो गया। पारस का मंदिर अलग बना महावीर का अलग। उनका चिह्न म भी भेद ला दिया। चिह्न का भी विदा करने की जरूरत है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब मनुष्य का मन उन्नत उसमें पहुँचे नहीं।

यह ठीक है कि जो अनुभव महावीर का हुआ वही बुद्ध को भी लेकिन उस अनुभव का कहा गया अलग-अलग गुण म। महावीर कहत है आत्मा को पाना परम पान है। बुद्ध वही, उमी समय और उमी क्षेत्र म, कहत है आत्मा का मानन सबड़ा अमान नहीं है। दाना ठाक कहत हैं और पाना जानते हैं भलीभाँति कि ज्ञान काइ भेद नहा। फिर भी दाना राजी नहा हो सकत हम पर करणा क कारण। राजी नृप ता हमारे लिए व्यर्थ हैं। जितने बड़े व्यापक बग का बुद्ध न प्रभावित किया उनमें बड़े व्यापक बग का महावीर प्रभावित न कर सक। इसका कारण यह है कि महावीर का प्रतीक अतीत का थे और बुद्ध के प्रतीक भविष्य का। महावीर का पाम जा प्रतीक थे, उनके पीछे उद्देश तीर्थकरा का धारा थी। प्रतीक मिट चुक थे, प्रचलित न था बुक थे परिवर्तित थे। इसलिए महावीर का बहुत प्रातिकारी व्यक्तित्व था प्रातिकारी मालूम न हुआ कारण उनके प्रतीक जिनका उद्देश प्रयोग किया, अतीत से आण थे। बुद्ध का व्यक्तित्व उन्ना प्रातिकारी न था जितना महावीर का, किन्तु य उन्ना प्रातिकारी मालूम हो सक। उद्देश जा भाषा चुना कर नविष्य की थी। इसलिए उनका प्रभाव उत्तरांतर बढ़ता हा रहा, व्यापक और गहरा होता गया और अनुमान है व्यापक और गहरा होता गया। भाषा का मा धर्म म बुद्ध का प्रभाव के निरन्तर बढ़ जात का नवि प्रवाण का प्रभावना है। परिचय पर यह प्रभाव हाँका जा रहा है।

कहा जा चुका है कि महावीर ने आत्मा का बाना है किन्तु बुद्ध न आत्मा का इनाकार कर दिया है। बुद्ध न कहा आत्मा नहा है। महावीर न इनाकार किया परमात्मा को, कहा—परमात्मा नहीं है मैं ही हूँ। बुद्ध न परमात्मा की बात हा नहीं की। इनाकार कर। पाम हा नहीं माना। यही तक कि उन्नी मैं हूँ का ना इनाकार कर दिया और कहा कि जो जाना है क पूरा इनाकार का उद्देश हा जाता है, उद्देश निराकार हा जाता है। अनन्तर मी पामे राग वही पर रहती है वही व्यक्ति अनुभव कर रहा है कि व्यक्ति होता ही एक बात है। मुक्त दा भी दिया हा जाता

चाहिए, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। अहंकार—‘इगो’—भी एक बोज है, फिर भी महावीर ने जो व्यवस्था की उसमें मोक्ष पाने का खयाल है, ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमें एक उद्देश्य, एक लक्ष्य है। महावीर ने जो प्रतीक चुने हैं, उनकी वजह से ऐसा मालूम पड़ता है कि मोक्ष एक लक्ष्य है। उनके लिए साधना करो, तपस्या करो तो मोक्ष मिलेगा। बुद्ध ने कहा कि जब तक लक्ष्य की भाषा है तब तक उच्छा है, वामना है, तृष्णा है। लक्ष्य की बातें न करो। उनका मतलब हुआ कि अभी जियो, इसी क्षण में जियो—कल की बात मत करो। पुरानी दुनिया गरीब दुनिया थी और गरीब दुनिया कभी भी वर्तमान में—इन क्षण में—नहीं जी सकती। गरीब दुनिया को हमेशा भविष्य में जीना पड़ता है। लेकिन दुनिया बदल रही है, समृद्ध दुनिया पैदा हो रही है। अमरिका में धन इस बुरी तरह बरस पड़ा है कि अब कल का कोई सवाल नहीं। बुद्ध की यह बात कि ‘आज, इसी क्षण जियो’ मार्थक हो जायगी। गरीब दुनिया स्वर्ग बनाती है आगे। उस स्वर्ग में ही तृप्तिर्या है। यहाँ तो सुख मिलता नहीं, इसलिए गरीब सोचता है कि मरने के बाद—स्वर्ग में—सुख मिलेगा। समृद्ध दुनिया आगे स्वर्ग नहीं बनाती। वह आज ही बना लेती है, इसी वक्त बना लेती है। हिन्दुस्तान का स्वर्ग भविष्य में होता है, अमरिका का स्वर्ग अभी और यही। इसी कारण हम ईर्ष्या होती है, हम गालियाँ देते हैं, निन्दा करते हैं। उनका स्वर्ग अभी बना जा रहा है, हमारा मरने के बाद बनेगा। पक्का मरोसा नहीं कि वह बनेगा कि नहीं बनेगा। बुद्ध ने जो सदेश दिया वह तात्कालिक जीने का है, इसी क्षण जीने का है। महावीर का जो सदेश है, वह मन के संकल्प का है। संकल्प तनाव में चलता है और इसकी प्रक्रिया तनाव की प्रक्रिया है, परम तनाव की। मजे की बात यह है कि सभी चीजें अगर अपनी पूर्णता तक ले जाईं जायँ तो वे अपने में विपरीत में बदल जाती हैं। यही नियम है। अगर आप तनाव को उसकी अति पर ले जाएँ तो विश्राम शुरू हो जाता है। दृष्टान्तरूप में आप अपनी मुट्ठी बाँधें और पूरी ताकत लगा दें उसे बाँधने में। जब आप के पास ताकत न बचेगी तो मुट्ठी खुल जायगी और आप मुट्ठी को खुलते देखेंगे। तब आप बाँध भी नहीं सकेंगे उसे, क्योंकि सारी ताकत तो आप लगा चुके हैं। हाँ, धीरे से मुट्ठी बाँधें तो वह खुल नहीं सकती अपने आप, क्योंकि ताकत आपके पास सदा गेप है जिससे आप उसे बाँध रखेंगे।

महावीर कहते हैं कि संकल्प पूर्ण कर दो। इससे इतना तनाव पैदा होगा कि तनाव की आखिरी सीमा आ जायगी और फिर तनाव समाप्त हो जायगा, मिथिल हो जायगा। ले जाते हैं वे भी विश्राम की ओर, लेकिन उनका मार्ग है पूर्ण तनाव से भरा हुआ—पूर्ण तनाव, ताकि हम तनाव से बाहर निकल आएँ। बुद्ध कहते हैं, जितना भी तनाव है उससे पीछे लौट आओ, तनाव छोड़ दो, तभी विज्ञान आता है।

हमारी सत्ती के लिए महावीर की भाषा दुर्बोध है। हम तनाव पसंद नहीं करते। तनाव वैसा ही बहुत ज्यादा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि भविष्य की जो भाषा है वह बुद्ध के पास है। पश्चिम का महावीर की यह दगा भाषा न होगी कि सक्प करो तपश्चर्या करो। पश्चिमवर्सी कहेंगे, हम मरे जा रहे हैं वैसा ही, अब हम पर कृपा करो, विश्राम दो।

महावीर के पहले तईस तीथकरा के लम्बे काल में आत्मी प्रवृत्ति के परम विश्राम में जा रहा था। उसके जीवन में न कोई तनाव था, न कोई चिन्ता थी। उस स्थिति में सक्प का बढ़ाकर तनाव का पूण करने की बात ही अपील कर सकती थी। ता वह चल पड़ी। फिर एक सन्नमण<sup>१</sup> आया। उस समय में महावीर बहुत प्रभावित न हो सके। यहाँ तक कि जा लग उनके पीछे गए व भी उनका मान न मके। वह नाम मात्र की यात्रा रही। नए लोग भी उस दिशा में जाने की राजी न हुए। राज राज मगड की शीघ्र होता गया। यह सहा है कि आज भी श्वताम्बर जन मुनिया की सग्या काफी है परन्तु ये जन मुनि महावीर से बहुत दूर है। इन्होंने बहुत समझौते कर लिए हैं परन्तु जिन्होंने समझाते नहीं किए वे दिगम्बर जन मुनि मुन्वि<sup>२</sup> से बीस यात्रा में बच रहे हैं। पूरे मुक्त में धीरे धीरे इनकी सग्या जोर में कम होती जा रहा है। तीस पतीस वर्षों में ये जैन मुनि भी मर जायेंगे और तब देग में एक भी दिगम्बर जन मुनि नहा रहे जायगा। जो दिगम्बर मुनि आज जीवित हैं उनमें से का भी निश्चित नहा है। चूँकि एक अथ में ये पुरानी सदी के लोग हैं इसलिए राजी भी हैं। एक भी शिक्षित आत्मी को, ठीक आधुनिक शिक्षा पाए हुए आदमी का, दिगम्बर जन मुनि नहीं बनाया जा सके। अब तक, बन नहीं सकता। उत्तर का एक भी जन मुनि नहा है दिगम्बर के पास। जो है, वे अनिश्चित हैं विलुप्त कम समय के लोग हैं ग्रामीण हैं। सब पचान बष से ऊपर उम्र के लोग हैं जो बीस पच्चीस वर्षों में विदा हो जायेंगे। श्वताम्बर मुनि की सग्या बची है बढ़ती है क्योंकि वक्त के साथ वह भाषा का बदलता रहा है समझौते करता रहा है समझौते का तरीकों निकालता रहा है। बल वह गाड़ी में बैठने लगेगा परमा वह हवाई जहाज में उड़ेगा। वह सब समझौते कर लेगा। वह समझौते करके ही बच रहा है।

महावीर की साधना साथ ही हो, इसके लिए एक ही उपाय है कि उसे भविष्य की भाषा में पूरा का पूरा रस लिया जाए। महावीर के ऊपर बहुत पुराना 'क्वर' है जो उनपर नई जिल्द होनी चाहिए। महावीर का धारा का इतना अदभुत अर्थ है कि वह या जाय ता नुकसान होगा—पारी मानवजाति का अहित होगा। क्वर बदलन



से जैनियों को नुकसान होगा, महावीर की धारा का अर्थ खो जाने में मानव-जाति का नुकसान होगा। इसलिए हमें जैनियों के नुकसान की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मनुष्य-जाति की समृद्धि में महावीर आगे भी सार्थक हो, यही मेरी कामना है।

मैंने कहा है कि महावीर की नाचना पूर्ण संकल्प की नाचना है। परन्तु जैन-परम्परा उसे दमन की नाचना कहती है। दमन गन्द सार्थक नहीं, खतरनाक है। अब फ्रायड के बाद जिस नाचनापद्धति ने दमन का प्रयोग किया, वह पद्धति उस गन्द के साथ ही दफना दी जायगी। महावीर की नाचना दमन की नाचना नहीं है। अमल में दमन का अर्थ ही और था तब। फ्रायड ने पहली बार दमन को नया अर्थ दिया। उन दिनों 'कायाक्लेज' गन्द का हम उपयोग करते थे। वह अब भी सार्थक है। अगर महावीर के शरीर को देखो तो तुम्हें पता चल जायगा कि तुम्हारी कायाक्लेज की बात नितान्त नानमन्त्री की बात है। हाँ, अपने मुनियों को देखो तो पता चलता है कि कायाक्लेज सच है। महावीर की काया को देखकर लगता है कि अपनी काया को सँवारनेवाला ऐसा आदमी अन्यत्र हुआ ही नहीं। ऐसी सुन्दर काया न तो बुद्ध के पास थी और न आइन्स्ट के पास। इतना सुन्दर होने की वजह से ही वे नग्न खड़े हो सके। अमल में नग्नता को छिपाना कुरूपता को छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं अंगों को छिपाते हैं जो कुरूप हैं।

महावीर कायाक्लेज किसी और ही बात को कहते हैं। जो सुबह घटे भर व्यायाम करता है, वह आदमी भी कायाक्लेज ही करता है। वह पसीने-पसीने हो जाता है, शरीर को थका डालता है। और एक वह भी कायाक्लेज करता है जो एक कोने में बिना खाए-पिए, नहाए धोए पड़ा रहता है। लेकिन जहाँ पहला आदमी काया के स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए ही कायाक्लेज करता है, दूसरा आदमी काया का दुश्मन है और उसका कायाक्लेज शरीर को कुरूप बना देता है। महावीर कहते हैं कि काया का क्रम काया के लिए ही है। काया को सुन्दर-स्वस्थ रखने के लिए श्रम उठाना ही पड़ेगा। इसी प्रकार 'उपवास' का अर्थ है, अपने पास रहना, आत्मा के पास रहना, जैसे 'उपनिषद्' का अर्थ है गुरु के पास बैठना। लेकिन अब उपवास का अर्थ अनगन—'न खाना'—हो गया है। न खाने पर जोर देना दमन पर जोर देना है। चार-चार महीने तक कोई आदमी बिना खाए नहीं रह सकता, लेकिन उपवास में रह सकता है। उपवास का मतलब है अपनी आत्मा में इतना लीन हो जाना कि शरीर का बोध ही न रहे। शरीर का पता हो तो भोजन की आवश्यकता होती है। लेकिन उपवास में दिन बीत जाते हैं, रातें बीत जाती हैं, परन्तु शरीर का बोध नहीं होता।

उपवास से अनगन विलकुल उलटा है। दोनों में भोजन नहीं किया जाता, लेकिन जहाँ अनगन में आदमी शरीर के पास ही रहता है, उपवास में उसे शरीर की सुबसुब

नहा रहती। अनशन करनेवाले लोग दिन भर, मन ही मन साते रहते हैं उनके मन में भोजन चरता रहता है। अगर महावीर ने चार चार महीने के उपवास किए हैं तो यह इस बात का सबूत है कि उनके पास भारी बलिष्ठ शरीर था, साधारण नहीं। तभी तो ऐसे उपवास के बाद भी उनका शरीर बचा रहा। उपवास का मतलब है कि आत्मा और चेतना एकदम भीतर चली जाय और उपवास करनेवाले साधक का बाहर का खयाल ही न रहे। जब आप भीतर चले जाते हैं तो बाहर का स्मरण ही छूट जाता है। शरीर इतना अदभुत यंत्र है कि जब आप भीतर रहते हैं आपका शरीर सावधान हो जाता है अपनी व्यवस्था आप ही पूरी कर लेता है। आपका कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं। शरीर की साधना का मतलब है कि जब आप भीतर चले जायें तो आपके शरीर को आपकी कोई जरूरत न रहे वह अपनी व्यवस्था आप कर ले। कायाक्लेश का अर्थ है काया की ऐसी साधना कि वह बाधा न रह जाय, प्रत्युत साधन हो जाय, सीढ़ी बन जाय। लेकिन 'कायाक्लेश' शब्द खतरनाक है इसलिए ऐसी साधना को 'कायाक्लेश' मत कहो, इसे कायामाधना कहो। 'क्लेश' शब्द अनुपयुक्त है, उसमें ऐसा भासित होता है कि तुम शरीर का सता रहे हो। उपवास को न खाना मत कहो, अनशन मत कहो—उपवास को कहो आत्मा के निकट होना। अनशन करने से उपवास नहीं होता, उपवास करने से अनशन हो जाता है। यह बात खयाल में आ जाय तो महावीर की धारा के खा जान का कोई कारण नहीं रहेगा। यह भी ध्यान रहे कि महावीर जसा जादू भी दुबारा नहीं होता। वस आत्मी को पदा होन के लिए जो पूरी हवा और वातावरण चाहिए वह दुबारा असम्भव है। जोरोम्टर बनपयुनियस, मिलरेपा—जैसे लोग नहीं खोने चाहिए। अलग अलग कोना से पहुँच कर उहाने ऐसी चीज पाई है जो बचनी ही चाहिए। वे ही मनुष्य-जाति की असली सम्पत्ति हैं। लेकिन जो उनके रश्क मालूम पड़ते हैं वे ही उनको खोए दे रहे हैं।

## २

महावीर के जन्म से लेकर उनकी साधना-काल के गुरु होने तक कोई स्पष्ट घटना का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। जीजस की जीवनी में भी पहले तीस वर्षों के जीवन का कोई तथ्यपूर्ण उल्लेख नहीं है। इसके पीछे बड़ा महत्वपूर्ण कारण है। महावीर जसी आत्मा अपने पिछले जन्म में ही अपनी यात्रा पूरी कर चुकी होती है, उनके लिए घटनाओं का जगत समाप्त हो चुका होता है। स्वयं की किसी वासना के कारण वे इस जन्म में नहीं आते। इस जन्म में आन की प्रेरणा में सिर्फ उनकी करुणा ही कारण होती है। जो उन्होंने जाना है जो उन्होंने पाया है उस बाटने के अतिरिक्त इस जन्म में उनका और कोई काम नहीं होता। ठीक उस समय तो तीर्थकर

होने का अर्थ ही है ऐसी आत्मा होना जो अब सिर्फ मार्ग दिखाने को पैदा हुई हो। और जो अभी स्वयं ही मार्ग खोज रहा हो वह मार्ग नहीं दिखा सकता। मार्ग क्या है, इसका पता मार्ग पर चलने से नहीं, मजिल पर पहुँच जाने से लगता है। चलते समय तो सभी मार्ग ठीक ही मालूम होते हैं। उस समय यह जाँचने की कर्नाटी भी नहीं होती कि जिस मार्ग पर चल रहे हैं, वह ठीक है या नहीं। मार्ग के ठीक होने की एक ही पहचान है कि वह मजिल तक पहुँचा दे। लेकिन जो मजिल पर पहुँच जाता है, उसका मार्ग समाप्त हो जाता है। ध्यान रहे कि मजिल पर पहुँच जाना उतना कष्टसाध्य नहीं है जितना मजिल पर पहुँचकर मार्ग पर लौट आना। मुक्ति के मजिल पर पहुँचते ही मुक्तात्माएँ खो जाती हैं निराकार में। लेकिन थोड़ी-भी आत्माएँ फिर अँधेरे पंथों पर वापस लौट आती हैं। ऐसी ही आत्माएँ तीर्थकर कहलाती हैं। किसी-किसी परम्परा में वे अवतार ईश्वरपुत्र या पैगम्बर के नाम से सम्बोधित होती हैं।

पैगम्बर, तीर्थकर, अवतार का एक ही अर्थ है—ऐसी चेतना जिसका काम पूरा हो चुका और जिसके लिए लौटने का कोई कारण नहीं रह गया। फिर भी ऐसी चेतनाएँ परम विश्राम के क्षण में भी मजिल पर न रुककर वापस लौट आती हैं। ऐसी ही आत्माएँ मार्गदर्शक होती हैं।

तीर्थ कहते हैं उस घाट को जहाँ से पार हुआ जा सके। अतः तीर्थकर है उस घाट का मल्लाह जो पार करने में सहायता करे, रास्ता बताए।

इस जन्म में महावीर का और कोई प्रयोजन नहीं है अब। इसलिए उनके वचन का सारा जीवन घटनाओं से शून्य है। आम तौर से जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं, उनके वचन में विशिष्ट घटनाएँ नहीं घटती। चारों ओर चुप्पी होती है। वे चुपचाप बड़े हो जाते हैं और उस क्षण की प्रतीक्षा करते होते हैं जब वे उसे देने में समर्थ हो सकेंगे जिसे देने के लिए उनका जन्म हुआ है। मेरी दृष्टि में महावीर को वर्धमान का नाम इसलिए मिला। वे वर्धमान इसीलिए नहीं कहलाए कि पैदा होने से उनके घर में सब चीजों की बढ़ती होने लगी, धन बढ़ने लगा, यश बढ़ने लगा। उनके नाम की अर्थवत्ता इसमें है कि वे चुपचाप बढ़ने लगे और उनके आसपास कोई घटना न घटी। उनका बढ़ना उतना ही चुपचाप था जितना पौधों का बड़ा होना या कलियों का फूल बनना होता है। पौधे बड़े होते हैं, कलियाँ खिलती हैं, पर इसके लिए कहीं कोई शोरगुल नहीं होता, आवाज नहीं होती। महावीर का चुपचाप बढ़ना दिखाई पड़ने लगा होगा, क्योंकि घटनाओं का न घटना बहुत बड़ी घटना है। ऐसा भी कोई व्यक्ति है जिसके जीवन में कोई घटना न घटी हो, जो इतना चुपचाप बढ़ने लगा हो कि चारों तरफ कोई वर्तुल पैदा न हुआ हो समय में, क्षेत्र में ? घटनाओं के न घटने से महावीर की निराला, मजिल के न पहुँचने, निराकार में लौटने आगे होंगे और



उन्होंने इनकार कर लिया होगा। उन्हें पढ़ने की जरूरत नहीं। शिक्षक जा पढ़ा सकते हैं, वे उस पहले में ही जानते हैं। इसलिए कोई शिक्षा न हुई। शिक्षा ग्रहण करने का कोई कारण भी न था काइ अथ भी न था।

महावीर के जन्म के सम्बन्ध में एक अप्रमाण गाथा है। कहा जाता है कि वे ब्राह्मणी के गम में आए और देवताओं ने उन्हें एक क्षत्रिया के गम में पहुँचा दिया। यद्यपि यह तथ्य नहीं कि देवताओं ने एक स्त्री का गम निकाला और उसे दूसरी स्त्री में रग दिया, फिर भी बात बड़ी गहरी है। इससे पहली सूचना तो यह मिलती है कि महावीर का पथ पुरुष का, आश्रमण का, क्षत्रिय का पथ है। उनका जो व्यक्तित्व है उनकी रोज का जा पथ है वह क्षत्रिय का है। इस अर्थ में क्षत्रिय का है कि वह जीतनेवाले का है। इसी कारण महावीर जिन कहलाए। जिन का मतलब है जीतने वाला वह पुरुष जिम्मा और कोई पथ नहीं सिवा जीतने के। और इसीलिए उनकी पूरी परम्परा जैन हो गई।

गाथा कहती है कि महावीर ब्राह्मणी के गम से निकाल कर एक क्षत्राणी के गम में डाल दिए गए।<sup>१</sup> इस प्रकार के ब्राह्मण होने से बचें। ब्राह्मण का माग न तो परमात्मा से लड़ने का है और न समर्पण करने का। वह कहना है—परमात्मा से लड़ो ? अगोमन है। समर्पण करोगे ? किसके प्रति ? उसका अभी कोई पता नहीं। हम दीन हीन लोगों के पास समर्पण के लिए है क्या ? और छीनेंगे क्या ? एक ही माग है कि हम हाथ फला दें विनम्रता से और उसकी मित्रता स्वीकार करें।

अन ब्राह्मण की वृत्ति मिश्रण की है और उसका माग भीग माँगन का। महावीर न तो व्यक्ति जीतेगा माँग नहीं सकता। इसलिए यदि ऐसा व्यक्ति ब्राह्मणी के गम में जा भी जाय तो दरताओं को उस हटाने के लिए क्षत्रिया के गम में रग देना पड़ेगा। महावीर का व्यक्तित्व ही तमना क्षत्रिय का है। वे किसी के सामने हाथ नहीं फला सकते परमात्मा के सामने भी नहीं वे जीनेंगे, इसी में उनके जीवन की मायना है। उन दिनों देश में जो महाधर्म प्रभावी परम्परा थी वह ब्राह्मण का थी, अमहाय वनरग माँगन वाला की थी। उसमें सन्देह नहीं कि अमहाय हाना बड़ी अत्यन्त प्राप्ति है। वह भी एक माग है लेकिन वह माग बुरी तरह पिट गया था। जो अत्यन्त घटना घट गई थी वह यह थी। यद्यपि माग ता था असहाय होने का था भी उसकी परम्परा इतनी गाढ़ी और मजबूत हो गई थी कि अमहाय ब्राह्मण ही सबसे ज्यादा अवलोकन मंदिर पर चढ़ते। ब्राह्मण होने का जो मौलिक धारणा थी

१. देवता ब्राह्मणी का अवस्थानिना दिया ग मुलाकर हरिगेमया न महावीर का गमहरण किया था। पञ्चगून ० ०० प ० ८८ अ। ६० डॉ० जगदीशचन्द्र जैन जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज ( १९६ ), प ० ३४६ ( पारम्परिक )।

वह खडित हो चुकी थी। ब्राह्मण गुरु हो गया था, वह अपने को ज्ञानी समझने लगा था, वह सबके ऊपर बैठ गया था। इस परम्परा को तोड़ देना जरूरी था। इसे ही एक प्रतीक के रूप में कहा गया है कि ब्राह्मणी का गर्भ अब महावीर-जैसे व्यक्ति को पैदा करने में अक्षम हो गया था। ब्राह्मण की दिशा से महावीर-जैसे व्यक्ति के होने की सम्भावना न थी। अतः उन दिनों जो मन्त्र हुआ, वह बहुत गहरे में ब्राह्मण और क्षत्रिय के मार्ग का संघर्ष था।

यह भी सोचने की बात है कि जैनो के चौबीसो तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। असल में वह मार्ग ही क्षत्रिय का मार्ग है। लोग पूछते हैं कि क्या क्षत्रिय के अलावा और कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता? नहीं हो सकता। चाहे वह वेदा ब्राह्मणी के ही गर्भ से क्यों न पैदा हो, वह होगा क्षत्रिय ही। तभी वह उस मार्ग पर जा सकता है। वह मार्ग आक्रमण का है, विजय का है और वहाँ भाषा आक्रमण और विजय की है।

दूसरी बात जो लोग निरंतर पूछते हैं, यह है कि क्या गरीब का वेदा तीर्थंकर नहीं हो सकता? इस सम्बन्ध में ध्यान रहे कि तीर्थंकरों में सब के सब राजपुत्र थे—क्षत्रिय और राजकुल के थे। यह भी बहुत अर्थपूर्ण है कि जिसने अभी इस ससार को नहीं जीता, वह उस ससार को कैसे जीत सकता है? राजपुत्र इस अर्थ के सूचक है कि जीतनेवाला कुछ भी जीतेगा और जब वह इस (ससार) को जीत लेगा तब उसकी नजर उस ससार की तरफ उठेगी। जब वह इस लोक को जीत लेगा तब उस लोक को जीतेगा। जीत के मार्ग में पहले यही लोक पड़ता है। ब्राह्मण इस लोक में भी भिक्षा माँगेगा, उस लोक में भी। वह मानता ही यह है कि जो मिलता है वह प्रभु की कृपा से ही मिलेगा। उसके लिए आक्रमण का प्रश्न ही नहीं उठता। वह है माँगनेवाला, क्षत्रिय है जीतनेवाला। एक दान और दया में लेगा; दूसरा दुश्मन को समाप्त करके लेगा। इसलिए महावीर के जन्म की कथा बड़ी मीठी है। वह यह बताती है कि ब्राह्मण की जो कोख थी, वह बाँझ हो गई थी। उसमें महावीर-जैसा व्यक्ति पैदा नहीं हो सकता था। ब्राह्मण का मार्ग कुठित हो गया था, उसकी परम्परा क्षीण हो गई थी। उसके विरोध में वगावत जरूरी थी। वह वगावत क्षत्रिय ही कर सकते थे, क्योंकि वगावत हमेशा ठीक विपरीत से ही आती है। इसी प्रकार महावीर और बुद्ध द्वारा छोड़ी गई परम्परा भी काल-क्रम से—डेढ़ हजार वर्षों में—सूख गई और जड़ हो गई। तब विपरीत ने फिर विद्रोह किया।

कहने की जरूरत नहीं कि गाथाओं ने जो प्रतीक चुने हैं वे बड़े अर्थपूर्ण हैं। इन प्रतीकों को जो जड़ता से, तथ्यों की भाँति, पकड़ लेता है वह बिल्कुल भटक जाता है।

महावीर के सम्बन्ध में अनेक—अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। ये सब की सब प्रतीकात्मक हैं, सत्य हैं। और चूँकि ये सत्य हैं, इन्हें गाथाओं में—‘मिथ’ में—कहा गया है और इनकी भाषा प्रतीकों से भरी है। याद रहे कि सत्य को तथ्य की भाषा



में नहीं कहा जा सकता। यदि सत्य को सत्य की भाँति रनें तो वह इतिहास बन जाता है। सत्य के सभी द्वार समय में जाने हैं, लेकिन जो सत्य का पकड़ लेता है वह वहीं जटक्कर रह जाता है। सत्य सत्य की सत्य बाहरी परिधि है सबसे बाहरी परकाय है। सत्य सत्य नहीं है, सिर्फ सत्य की सम्भावना है। जीवन बहुत उच्छिन्न है इसलिए हम एक ही सत्य का बहुत तरह से देख सकते हैं।

निगमर कहते हैं कि महावीर अविवाहित रहे। दिगम्बरा की धारणा है कि वह न केवल विवाहित थे बल्कि वह एक बेटी भी थी। मरा माना है कि महानेर का विवाह जम्बर हुआ होगा, लेकिन वे वित्कुल अविवाहित की भाँति रह गये। जिहाने उन सत्य का देना उद्घाटन कहा कि महावीर का विवाह हुआ था और जिहाने सत्य का—केवल सत्य का—देना, उद्घाटन घोषणा की कि वह जान्मा अविवाहित था। महावीर का अविवाहित होना एक सत्य है और विवाहित होना एक सत्य। बाद व्यक्ति विवाहित होकर भी अपने मन से, चित्त से, वासना से अविवाहित हो सकता है। विवाहित होने की वासना है कि मैं अकेला काफी नहीं, अपने में पर्याप्त नहीं। दूसरा भी चाहिए जो आए और मुझे पूरा करे। पुरुष के निगमरा शान्ती और अधूरी है। पुरुष आए और उसे भर। निगमरा ने ठीक ही कहा कि महावीर अविवाहित थे। महावीर में किसी से पूरे होने की कोई कामना ही नहीं थी वही बाद अधूरापन था। इस साधारण सत्य के लिए कि उनका विवाह हुआ था, उन्हें विवाहित कहा जा सकता है। हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो, लेकिन महावीर ने पत्नी नहीं पाई। यह भी हो सकता है कि पत्नी ने इसे जतान भी पाया हो। लेकिन महावीर ने तो पिता थे और न पति। विवाह करने और सन्तान पैदा करने की घटना अत्यन्त बाह्य तल पर घटी थी। भीतर महावीर पूरे थे। इसी पर यह मन के लिए दिगम्बरा ने कहा कि इस आदमी ने क्या साक्षात् कहा था। लेकिन सत्य यह था कि महावीर ने शादी की थी। उन्होंने शादी के लिए शागर नहीं किया होगा। शादी के लिए आतुर व्यक्ति ही स्त्री का महत्त्व नहीं देता वह व्यक्ति भी देता है जो शादी के लिए इनकार करता है। इनकार करनेवाला भी मानता है कि स्त्री भी कुछ है जो पात होगी तो मैं पुत्र और हो जाऊंगा। महावीर जान मर-मृत के बिना करने तक का उपाय था। ठीक है, स्त्री जाना है तो जाए तब जानी तो न आए। यह जाना बातें अधूरी हैं। उक्त जीवन की जगह सत्यता से भी जानता है कि यही बात सच रही होगी।

एक दिन महावीर ने अपने पिता से कहा कि शादी की जाना जाना। पिता ने कहा—रहे रह जायें। जगह महावीर चुन लो गये। दूने अश्वत्थ जान्मा थे व। शादी, मरणा का भी जाना माँगनी पड़ती है? जाना है कि शादी मरणा का जन्मदा के लिए जाना माँगने? मरणा की जानना का महत्त्व ही है कि मरणा जन्मदा

व्यक्ति मोह-बन्धन से मुक्त होना चाहता है। फिर उसके लिए किसी की आज्ञा की क्या जरूरत ? जब पिताने आज्ञा न दी तो महावीर चुप हो गए और फिर उन्होंने इस सम्बन्ध में बात तक न की। ऐसा लगा मानो सन्यास लेने या न लेने से उन्हें कोई बुनियादी फर्क न पड़ा। इसलिए उन्होंने जोर नहीं दिया—आज्ञा मिलती तो ठीक, न मिली तो ठीक। पिता की मृत्यु के बाद मरघट में लौटते वक्त उन्होंने अपने बड़े भाई से सन्यास लेने की आज्ञा माँगी। बड़े भाई ने कहा—तुम पागल हो गए हो। एक तो पिता जी के मरने का दुःख और उस पर तुम्हारा सन्यास लेने का निश्चय ! वह भी यहाँ, रास्ते पर ! मुझसे ऐसी बात कभी मत करना। महावीर ने फिर कभी सन्यास की बात न की। लेकिन कुछ ही दिनों में घर के लोगों को ऐसा एहसास होने लगा कि महावीर घर में हैं और नहीं भी—उनका वहाँ होना न होने के बराबर है। महावीर इन प्रकार रहते मानो वे उस बड़े भवन में अकेले हो, कुछ पूछने पर 'हाँ' और 'ना' में भी उत्तर नहीं देते, किसी पक्ष या विपक्ष में नहीं पड़ते। तब घर के लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि अब आपकी मर्जी हो तो आप सन्यास ले लें, क्योंकि हमें तो ऐसा लगता है कि आप सन्यास ले ही चुके। हम क्यों इस पाप के भागीदार हो कि आपको रोक रखें ?

और महावीर निकल पड़े।

मेरी दृष्टि में यह सत्य है कि महावीर विवाहित थे। परन्तु, उनके जैसा व्यक्ति पति कैसे हो सकता है ? पति होना एक तरह का दुर्व्यवहार है, एक प्रभुत्व है, स्वामित्व है। जो व्यक्ति जड़ वस्तु पर भी प्रभुत्व रखना नहीं चाहता, वह मला किमी जीवित व्यक्ति पर प्रभुत्व रखना चाहेगा ? ऐसी कल्पना ही असम्भव है।

हो सकता है, उन्हें लड़की भी जन्मी हो। परन्तु महावीर पिता न बन पाए। पिता की आकांक्षा अपनी सन्तान में जीने की होती है, वह मरकर भी अपने पुत्रों और अपनी कन्याओं में जीना चाहता है। बेटे में बाप की महत्वाकांक्षाएँ जीती हैं, उसका अहंकार पोषित होता है। महावीर-जैसे व्यक्ति में मृत्यु के बाद भी जीवित रहने की आकांक्षा का सवाल ही पैदा नहीं होता। न अहंकार है और न होने की तृष्णा। वे लौटते हैं वहाँ से जहाँ सब कुछ खो जाता है, जहाँ सारी कामनाएँ राख हो जाती हैं।

महावीर के सम्बन्ध में ऐसी और भी बातें कही जाती हैं। जैसे एक वर्ग मानता है कि उन्होंने वस्त्र पहन रखे थे, चाहे वह देवताओं का दिया हुआ वस्त्र हो या आँखों से न दिखाई पड़नेवाला वस्त्र। दूसरे वर्ग की मान्यता है कि वे विलकुल नग्न थे—किसी प्रकार का वस्त्र उनके शरीर पर न था। ये दोनों बातें एक साथ सच हैं। यह विलकुल सच है कि महावीर ने वस्त्र छोड़ दिए थे। लेकिन उनकी नग्नता ऐसी न थी कि उसे ढाँकने के लिए वस्त्रों की जरूरत पड़े। कोई वस्त्र पहनकर भी नंगा हो सकता है, अपनी नग्नता प्रकट कर सकता है। सच तो यह

है कि नगा शरीर उतना नगा नहीं होता जितना वस्त्र उसे नगा कर देते हैं। पशुजा को देखकर उनकी नग्नता का खयाल नहा आता, लेकिन पुम्पा और स्त्रिया के वस्त्र से उनका नगेपन का खयाल तत्काल आ जाता है। और इनसान न ऐसे वस्त्र विकसित कर लिये हैं कि वे उसके शरीर का उधाड़ते हैं, ढाँकते नहीं। जा वस्त्र ढाँकता है उसे पसन्द ही कौन करेगा ? जिस व्यक्ति के वस्त्रों को त्यजकर उन्हें और उधाड़न की इच्छा जगे, वह व्यक्ति वस्त्र पहन हुए भी नगा है। इसके ठीक विपरीत महावीर की नग्नता है। जब कोई वस्त्रा भ नगा हो सकता है तो कोई अपनी नग्नता में वस्त्र पहन हुए क्या नहीं हो सकता ? महावीर बिल्कुल नग्न थे लेकिन उनकी नग्नता भी वस्त्र बन गयी थी वह किसी को भी नग्नता जसी नहीं लगती थी। इसलिए एक कहानी बन गई थी कि महावीर के वस्त्र दिग्वाड नहा पड़त—उनके वस्त्र देवताओं से मिले थे उन्हें देवदूतों ने दिया था। ऐसी धारणा का पता हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। पर महावीर निपट नग्न थे। असल में निपट नग्न आदमी ही नग्नता से मुक्त हो सकता है। बुद्ध या क्राइस्ट जम लोग जिन्होंने वस्त्र पहन रखे थे, नग्न होने की उतनी ही हैसियत रखते थे जितनी महावीर। इनके भीतर भी कुछ छिपान को न था। लेकिन हा सकता है दूसरा का उनकी नग्नता अस्चिकर लगे। दूसरा पर आक्रमण क्या करें ? इसलिए उन्होंने दूसरा की आँखा पर वस्त्र डाल दिए, अपने शरीर पर नहीं। और परायी आँखों पर वस्त्र डालने का सबसे सरल उपाय यही था कि उन्होंने अपने ही शरीर पर वस्त्र डाल लिए। जब जमीन पर काट चुभत हैं तो मारी पथ्वी को चमड़े से न ढँककर अपने परा को ही चमड़े से ढक लना उचित होता है। सारी पथ्वी को चमड़े से ढँकने की सलाह निरर्थक है। अपने परा को चमड़े से ढँक लें तो मारी पथ्वी पर हम जहाँ भी जायेंगे वही चमड़ा हागा। इसी तरह दूसरा की आँखा पर वस्त्र टाटन की सबसे अच्छी तरकीब यही है कि अपने शरीर पर वस्त्र डाल लिये जायें। सबकी आँखा पर वस्त्र डालना असम्भव है, क्योंकि पथ्वी बहुत बड़ी है और इस पर रहनेवाले मनुष्या की संख्या प्रगुमार है।

मैं कहता हूँ—तथ्या पर जोर सिर्फ नासमय लाग देत हैं। समयदार का जार सदा सत्य पर हाता है। वे लोग जा कहते हैं कि महावीर कभी बूढ़े नहा हुए और न काइ दूसरा तीथकर कभी बूढ़ा हुआ समझदार हैं और उनका बल सत्य पर है तथ्य पर नहीं। तथ्य यही हागा कि महावीर बूढ़े अवश्य हुए हागे। जब मरना पड़ता है तो बूढ़ा होना ही पड़ेगा। लेकिन सत्य कहता है कि महावीर कभी बूढ़े नहा हुए। तथ्य की दृष्टि से यह असम्भव है इतिहास इस स्वाकार नहा करेगा, लेकिन मैं कहता हूँ कि 'गायगास्त्र' ( मिथालजि ) का पक्क इतिहास का



पकड़ की अपेक्षा अधिक गहरी है। लेकिन सत्य की अभिव्यक्ति के लिए उसे तथ्य छोड़ देने पड़ते हैं और कहानी गढ़नी पड़ती है। मेरी दृष्टि में तथ्यों का भी मूल्य है अगर वे सत्य को बता पाएँ, अन्यथा उनका कोई मूल्य नहीं। सत्य की यात्रा में वे मील के पत्थर हैं, जो गतव्य की ओर लट्ककर खड़े हैं। लेकिन कुछ नाममज्ज लोग मील के पत्थरों को ही पकड़कर रुक जाते हैं, उन्हें ही अपना लक्ष्य समझ लेते हैं।

हो सकता है कि मेरी बातें आपको कुछ विचित्र लगे। यह कैसे हो सकता है कि कोई मैथुन की प्रक्रिया में गुजरे, उससे बेटी पैदा हो और वह स्वयं वानना और तृष्णा में मुक्त रहे? इसके उत्तर में मैं कहूँगा कि यदि भोजन द्रव्य के रूप में किया जा सकता है तो मैथुन क्यों नहीं? हम किसी भी क्रिया के साक्षी हो सकते हैं, चाहे वह क्रिया अन्तर्गामी हो या वहिर्गामी। असल में जो भोजन शरीर में जाता है, वही मैथुन में शरीर से बाहर निकलता है। अगर चेतना साक्षी हो सके तो बात समाप्त हो जाती है, कर्ता मिट जाता है। केवल शरीर एक उपकरण बन जाता है। लेकिन साधारणतः मैथुन में आदमी विलकुल खो जाता है, बेहोश हो जाता है। तब केवल शरीर ही उपकरण नहीं बनता, भीतर आत्मा भी खो गई होती है, मूर्च्छित हो गई होती है। और मैथुन का विरोध केवल इनीलिए है कि आत्मा की सर्वाधिक मूर्च्छा मैथुन में ही होती है। अगर आत्मा अमूर्च्छित रह जाय तो बात खत्म हो गई। सुनना भी एक क्रिया है। अगर तुम साक्षी हो जाओ तो पाओगे कि सुनने के साथ-साथ तुम दूर खड़े होकर सुनने को देख भी रहे हो। इसी तरह यद्यपि मैं बोल रहा हूँ, फिर भी पूरे वक्त यह जानता हूँ कि मेरे भीतर अबोला भी कोई खड़ा है। असल में जो अबोला खड़ा है, वही मैं हूँ। स्वास चल रही है और अगर मैं इसे देख रहा हूँ तो स्वास का चलना या न चलना जगत् की विराट् व्यवस्था का हिस्सा हो गया और मैं क्रिया से भिन्न हो गया। हाँ, मैथुन में साक्षी होना सर्वाधिक कठिन है। इसका कारण है कि यह एक ऐसी क्रिया है जिसे प्रकृति ने मनुष्य के ऊपर नहीं छोड़ी। यदि मनुष्य के ऊपर छोड़ दी गई होती तो वह ऐसी ऐन्सर्ड, ऐसी व्यर्थ और बेमानी क्रिया कभी न करता। इसीलिए प्रकृति ने इसके लिए बहुत गहरा सम्मोहन डाला है उसके भीतर। इसी सम्मोहन के प्रभाव में सारा खेल चलता है। इसीलिए वह अपने को विलकुल विवश पाता है। लेकिन यह सम्मोहन तोड़ा जा सकता है और इसको तोड़ने की विधियाँ हैं। सबसे बड़ी विधि साक्षी होना है। कृष्ण और महावीर-जैसी आत्माएँ मैथुन की प्रक्रिया में भी निरपेक्ष द्रष्टा-मात्र रहती हैं, कर्ता नहीं बनती। गोपियों से घिरा रहना कृष्ण के लिए एक लीला है, खेल है, जिससे उनका कोई मतलब नहीं। सत्संग में जीने के दो ही रास्ते हैं चाहे तो सोकर जियो या जागकर जियो। सोकर जीनेवाले भोजन भी सोकर करते हैं, कपड़े भी नींद में पहनते हैं, प्रेम और सम्भोग

से भी सोए हुए गुजरते हैं । कृष्ण और महावीर का माग इसका विपरीत है । वह दूसरा माग है जिस पर चलनवाला लोग प्रत्यक्ष किया जागकर करते हैं ।

यह स्वाभाविक है कि महावीर जसा व्यक्ति हमारी समझ में मुश्किल से आए । व मंत्री से न तो भागते हैं और न उनमें उत्सुक हैं न उ मुख हैं और न विमुख । न तो राग में हैं और न विराग में । इसलिए उन्हें वीतराग कहा गया है । राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । हो सकता है कि हम राग का दुश्मनी में विरागी हो जायें या विराग की दुश्मनी में रागा बन जायें । लेकिन वीतराग वह है जिसमें न राग है और न विराग, जो सहज खड़ा रह गया है—न भागता है और न आता है न दुलाता है और न भयभीत है । महावीर के पीछे चलनवाला साधक राग से विराग को पकड़ता है । वह अपने राग को बदलता है विराग में । विरागी सिर्फ उल्टा रागी है—शीपासन करता हुआ रागी । रागी बंधन का आतुर है विरागी बंधन से भयभीत है । लेकिन वचन दोनों के केन्द्र में है । दोनों की नजरों में बंधन है । वीतरागी का पहचानना बहुत मुश्किल है, क्योंकि जान पहचान बदलने से उनकी ताल नहा हा सकती और वह रागी विरागी के चिर परिचित वर्गों के बाहर पड़ जाता है । द्वन्द्व को हम पहचान सकते हैं निद्वन्द्व को नहीं द्वन्द्व का पहचान सकते हैं, अद्वन्द्व का नहीं । महावीर के सताए जाने का जो लम्बा उपद्रव है उसमें भी उनकी वीतरागता ही कारण है । विरागी को इस मुल्य में बन्धी नहीं सताया—रागी विरागी का बन्धी सता भी नहीं सकते, उल्टे वे सदा विरागी को पूजते हैं । लेकिन वीतराग को दोनों सताते हैं, क्योंकि वे उस बेशर्त आदमी का समझ नहीं पाते । महावीर का जमाना महावीर को त्रिलकुल पहचान न सका । वे अपने युग के सभी मापदंडों से अलग खड़े थे, इसलिए उन्हें तात्ना, उन पर लेविल लगाना मुश्किल था ।

महावीर अठूने थे वेगत थे इसलिए उन्हें पहचाना न जा सका । पूछने पर भी कि वह कान है वे निरन्तर मौन रहते । गाय का चरवाहा अपनी गाय और बल उनके पास छोड़ जाता और कहता—देखना इन्हें मैं अभी लौट कर जाता हूँ मरी गाय खा गई है । महावीर नहीं कहते कि मैं नहीं देखूंगा । वे यह भी नहीं कहते कि मैं देखूंगा । वे निश्चल रहते माना कुछ सुना ही नहीं । चरवाहा लौटकर देखता कि न तो उसका गौए है न बल का कहीं पता है । वह महावीर से पूछता, लेकिन वह वैसे ही गूँडे रहते । वह मारपीट करता और महावीर उस सह रहते । थोड़ी देर बाद गौए लौट आती चट बापस आ जाने । चरवाहा दुखी हाता आर महावीर से क्षमा माँगता । तब भी वह वैसे ही खड़े रहते । ऐसे व्यक्ति को कौन समझ पाता ?

पीछे जिहाने गाम्त्र रचे, उन्होंने कहा—महावीर बड़े क्षमाशील थे । कोई मारता था उन्हें तो वे उसे क्षमा कर देते थे । लेकिन गाम्त्र रचनेवाले उन्हें समझ न पाए । क्षमा वही करता है जो प्राय करता है । क्षमा क्रोध के बाद का हिंसा है ।

जब महावीर में क्रोध ही नहीं तो क्षमा कौन करेगा, किन्तु करेगा ? वे राग-विराग के बाहर थे, चुनाव के बाहर थे, अच्छे-बुरे के बाहर थे । यही वीतरागता उनकी परम उपलब्धि है । यह जीवन का अन्तिम बिन्दु है, इसके ठीक बाद मुक्ति की यात्रा शुरू हो जाती है । वीतराग हुए बिना कोई मुक्त नहीं हो सकता । न तो रागी मुक्त होता है और न विरागी । रागी के मन में विरागी के प्रति आदर का भाव होता है, वह विरागी की पूजा करता है, वह भी विरागी होना चाहता है । विरागी के मन में रागी के प्रति ईर्ष्या होती है, वह नामने तो आत्मा-परमात्मा की बातें करता है किन्तु एकान्त में निपट सेक्स की । दूसरी बात उनके चित्त में होती ही नहीं । हो सकता है कि मधुशाला में या वेश्या के घर बैठा हुआ आदमी मन्यानी हो जाय और कहे कि सब बेकार है ।

परस्पर विपरीत ध्रुव एक-दूसरे को आकृष्ट करते ही हैं । इसी कारण रागी वैराग्य लेता है और विरागी रागी हो जाता है । पूरव विज्ञान की ओर और पश्चिम अध्यात्म की ओर आकृष्ट हो जाता है । जो इस जन्म में रागी है, हो सकता है वह अगले जन्म में विरागी हो जाय और जो इस जन्म में विरागी है, वह अगले जन्म में रागी हो जाय । आमतौर से लोग सोचते हैं कि इस जन्म में जो मन्यानी है, उसने पिछले जन्म में संन्यासी होने का अर्जन किया होगा । बात ऐसी नहीं है । इन जन्म में जो विरागी है, वह पिछले जन्म में राग के चक्कर में घूमता रहा है ।

जाति-स्मरण का प्रयोग महावीर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन है । यह एक ऐसी ध्यान-पद्धति है जिससे व्यक्ति अपने पिछले जन्मों में उतरकर देख सकता है कि वह क्या था । पिछले जन्मों को जानते ही आदमी बदल जाता है । वह पाता है कि यह सब तो मैं बहुत बार कर चुका, इससे उलटा भी कर चुका, मगर मुझे कुछ भी न मिला । न तो मैंने राग में कुछ पाया और न विराग में । न तो राजमहलों में और न दीन-हीनो की झोपड़ियों में, न तो पूरव के अध्यात्म में और न पश्चिम के विज्ञान में । जन्मों का ऐसा स्मरण हो जाय कि हम दोनों ओर घूम चुके हैं—राग की वैसी ही गहरी अनुभूति की है जैसी विराग की—तो तीसरा उपाय दीख पड़ सकता है । यह तीसरा उपाय महावीर की वीतरागता का उपाय है । अगर भोग नहीं, योग नहीं तो तीसरा रास्ता क्या है ? तीसरा रास्ता सिर्फ यह है कि हम दोनों के प्रति जाग जायें । महावीर कहते हैं कि दोनों 'अतियों' में बहुत घूम चुके । क्या कभी हम जागेंगे और उस जगह खड़े हो सकेंगे जहाँ कोई 'अति' नहीं है, कोई विरोध या द्वन्द्व नहीं है ? वे कहते हैं कि सभी द्वन्द्व दूसरे से बाँधते हैं, इसलिए द्वन्द्व के प्रति जागने से वीतरागता उपलब्ध होती है । न काम और न ब्रह्मचर्य—तभी सच्चा ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है । न हिंसा और न अहिंसा—तभी सच्ची अहिंसा फलित होती है । महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वह हिंसा



के विपरीत कोई अहिंसा नहीं है। हिंसा के विपरीत जो अहिंसा है, वह आज नहीं तो कल हिंसक हो ही जायगी। जहाँ न हिंसा रह गई और न अहिंसा, वही महावीर की अहिंसा है।

बीतरागता सारे भुक्त के लिए इसके बराबरी लोग के लिए कठिन तो है पर असम्भव नहीं। इसने कठिन होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि यह कठिन मान ली गई है। हमारी धारणा ही चीजा को कठिन या सरल बनाती है। एक एक आदमी ने जिस जिस तरह के मानसिक बोझ को पकड़ रखा है उसकी बाह से बीतरागता कठिन हो गई है। जो स्वभाव है वह अतन्त्र कठिन नहीं हो सकता—विभाव ही कठिन हो सकता है। वह आनन्दपूर्ण है और उसकी एक झलक पात ही हम बितने ही पहाड़ लंघने का तयार हो सकते हैं। झलक जब तक नहीं मिलती तब तक कठिनाई है। और झलक राग और विराग मिटने नहीं देती। राग और विराग के द्वन्द्व की खिडकी जरा सी टूट जाय तो बीतरागता का आनन्द बहने लगता है। स्मरण रहे कि राग विराग में डोलता हुआ आदमी बहुत खतरनाक होता है। इसलिए नियम बनान पड़ते हैं। परन्तु नियम बनानेवाले भी राग विराग में डालत हुए आदमी होते हैं। वे उन लोग से भी अधिक खतरनाक हैं जो केवल राग विराग में डोलत होते हैं। बीतरागता चाही भी उपलब्ध हुई कि नियम अनावश्यक हो जाते हैं। चित्त जितना बीतराग होगा विवेक उतना ही पूरा होगा। बीतरागता पूरा हुई तो विवेक ही पूरा हुआ। बीतरागता के लिए किसी समय की जरूरत नहीं, क्योंकि विवेक स्वयं ही समय है। अविवेक के लिए समय की जरूरत होता है। इसलिए सब समयों अविवेकी हाथ हैं। जितनी बुद्धिहीनता होती है उतना ही समय बाधना पड़ता है। अब तक हमारा समाज बुद्धि की कमी को समय से पूरा करने की कोशिश करता रहा है इसलिए हजारों साल हो गए कोई फल नहीं पड़ा। अगर लोग विवेकपूर्ण हो जाय तो समाज बसा नहीं होगा जैसा हम इस समय करते रह रहे हैं। पहली दफा ठाक अर्थ में समाज होगा। अभी क्या है? समाज है, व्यक्ति नहीं। व्यवस्था छाती पर बठी है और व्यक्ति नीचे दबा है। बीतराग चित्त से भरे हुए विवेकपूर्ण लोग के समाज में व्यक्ति बढ़ेगा, समाज गौण होगा और उससे केवल हमारे अन्तर्व्यवहार की व्यवस्था होगी। विवेकशील व्यक्ति का अन्तर्व्यवहार किसी बाहरी समय और नियम में नहीं चलगा एक आन्तरिक अनुशासन से चलेगा। इसलिए मेरा कहना है कि समाज की व्यवस्था में व्यक्ति पर समय थोपने की चप्टा बन्द होना चाहिए, विवेक देश की व्यवस्था ज्यादा होती चाहिए। विवेक से समय आता है, किन्तु समय से विवेक नहीं आता। समय और नियम का व्यवस्था को सिर्फ आवश्यक घुसाई समझना होगा।

लोग प्रश्न करते हैं कि यदि तीसरे पट्टे जन्म में ही कृतकृत्य हो चके हों हैं





इस सम्बन्ध में मूर्तियाँ के महत्त्व का समझ लेना जरूरी है। मूर्तियाँ का सबसे पहला प्रयोग पूजा के लिए नहीं अंगरीरी आत्माओं में सम्बन्ध स्थापित करना के लिए किया गया था। यदि महावीर की मूर्ति पर कोई बहुत दूर तक अपना चित्त एकाग्र कर और फिर और कर कर ले तो उस मूर्ति का निगेटिव उसकी आत्मा में रह जायगा। ऐसा प्रयोग सब प्रथम उन लोगों ने किया जो अंगरीरी आत्माओं में सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। यह निगेटिव महावीर की अंगरीरी आत्मा से सम्बन्धित होने का साधन बन जायगा। ऐसा अनन्त काल तक हो सकता है। अंगरीरी आत्माएँ भी करणावग सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करता है। धीरे धीरे उनकी करणा भी क्षीण हो जाती है। याद रख कि करणा उनकी अन्तिम वासना है। जब उनकी समा वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं तब करणा ही सिफ रह जाती है। लेकिन अंत में करणा भी क्षीण हो जाती है। इसलिए पुराने शिक्षक धीरे धीरे छा जाते हैं। उनकी करणा के क्षीण होते ही उनके सम्बन्ध स्थापित करना बंठिन हो जाता है। महावीर में सम्बन्ध स्थापित करना आज भी सम्भव है, लेकिन उनके पहले के तर्जुन तीर्थंकरों में भी सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि महावीर अन्त कीमती हो गए और तीर्थंकरों में ऐतिहासिक दीप्तिमान रहे। जिन परम्पराओं के शिक्षकों में आज भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है वे परम्पराएँ पूर-पूर रही हैं।

अब प्रश्न उठता है कि एक ही समय में दो तीर्थंकर क्या नहीं हो सकते? एक ही परम्परा में, एक ही समय में दो तीर्थंकर नहीं होते। इसका कारण यह है कि यदि किसी परम्परा का एक तीर्थंकर काम कर रहा है तो दूसरा तत्काल विलीन हो जाता है। उसकी कोई जड़ नहीं होती। (जैसे एक ही घण्टा में एक ही समय में दो गिना की कोई गड़ नहीं होता।) करणा पीछे ही काम कर सकता है और पीछे ही सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। चीन के लिये में निबन्धन के चर जान से जा कर नुबस्ता हुआ, उस मोर्चा अर्थों में रहा नामा जा करना। प्रतिवध बुद्धपूर्णिमा के दिन निबन्धन के पाँच गी विनिष्ट निक्ष और लामा मानसरावर के निबन्धन के विशेष पदों पर बुद्ध में निबन्धन सम्बन्ध स्थापित करते थे। यह हजारों वर्षों की एक चर-चर गुण व्यवस्था थी। इस व्यवस्था का पता पार गया। गया गया कि ठान पाँच गी निबन्धन के गम में बुद्ध अपने पूरे गम में प्रकट हुए थे। यह यद्यपि यह भी सम्भव है। दूसरे तरीके से भी सम्भव है — सकता है और अगर बुद्ध योग स्थापना करें स्थापित होकर प्राप्त करें तो यद्यपि यह भी सम्भव है। दूसरे तरीके से अत्यन्त सूक्ष्म अनुमा का क्या हुआ होगा है। विज्ञान के अनुमोदित हैं। लेकिन विज्ञान सूक्ष्म आन्तरिक जीवन में गता है। उन्नीसवां अनुमा का तब तक है जिन्हें माना जा सकता चाहिए। लामा का आकाश और एकाग्रचित्त गमना में बुद्धात्मा के स्थापना गता-गु म प्रकट हो सकती हैं।

अन्त में इस करुणा के महत्त्व पर गौर करें । मुक्ति के पहले सारी वामनाएँ समाप्त हो जाती हैं । वस्तुतः मुक्ति होती ही उस चेतना की है जिसकी मारी वामनाएँ समाप्त हो गई हैं । लेकिन, अगर सारी वामनाएँ समाप्त हो जाएँ तो अमुक्त स्थिति और मुक्त स्थिति के बीच सेतु क्या होगा ? वह आत्मा, जिसकी समस्त वासनाएँ समाप्त हो गई हैं, अपने को पहचानने में असमर्थ होगी, क्योंकि उसने अपने को वासना में ही जाना था । इसलिए जब सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं तब सिर्फ सेतु की तरह एक वासना बेष रह जाती है । उसी वामना को मैं करुणा कह रहा हूँ । तीर्थकर होना करुणा की वासना में होता है

---

## द्वितीय अध्याय

महावीर का 'त्याग' पिछले जन्मों की साधना

सर्वजो पमत्तस्म भय, सर्वजो जप्पमत्तस्म नत्थि भय ।<sup>१</sup>

आचारागमूत्र, ३ ४ १२३

१

कहा जा चुका है तीसकर की चेतना का व्यक्ति पूणता को छूकर लौट आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि महावीर के लिए हम जीवन में करने को कुछ भी बाकी न रहा, सिर्फ देने को बाकी रहा। इस कथन की कई गहरी निष्पत्तियाँ में पहली निष्पत्ति यह होगी कि महावीर के सम्बन्ध में यह कहना कि उन्होंने त्याग किया बिल्कुल व्यर्थ है। महावीर न कभी भी भूलकर भी, कोई त्याग नहीं किया। त्याग किसी पदार्थ का है, लेकिन यह मूल्य नहीं है। भोग से भरे हुए व्यक्ति को किसी भी चीज का छूटना त्याग मालूम पड़ता है। भागा चित्त कुछ भी छोड़ने में समय नहीं है। वह सिर्फ पकड़ सकता है, छोड़ नहीं सकता। जब वह दखता है कि कोई व्यक्ति सहज ही छोड़ रहा है तो इसमें ज्यादा महत्वपूर्ण और चमत्कारपूर्ण घटना उस मालूम नहीं होती। लेकिन महावीर में न पकड़ने का भाव है और न त्यागने का भाव। जो पकड़त हो रहा, उनका छोड़ने का कोई सवाल ही पड़ा नहीं होता।

महावीर का जिन लोगों ने देखा है और उनके त्याग की चर्चा का है, वे भागी थे—कतना सुनिश्चित है। भागी के मन में त्याग का बड़ा मूल्य है। जो हमारे पास नहीं होता उसका ही हमें सर्वाधिक बाधा होता है और स्मरण रहे कि भागी चित्त त्याग का भी भोग का ही उपकरण बनाता है। भागी चित्त धन का ही नहीं पकड़ना त्याग को भी पकड़ लेता है। वह पास्ता इसलिए है कि बीजा के बिना उस अगुरुता मालूम पड़ती है। अगुरुता का नाश जितना गहरा होता है उतनी पकड़ भी उतनी ही मजबूत होती है। लेकिन जिस चेतना का यह पता चला कि उसके तत्पर कोई अगुरुता नहीं वहाँ न काद नय है और न काद पाप न गुन या मृत्यु यह कुछ भी नहीं पकड़ता। पकड़ना या अगुरुता का भावना के कारण, भय के कारण। अगुरुता न रहती तो पकड़ भी न रहा। जो अपने भातर प्रविष्ट हुआ है वह तो

१ प्रमादों को सर्वत्र भय है अत्रात वहाँ नयभीत नहीं होता।



प्रतिक्षण, प्रतिपल इतने आनन्द से भर गया है कि उसे कल की चिन्ता नहीं होती, आज काफी है। ऐसा व्यक्ति पकड़ता ही नहीं। वस्तुतः जिसको पकड़ने की आदत है उसकी पकड़ कभी नहीं जाती—वह छोड़ने को भी पकड़ लेता है। उसने कभी धन पकड़ा था, अब वह त्याग पकड़ लेगा; उसने कभी मित्र पकड़े थे, अब वह परमात्मा को पकड़ेगा, कल खाते-वही पकड़े थे, आज वह शास्त्र पकड़ेगा। शास्त्र भी खाते-वही है और धर्म भी सिक्का है जो कहीं और चलता है। पुण्य भी मोहरे हैं जो कहीं और काम देती हैं।

पकड़नेवाले चित्त से छुटकारा तभी मिलता है जब यह दिखाई पड़ जाय कि मैं किसी का, किसी भी वस्तु का, स्वामी नहीं हूँ। यदि मैं कहूँ कि मैं अब इस मकान का स्वामी न रहा, मैंने इसका त्याग किया, तो प्रश्न उठेगा—मैं ही त्याग कर रहा हूँ न? और क्या त्याग मैं उसका कर सकता हूँ जो मेरा ही नहीं? स्पष्ट है कि त्याग करनेवाला यह मानकर चलता है कि मकान मेरा है। चित्त को जब यह बोध हो जाय कि यहाँ अपना कुछ नहीं तब उसमें रूपांतरण हो जाता है और तब कुछ त्यागना और छोड़ना नहीं पड़ता। जो मेरा नहीं है, उसका त्याग क्या? अगृही से उस व्यक्ति का बोध नहीं होता जिसने घर छोड़ दिया है। वह तो वह ज्ञानी है जिसने पाया कि मेरा कोई घर नहीं। सन्यासी उसे नहीं कहते जिसने अपनी पत्नी का त्याग किया। सन्यासी वह है जिसने पाया कि मेरी कोई पत्नी नहीं। कहने का तात्पर्य यह कि महावीर ने कुछ त्याग नहीं किया, जो उनका नहीं था, वह दिखाई पड़ गया। इसलिए यह कहना निरर्थक है कि वे सब छोड़कर चले गए। वे जानकर चले गए कि कुछ भी उनका नहीं है।

एक बार बादशाह इब्राहीम के राजमहल के दरवाजे पर एक सन्यासी शोरगुल मचाने लगा। उसने पहरेदार से कहा, मुझे भीतर जाने दो, मैं इस सराय में ठहरना चाहता हूँ। पहरेदार को हँसी आ गई और उसने सन्यासी को पागल समझा। परन्तु सन्यासी न रुका। वह राजमहल के अन्दर पहुँचा ही था कि इब्राहीम ने, जो उसकी बातें सुन रहा था, कहा तुम कैसे आदमी हो जो सराय और राजमहल में अन्तर नहीं देखते! यह सराय नहीं, मेरा महल है। सन्यासी ने जवाब दिया मैंने समझा था कि आपका पहरेदार नासमझ है; आप भी वैसे ही हैं। पहरेदार क्षमा के योग्य है, आखिर वह पहरेदार ही है। आपको भी यही खयाल है कि यह आपका निवास-स्थान है? सम्राट् ने कहा खयाल? नहीं यह मेरा घर है, यही असलियत है। सन्यासी ने कहा बड़ी मुश्किल में पड़ गया मैं। दस साल पहले भी किसी ने कहा था, यह महल मेरा ही है। इब्राहीम ने कहा वे मेरे पिता थे, उनका देहावसान हो गया। तब उस फकीर ने कहा मैं उनके पहले भी आया था, तब एक और बूढ़े ने इस महल को अपना बतलाया था। वह भी इसी जिद में था कि यह महल

मेरा है। जब इस प्रकार इस महल के मालिक बदल जाते हैं तो इसे सराय कहना भी उचित होगा। मैं फिर आऊंगा कभी। पक्का है तुम मिलाओ ? इब्राहीम ने उस फकीर के पैर छुए और कहा तुम ठहरो मैं जाता हूँ। मुझे यह दिखाई पड़ गया कि यह महल नहीं, सराय है। सराय का कोई त्याग करता है ? नहीं, सराय में ठहरता है और बिदा हो जाता है।

अपने जन्म के साथ ही महावीर ऐसे बाध को लेकर पैदा हुए थे। एस बाध के लिए सम्पत्ति के त्याग की जरूरत नहीं, जरूरी है सम्पत्ति के सत्य का अनुभव। प्रश्न संप्रह और त्याग का नहीं, प्रदत्त सत्य के अनुभव का है। 'यह मेरा महल नहीं, सराय है'—ऐसा बाध त्याग जनता है ऐसा त्याग किया नहीं जाता। इसलिए ऐसे त्याग के पीछे कर्ता का भाव नहीं होता और जिस काम के पीछे कर्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता उस काम से काई बाधा पैदा नहीं होता। यानी काम कमी नहीं बाँधता। जिस काम से कर्ता का भाव पैदा होता है वही काम बाधन का कारण हो जाता है।

यदि कोई महावीर से उनके त्यागी हान की बात कहता तो वे हसत और कहत—कसा त्याग ? किसका त्याग ? जा मरा नहीं था वह नहीं था। यह मैंने जान लिया। त्याग कस कर ? त्याग दोहरी भूल है—भोग की दोहरी भूल।

मैं कहता हूँ—महावीर जैसे व्यक्ति का त्यागी समझने की भर कभी नहीं करनी चाहिए। सिर्फ अज्ञानी त्यागी हो सकते हैं जानी नहीं। असली बात तो यह है कि जान ही त्याग है। जानी का त्याग होना नहीं पड़ता, इसके लिए उसे प्रयास करने की जरूरत नहीं। अज्ञानी को त्याग करना पड़ता है, श्रम उठाना पड़ता है, स्वरूप बाधना पड़ता है। जिस चीज के हम द्रष्टा हो जाते हैं वह चीज सपना हो जाती है और जिस चीज के कर्ता हो जाते हैं, वह हमारे लिए सत्य हो जाती है चाहे वह सपना हो क्या न हो। चाहे जीवन सत्य हो क्या न हो जब हम द्रष्टा हो जाते हैं तो वह सपना हो जाता है।

महावीर त्यागी नहीं, द्रष्टा हैं। सम्पत्ति के त्याग का प्रदत्त ही नहीं उठता क्योंकि सपने की भी कोई सम्पदा होता है ? सपने में कोई त्याग होता है ? भोग भी सपना है त्याग भी सपना है, क्योंकि दोनों हालत में कर्ता मौजूद है। इसलिए जानी न त्यागा है न भोगी वह सिर्फ द्रष्टा है। ऐसा नहीं कि उसके जीवन में केवल त्याग बच रहता है और भोग बिदा हो जाता है। भोग और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं—यही दोष जाता है। यही जानी बीतरागता है। अगर मैं कर्ता नहीं हूँ, केवल द्रष्टा हूँ, तो बीतरागता फलित हो जायगी। अगर जीवन का एक कोना भी सपना हो जाय तो वह सपना पूरे जीवन पर फल जायगा। यहाँ जिंदगी के जो अनुभव हैं वे सब के सब समग्र हैं, गड़ खड़ नहीं हैं। अगर ये सब असत्य हैं तो बाध

भी असत्य हो गया। महावीर को त्यागी समझनेवाले लोग मूलतः भोगी हैं जो सिर्फ त्याग की भाषा समझ सकते हैं। इसलिए हैरानी होगी कि त्यागियों के पास भोगी डकट्ठे हो जाते हैं, क्योंकि भोगी ही त्याग को पकड़ पाते हैं। यह अद्भुत बात है कि महावीर-जैसे अपरिग्रही के पीछे, अग्रही के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ है वह अत्यन्त भोगी और परिग्रही है। महावीर के पीछे जिन जैनों की परम्परा खड़ी है उन जैनों से ज्यादा बनी और परिग्रही लोग उन मुक्त में दूगरे नहीं। इसका मतलब केवल इतना ही है कि त्याग की भाषा भोगी को बहुत पकड़ती है और भोगी उसके आसपास इकट्ठा हो जाता है जो उन्हें त्यागी दीखता है। अक्सर अनुयायी गुरु से उलटे होते हैं क्योंकि उलटी चीजें लोगों को आकर्षित करती ही हैं, पास बुला लेती हैं। घृणा से भरे हुए लोगों को प्रेम की भाषा पकड़ लेती है। भोगी त्याग से अपने को पूरा कर लेता है। वह खुद तो त्याग कर नहीं सकता, इसलिए त्यागी को पकड़ लेता है। मन के रहस्यों में सबसे कीमती रहस्य यह है कि जो हमारे चेतन मन में होता है उसका ठीक उलटा अचेतन मन में होता है। अगर चेतन मन में कोई विनम्र है तो अचेतन मन में वह बहुत अहकारी होगा। अचेतन उलटा ही होता है। इसलिए अगर साधु-सन्तों को शराब पिलाई जाय तो उनके भीतर में हत्यारे, व्यभिचारी निकलेगे और अगर व्यभिचारियों को शराब पिलायी जाय तो उनके भीतर से साधु-सन्तों की झलक मिलेगी।

यदि चेतन-अचेतन का यह द्वन्द्व हमारे खयाल में हो तो हम मूलकर भी महावीर को त्यागी नहीं कहेंगे। महावीर-जैसा व्यक्तित्व अविभाज्य होता है। उसके भीतर दो खंड नहीं होते। वह जो भी करेगा, उसमें पूरा मौजूद होगा। और ठीक अर्थों में त्याग उसी व्यक्ति से फलित हो सकता है जिसका व्यक्तित्व अखंड हो गया हो, जिसमें दूसरे व्यक्तित्व के उदय होने की कभी कोई सम्भावना न रह गई हो। अखंड व्यक्ति में द्वन्द्व विलीन हो जाता है—न वहाँ त्याग है और न भोग, न क्षमा और न क्रोध। ध्यान रहे कि जो आदमी क्रोधी नहीं है वह क्षमा कैसे करेगा? क्षमा के पहले क्रोध अनिवार्य है। और जो व्यक्ति भोगी नहीं, वह त्यागी कैसे हो सकता है? चूंकि हमारी कल्पना में यह बात नहीं आती, इसलिए हम एक खंड को हटाकर दूसरे खंड को बचा लेना चाहते हैं। असल में वह हमारी आकांक्षा का सबूत है, महावीर के सत्य का नहीं। जो नहीं है, उसी की चाह होती है। चाह ठीक विपरीत की होती है। हममें घृणा है, हम चाहते हैं प्रेम को, हिंसा है, चाहते हैं अहिंसा को; क्रोध है, चाहते हैं क्षमा हो, परिग्रह है, चाहते हैं अपरिग्रह हो। जिन्हें हम अपना आदर्श समझ लेते हैं, उन्हीं पर थोप देते हैं उन गुणों को जिनकी चाह होती है।

साधारण लोगों की जिन्दगी में द्वन्द्व की लड़ाई का कभी अन्त नहीं होता। वे क्रोध से लड़ते हैं, घृणा और हिंसा से लड़ते हैं और जिससे लड़ते हैं, उस पर सवार



होन की काशिश करते हैं। भागी त्यागी हान की कोशिश करता है, रोज रोज पटक खाता है, चढ़ता है गिरता है और परेशान होता है। वह भूल जाता है कि जिसस हमारा सघप हाता है उसका दुःख स्वीकृति द बैठन हैं। दुश्मन की छाती पर कोई कब तक बटा रह सकता है ? कभी तो उसको छाती छोचनी ही पडती ह। और दुश्मन कोई ऐसा-चमा दुश्मन नहीं अपना ही हिस्सा है। आप ही दवानवाले, आप ही दबनवाले। जिस आप दवात हैं वह ता विधाम तर लेता है और जो दवाता है वह थक जाता है। इसलिए जा चीज दबती है वही कुछ दिना म दवान लगती है। इसलिए याद रह—लडेंगे तो हारेंगे, दवाएंगे ता गिरेंगे। कोशिश हानी चाहिए द्वद्व से बाहर होन की असह बनन की द्रष्टा बनन की। जबड व्यपिन ही दन म समय हाता है, तीथकर-जसी ग्यति म हो सकता है। मेरा कहना है कि महावीर के सम्बन्ध म जो आज दिखाद पड रहा है वह हमारी भ्रातिया का गटठर है और इस कारण गटठर बना है कि हम कभी चीजा के पास जाकर नहीं देखते—सदा दूर से देखते हैं। हम चीजा को पास स देख भी नहीं सकत, क्याकि पास स देखना हो तो उनसे खुद ही गुजरना पडेगा। इस कारण महावीर के सम्बन्ध म जा भी लिखा गया है वह बाहर से पीचा गया चित्र है। और बाहर से यही दिखाई पडता है कि महल था, इहाने महल छोड दिया घन था, उहाने घन छोड दिया, पत्नी थी, उहाने पत्नी छोड दी, प्रियजन थे, निकट के रिस्तेदार थ, उहाने सब छाड दिए।

एक जन मुनि थे। बीस वष पहन उहाने घर-गहस्थी त्याग दी थी। एक दिन उन्हें एक तार मिला जिसम लिखा था कि उनकी पत्नी का देहान्त हो गया है। मुनि ने तार पढ़कर कहा—चलो क्षण्ट छूनी। जाहिर है कि पत्नी की क्षण्ट अभी भी याकी थी। मुनि के चित्त के पिनी न किसी तर पर वह बतमान थी। पत्नी को छाडना स क्षण्ट का अन्त नहीं हुआ था। हो सकता है, मुनि न यह भी चाहा हा कि पत्नी मर जाय, क्याकि उसका यह कहना कि 'चलो क्षण्ट छूनी' उसकी भीतरी आकांक्षा का सबूत भी हो सकता है। ऐसे मयासी अग्रही नहीं हात। उनका चित्त उतना ही सडित होता है जितना किसी अनामी गृहस्थ का। इसलिए उस मुनि को समझना आतान है क्याकि हमारा चित्त भी ऐसा ही सडित है। हम भी द्वद्व म जात हैं।

एक दूसरी घटना सुनाता हूँ। एक गिप्य अपन गुन की मरुपु पर रो रहा था। रात चीज, क्याकि व उसे पानी समझन रह थ। उनम कुछ न उस गिप्य से कहा यह आप क्या कर रहे हैं ? आपका प्रतिष्ठा पर पाना फिर जायगा। आप—और रात है ? पानी और रात ! गिप्य ने आँखें ऊपर उठाई और कहा मैं ऐसे पानी स छुटकारा चाहता ह जा रा भी न गर। मेन पान की गोज आजादा क लिए की है। यदि पान एत नया बयन है ता मुझे उहा चाहिए यह पान। तुमन महा गिप्य

कि मैं ज्ञानी हूँ ? उन्होंने पूछा लेकिन, आप ही तो कहा करते थे कि आत्मा अमर है। यदि आत्मा अमर है तो रोना किसलिए ? शिष्य ने कहा आत्मा के लिए कौन पागल रो रहा है ? वह शरीर भी बहुत प्यारा था। अद्वितीय था वह। तुम मेरी चिन्ता मत करो, क्योंकि मैंने अपनी चिन्ता छोड़ दी है। हँसी आती है तो हँसता हूँ, रोना आता है तो रोता हूँ। क्योंकि अब रोकनेवाला ही नहीं है कोई। कौन रोके ? किसको रोके ? क्या बुरा है ? क्या भला है ? क्या पकड़ना है ? क्या छोड़ना है ? सब जा चुका। जो होता है, होता है—वैसे ही जैसे हवा चलती है, वृक्ष हिलते हैं, वर्षा आती है, बादल घिरते हैं, सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। न तो तुम फूलों से जाकर कहते हो कि क्यों खिले तुम और न बदलियों से पूछते हो कि क्यों आई तुम।

ऐसा अखंड व्यक्ति ही सत्य को उपलब्ध होता है और ऐसे अखंड व्यक्ति से ही सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन अखंड हो जाना ही सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काफी नहीं है। अभिव्यक्ति के लिए कुछ और करना पड़ता है। अगर वह और न किया जाय तो अनुभूति होगी, मगर व्यक्ति खो जायगा। तीर्थकर वैसा ही अनुभवी है। वह जो कुछ करता है, अभिव्यक्ति के लिए करता है। इसलिए महावीर की जो बारह वर्ष की साधना है वह मेरी दृष्टि में सत्य-उपलब्धि के लिए नहीं है। सत्य तो उपलब्ध था ही। सिर्फ उसकी अभिव्यक्ति के सारे माध्यम खोजे जा रहे हैं उन बारह वर्षों में। और, ध्यान रहे, सत्य को प्रकट करना सत्य को जानने से भी कठिन है। जीवन के जितने तल हैं, जितने रूप हैं, महावीर ने उन सब रूपों तक सत्य की खबर पहुँचाने की अद्भुत तपश्चर्या की। उनका संदेश मनुष्यों तक ही सीमित न रहे—मनुष्य तो जीवन की एक छोटी सी घटना है, जीवन-यात्रा की केवल एक सीढ़ी है—बल्कि पत्थर से लेकर देवताओं तक पहुँच सके, इसकी सारी व्यवस्था उन्होंने की। मेरी मान्यता है कि महावीर की साधना अभिव्यक्ति के उपकरण की खोज की साधना है जो कठिन है, बहुत ही कठिन है ।

## २

प्रश्न उठता है कि यदि महावीर ने अभिव्यक्ति के माध्यमों की खोज इस जन्म में की तो फिर उनके पिछले जन्मों की साधना क्या थी जिससे उनके वधन कटे और उन्हें सत्य की उपलब्धि हो सकी ? इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि तप या सयम से वधनों की समाप्ति नहीं होती, वधन नहीं कटते। तप और सयम कुरूप वधनों की जगह मुन्दर वधनों का निर्माण भर कर सकते हैं। लोहे की जजीरो की जगह सोने की जजीरे आ सकती है, किन्तु जजीर नहीं कट सकती। इसका कारण यह है कि नयम और तप करनेवाला व्यक्ति वही है जो अतप और असयम कर रहा था।



सवाल तब और समय का नहीं है। सवाल है चेतना के रूपांतरण का चेतना के बदल जान का। और चेतना के दो ही रूप हैं मूर्च्छित और अमूर्च्छित, जसे कम के दो रूप हैं समय और असमय। अगर कम में बदलाव की गई तो असमय की जगह समय आ सकता है, मगर चेतना इससे अमूर्च्छित दशा में नहीं पहुँच पायगी। मूर्च्छित व्यक्ति सोया हुआ होता है, प्रमाद में होता है।

अब प्रश्न है कि मूर्च्छित व्यक्ति प्रमाद से अप्रमाद में कैसे पहुँचे? महावीर की पिछले जन्मों की साधना अप्रमाद की साधना है। हमारे भीतर जो जीवन-चेतना है वह परिपूर्ण रूप से कैसे जाग्रत हो? इस विषय में महावीर कहते हैं 'हम विवेक से उठें, विवेक से बैठें, विवेक से चलें, विवेक से भोजन करें, विवेक से सोएँ।' अर्थात्, उठते-बठन, सोते-जागते खाते-पीते, प्रत्येक स्थिति में चेतना जाग्रत रहे, मूर्च्छित नहीं। जीवन यन्त्र की भाँति न कटे हमारे काय यन्त्रवत् न हो। हम चलें तो चलने की क्रिया के प्रति सचेत रहें, भोजन करें तो भोजन करने की क्रिया का हम खयाल रहे। नींद में ही हम बहुत मार काय करते रखे जाते हैं। वह व्यक्ति जो रास्ते में हाथ हिला हिलाकर बातें करता रहता है यद्यपि उसके साथ कोई नहीं हाता, निद्रा में ही चलना रहता है। ऐसे लोग भी नींद में होते हैं जिनके हाथ हिलते रहते हैं और बातें हाँसी रहती हैं यद्यपि वे अकेले होते हैं। ऐसे लोग जाग्रत होकर भी किसी सूक्ष्म निद्रा में ही जीवन बिताया करते हैं। महावीर ने ऐसी निद्रा को प्रमाद कहा है। जागे हुए लोग के भीतर एक घीमी-सी तन्द्रा का जाल फला होता है। किसी से धक्का खाते ही वे क्रोध से भर जाते हैं। वे जान बुझकर क्रोध नहीं करते, फिर भी क्रोध हो जाता है—वैसे ही जिस काँड़ विजली का बटन दबाए ता पखा चल पड़ता है। हम नहीं कहते कि पखा चल रहा है, पखा सिर्फ चलाया गया है। हम यह भी नहीं कह सकते कि उन्होंने क्रोध किया है। हम इतना ही कह सकते हैं कि किसी ने बटन दबाया और उनका क्रोध चल पड़ा। आप भी यह नहीं कह सकते कि मैं क्रोध कर रहा हूँ, क्योंकि जो आदमी यह कह सकता है कि मैं क्रोध कर रहा हूँ उस आदमी के लिए क्रोध करना कभी सम्भव ही नहीं।

हम सब नींद में ही जाग्रत और जीते हैं नींद में ही उठते बठते चलते फिरते हैं। हमारी इसी अवस्था को महावीर ने प्रमाद की संज्ञा दी है। यही है मूर्च्छा की अवस्था। इस मूर्च्छा से जागरण कैसे हो? महावीर की पूरी साधना ही इतनी है कि सोता नहा है जागना है। जागने की प्रक्रिया क्या होगी? जागने की प्रक्रिया होगा जागने का ही प्रयास। तैरना सीखने की एक ही तरकीब है कि तैरा। तैरना शुरू करना ही होगा, हाथ-पाव चलाने ही होंगे, डूबने उतरने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। यदि तुम पानी में उतरने को राजी न हुए तो तैरना कैसे सिखाया जा सकता है। जल में उतरकर तैरने का अभ्यास करना ही होगा।

उसी शुरुआत से तैरना धीरे-धीरे व्यवस्थित हो जायगा और तुम तैर सकोगे । लोग पूछते हैं—जागने की तरकीब क्या है ? प्रमाद से अप्रमाद में जाया कैसे जायगा ? जागने की कोई तरकीब नहीं है । जागना ही पड़ेगा । पहले हाथ-पाँव तड़फड़ाने ही पड़ेंगे, गलत-सही होगा, डूबना-उतरना होगा । क्षण भर को जागेंगे फिर सो जायेंगे । लेकिन जागना ही पड़ेगा । जागने की निरन्तर धारणा से धीरे-धीरे जागना फलित हो जाता है । जागने की तरकीब का मतलब इतना ही है कि हम जो भी करे उसमें हमारा प्रयास हो, सकल्प हो कि हम उसे जागे हुए करेंगे ।

याद रहे कि अकारण नहीं है गहरी नीद में कुछ करने का हमारा अभ्यास । सोए हुए जीना बड़ा सुविधापूर्ण है और, साथ ही, सोए हुए लोगों के साथ सोए हुए रहने में ही सुविधा दीखती है । यदि लोग चारों ओर सो रहे हो तो जागनेवाले अकेले व्यक्ति की कठिनाइयों का अनुमान नहीं किया जा सकता । पागलखाने में किसी आदमी के ठीक हो जाने पर उसे जो तकलीफ होती है वही सोए हुए जगत् में अकेले जागने की तकलीफ है । महावीर—जैसे लोग जिस कष्ट में पड़ जाते हैं उस कष्ट का हम हिसाब नहीं लगा सकते । सोए हुए लोगों के बीच जो व्यक्ति जागता है, वह सोए हुए लोगों का व्यवहार नहीं कर सकता—उसकी भाषा बदल जाती है, उसकी चेतना बदल जाती है और वह विलकुल अजनबी हो जाता है ।

इसलिए साधक का पहला लक्षण है—अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना । हम चाहते हैं शान्ति और सत्य, लेकिन अपने को बदलने के लिए तैयार हो नहीं पाते । हम नहीं चाहते कि हमने जो व्यवस्था कर रखी है, जो सम्बन्ध बना रखे हैं, उनमें कोई हेर-फेर करना पड़े । लेकिन हमें पता ही नहीं कि जब अंधे आदमी को आँख की ज्योति मिलेगी तो उसके सब सम्बन्ध बदल जायेंगे । सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है, जागा हुआ आदमी इस दुनिया को विलकुल अस्त-व्यस्त कर देगा । मैं कहता हूँ कि अगर हम थोड़ा भी साहस जुटा पाएँ तो जागना कठिन नहीं है, क्योंकि जो सो सकता है वह जाग सकता है, चाहे वह कितनी ही गहरी नीद में क्यों न सोया हो । ध्यान रहे कि यह साधारण तल पर जागने की बात नहीं है । साधारण तल पर जागने और सोने में दुनियादी फर्क नहीं है, क्योंकि जिसे हम जागना कहते हैं, वह थोड़ी कम डिग्री में सोना ही है और जिसे हम सोना कहते हैं, वह थोड़ी कम डिग्री में जागना है । लेकिन परम जागरण के तल पर डिग्री का भेद नहीं होता, मौलिक रूपान्तरण का भेद होता है । इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है, लेकिन जागा हुआ आदमी सो नहीं सकता । और जागरण की एकमात्र विधि है कि हम जागने की कोशिश करें । जो कुछ भी करे, उसमें जागे हुए होने की कोशिश करे, उसमें पूर्णतया उपस्थित हो, उसे हमारा सारा व्यक्तित्व करे । अगर ठीक से समझे तो ध्यान की अनुपस्थिति ही निद्रा है और उपस्थिति जागरण ।

प्रत्येक क्रिया में ध्यान उपस्थित हो जाय तो जागरण गुरु हो गया । महावीर जिसे विवेक कहते हैं, उसका यहो अर्थ है । क्रिया में ध्यान की उपस्थिति का नाम विवेक है और क्रिया में ध्यान की अनुपस्थिति का नाम प्रमाद ।

एक बार प्रसन्नचन्द्र नामक एक व्यक्ति ने महावीर से दीक्षा ली । दीक्षा के बाद वह तपश्चर्या में लगे हुए थे । कुछ दिनों के बाद उसने सुना कि जिन लोगों पर उसने विश्वास किया था, जिनकी दम्भ रोग में अपने बच्चे और अपनी सम्पत्ति छोड़ी थी वे विश्वासघात करने पर तुल हैं और उनकी सम्पत्ति हड़पने का साजिश कर रहे हैं । यह सुनते ही उसका हाथ तलवार पर चला गया । लेकिन उसके पास अब तलवार नहीं थी । उसका ऐसा करना इस बात का प्रमाण है कि वह क्षण भर के लिए बहोला हो गया था । शोक ने उसे बेसुख कर दिया था । जब उसे महसूस हुआ कि उसके पास कोई तलवार नहीं तो वह उसी क्षण जाग उठा, उसके सपने खण्ड-खण्ड हो गए और उसने कहा 'मैं यह क्या कर रहा हूँ ? मैं क्या प्रसन्नचन्द्र नहीं हूँ जो कभी तलवार उठाने का आदी था ।'

महावीर ने एक मकन सम्राट से कहा था 'जिस समय प्रसन्नचन्द्र का हाथ तलवार पर गया था उस समय यदि उसकी देह छूट जाती तो वह सातवें नरक में गिरता । लेकिन जिस क्षण उसकी निद्रा टूटी और उस उपस्थित का ज्ञान हुआ वह उसी क्षण श्रेष्ठतम स्वर्ग का हक्दार हो गया ।' कहने की जरूरत नहीं कि सोया हुआ आत्मी नरक में होता है और जो जागता है वह स्वर्ग का हक्दार होता है । अतः जागने की चेष्टा हम मतलब करनी पड़ेगी । इसमें कई जगह भी लग सकते हैं और जागरण एक क्षण में भी हो सकता है । यह तो प्यास और संकल्प की तीव्रता पर निर्भर होगा ।

महावीर ने अपने पिछले जन्मों में कुछ पाया था वह था विवेक उद्विग्न भाव या जागरण । और यह जागरण जितना गहरा होता चला जाता है हम उतने ही मुक्त होन चले जाते हैं पुण्य में जीने लगते हैं शान्त और आनन्दित हो जाते हैं । जिस दिन पूर्ण जागरण की घटना घट जाती है उसी दिन विस्फोट हो जाता है चेतना व क्षण-क्षण जाग्रत हो उठती है कानि-कोन से निद्रा विलीन हो जाती है । ऐसी पूर्णतया जागी हुई चेतना ही मुक्त चेतना है । मूर्च्छा बाधती है, मूर्च्छित पाप भी बाधता है, मूर्च्छित पुण्य भी बाधता है । मूर्च्छित अक्षय भी बाधता है मूर्च्छित समय भी बाधता है । इसलिए समझना कि अगर कोई अक्षय का समय बनाने में लग गया हो तो इसमें कुछ भी नहीं होगा क्योंकि उसका मानस की चेतना ज्यादा नीचा है—मूर्च्छित ही—हीनो यद्यपि उनकी क्रिया चलती है । इसलिए मैं कहता हूँ—पाप वह है जो जगत् व्यक्ति नहीं कर सकता और पुण्य वह है जो जाग हुए व्यक्ति का करना ही पड़ता है । साया हुआ आत्मा पुण्य वरत कर सकता है ? जाग हुए व्यक्ति से पाप



है कि हम उसमें द्वारा प्रवेश नहीं कर पाते । लेकिन इस तरह की पद्धतियाँ और व्यवस्थाएँ हैं कि एक ही स्वप्न में बार-बार जाया जा सके । यदि इनके सहारे एक ही स्वप्न में आपने कई बार प्रवेग किया तो आपको स्वप्न उतना ही मालूम होगा जितना आपका यह मकान । मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि अगर 'साक्षी' जग जाय तो कल उसने जो जगत् बनाया था, वह विदा हो जाता है और एक विलकुल नया वस्तुपरक सत्य सामने आता है ।

इस ससार के लिए महावीर 'माया' शब्द का प्रयोग नहीं करते, क्योंकि 'माया' के प्रयोग से लगता है कि यह झूठ है । वे कहते हैं कि वह भी सत्य है, यह भी सत्य है । लेकिन दोनों सत्यों के बीच हमने बहुत से झूठ गढ़ रखे हैं जो विदा हो जाने चाहिए । पदार्थ भी अपने में सत्य है और परमात्मा भी । वस्तुतः दोनों एक ही सत्य के दो छोर हैं । यदि शकर 'माया' का प्रयोग करते हैं तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं । हम स्वप्न के जगत् में जीते हैं और उस व्यक्ति के समान हैं जो दिन भर रुपए गिनता रहता है, ढेर लगाता जाता है और अन्त में उन्हें अपनी तिजोरी में वन्द कर देता है । रोज गिनता है और रोज वन्द कर देता है । ऐसा व्यक्ति रुपयों की गिनती में जीता है । और बड़े मजे की बात है कि रुपयों में क्या है जिनकी गिनती में कोई जिए ? कल सरकार बदल जाय और कहे कि पुराने सिक्के खत्म हो गए तो उस आदमी का सारा मनोलोक विलकुल धराशायी हो जायगा । हम उस आदमी से भिन्न नहीं । हमारा भी अपना स्वप्निल जगत् है और हमारे भी ऐसे ही सिक्के हैं—परिवार के सिक्के, प्रेम और मित्रता के सिक्के, जो कल सुबह नियम बदल जाने से बदल जायेंगे ।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पूर्णता की उपलब्धि में अभिव्यक्ति के साधन सम्मिलित नहीं हैं । अभिव्यक्ति की पूर्णता उपलब्धि की पूर्णता से विलकुल अलग है । असल में पूर्णता भी एक नहीं है, अनन्त पूर्णताएँ हैं । यदि कोई एक दिशा में पूर्ण हो जाता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह सब दिशाओं में पूर्ण हो जाय । बहुत आयाम हैं पूर्णता के । एक व्यक्ति पुण्य में पूर्ण हो जाय तो फिर वह पाप की पूर्णता में पूर्ण नहीं हो सकता । पाप की भी अपनी पूर्णता है । सिर्फ परमात्मा ही सब दिशाओं में पूर्ण है क्योंकि वह कोई व्यक्ति नहीं है । और खयाल रहे, अनुभूति की एक दिशा है, अभिव्यक्ति की विलकुल दूसरी । अनुभूति में जाना पड़ता है भीतर और अभिव्यक्ति में जाना पड़ता है बाहर । अनुभूति में छोड़ना पड़ता है सबको और हो जाना पड़ता है विलकुल 'स्व'—सब छोड़कर एक बिन्दु । अभिव्यक्ति में फैलना पड़ता है, सबको जोड़ना पड़ता है । अभिव्यक्ति में 'दूसरा' महत्त्वपूर्ण है, अनुभूति में 'स्वयं' ही महत्त्वपूर्ण है । जानना मौन में है और बताना वाणी में । तो जो जानेगा उसको मौन होना पड़ेगा और जब वह बताने जायगा तो फिर उसे शब्द

का साधना करनी पड़ेगी। इसलिए जरूरी नहै कि जो अभिव्यक्ति कर रहा हो वह जानता भी हो। हाँ सक्ता है उसकी अनुभूति उधार ली हुई हो। ऐसे ही आदमी का मैं पंडित कहता हूँ। पंडित के पास अभिव्यक्ति है, अनुभूति नहीं। ऐसे भी लोग हैं जिनके पास अनुभूति है अभिव्यक्ति नहीं। पानी और तीथकर में यही फर्क है। तीथकर पानी ही नहीं अभिव्यक्ति कुशल भी है और पानी केवल अनुभूति-राम्यन व्यक्ति है। सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है उसके पास।

अनुभूति की पूर्णता महावीर का पिछले जन्म में मिली लेकिन अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए उन्हें साधना करनी पड़ी। और मैं कहना हूँ कि अनुभूति की पूर्णता उनकी कठिन नहीं है जितनी अभिव्यक्ति की पूर्णता कठिन है। अनुभूति में मैं अवलंब हूँ, लेकिन अभिव्यक्ति में दूसरा भी सम्मिलित हो जाता है—दूसरे का जानना-संगठना दूसरे तक पहुँचना भी जल्दी हो जाता है। कठिनाई के बाद अब कारण भी होते हैं जैसे दूसरे की भाषा, दूसरे के अनुभव, दूसरे का व्यवहार इत्यादि। मण्डि में बरोड़ा तरंग के व्यक्तित्व है बरोड़ा बरोड़ा यानिमा में बँटा हुआ प्राण है। उन सब पर प्रतिध्वनि हो सके, उन सब तक छविर पहुँच सब पत्थर भी सुन लें और दवा भी—ऐसी साधना बहुत बड़ी बात है। इसलिए केवल पान ता बहुत लोग का उप-ध होना है दुआ है लेकिन तीर्थकरा की सफा बहुत कम है।

ध्यान रहे कि मनुष्य की शक्ति की अपनी सीमाएँ हैं। अगर कोई व्यक्ति मगीत में बहुत कुशल हो जाय तो उसके ज्ञान निर्मित हो जायेंगे लेकिन अभी मदहा जायगी स्पष्ट शीघ्र हो जायगा। वह व्यक्ति आरम्भिक में एकत्र सिद्ध हो जायगा। लेकिन सामान्य है अनुभूतियाँ आती हैं। बसल परमात्मा में जानना जान सु ही हम मगध में पूज हो जाते हैं। लेकिन एक शिवा में भी का पूज हो जायगा वह उस द्वार पर सदा हो जाता है जहाँ में परमात्मा में प्रवेश होना मनव है। पूर्णता किसी भी शिवा से क्यों न आए, वह परमात्मा के द्वार पर चला कर ही देता है। अगर यह गमाल में हो कि पूर्णता अनन्त है तो हम समस्त मगध कि सवण का गया मान्य हो सक्ता है। इसका मतलब यह नहीं कि मगध आपका बाइनिमित्त के पट्ट टायर का मरम्मत कर देगा और किसी का टी० बी० हो जाय तो उसका दवा भी कर देगा। लेकिन महावीर का परउनवाला न सवण का कुछ ऐसा ही मतलब समझ लिया है। सवण यह है जो पूर्णता का एक शिवा को पकड़ ले और उमस मगध हो जाय। महावीर जो नान्त का शिवा में सवण है। उनके सवण होना का यह मतलब नहीं कि वे आपका बीमारी का ना जानते हैं। गविष्य में गया हुआ, यह ना जानते हैं कि क्या हुआ था वह भी जानते हैं। सवण है क्योंकि वह ज्ञान का पुनरावर्तन हो रहा है। केवल ज्ञान का मतलब यह है। सवण यह है कि शब्द ज्ञान का समता में जीना होता आता है कि उस काई द्वारा शिवा में गमना नहीं

चाहता । इसलिए केवल ज्ञानी को जैसे ही शुद्धता उपलब्ध होती है, वह जानना छोड़ देता है—जानने की क्षमता में ही रम जाता है । जानने की क्षमता ही इतनी आनन्दपूर्ण है कि वह क्यों जानने जाए किसी को ? अज्ञान जानने जाता है, ज्ञान ठहर जाता है । अज्ञान में जानने की जिज्ञासा होती है, किन्तु ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होते ही ज्ञान ठहर जाता है अज्ञान भटकाता है, ज्ञान ठहरा देता है । जिस व्यक्ति को परिपूर्ण ज्ञान की क्षमता उपलब्ध हो जाती है वह तत्काल सभी दिशाएँ छोड़कर परमात्मा में लीन हो जाता है, सर्वव्यापक हो जाता है—बूंद सागर में गिरकर सर्वव्यापी हो जाती है । दूसरी भी सम्भावना है कि वह एक जीवन के लिए लौट आए और अपनी क्षमता की खबर दे । इसे ही मैं करुणा कहता हूँ । इसी करुणा से प्रेरित हो ज्ञानी अभिव्यक्ति की पूर्णता हासिल करने की कोशिश करता है, उपाय करता है दूसरे से कहने का ।

---



## तृतीय अध्याय

मूक जगत् से तादात्म्य और सापेक्षवाद (स्याद्वाद)

डहरे य पाणे वुद्धे य पाणे,

ते अत्ताओ पासद सव्वलोए ।

उव्वेहर्डे लोगमिण महत्त,

वुद्धो पमत्तेमु परिव्वएज्जा ॥<sup>१</sup>

—सूत्र० श्रु० १ अ० १२ गा० १८

१

महावीर के सामने इस नाम का सबसे बड़ा सवाल था कि सत्य की अनुभूति का जीवन के सभी तला तक—पेड़ पाधा से लेकर देवा-देवताओं तक—कस पहुँचा जाय ? उन्होंने आजीवन चेष्टा की कि उनका सवाद पशु पक्षियाँ तक यहाँ तक कि निर्जीव समये जानेवाले पदार्थों तक पहुँचे। महावीर के बाद ऐसी कोशिश करनेवाला दूसरा आदमी नहीं हुआ। यूरोप में सेंट फ्रांसिस ने पशु-पक्षियों से बात करने की कोशिश की थी और हमारे युग में श्री अरविन्द ने पदार्थ तत्त्वा पर चर्चा के स्पन्दन पहुँचाने के लिए यत्न किए थे। लेकिन जसा प्रयास महावीर ने किया वसा न पहले कभी हुआ था और न बाद में हुआ।

कहा जाता है कि महावीर ने सत्य की साधना में बारह वर्ष बिनाए। वस्तुतः वह वर्ष सत्य की अभिव्यक्ति के लिए साधन खोजने के वर्ष थे। और उन्हें साधन मिल जाते हैं। अस्तित्व के मूक जगत् तक अपना अनुभूति पहुँचा सकने में उन्हें सफलता मिलती है। अपनी अनुभूति का पत्थर और मूक पशुओं तक पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति परम जड़ और मूक अवस्था में उतरे। तभी मूक जगत् से उसका सम्पर्क हो सकता है। यदि वक्ता के साथ तात्कालिक बिडाला किसी का अभिष्ट हो तो उसे किसी वक्ता के पास बैठकर पूणतया मूक हो जाना पड़ेगा जिससे उसकी चेतना बिल्कुल गायब होना चली जाय। रामकृष्ण की जड़ समाधि ऐसा ही अवस्था में उतरने की समाधि थी।

1 जो प्रबुद्ध व्यक्ति मोहनिद्रा में डूबे रहनेवाले मनुष्यों के बीच रहकर भी सत्तार के छोटे-बड़े सभी तीक्ष्ण की अपनी आत्मा के समान देखे, इस महान विश्व का निरीक्षण करे और सदा अप्रमत्त भाव से सत्यमाचरण में रत रहे, वह मोक्ष का सच्चा अधिकारी है।

इस सम्बन्ध में स्मरण रखना होगा कि महावीर की अहिंसा किसी तत्त्व-विचार से नहीं निकली, वह नीचे के जगत् के साथ उनके तादात्म्य से निकली है। उस तादात्म्य में उन्होंने नीचे के जगत् की जो पीड़ा अनुभव की थी, उसी पीड़ा की वजह से अहिंसा उनके जीवन का परम तत्त्व बन गया था। वह पीड़ा अत्यन्त सघन थी, अमह्य थी। उन्होंने यह भी महसूस किया कि अगर व्यक्ति पूर्ण अहिंसक न हो जाय तो नीचे के मूक जगत् से तादात्म्य स्थापित करना बहुत मुश्किल है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम तादात्म्य उसी के साथ स्थापित कर सकते हैं जिसके प्रति हमारा समस्त हिंसक, आक्रामक भाव विलीन हो गया हो और हृदय प्रेम से ओतप्रोत हो। अगर मूक जगत् से तादात्म्य स्थापित करना है तो अहिंसा शर्त भी है, नहीं तो वह तादात्म्य स्थापित नहीं हो सकता। सत फ्रांसिस को देखकर नदी की सारी मछलियाँ तट पर इकट्ठी हो जाती, जिस वृक्ष के नीचे वे बैठते, उस पर जंगल के सारे पक्षी आ जाते, उनकी गोद में उतरने लगते, उनके सिर पर बैठ जाते। वन के पशु-पक्षी अपनी अन्त प्रज्ञा से जानते थे कि सत फ्रांसिस से उनकी कभी कोई हानि न होगी। यह अन्त प्रज्ञा सभी पक्षियों के पास है। इसी अन्त प्रज्ञा के फलस्वरूप जापान की एक चिड़िया भूकम्प आने के चौबीस घंटे पहले गाँव छोड़ देती है। उत्तरी ध्रुव पर रहनेवाले सैकड़ों पक्षी वर्ष गिरने के एक महीने पहले यूरोप के समुद्री तटों पर चले जाते हैं और हजारों मील की दूरी तय कर लेते हैं। आश्चर्य है कि वे इस देशान्तरण की प्रक्रिया में रास्ता नहीं भूलते और वर्ष गिरना वन्द होने के महीना भर पहले वापसी यात्रा शुरू कर देते हैं। वे जहाँ से आते हैं ठीक वही अपनी जगह वापस लौट जाते हैं। हमारे हृदय की भाववारा के स्पन्दनों को उनकी यह प्रज्ञा शीघ्र पहचान लेती है, उन्हें स्पर्श कर लेती है, और वे हमसे सचेत हो जाते हैं।

मुझे विश्वास है कि महावीर ने जितने पशुओं और पौधों की आत्माओं को विकसित किया है, उतने पशुओं और पौधों को इस जगत् में किसी दूसरे व्यक्ति ने विकसित नहीं किया। सत्य के अनुभव को सवाहित करने का प्रयोग गौतम बुद्ध ने भी किया था, किन्तु वह मनुष्यों से ज्यादा गहराई पर नहीं गया। सच तो यह है कि न तो क्राइस्ट ने, न बुद्ध ने, न जरतुश्त ने, न मुहम्मद ने, न किसी अन्य व्यक्ति ने मनुष्य तल से नीचे जो एक मूक जगत् का फैलाव है, जहाँ से हम आ रहे हैं, जहाँ हम कभी थे, जिससे हम पार हो गए—वहाँ पहुँचने का कोई मार्ग बताया। महावीर ने महसूस किया था कि उस जगत् के प्रति भी हमारा एक अनिवार्य कर्तव्य है कि हम उसे पार होने का रास्ता बता दें और खबर कर दें कि वह कैसे पार किया जा सकता है। उन्होंने अहिंसा के तत्त्व पर जो इतना बल दिया है उसका एक कारण यह है कि नीचे के मूक जगत् से पूर्ण अहिंसक वृत्ति के बिना सम्बन्धित होना असम्भव है। सम्बन्धित हो जाने पर उस मूक जगत् की अनन्त-अनन्त पीड़ाओं का



घोष होता है और तब उसके मार को हटका करने की भावना का पदाहाना भी स्वाभाविक है। मुझे ऐसा लगता है कि आज बहुत स मनुष्य सिर्फ इसलिए मनुष्य हैं कि उनकी पशुयोनि में या पापों की यानि में या उनके पत्थर हाने की अवस्था में महावीर न सदेग भेजे थे और उन्हें दुःखवा भेजा था। इस बात की भी राज-वीन की जा सकती है कि निम्ने लोग का उस तरह का प्रेरणा उपलब्ध हुई और वे आगे बढ़े। यह इतना अद्भुत कार्य है कि कबल इसकी वजह से महावीर मनुष्य मानस के बड़े से बड़े नाता बन जाते हैं।

अगर किसी भी व्यक्ति को पीछे का अविवक्षित चेतनाओं और स्थितियों से तादात्म्य स्थापित करना है तो उसे अपनी चेतना को उही तला पर लाना पड़ता है जिन तला पर वे चतनाएँ हैं। यह जानकर आप हैरान होना कि महावीर का चिह्न सिंह है। इसका कारण यह है कि पिछला चेतनाओं से तादात्म्य स्थापित करने में महावीर को सबसे ज्यादा सरलता सिंह से तादात्म्य स्थापित करने में हुई। उनका व्यवस्थित भी सिंह जसा है। वे पिछले जन्मों में सिंह रह चुके थे और लाटकर उससे तादात्म्य स्थापित करना उनके लिए एकदम सरल हो गया था। बात यह है कि जब उनका सिंह में तादात्म्य हुआ होगा तब उन्होंने पूरी तरह जाना होगा कि मैं सिंह हूँ और सिंह उनका प्रतीक बन गया। सिंह की तरह वे भी अणु में नया चेत, उनमें भी सिंह का मा अदम्य भाव है जन्म है।

पीछे उतरकर तादात्म्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि चेतना का निरन्तर निश्चित किया जाय उस इस जड़ स्थिति में आया जाय जिसमें उसमें कोई गति न रहे जाय, वह विलकुल निश्चित, गति और विराम को उपलब्ध हो जाय। मरार जब जड़ हो आर चेतना निश्चित तथा शून्य हो तब किसी भी वस्तु, पशु और पौधे से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। और एक मजे की बात है कि अगर वस्तु से तादात्म्य स्थापित करना हो तो किसी सामान्य वस्तु से तादात्म्य स्थापित करने की जल्दतर नहीं। वस्तु की पूरा जाति के माय तादात्म्य स्थापित हो सकता है क्योंकि उनसे अभी व्यक्ति पशु नहीं हुआ, अभी अहंकार और अस्मिता नहीं है—अभी वे एक जाति की तरह जीते हैं। इस तादात्म्य को स्थिति में जो मा पाय सकता किया जायगा वह प्रविष्टि होकर उन तार जीवा तक व्याप्त हो जायगा। जत यदि गुलाब के पौधा की जाति से तादात्म्य स्थापित किया गया हो तो उस क्षण में जा भी भाव-नरग पदा होगी वह तमस गुलाब तक सप्रभित हो जायगी।

तादात्म्य की ऐसी अवस्था में महावीर ने बहुत समय गुजारा और ऐसी अवस्था का उत्पन्न करना में उनका बहुत भी बातें करती पड़ा जिन्हें समझना मुश्किल है। यह माय है कि उनके कानों में कील ठाकी गई रजित उन्हें इसका पल्लव हुआ। इसका कारण है कि जिस समय उनके कानों में कील ठाकी जा रही थी उस समय

उन्होंने उन चट्टान-जैसी चीजों से तादात्म्य स्थापित कर लिया था जिन्हें नीचे ठोके जाने का अनुभव नहीं हो सकता। पत्थर में कीलें ठोको तो बेचारे पत्थर को उनका क्या अनुभव होगा ? अगर कोई उनका हाथ भी काट लेता तो उन्हें उनका अनुभव न होता। हम जानते हैं कि लोग अंगारों पर कूद सकते हैं। तादात्म्य किमसे है, इस पर सब बात निर्भर करती है। अगर किसी ने किसी देवता में तादात्म्य किया है तो वह अंगारों पर कूद जायगा, जलेगा नहीं क्योंकि देवता नहीं जल सकता। महावीर अभिव्यक्ति का जो उपाय खोज रहे हैं, वह है भूत, जड़ एवं मूक जगत् में तरंगों पहुँचाने का उपाय। अब तो तरंगों को वैज्ञानिक ढंग से भी अनुभव किया जा सकता है।

तीर्थों और मन्दिरों का महत्त्व भी इन्हीं तरंगों के कारण है। अगर महावीर-जैसा कोई व्यक्ति कुछ दिन इस कमरे में रह जाय तो इस कमरे से उसका तादात्म्य हो जाता है और इसके कण-कण में उसकी तरंगें अंकित हो जाती हैं। तीर्थ और मन्दिर साधकों के व्यक्तित्व की तरंगों से आप्लावित रहते हैं। इन्होंने प्राचीन तीर्थों और मन्दिरों में साधना करना सार्थक हो सकता है। यदि इस कमरे में किसी ने आत्महत्या कर ली हो तो आत्महत्या के क्षण में हुए तीव्र तरंगों के विस्फोट की प्रतिध्वनियाँ सैकड़ों वर्षों तक इस कमरे की दीवारों पर अंकित रहती हैं। हो सकता है कि इसमें सोनेवाला व्यक्ति कोई रात आत्महत्या करने का सपना देखे। वह सपना केवल कमरे की प्रतिध्वनियों का उसके चित्त पर प्रभाव होगा। और यह भी हो सकता है कि इस कमरे में रहते हुए वह किसी दिन आत्महत्या कर गुजरे। बोधिवृक्ष का महत्त्व इसी कारण है कि उसके नीचे बुद्ध के निर्माण की घटना-घटी और उसके कण-कण में उनकी तरंगों का अंकन है। आज भी कोई रहस्यदर्शी चाहे तो उस वृक्ष के नीचे बैठकर उन तरंगों को वापस बुला सकता है। तीर्थ इन्हीं तरंगों के कारण महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। सम्भेद शिखर, गिरनार, कावा, कागी, जेरुसलम—सभी एक दिन जीवित तीर्थ थे। उनकी तरंगें धीरे-धीरे नष्ट हो गई हैं। इस समय पृथ्वी पर कोई भी जीवित तीर्थ नहीं है, सब तीर्थ मर गए हैं।

जड़ से जड़ वस्तु पर भी तरंगों का क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता है। यहाँ तक कि पदार्थ का अन्तिम अणु भी हमारे निरीक्षण से प्रभावित होता है। यदि अणुओं और परमाणुओं को तोड़कर हम इलेक्ट्रॉन (विद्युदणु) की दुनिया में पहुँचे तो वहाँ जो अनुभव होगा वह बहुत घबड़ानेवाला होगा। वह अनुभव यह होगा कि अनिरीक्षित विद्युदणुओं का व्यवहार वैसा नहीं होता जैसा निरीक्षित विद्युदणुओं का होता है। जब तक उसे कोई नहीं देखता तब तक वह एक ढग से गति करता है, किन्तु खुर्दबीन से देखे जाने पर वह डगमगा जाता है और अपनी गति बदल देता है। इन परमाणुओं और विद्युदणुओं तक भी महावीर ने खबर पहुँचाने की कोशिश

की। इसके लिए उन्हें अनेक बार ऐसी अवस्था में होना पड़ा जिसमें यह कहना मुश्किल था कि वह जीवित है या मृत। इन अवस्थाओं को लाने के लिए उन्हें कुछ और प्रयोग करने पड़े। जैसे, उनका चार चार महीने तक, पांच पांच महीने तक भूखा रह जाना बड़ा असाधारण है। व कुछ न खाकर भी क्षीण नहीं होते। उनका शरीर पूर्ण स्वस्थ और उनका असाधारण सौंदर्य सदा अक्षण्य रहता। क्या कारण था इसका? मरी हृष्टि में कारण था मूक जगत से उनका तादात्म्य और मूक अणुओं का—मूक पदार्थों के परमाणुओं का—प्रत्युत्तर। जो आदमी पास में पड़े हुए पत्थर की आत्मा को भी जगाने का उपाय कर रहा है, जो पास में लग हुए वक्ष की चेतना को जगाने के लिए कम्पन भेज रहा है, उसे अगर सारे पदार्थ-जगत में प्रत्युत्तर में बहुत सी शक्तियाँ मिलती हों तो आश्चर्य नहीं। परमाणुओं का सूक्ष्म जगत उन्हें सीधा भोजन देता था। इसलिए महावीर के पीछे जो लोग भूखा मर रहे हैं वे पागल हैं। वे सिर्फ मासाहारी हैं—अपना ही भास पचा रहे हैं। महावीर तीन चार महीने बाद कभी भोजन करते थे, वह भी इसलिए कि लोग उन्हें यह न पूछें कि कितने दिनों तक भूखा रहना कैसे सम्भव हो सकेगा? यह आप किस कर सकेंगे? सभी बातें सभी का बताने के लिए नहीं होती। महावीर एक दिन भोजन कर लेते हैं वह सिर्फ इसलिए कि लोग को सन्तुष्ट हो जाय कि वे खाना ले लेते हैं। लोग यह सुनकर अचम्भा करते हैं कि महावीर को पसीना नहीं चलता मल मूत्र त्यागने नहीं पड़ते। यदि वे सूक्ष्म परमाणुओं से शक्ति लेते और उन्हें मूक जगत से सीधा भोजन मिलता तो उन्हें भी ये सारे कार्य करने पड़ते और उनके शरीर से भी पसीना बहता। उनका भोजन इतना सूक्ष्म है कि वह शरीर में सीधे लीन हो जाता है।

वाणी के एक सन्ध्यामी ने जिसका नाम विगुहानन्द था एक अत्यन्त प्राचीन विज्ञान का, जो एकदम खो गया था, पुनरुज्जीवित किया। उस विज्ञान का नाम है सूर्य किरण विज्ञान। विगुहानन्द का कहना था कि सूर्य की किरणों से जीवन और मृत्यु सीधे आ सकती है बीच में कुछ और लेने की जरूरत नहीं। पृथ्वी पर पड़ा हुआ पदार्थ जो जगत सूर्य की किरणों से बँटा है। सूर्य अस्त हो जाय तो यह सारा दृश्य जगत भी उसी के साथ अस्त हो जायगा। इस पृथ्वी पर सूर्य की किरणों ने यह और प्राण को जाड़ रखा है। इसलिए सूर्य न हो तो अदृष्टी आत्माएँ हो सकती हैं यह नहीं होगी। चाँद पर अदृष्टी आत्माएँ रहती हैं। इसी कारण अतिरिक्त वे यात्रियों का वहाँ 'बोर्ड' नहीं मिला। वहाँ देहधारी प्राणी नहीं हैं और न वहाँ वह स्थिति ही पैदा हुई है जिससे देह प्रकट हो सके।

नात्थक यह कि वाइ चाह और प्रयत्न कर तो वह अपनी आत्मा से भी सूर्य की किरणों को साथे ले सकता है और ऐसी किरणों जीवन्मुक्ति हो सकती है।



त्राटक के बहुत से प्रयोग सीधे मूरज में जीवन खींचने के प्रयोग हैं, सिर्फ एकाग्रता के प्रयोग नहीं।

मूक जगत् ने महावीर के तादात्म्य के जो उत्तर दिए वे ही अब कहानियाँ बन गई हैं। उनके आधार पर हम कविताएँ रची हैं। कहा जाता है कि जब महावीर चलते तो पथ के काँटे सीधे पड़े न रहते, वे तत्काल उलट जाते ताकि वे महावीर के चरणों में न चुभें। ये हमारी कहानियाँ हैं जो एक गहन सत्य पर प्रकाश डालती हैं। वह सत्य यह है कि प्रकृति भी महावीर के प्रतिकूल नहीं जाती, बल्कि अनुकूल होने की कोशिश करती है। जिस व्यक्ति ने उनसे इतना प्रेम किया, तादात्म्य स्थापित किया, वे उसके प्रतिकूल कैसे जा सकती हैं? मडक के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी आपके प्रेम का उत्तर देता ही है।

सुधी जनो का कहना है कि महावीर के समवसरण में पहली उपस्थिति देवताओं की हुई थी। यह आश्चर्य की बात नहीं है। इसका कारण यह है कि देवताओं के जगत् में अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का सहारा लेना नहीं पड़ता। वहाँ सम्भाषण के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है। उस लोक में वाणी व्यर्थ हो गई है, वहाँ जो भाव उठते हैं, वे मौन में सम्प्रेषित हो जाते हैं। इसलिए वहाँ मृत्यु की वार्ता सबसे ज्यादा सरल है। मानव-लोक में शब्दों के बिना बात-चीत नहीं हो सकती, इसलिए इसमें भावों का हूबहू सम्प्रेषण सर्वाधिक कठिन है, शब्दों के कारण ही संवाद होना मुश्किल हो गया है। पक्षियों के पास अपनी वाणी नहीं है, वे कुछ कह नहीं सकते, लेकिन कुछ अनुभव कर सकते हैं। इसलिए अगर कोई अनुभव के तल पर उनसे सम्बन्ध जोड़े तो वह उनके अनुभवों को जान सकता है। महावीर के समवसरण में पशु-पक्षी हो नहीं, देवता और मनुष्य भी उपस्थित थे। लेकिन जहाँ पशु-पक्षियों ने उन्हें सुना और देवताओं ने समझा, वही मनुष्यों ने अनसुनी कर दी। मनुष्यों को जो कहा गया, शायद उन्होंने नहीं सुना। मनुष्यों के पास शब्द है और उन्हें अपनी समझदारी का खयाल है जो बड़ा खतरनाक है। मनुष्य को यह खयाल है कि मैं सब समझ लेता हूँ। यह बड़ी भारी बाधा है। जो जरूरी चीजे हैं, वह अब भी भाषा के बिना करता है। जैसे क्रोध आ जाय तो वह चाँटा मारता है, प्रेम आ जाय तो वह गले लगाता है। इस प्रकार उसका पशु होना प्रकट हो जाता है। पशु के पास कोई भाषा नहीं होती। वह जानता है कि भाषा समर्थ नहीं है। मनुष्य को समझाने की चेष्टा ही सबसे ज्यादा कठिन चेष्टा है। देवताओं को समझने में कठिनाई नहीं होती, क्योंकि उनसे कहनेवाले शब्दों को अपना माध्यम नहीं बनाते। उनके लिए व्याख्या करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। पशु भी समझ लेते हैं, क्योंकि उनसे कहा ही नहीं जाता, व्याख्या की कोई बात ही नहीं होती—सिर्फ तरंगे प्रेषित की जाती है।

महावीर की बारह वर्षों की साधना अभिव्यक्ति के माध्यम की राज की साधना है। वैसे पहुँचाया जा सके जो पहुँचाना है ? इस सम्बन्ध में दो छोटे सूत्र खयाल में रख लेने चाहिए। यदि पशुआ के पास सम्प्रेषण करना जमीष्ट है तो मूक हाना पडगा, वाणी भी देनी पड़ेगी, करीब करीब मूर्च्छित और जड-जमा हो जाना होगा। शरीर जड हागा मन जड हागा, भगर भीतर चेतना पूरी जागी हागी। अगर मनुष्य से सम्बन्ध जाडना है तो दो उपाय हैं साधना से गुजरे हुए मनुष्य के साथ बिना शब्द के सम्बन्ध जोड़े जायँ और उस हाग्त में लाकर जिसमें देवता होते हैं मौन में कहा जाय या फिर शब्द का वाणी का प्रयोग किया जाय। लेकिन गन्ध ही पकड़ में आते हैं अनुमूतियाँ छूट जाती हैं। इसलिए गणवर आते हैं, मध्यस्थ आते हैं, व्याख्याएँ होती हैं— सब बदल जाता है, सब खो जाता है। महावीर के शब्द महावीर के नहीं रह जाते टीकाकारों के हो जाते हैं। महावीर न मौन में क्या कन्ना है उसे पकड़ने की जम्हरत है।

## २

महावीर के पहले जो विचारधाराएँ प्रचलित थीं उनका आयपरम्परा से पथक अस्तित्व नहीं था। उनमें एक धारा का नाम 'श्रमण' था, क्योंकि उसका आधार श्रम था, प्रायना नही। इस धारा के विपरीत ब्राह्मणधारा थी जिसका विश्वास था कि परमात्मा को विनम्र भाव से प्रायना और शास्त्रविधि में ही पाया जा सकता है। (इस पूरे दीनता को फ्राइस्ट ने पावर्टी आफ् स्पिरिट कहा है।) आय जीवन दर्शन में उपयुक्त दोनों धाराएँ सम्मिलित थीं, परन्तु महावीर के बाद श्रमण धारा न अपना पथक अस्तित्व घोषित किया। महावीर के पहले वह धारा पथक न थी। इसीलिए आदिनाथ का नाम तो बदल में मिलता है, लेकिन महावीर का नाम किसी हिंदू ग्रन्थ में नहीं मिलता। जना के पहले तेईस तीर्थकर आय ही थे आय ही पैदा हुए और आय ही मरे। वे जन नहीं थे। सभी श्रमण भी जन नहीं हो गए। श्रम और सकल्प पर आस्था रखनेवाले लोगों में आजीवक भी थे बौद्ध भी थे और दूसरे दूसरे विचारकों भी थे। जब महावीर ने एक पथक दर्शन की घोषणा की तो श्रमणधारा से एक पथक धारा निकल पड़ी। इसी धारा का नाम जैन पड़ा। बाद धारा भी श्रमणधारा थी। इसलिए महावीर के दर्शन से प्रभावित धारा का एक नया नाम देना आवश्यक था। यदि गौरव में वे बुद्ध तो महावीर थे जिन—विजेता। जिन

१ भारत में अनेक धर्म-परम्पराएँ रही हैं। ब्राह्मण परम्परा मुख्यतया वैदिक है जिसकी कई शाखाएँ हैं। श्रमण परम्परा की भी जन, बौद्ध, आजीवक, प्राचीन साय्य योग आदि कई शाखाएँ हैं। प. सुयलालजी, दर्शन और चिन्तन (१९५७), पृ. ५१।

का अर्थ जीतना ही है। दोनों श्रमण-धाराओं के बीच भेदक रेखा खींचने के लिए गौतम बुद्ध के अनुयायियों को बौद्ध कहा जाने लगा और महावीर के अनुयायियों को जैन। ( 'जिन' शब्द बहुत पुराना है और बुद्ध के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। )

ध्यान रहे कि श्रमणधारा आर्यमूलधारा से ही निस्सृत हुई थी और उस श्रमण-धारा से बौद्ध और जैन धर्म निकले। इसलिए महावीर के पहले के सभी तीर्थंकर हिन्दू सभ के भीतर थे, महावीर हिन्दू सभ के बाहर। महावीर न तो किसी के अनुयायी थे और न कोई उनका गुरु था। फिर भी उनका दर्शन अन्य तीर्थंकरों के अनुयायियों से बहुत दूर तक मेल खा गया। महावीर को चिन्ता न थी कि उनके विचार किसी और के विचारों से मेल खा जायँ। यदि उनका मेल बैठ गया तो यह निपट सयोग की बात है। और इसी कारण वे अनुयायी वीरे-वीरे महावीर के पान आ गए। परन्तु इसमें यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि महावीर हूबहू वही कहते थे जो पिछले तीर्थंकरों ने कहा था। किसी पिछले तीर्थंकर ने ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं की थी। पार्श्वनाथ का धर्म चतुर्यामियुक्त था—उसमें ब्रह्मचर्य को एक पृथक् याम के रूप में स्वीकृति नहीं मिली थी। महावीर ने पहली बार ब्रह्मचर्यव्रत की बात की और चार के स्थान पर पाँच महाव्रतों की प्रतिष्ठा हुई। ऐसी ही अनेक बातें हैं जिनसे महावीर की मौलिकता प्रकट होती है। लेकिन इतना तो जाहिर है कि उनकी बातें पिछले तीर्थंकरों के विरोध में नहीं हैं। वस्तुतः महावीर—जैसे बलशाली व्यक्ति को पाकर उनकी धारा अनुगृहीत हो गई। वे बड़े साधक और सिद्ध थे मही, परन्तु उनमें एक भी ऐसा न था जो एक दर्शन निर्मित कर सके। यह क्षमता महावीर में थी। इसलिए चौबीसवाँ होते हुए भी महावीर करीब-करीब प्रथम हो गए। अगर तीर्थंकरों

१. चतुर्याम का अर्थ है चार महाव्रत। भ० पार्श्वनाथ की निर्ग्रन्थ-परम्परा चार महाव्रतधारी थी—चतुर्माहाव्रत की परम्परा थी। उसमें अहिंसा, सत्य, असत्य, अपरिग्रह ही चार याम ( महाव्रत ) थे। किन्तु, जैसा कि पं० सुखलालजी ने कहा है, 'निर्ग्रन्थ परम्परा में क्रमशः ऐसा शैथिल्य आ गया कि कुछ निर्ग्रन्थ अपरिग्रह का अर्थ-संग्रह न करना, इतना ही करके स्त्रियों का संग्रह या परिग्रह बिना किए भी उनके सम्पर्क से अपरिग्रह का भंग समझते नहीं थे। इस शिथिलता को दूर करने के लिए भ० महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को अपरिग्रह से अलग स्थापित किया और चतुर्थ व्रत में शुद्धि लाने का प्रयत्न किया। महावीर ने ब्रह्मचर्यव्रत की अपरिग्रह से पृथक् स्थापना अपने तीस वर्ष के लम्बे उपदेश काल में कब की यह तो कहा नहीं जा सकता, पर उन्होंने यह स्थापना ऐसी बलपूर्वक की कि जिसके कारण अगली सारी निर्ग्रन्थ-परम्परा पंच महाव्रत की ही प्रतिष्ठा करने लगी, और जो इन्ने-गिने पार्श्वपत्निक निर्ग्रन्थ महावीर के पंच महाव्रत-शासन से अलग रहे उनका आगे कोई अस्तित्व ही न रहा।' दर्शन और चिन्तन ( १९५७ ), पृ० ९८-९९।





है, उसमें भी मृत्यु तक पहुँचा जा सकता है, वहाँ सम्प्रदाय तो निर्मित होगा, पर साम्प्रदायिक चिन्तन न होगा। महावीर का चिन्तन बिल्कुल गैर साम्प्रदायिक था। वे कहते थे कि इस पृथ्वी पर पूर्ण जैसी कोई चीज नहीं होती। अमन्य में भी मृत्यु का अंग होता है और सत्य में भी अमन्य का अंग। अगर कोई उनसे पूछता कि 'ऐसा है ?' तो वे कहते, 'हाँ, है।' साथ ही वे यह भी कहते कि 'नहीं भी हो सकता है।' कोई पूछता, 'ईश्वर है ?' तो महावीर कहते, 'हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। किसी अर्थ में हो सकता है, किसी अर्थ में नहीं हो सकता।' इसी सापेक्षवाद के कारण उनके अनुयायियों की मन्त्रा न बढ़ी। लोगों ने मन्त्रा—उनका दावा पकड़ा नहीं। उन्हें महावीर की बातों में मन्त्र की रेंवा दीख पड़ी। किन्तु, वह मन्त्र न था, सम्भावना की ओर इंगित था। महावीर सिर्फ सब मन्त्रों की सम्भावना की बात करने थे। उनका मतलब यह न था कि मुझे मन्त्र है ईश्वर के होने-न-होने में। उनका मतलब था कि सम्भावना है ईश्वर के होने की भी, न होने की भी।

जो आदमी जितना बुद्धिमान् होता चला जाता है, उसके वक्तव्य उतना ही 'स्यात्' होते चले जाते हैं। वह कहता है, 'स्यात् ऐसा हो।' वह दावा नहीं करता कि ऐसा ही है। लेकिन उसकी बुद्धिमत्ता को ममज्ञान के लिए बुद्धिमान् ही चाहिए। जितने अधिक बुद्धिहीन दावे होंगे, उतनी ही अधिक बुद्धिहीनों की सख्या होगी।

महावीर सख्या इकट्ठी न कर सके। उनके लिए अनुयायियों की भीड़ एकत्र करना मुश्किल था, एकदम असम्भव था। वे किसको और कैसे प्रभावित करते ? आदमी आता है गुरु के पास कि उसे पक्का आश्वानन मिले, चिट्ठी मिले कि स्वर्ग में तुम्हारी जगह निश्चित रहेगी। गुरु पक्के वादे करे कि वह अपने शिष्य को नरक जाने से बचा लेगा। लेकिन महावीर का कोई भी दावा न था। इतना गैर दावेदार आदमी जो सत्य को अनेक कोणों से देखे, जगत् में हुआ ही नहीं। दुनिया में तीन सम्भावनाओं की स्वीकृति महावीर के पहले से चली आती थी। यदि कोई कहता कि यह घड़ा है तो इसका मतलब था कि (१) घड़ा है, (२) घड़ा नहीं है (मिट्टी है) और (३) घड़ा है भी, नहीं भी है। घड़े के अर्थ में घड़ा है, मिट्टी के अर्थ में नहीं भी है। इस प्रकार सत्य के तीन कोण हो सकते हैं—(१) है, (२) नहीं है, (३) दोनों—नहीं है और है। यह त्रिमयी महावीर के पहले भी थी। लेकिन महावीर ने इसे सप्तमयी बनाते हुए कहा कि तीन से काम चलने को नहीं। सत्य और भी जटिल है। इसमें चार 'स्यात्' और भी जोड़ने पड़ेंगे। यह अद्भुत बात थी, लेकिन साधारण आदमी की पकड़ के बाहर हो गई। महावीर ने चौथी मयी जोड़ी और कहा, 'स्यात् अनिर्वचनीय (अवक्तव्य) है'—इसमें कुछ ऐसा भी है जो नहीं कहा जा सकता। घड़ा अणु भी है, परमाणु भी है, इलेक्ट्रॉन है, प्रोटॉन है, विद्युत् है। सब है और इन सबको



इच्छा करता मुक्ति है। ( एक गान् एव गान् में विधि और विधि म म एक का हा कथन कर सकता है। तेना अन्त्या म गन्तु अवा न टहती है—उम गान् क हाता गान् कान् जा सकता है। ) पछा अमी हाता गान् नी दतना पाता है कि उम अनिवार्य पछा पछा। और एक बात तो पत्ती है कि पछ म जा है-गान् है अन्त्या है उमका जा जाना है या ना अनिवार्य है हा कान्कि 'है' का कान् परिभाषा हा करता है। अन्त्या का कान् अन्त्या हाता ? पछे का तो अन्त्या है ओ-अन्त्या अनिवार्य है। अन्त्या का दान है। इसलिए महावीर न पापी मनी आता—गायद पछा अनिवार्य है।' पापी मनी पाता कि ग्यात है आर अनिवार्य है।' छटो मनी छटो कि ग्यात मनी है और अनिवार्य है और अन्त्या म कहा कि ग्यात है नी और ग्यात ना है आर अनिवार्य है।

महावीर का यह कथन कि ग्यात का ग्यात कान् म ग्यात जा सकता है अन्त्या मनी है। ग्यात को आठवें कान् म नहा दगा जा सकता है। सातवाँ अन्त्या कान् है इसलिए मन्त्या मनी ग्यात दुष्टिया म ग्यात का दगा जा सकता है। जा एक गान् लिखा का दावा करता है या छट अन्त्या म अन्त्या का दावा करता है।

यूँकि महावीर का दान जन्म से, इसलिए उक्त अनुवाची कम हुए। उन्होंने कहा—'अन्त्या का यही पाते हैं पछे का भा व्याख्या ग्यात हा करता है। पछे म नी एक तन्त्र है एका अन्त्या है जो उता ही अन्त्या है विना पछा। लेकिन वे ऐसा भी ग्यात कहा कि यह तन्त्र अन्त्या है। उता लिख ग्यात दावा ना ज्यादा हा जायगा। इसलिए उता कहा—ग्यात, जिसका अन्त्या ग्यात नहा है।' गायद म ग्यात है—ग्यात म ग्यात। ग्यात का अन्त्या है—ऐसा भी हा करता है दगा अन्त्या मनी हा करता है। एम दान म दाना का जुटा हुई हैं। पूरा ग्यात ग्यात नी वाला जायगा इन्ही मगिया म बोला जायगा।

इतना जल्द बात मथानाआ का आवर्षित करना बहुत कठिन था। इसलिए महावीर क अनुवाकिया का ग्यात न बड़ सकी। महावीर क जीवा-दान म जा तात उनम प्रभावित हुए थे उनको ग्यात ही महावीर क पीछे अन्त्या की तरह चला

१ 'उन चार वचन व्यवहारों का दार्शनिक भाषा में स्यात सन स्यात असन, स्यात सदसत और स्यात अवयव्य कहत ह। साप्तभगो के मत यही चार भग ह। इन्हों के समान से सात भग होते ह। अर्थात् चतुस भग 'स्यात अवयव्य' क साथ क्रमग पहल दूसरे और तीसरे भग को मिलाने से पाँचवाँ छठा और सातवाँ भग बनता है।' कलागचन्द्र शास्त्री, जनधर्म (काशी) पृ० ६७ ६८।

२ "कोई-कोई विद्वान 'स्यात' शब्द का प्रयोग 'गायद' के अर्थ में करते ह। किन्तु गायद शब्द अनिश्चितता का सूचक है, जब कि स्यात शब्द एक निश्चित अर्थ धारण का सूचक है।" जनधर्म, पृ० ६६।

रही है,—नए लोग नहीं आ सके। मगर जन्म से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए 'जैन' जैसी कोई चीज नहीं है दुनिया में। वह महावीर के साथ ही खत्म हो गई। जन्म से बने जैन लोगों के दावे मुनकर महावीर भी हैंगते। ये तथाकथित जैन कहते हैं कि महावीर तीर्थ कर रहे। खुद महावीर कहते—'स्यात् हो भी सकता है, स्यात् नहीं भी हो सकता।' जन्म से जैन होना बिल्कुल अन्मभव है। जिन प्रकार जन्म से कोई सूफी नहीं हो सकता, उसी प्रकार जिन बाने पर कोई जैन बन सकता है। जन्म से कोई मुसलमान हो सकता है, पर सूफी नहीं।

३

महावीर के तर्क के विपरीत अरस्तू का तर्क चीजों को तोड़कर अलग-अलग कर देता है। अरस्तू का तर्क कुछ इस प्रकार है—'अ' 'अ' है और 'अ' कभी 'व' नहीं हो सकता। 'व' 'व' है, कभी 'अ' नहीं हो सकता। पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है। पुरुष स्त्री नहीं हो सकता, स्त्री पुरुष नहीं हो सकती। काला काला है, सफेद सफेद है, सफेद काला नहीं और काला सफेद नहीं। महावीर कहते कि 'अ' 'अ' भी हो सकता है, 'अ' 'व' भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि 'अ' भी न हो, 'व' भी न हो। और 'अ' अनिर्वचनीय है। स्त्री स्त्री भी है, पुरुष भी है। पुरुष पुरुष भी है, स्त्री भी है, पुरुष स्त्री भी हो सकता है और स्त्री पुरुष हो सकती है और अनिर्वचनीय भी है।

जिन्दगी उतनी सरल नहीं - जितनी अरस्तू समझता था। जिन्दगी में न कोई चीज काली है और न सफेद। कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ केवल अँधेरा हो और कोई स्थान ऐसा नहीं जो बिल्कुल प्रकाशित हो। गहरे प्रकाश में भी अवकाश मौजूद रहता है और अँधेरी से अँधेरी जगह में भी प्रकाश होता है। जिन्दगी बिल्कुल घुली-मिली है, तरल है। अरस्तू के तर्क से निकलता है गणित और महावीर के तर्क से उद्भूत होता है रहस्य। यदि महावीर से कोई पूछता कि जिस स्याद्वाद की आपने घोषणा की, क्या वह पूर्ण सत्य है तो वे कहते—'स्यात्'। इसमें भी वे 'स्यात्' का ही उपयोग करते। वे कभी यह दावा नहीं करते कि मैं तुम्हारा कल्याण कर सकूँगा। वे कहते थे कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता, अपना कल्याण आप ही करना होगा। जब कोई कहता है कि 'मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें मोक्ष दिलाऊँगा' तब अनुयायी उसका अनुगमन करते हैं। मगर महावीर कहते थे 'मेरी शरण में मोक्ष नहीं मिल सकता। कोई किसी की शरण से कभी मोक्ष नहीं पाता।' इसलिए ऐसे व्यक्ति का अनुगमन कौन करता? स्वयं महावीर भी किसी को गुरु बनाना या किसी का गुरु बनना नहीं चाहते थे। इसलिए अनुयायी होने के सारे रास्ते उन्होंने तोड़ दिए। उनकी दृष्टि में सहगमन हो सकता है, अनुगमन नहीं हो सकता। इसलिए महावीर के अनुयायी उन्हें नहीं समझ सकते।

और महावीर के साथ होना बड़ी हिम्मत की बात है। पीछे होना सरल है। इहा कारण से महावीर के आसपास अनुयायियों की बड़ी सख्या उपस्थित न हो सकी। छोटी सख्या उपस्थित हुई और वह निरंतर छोटी होती चली गई। अब उस शाखा में कोई प्राण नहीं रहा। मैं किसी का अनुयायी नहा, फिर भी चाहता हूँ कि इसमें नए अंकुर लगें। पूजा से वक्ष सूखते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस वृक्ष का पूजा के बदले पानी दिया जाय, लाग महावीर की स्यात-दृष्टि को समझें और इसे ठीक-ठीक प्रकट करें ताकि भविष्य में भी महावीर के वृक्ष के नीचे बहुत से लोग का छाया मिल सके।

मेरा खयाल है कि स्यात् की भाषा रोज राज महत्त्वपूर्ण होती चली जायगी। विधान ने उसे स्वीकार कर लिया है। आइस्टीन की स्वीकृति बहुत अद्भुत है। अब तक समझा जाता था कि जो अंतिम अणु है, परमाणु है वह एक बिंदु है जिसमें लम्बाई चौड़ाई नहीं। लेकिन प्रयोग से अब पता चला है कि कभी तो वह अणु बिंदु की तरह व्यवहार करता है और कभी लहर की तरह। इसलिए ऐसा लगता है कि वह स्यात् अणु है, स्यात् लहर है। उसके लिए एक नया शब्द गढ़ना पड़ा—'क्वाण्टा'। यह उसके लिए प्रयुक्त होता है जो दोनों है—बिंदु भी और लहर भी।

#### ४

कुछ लोग का मत है कि सत्य की यात्रा अणुव्रत से प्रारम्भ होती है और महाव्रत में समाप्त हो जाती है। वे कहते हैं कि आज अगर केवल मूर्च्छा टूटना ही सब कुछ हो गया तो अणुव्रत और महाव्रत का भेद मिट जायगा, कोई धर्म नहीं रहेगा और चरित्र का महत्त्व दान ले लेगा।

इस सम्बन्ध में दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक तो यह कि अणुव्रत<sup>१</sup> से

१ जन शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण विधान है—चारित्रधम्मो अर्थात् चारित्र हो धर्म है। चारित्र क्या है? इसका उत्तर यह कहकर दिया गया है—

“असुहाओ विणिवित्ती सुहे पवित्री य जाण चारित्र।”

अर्थात्—अणु धर्मों से निवृत्त होना तथा गुण धर्मों में प्रवृत्त होना चरित्र कहलाता है।

२ इनकी भी सख्या पाँच है—स्थूल प्राणातिपातविरमण, स्थूल मयावादविरमण, स्थूल अदग्रादानविरमण, स्वदारसतोष, इच्छापरिमाण। धावक की आंगिक चरित्र साधना ही अणुव्रत कहलाती है। इसका अर्थ है स्थूल, छोटा अथवा आंगिक दत्त। अणुव्रतों उपात्त सम्पूर्ण चारित्र का पालन करने में असमर्थ होता है। यह मोटे तौर पर ही चारित्र का पालन करता है। जैन आचार के लेखक डॉ० मोहनलाल मेहता



कभी कोई महाव्रत' तक नहीं जाता। महाव्रत की उपलब्धि से अनेक अणुव्रत आप ही उपलब्ध हो जाते हैं। पूरे अहिंसक ढंग से जीने का अर्थ है महाव्रत—पूर्ण अपरिग्रह, पूर्ण अनासक्त। मूर्च्छा के टूटते ही महाव्रत उपलब्ध होता है। मूर्च्छा टूट जाय तो मन ही टूट जाता है, चीजों से लगाव छूट जाता है। यदि कोई कहे कि 'यह मकान मेरा है' तो उसकी मूर्च्छा इस 'मेरा' में होगी। मूर्च्छा मकान में सोने में नहीं है। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह नहीं कि चीजें हट जायँ—अपरिग्रह का मतलब यह नहीं कि चीजें न हों।

एक सम्राट् किसी सन्यासी से बहुत प्रभावित था। उसने सन्यासी से कहा : 'मेरे पास इतने बड़े महल हैं, आप वहाँ चले।' सम्राट् ने सोचा था कि सन्यासी इनकार कर देगा, परन्तु सन्यासी ने कहा : 'जैसी आपकी मर्जी।' और वह डडा उठाकर खड़ा हो गया। सम्राट् को आश्चर्य हुआ। उसे ऐसा लगा मानो सन्यासी महल में रहने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। सम्राट् ने उसे अपना कमरा दिखाया और पूछा 'आप यहाँ ठहर सकेंगे न?' सन्यासी ने कहा : 'विलकुल मजे से।' और सन्यासी राजा के मखमली गद्दे पर उसी तरह सोने लगा जैसे वह नीम के नीचे सोया करता था। छह महीने बीत गए। एक दिन सम्राट् ने कहा : 'अब तो मुझमें और आपमें कोई भेद मालूम नहीं होसा। आप ही सम्राट् हो गए हैं, विलकुल निश्चिन्त हैं, राजसी ठाटवाट का आनन्द लेते हैं।' सन्यासी ने उत्तर दिया : (फर्क जानना चाहते हो तो आगे चलो।) दोनों चल पड़े। बगीचा पार हो गया, राजधानी निकल गई। सम्राट् ने कहा : 'अब तो बताएँ, फर्क क्या है?' सन्यासी ने और आगे चलने को कहा। अन्त में सम्राट् ने कहा : 'घूप चढ़ी जाती है और हम नदी के पार आ गए हैं। अब लौट चले।' सन्यासी ने कहा : 'नहीं, अब मैं लौटूंगा नहीं। तुम भी मेरे साथ चलो।' सम्राट् ने उत्तर दिया : 'मैं कैसे जा सकता हूँ? मेरा मकान, मेरा राज्य—इनका क्या होगा?' सन्यासी ने कहा : 'तो तुम लौट जाओ, लेकिन हम जाते हैं। अगर फर्क दिख जाय तो देख लेना। मगर यह मत सोचना कि हम तुम्हारे महल से डर गए। अगर लौट चलने को कहोगे तो हम लौट चलेगे। लेकिन तुम्हारी शंका फिर पैदा हो जायगी। इसलिए अब हम जाते हैं।'।

---

के शब्दों में "श्रमण के अहिंसादि पाँच महाव्रतों की अपेक्षा लघु होने के कारण श्रावक के प्रथम पाँच व्रत अणुव्रत अर्थात् लघुव्रत कहलाते हैं" देखिए जैन आचार (१९६६), पृ० ८५-१०४।

१. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—

“पाणिबह—मुसावाया-अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ।

राईओयण विरओ, जीवो भवइ ॥ अणासवो ॥”

उस सयासी का चित्त अपरिग्रही था। वह सम्राट के महल में था, लेकिन महल उसमें न था, इसलिए वह उसे छाड़कर कहा भी जा सकता था।

तो मेरा खयाल है कि महाव्रत से अणुव्रत फलित हो सकते हैं। लेकिन अणुव्रत के जोर से कभी महाव्रत नहीं निकलता, क्योंकि अणुव्रत की कोशिश मज्झित चित्त की कोशिश है। और, कोई महाव्रत की कोशिश नहीं कर सकता। वह तो अमूर्च्छा बात ही उपलब्ध हो जाता है। महाव्रत अम्यास से नहीं आ सकता। तुम्हारी मूर्च्छा भूट जाय तो वह फलित हो जाता है तुम्हारा चित्त महाव्रती हो जाता है। आम तौर पर माघक की कोशिश यही रहती है कि वह अणुव्रत से चले और महाव्रत पर पहुँच जाय। मगर वह कभी नहीं पहुँच पाता। महाव्रत विस्फोट है।

महावीर महाव्रती थे। उनकी तीन गणनाएँ थी सम्यक् दशन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य। लेकिन उनके अनुयायी इसे उल्ट देते हैं और कहते हैं कि पहल चारित्र्य साधो। फिर ज्ञान स्थिर होगा, जब ज्ञान स्थिर होगा तब दशन की क्षमता उपलब्ध होगी। नहीं, सम्यक् दशन पहले हो। दशन से ज्ञान फलित होता है और जब ज्ञान प्रकट होता है तब चारित्र्य आता है। चारित्र्य अन्तिम है, प्रथम नहीं। साधना ध्यान और समाधि की है। दशन उसका फल है। दशन से ज्ञान निमित्त हागा और ज्ञान से सम्यक् आचरण। वह आचरण किस रूप में प्रकट होगा? चूँकि आचरण बहुत-सी चीज़ों पर निर्भर है, इसलिए वह कई रूपों में हो सकता है। काइस्ट में एक तरह का हागा, कृष्ण में दूसरी तरह का और महावीर में तृतीय तरह का। दान बिल्कुल एक होगा, पर ज्ञान में भेद पड़ जायगा क्योंकि उस दशन को ज्ञान बनानेवाला प्रत्येक व्यक्ति अलग अलग है। ज्ञान आचरण दानों और वह भिन्न भिन्न अनुभूति-उपलब्ध व्यवस्थितियों में अलग-अलग होगा। जैसे—अगर आज महावीर यूयाक में पैदा हो तो वहाँ वे नगे न होंगे। जिस स्थिति में उनका जन्म हुआ था, उसमें नग्नता पागलपन का पर्याय नहीं थी, सयास का पर्याय थी।

प्रश्न है कि अगर ऐसी बात है तो क्या महावीर उत्तरी ध्रुव में मास भी खा सकते थे? सम्भव है। लेकिन, चूँकि वह मूक जगत से सम्बन्ध स्थापित करना था इसलिए वे ऐसा न करत। मास खाने से मास का कोई विराघ नहीं है, लेकिन अगर वे मास खाते तो केवल मनुष्यों से ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे और वह सम्बन्ध भी बहुत शुद्ध सम्बन्ध नहीं होता—उसमें भी थोड़ी बाधाएँ होती। पूर्ण शुद्ध सम्बन्ध के लिए पूर्ण अवर साधना अनिवार्य होता है। इसलिए मैं अहिंसा को मास प्राप्ति का अनिवार्य तत्त्व नहीं मानता। अहिंसा अनिवार्य तत्त्व है मनुष्य के नीचे की योनियों से सम्बन्ध स्थापित करने का।

मैं कहता हूँ कि चरित्र का समाज, लोक व्यवहार, स्थिति युग नीति-व्यवस्था राज्य—इन सब पर निर्भर होता है। वह आता है सम्यक् दशन से, लेकिन प्रकट

होता है समाज में। मेरी दृष्टि में 'वैसिक मॉरैलिटी' जैसी कोई चीज नहीं। सत्य भी अनुभूति का, दर्शन का हिस्सा है, चरित्र का नहीं। यदि महावीर भी मुहम्मद की जगह होते तो, मैं मानता हूँ, वे विवाह करते। उस स्थिति में वही नैतिक तथ्य हो जाता। मुहम्मद के लिए ब्रह्मचर्य की कठपना बहुत मुश्किल थी; अगर वे ब्रह्मचर्य की बात करते तो अरब मुल्क सदा के लिए नष्ट हो जाता। वे प्रत्येक व्यक्ति को चार-चार विवाह करने की सलाह देते हैं और उदाहरण पेश करने के लिए स्वयं भी विवाह करते हैं। मैं जिस बात पर बल दे रहा हूँ वह यह है कि मैं चरित्र को केन्द्र नहीं मानता, परिधि मानता हूँ। दर्शन को केन्द्र मानता हूँ। दर्शन-ज्ञान ही चरित्र है। चरित्र साधने से ज्ञान नहीं होता। किसी के आचरण का हिसाब ही मत रखो—यह सम्यक् दृष्टि नहीं है। दर्शन कैसे उपलब्ध हो, इसकी फिक्र करो। दर्शन का हमें खयाल नहीं रह गया, इसलिए हम चरित्र की फिक्र करते हैं। विचारणीय है दर्शन। और दर्शन, काल एवं परिस्थिति से आवद्ध नहीं है। वह कालातीत है, क्षेत्रातीत है। जब भी तुम्हें दर्शन होगा तो वही होगा जो किसी दूसरे को हुआ है।

अब प्रश्न उठता है—क्या आज का ज्ञान भी पुराने ज्ञान से भिन्न होगा? जैसा कि मैंने कहा, दर्शन भर अलग नहीं होगा क्योंकि वह शुद्धतम है, परन्तु ज्ञान अलग होगा, क्योंकि आज की भाषा बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं। जब अरविंद बोलेंगे तब उसमें डार्विन मौजूद रहेगा। महावीर की भाषा अरविंद की भाषा से भिन्न होगी, क्योंकि महावीर को डार्विन का कोई पता न था। वे डार्विन की भाषा नहीं बोल सकते और न मार्क्स की। लेकिन अगर मैं बोलूंगा तो मार्क्स की भाषा बीच में आयगी ही। मैं कहूँगा, शोषण पाप है, महावीर नहीं कह सकते यह, क्योंकि उनके युग में शोषण के पाप होने की धारणा ही न थी। धन शोषण है, चोरी है—यह धारणा गत तीन सौ वर्षों में पैदा हुई है। महावीर को हम इस कारण कमजोर नहीं कह सकते कि उन्हें विकास की भाषा का पता नहीं था। वह भाषा थी ही नहीं। आनेवाले हजार वर्षों में भाषा फिर बदलेगी, आज भी बदल रही है। इसी बदली हुई भाषा में फिर ज्ञान प्रकट होगा। अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जायेंगे। पुरानी भाषाएँ ही काव्यात्मक थीं। आजकल की भाषा वैज्ञानिक है। आजकी कविता भी गणित के सवाल की तरह मालूम होती है, विलकुल गद्य है। पुराना गद्य भी पद्य था : नया पद्य भी गद्य है।

लोग पूछते हैं कि महावीर की नग्नता उनके चरित्र का ही एक अंग है या उनके दर्शन का? महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का अंग है, चरित्र का नहीं। अगर किसी को विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से मूक जगत् से सम्बन्धित होना है तो उसके लिए वस्त्र बाधा है। महावीर को इस तथ्य की जानकारी हो गई थी कि मुझे जो कुछ अभिव्यक्त करना है वह ब्रह्माण्ड से एक होकर ही किया जा सकता है। इसलिए नग्न होकर उन्होंने एक तरह का तादात्म्य साधा है।



मेरा भी विचार है कि वस्त्र बाधा बनता है और प्रत्येक वस्त्र अलग तरह की बाधा और सुविधा उपस्थित करना है। रेशमी वस्त्र से कामात्तेजना बढ़ती है। वह स्त्री जिमने रेशमी वस्त्र पहन रखा है, काम को अधिक उत्तेजित करती है। सूती या खादी वस्त्र से ऐसा नहीं होता। इस सम्बन्ध में ऊनी वस्त्र बहुत अदम्य हैं। आपन देखा होगा कि सूफा फकीर ऊनी कपड़ ही पहनते हैं। सूफ का मतलब ही ऊन होता है। ऊनी वस्त्र भिन्न भिन्न प्रकार की लहरों में सुरक्षित रहता है, शरीर की गर्मी को बाहर जान नहीं देता। उसमें गर्मी जसी काइ चीज नहीं होती। सिर्फ भीतर रुकी हुई गर्मी ऊनी वस्त्र का गम रखती है। अनुभव बतलाता है कि न केवल गर्मी को बल्कि और तरह के सधम अनुभवों को भी ऊनी वस्त्र रोकने में सहयोगी होता है। जिन्हें किसी गुह्य (एमाटेरिक) विज्ञान में काम करना हो उनके लिए ऊनी वस्त्र बहुत उपयोगी है।

तो ध्यान रहे कि महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है चरित्र का नहीं। इसलिए जो लोग उसे चरित्र का हिस्सा समझकर नग्न खड़े हो जाते हैं वे बिल्कुल पागल हैं। यदि नग्नतावस्था में महावीर के शरीर में कुछ तरंगें पैदा होती थी तो हवाएँ उन लहरों को लेकर यात्रा कर जाती थी। कपड़ा में वे लहरें भीतर रह जाती। सूफी जान बूझकर ऊनी वस्त्र पहनते हैं महावीर को भी नग्नता के महत्त्व की जानकारी थी और उस युग की चरित्र व्यवस्था नग्न खड़े होने की सुविधा देती थी। हर युग में महावीर नग्न खड़े नहीं हो सकते। बम्बई और यूयाक-जस नगरों में आज नग्न पड़ा होना मुश्किल है। नग्न आदमी को सड़क पर निकलने के लिए गवर्नर की अनुमति चाहिए। यूयाक में नग्न व्यक्ति बिल्कुल पकड़ लिया जायगा, बन्द कर दिया जायगा।

५

मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म में मिह धे और उह सत्य की जो अनुमति हुई वह भी पिछले जन्म में ही हुई। तो क्या पणु-यानि में भी मुक्त हुआ जा सकता है? मैं इसकी सम्भावना का निषेध नहीं करता। हाँ आज तक ऐसा नहीं हुआ कि कोई पणु योनि में जन्म लेकर मुक्त हो जाय। अतः महावीर का समय का जो अनुभव हुआ होगा वह मनुष्य जन्म में ही हुआ होगा। किसी दिन जब मनुष्ययानि बहुत विकसित हो जायगी और उसमें मुक्त होना सरल हो जायगा तब नीचे के योनियों में भी मुक्त की एक दो घटनाएँ घटने लगेंगी। मगर अब तक मनुष्ययोनि का छोड़कर किसी दूसरी योनि में ऐसी घटना नहीं घटी है। इसलिए मैं जो 'पिछले जन्म' का प्रयोग किया, उसका मतलब ठीक पिछला जन्म रहा है।

देवयानि में भी मुक्ति की घटना नहीं हो सकती। पणुयानि में कमा हो सकती है निषेध नहीं है, लेकिन देवयानि में इसकी सम्भावना नहीं। निषेध का कारण है कि देवयोनि में एक तो शरीर नहीं है और दूसरे वह मनोयोनि है। और स्मरण

रहे कि शरीर भी साधना में अनिवार्य कड़ी है। जिन प्रकार पशुओं में बुद्धि न होने में यह घटना मुश्किल हो गई है, उनी प्रकार देवताओं में शरीर न होने से मुश्किल हो गई है। पशुओं में कभी बुद्धि विकसित हो नाती है, मगर देवताओं को कभी शरीर मिले, इसकी सम्भावना नहीं है। मुक्ति के लिए पशुओं को मनुष्य तक आना पड़ता है और देवताओं को पुनः मनुष्य तक लौटना पड़ता है।

हो सकता है कि मेरे कहने से आपको ऐसा भी लगे कि महावीर का तादात्म्य जब जड के साथ है, वृक्ष के साथ है तो मनुष्यों के साथ नहीं है। और आप ऐसा भी सोच सकते हैं कि जब तादात्म्य होता है तब सबके साथ होना है, अलग-अलग नहीं। मेरा कहना है कि जब तादात्म्य पूर्ण होता है तभी वह सबके साथ होता है। ऐसी अवस्था मोक्ष में ही होती है। लेकिन महावीर तो उन विभूतियों में हैं जो परिपूर्ण मोक्ष पाने के पहले ही वापस लौट आये हैं। पूर्ण तादात्म्य होता तो महावीर नहीं रह जाते। जो मुक्त हो जाता है वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है और परमात्मा कोई सदेश पहुँचाने नहीं आता। सदेश पहुँचाने के लिए महावीर लौट आते हैं वापस। ज्ञान पूरा हो गया है, लेकिन अभी डूब नहीं गए हैं सागर में। इस हालत में तादात्म्य सबसे नहीं होता। वह एक विशिष्ट दिशा में एक साथ एक बार होगा। दूसरी दिशा में दूसरी बार होगा। मोक्ष में सबके साथ युगपत् होगा। मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता। गंगा गिर जाती है सागर में। फिर भी उमका कण-कण मौजूद है सागर में। वह खो गई है सागर में, मिट नहीं गई। जो था वह अब भी है, केवल सीमा नहीं रह गई। हाँ, कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनके सहारे हम चाहे तो सागर-तट पर गंगा को पुकारें और उसके वे अणु जो अनन्त सागर में खो गए हैं, उस तट पर इकट्ठे हो जायें। वे सब सागर में मौजूद हैं। इसी तरह चेतना के महासागर में महावीर-जैसा व्यक्ति खो गया है। लेकिन उनके अणु आपको उत्तर दे सकते हैं। जरूरत है कि आप उन्हें अनन्त के किनारे खड़े होकर पुकारें, उनके द्वारा छोड़े गए संकेतों का उपयोग करें। जो लोग खो जाते हैं अनन्त में, वे ही उपाय भी छोड़ जाते हैं पीछे। यह भी सच है कि सभी नहीं छोड़ते। यह उनकी मर्जी पर निर्भर है कि वे छोड़ें या न छोड़ें। महावीर उनमें हैं जो निश्चित ही छोड़ गए हैं। उस उपाय से ही उनसे सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। महावीर का कोई व्यक्तित्व नहीं रहा लेकिन उत्तर आ जाता है उस अनन्त से। व्लेवटस्की ने करीब-करीब सभी शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की थी। उनमें महावीर भी एक हैं। व्लेवटस्की थियोसॉफिकल सोसायटी की जन्मदात्री है। उसके साथ अल्काट और एनी बेसेट ने भी सम्बन्ध स्थापित किए थे। लेकिन वे सब मर चुके हैं। अब कोई भी ऐसा नहीं जो पुराने शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित कर सके। मैं चाहता हूँ कि इधर कुछ लोग उत्सुक हो तो बराबर इस विधि पर काम करवाया जाय। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।



## चतुर्थ अध्याय

### सामायिक, प्रतिक्रमण और चारित्र

सर्वे पाणा पिशाडया, सुहसाया दुहपडिकूला, अप्पियवहा  
पियजोविणो जीविउकामा णातिवाएज्ज कचण ।<sup>१</sup>

—आचाराग १ २ ३

१

महावीर ने मूक जगत के साथ तो सम्बन्ध स्थापित किया ही था उन्होंने देव तादात्म्य तक भी अपनी बात पहुँचाई थी। मगर देव जसी किसी हस्ती की स्वीकृति हम बहुत कठिन मालूम पड़ती है। जो हमें दिखाई पड़ता है, वही हमारे लिए सत्य प्रतीत होता है। देव उस अस्तित्व का नाम है जो हमें साधारणतः दिखाई नहा पड़ता लेकिन यदि थोड़ा सा भी श्रम किया जाय तो उस लोक के अस्तित्व को भी देखा जा सकता है। उससे सम्बद्ध भी हुआ जा सकता है। जहाँ हम रह रहे हैं ठीक वहीं देव भी हैं और प्रेत भी। प्रेतात्माएँ इतनी निरुद्ध हैं कि उन्होंने मनुष्य होने की सामर्थ्य खो दी है। देवात्माएँ मनुष्य से ऊपर उठी आत्माएँ हैं जिनमें मोक्ष को उपलब्ध करन की सामर्थ्य नहीं है। ये सारी आत्माएँ ठीक हमारे साथ हैं, किसी चाँद पर नहा। इसलिए कभी-कभी वे हमारा स्पर्श भी करती हैं और बिन्ही छाहा में दिखाई भी पड़ती हैं। परन्तु साधारणतः ऐसा नहा होता क्योंकि हमारा और उनका अलग-अलग अस्तित्व है। एक ही कमरे में प्रकाश भी हो सकता है और सुगन्ध भी। उसमें बीणा की ध्वनि भी गूँज सकती है। जिस प्रकार ये एक-दूसरे को नहीं काटत, उसी प्रकार देवता, प्रेत और मनुष्य एक ही जगत में रहकर भी एक-दूसरे की जगह घेरने का काम नहीं करन। उनका अस्तित्व हमारे अस्तित्व का ठीक समानांतर है और वे हमारे साथ जात हैं। महावीर या उनके जैसे व्यक्ति का जीवन का साथ उका निरंतर सम्बन्ध और सम्पर्क रहा है जिसे परम्पराएँ समझने में एकदम असमर्थ हैं। उनकी बातचीत वैसे ही होता है जस का व्यक्तित्व के बीच होती है। महावीर इन्द्र या और देवता किसी कल्पनालोक में बातें नहीं करते। वे बिल्कुल आमन-सामने मिलते और बातें करते हैं।

१ सभी प्राणियों को अपना अपना जीवन प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सबके प्रतिकूल है, यथ सबको अप्रिय है, जीवन प्रिय है सब जीने की कामना करते हैं। इसलिए किसी को मारना या कष्ट देना नहीं चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि उनसे—देवलोक में, प्रेतात्माओं से—सम्बन्धित होने का जो मार्ग है वह हमारे भीतर है और आज प्रगुप्त है। मनुष्य के मस्तिष्क का शायद एक तिहाई भाग काम कर रहा है। उसमें वैज्ञानिक भी चिन्तित हैं। उनका मत है कि यदि हमारे मस्तिष्क का वह बड़ा हिस्सा जो निष्क्रिय पड़ा है, सक्रिय हो जाय तो नई इन्द्रियों का खुलना शुरू हो जायगा और जीवन तथा अद्वैतत्व की अनन्त सम्भावनाओं से हमारे सम्बन्ध जुड़ने शुरू हो जायेंगे। तीसरी आँख की बात हम निरन्तर सुनते रहे हैं। अगर वह हिस्सा जो हमारी दोनों आँखों के बीच निष्क्रिय पड़ा है, सक्रिय हो जाय—हमारी तीसरी आँख खुल जाय—तो हम कुछ ऐसी बातें देखना शुरू कर देंगे जिनकी हमें आज कल्पना तक नहीं है। वह तीसरी आँख रेडार में भी अद्भुत होगी। उसके लिए स्थान और कल के परदे न होंगे। वह मस्तिष्क की बहुत-सी सम्भावनाओं को पकड़ सकेगी, हमारे के मन में चलनेवाले विचारों की झलक पा लेगी। मस्तिष्क का एक हिस्सा जो आज निष्क्रिय पड़ा है, वह सक्रिय होते ही हमें देवलोक से जोड़ सकती है। स्वप्नवर्ग नामक एक व्यक्ति ने अपनी पुस्तक 'स्वर्ग और नरक' में देवताओं के सम्बन्ध में बहुत अद्भुत बातें कही हैं। यूरप में देवलोक के सम्बन्ध में जानकारी रखनेवाला पहला आदमी वही था। उसने अपनी पुस्तक में आँखों देखे वर्णन दिए हैं।

पिछले विश्वयुद्ध में एक व्यक्ति रेलगाड़ी में गिर पड़ा और गिरते ही उसके मस्तिष्क का एक निष्क्रिय भाग सक्रिय हो गया। उसे दिन में तारे दिखाई पड़ने लगे। बाद में डाक्टरों ने उसके सिर का ऑपरेशन किया ताकि उसे दिन में तारे न दिखाई पड़े। इसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति को दूसरे महायुद्ध में ही चोट लगी और वह अस्पताल लाया गया। उसे महसूस हुआ कि उसके कान रेडियो की भाँति ध्वनियाँ पकड़ने लगे हैं। उस आदमी के पागल होने की नीवत आ गई।

शायद हमें पता नहीं कि हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाएँ अनन्त हैं। महावीर को पता था कि देवलोक से सम्बन्धित होने के लिए मस्तिष्क में एक विशेष हिस्सा है जिसका सक्रिय होना जरूरी है। प्रश्न है कि यह हिस्सा सक्रिय कैसे हो? इस सम्बन्ध में पहली बात यह है कि अगर कोई व्यक्ति समग्र चेतना से, अपने सारे शरीर को छोड़कर सिर्फ दोनों आँखों के बीच आज्ञाचक्र पर ध्यान स्थिर करता रहे तो जहाँ हमारा ध्यान स्थिर होता है वही सोए हुए केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाते हैं। ध्यान सक्रियता का सूत्र है। शरीर में किन्हीं भी केन्द्रों पर ध्यान स्थिर करने से वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए 'सेक्स सेन्टर' को ही ले। जैसे ही आप का ध्यान यौन-केन्द्र की तरफ जायगा, वह केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जायगा। सिर्फ ध्यान जाने से ही स्वप्न में भी, जरा सी कल्पना उठते ही सेक्स वासना का केन्द्र सक्रिय हो जाता है। आज्ञाचक्र वह जगह है जिसे दूसरे लोग 'तीसरी आँख' भी कहते

हैं। अगर सारा ध्यान वहाँ केन्द्रित हो जाय तो भीतर करीब-करीब एक आख के बराबर का एक टुकड़ा बिल्कुल खुल जाता है।

जिसे हम महावीर का साधना काल कहते हैं वह अभिव्यक्ति के माध्यम खोजने में और उस तरह के केंद्र को सक्रिय करने और तोड़ने में व्यतीत हुआ। इस तरह के केंद्र को तोड़ने में जितना ज्यादा ध्यान बिना बाधा के दिया जा सके उतना उपयोगी है। यही वजह है कि महावीर को बहुत लम्बे अरसे तक खाना, पीना, सोना आदि सारे काम त्यागने पड़े थे। चोट सतत और सीधी होनी चाहिए। बीच में कोई बाधा न आए। बीच में दूसरी बात आयगी तो ध्यान वहीं जायगा। और ध्यान दूसरी जगह गया कि जो काम हुआ था वह अधूरा छूट जायगा। वह अधूरा न छूट जाय, इसलिए जीवन के सारे कामों से—जो बीच में बाधाएँ उपस्थित कर सकत हैं—ध्यान हटाना पड़ेगा। तभी किसी केंद्र को पूरी तरह सक्रिय किया जा सकता है।

ध्यान रह कि महावीर का अधिकतम साधना खड़े खड़े हुई है, जब कि दूसरे साधक न बैठकर साधना की है। महावीर के ध्यान का प्रयोग भी खड़े खड़े करने के लिए है। इसका कारण यह है कि बठा या टेटा हुआ आदमी सो सकता है। और अगर एक क्षण भी ध्यान वहाँ से हट जाय तो पहला काम विलीन हो जाता है। जिस चक्र को सक्रिय करना हो उस पर सतत काम होना चाहिए। वह काम खड़े होकर ही किया जा सकता है। निद्रा से बचने के लिए ही महावीर ने भोजन करना छोड़ दिया था। नींद का पचहत्तर प्रतिशत भोजन से सम्बन्धित है। जो लोग आनाचक्र पर काम करते हैं और जिनका ध्यान उस पर लगा हो, उनका शक्ति नीचे नहीं आनी चाहिए। यदि पेट भरा हो तो मस्तिष्क की शक्ति उतर जाती है नीचे। सत्य की अनुभूति से वह चक्र नहीं खुल जाता। हाँ, उस अनुभूति को उस चक्र के माध्यम से प्रकट करना हो तो उसे खालन की जरूरत पड़ती है। आनाचक्र के खुलने से ही देवताओं से जुड़ा जा सकता है। भाव जो भीतर पदा होते हैं वे आनाचक्र से प्रतिबिम्बित हो जाते हैं और देव चेतना तक प्रवेश कर जाते हैं।

मैंने दो बातें कहाँ। जड़ से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी शिथिल हो जानी चाहिए कि जड़ के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाय और यदि मनुष्य से ऊपर की योगिया से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी एकाग्र होनी चाहिए कि आनाचक्र सक्रिय हो जाय—तीसरी आँख खुल जाय।

सम्मोहन के द्वारा सदश वस पहुँचाया जाय, इसके लिए भी महावीर ने वर्षों तक काम किया था। लेकिन उन्होंने इस विधि का उपयोग नहीं किया, क्योंकि उन्हें पता था कि सम्मोहन के द्वारा सदश तो पहुँच जाते हैं लेकिन दूसरे व्यक्ति का कुछ सूक्ष्म नुकसान भी हो जाता है। उसकी तब शक्ति क्षीण हो जाती है वह परवश



हो जाता है और धीरे-धीरे दूसरे के हाथ में जीने लगता है। मैंने भी डवर सम्मोहन पर कई प्रयोग किए। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि सम्मोहित व्यक्ति में कोई बात आसानी से प्रवेश कराई जा सकती है। लेकिन मैं भी इसी नतीजे पर पहुँचा कि जिस व्यक्ति पर सम्मोहन के प्रयोग होते हैं और जिसमें सम्मोहन की अवस्था में कोई बात प्रवेश कराई जाती है, वह व्यक्ति ऐसे जीने लगता है जैसे उनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। रामकृष्ण ने विवेकानन्द को जो पहला सन्देश दिया था, वह सम्मोहन की विधि से दिया था। रामकृष्ण के स्पर्शमात्र में विवेकानन्द को नमस्कार का अनुभव हो गया था। मरने के तीन दिन पहले भी उन्हें ऐसा ही अनुभव हुआ था। वह अनुभव भी विवेकानन्द का अपना न था। उसमें विवेकानन्द की अपनी कोई उपलब्धि न थी। चूँकि वे रामकृष्ण से बँधे थे, इसलिए बहुत चिन्तित, दुखी और परेशान रहते।

अब प्रश्न उठता है कि अगर महावीर ने सम्मोहन की प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया तो रामकृष्ण ने क्यों किया? इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि रामकृष्ण वाणी में असमर्थ थे और वाणी के लिए विवेकानन्द को साधन की तरह उपयोग करना जरूरी था। नहीं तो रामकृष्ण ने जो जाना था, वह खो जाता। इसलिए मैं कहता हूँ कि विवेकानन्द सिर्फ रामकृष्ण के ध्वनि-विस्तारक यंत्र हैं, इनसे ज्यादा नहीं। महावीर को ऐसी कोई कठिनाई न थी। उनके पास रामकृष्ण के अनुभव थे और विवेकानन्द की सामर्थ्य भी। इसलिए दो व्यक्तियों की जरूरत न पड़ी। एक ही व्यक्ति काफी था। इसी प्रकार गुरजिएफ ने ऑस्पेस्की का उपयोग किया था। गुरजिएफ के पास वाणी न थी, ऑस्पेस्की के पास वाणी थी, बुद्धि थी, तर्क था। महावीर के पास गुरजिएफ की साधना थी और ऑस्पेस्की की वाणी, बुद्धि और तर्क भी। उनके पास भी सम्मोहन का साधन था, लेकिन उन्होंने देखा कि वह साधन व्यक्ति को नुकसान पहुँचाता है। वे ध्यान को उपलब्ध थे, इसलिए मौन में ही सवाद संप्रेषित कर लेना उनके लिए सहज सुगम था। उनके लिए शब्दों के उपयोग की आवश्यकता ही न थी। वस्तुतः शब्द सबसे असमर्थ चीज है। मौन में जो कहा जाय, वह पहुँच जाता है, जो कहा ही नहीं जा सकता, बल्कि केवल समझा जा सकता है, वह भी पहुँच जाता है।

इसलिए महावीर के भक्तों को श्रावक कहते हैं—श्रावक यानी ठीक से सुननेवाला। सुनते हम सभी हैं और इसलिए, इस अर्थ में, हम सभी श्रावक हैं। किन्तु हम उस अर्थ में श्रावक नहीं हैं जिस अर्थ में महावीर के सच्चे भक्त इसका प्रयोग करते हैं। श्रावक वह है जो ध्यान की स्थिति में बैठकर सुन सके—उस स्थिति में जहाँ उसके मन में कोई विचार न हो, शब्द न हो, कुछ भी न हो। मौन में बैठकर जो सुन सके वही सच्चा श्रावक है और ऐसे व्यक्ति द्वारा होनेवाली सुनने की क्रिया को ही सम्यक्

श्रवण करते हैं। श्रावक हम तब होते हैं जब हम सिर्फ सुनते हैं और हमारे भीतर कुछ भी नहीं होता।

महावीर की सतत चेष्टा इसमें लगी कि मनुष्य श्रावक कैसे बने—वह कैसे सुन सके। यह तभी सुन सकता है जब उसके चित्त की सारी विचार-परिग्रहा ठहर जाय। फिर बालने की जरूरत नहीं, वह सुन लेगा। ऐसी बोली जो बोली तो गई हो पर जिसे सुना गया हो, 'दिव्य ध्वनि' की सुना पाती है। ऐसी ध्वनि बोली नहीं जाती लेकिन सुनी जाती है, दी नहीं जाती लेकिन पहुँच जाती है। सिर्फ भीतर उठती है और सम्प्रेषित हो जाती है। और स्मरण रहे कि श्रोता कान से सुनता है, श्रावक अपने पूरे प्राणा से सुनता है। महावीर न सम्यक श्रवण की, श्रावक बाने की, कला विकसित की। यह बड़ी से बड़ी कला है जगत् में। काइस्ट-जैसी महान आत्माएँ भी लोग का समझा न पाईं। उन्होंने सिर्फ इसकी फिक्र की कि मैं ठीक-ठीक कहूँ इसकी फिक्र नहीं की कि लोग ठीक ठीक सुन सकें। मुहम्मद ने इसकी फिक्र न की कि उनका आता केवल सुने ही नहीं, सम्यक श्रवण भी करें। उन्होंने केवल इसकी फिक्र की कि मैं जो कह रहा हूँ वह ठीक हो। लेकिन कहना ही ठीक हाने से कुछ नहीं होता सुननेवाला भी ठीक होना चाहिए। नहीं तो कहना व्यर्थ हो जाता है।

इसलिए श्रावक बनने की कला को मैं महावीर की दूसरी बड़ी देना मानता हूँ।

## २

जिसे 'प्रतिश्रमण' (शास्त्र में 'पडिक्कमण') कहा जाता है वह भी श्रावक बनाने की कला का एक हिस्सा है। 'आश्रमण' का अर्थ होता है—दूसरे पर हमला करना,

### १ द्रष्टव्य

पडिक्कमणेण भन्ते ! जीवे कि जणयइ ? पडिक्कमणेण वयछिद्दाणि विहेइ ।  
विहिय वयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असत्तचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु अपुहत्ते  
सुप्पणिहिमे विहरइ ॥ (उत्त० अ० २९, गा० ११)

'हे भगवान ! प्रतिश्रमण से जीव क्या उपाजन करता है ?'

'हे शिष्य ! प्रतिश्रमण से जीव यत्ता के छिद्रों को ढँकता है और इस तरह यत्ता के छिद्रों को ढँकने से वह जीव आत्मव रोकनेवाला होता है। साथ ही गुद चरित्रवान और अष्टप्रवचन माता के प्रति उपयोग वाला बनता है तथा समाधिपूर्वक समयसमय में विचक्षण करता है।' दे० प० घोरजलाल शाह 'शतावधानी', श्री महावीर वचनानुसृत (स० २०१९), प० ३६७ ३६८।

पंडित मुसलालजी के अनुसार 'प्रतिश्रमण का मतलब पीछे लौटना है—एक स्थिति में जाकर फिर मूल स्थिति को प्राप्त करना प्रतिश्रमण है।' (दर्शन और चिन्तन, पृ० १७९) 'सामान्य रीति से प्रतिश्रमण (१) द्रव्य और (२) भाव, यों दो

प्रतिक्रमण का अर्थ होता है—सभी हमलो को लीटा लेना । हमारी चेतना साधारणतः आक्रामक है । प्रतिक्रमण आक्रमण का उलटा है । इसका अर्थ है—सारी चेतना को समेट लेना । जिस प्रकार शाम को सूर्य अपनी किरणों के जाल को समेट लेता है, उसी प्रकार अपनी फैली हुई चेतना को मित्र, शत्रु, पत्नी, बेटे, मकान वन आदि में वापस बुलाने । जहाँ-जहाँ हमारी चेतना ने खूंटियाँ गाड़ दी हैं और वह फैल गई है, वहाँ-वहाँ से उसे वापस बुला लेना है । प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है, सामायिक<sup>१</sup> इसका दूसरा चरण । सामायिक ध्यान से भी अद्भुत शब्द है । 'ध्यान' शब्द किसी-न-किसी रूप में पर-केन्द्रित है—इसमें किसी पर या कहीं ध्यान के होने का भाव छिपा है । यह कहने पर कि 'ध्यान में जाओ', यह जिज्ञासा होती है कि पूछूँ—किस के ध्यान में जाऊँ ? किस पर ध्यान करूँ, कहाँ ध्यान लगाऊँ ? समय का मतलब होता है आत्मा और नामायिक का मतलब होता है आत्मा में होना । प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा (दूसरे से लौट आओ), सामायिक है दूसरा भाग (अपने में हो जाओ) । जबतक दूसरे से नहीं लौटोगे तब तक अपने में होओगे कैसे ? इसलिए पहली सीढ़ी प्रतिक्रमण की है और दूसरी सीढ़ी नामायिक की । लेकिन वह जो बकवास प्रतिक्रमण के नाम से चलता है, वह प्रतिक्रमण नहीं है ।

महावीर ने ध्यान शब्द का प्रयोग नहीं किया है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ध्यान शब्द ही दूसरे का इशारा करता है । लोग पूछते हैं—हम ध्यान

प्रकार का है । भावप्रतिक्रमण ही उपादेय है, द्रव्य प्रतिक्रमण नहीं । द्रव्य प्रतिक्रमण वह है, जो दिखावे के लिए दिया जाता है । दोष का प्रतिक्रमण करने के बाद भी फिर से उस दोष को बार-बार सेवन करना, यह द्रव्यप्रतिक्रमण है । इससे आत्मशुद्धि के बदले ढिठाई द्वारा और भी दोषों की पुष्टि होती है । इस पर कुन्हार के वर्तनों को कंठर<sup>२</sup> द्वारा बार-बार फोड़कर बार-बार माफी माँगनेवाले एक क्षुल्लक-साधु का दृष्टांत प्रसिद्ध है ।' (उपरिवत्) पं० धीरजलाल शाह 'शतावधानी' के शब्दों में 'अज्ञान, मोह, अथवा प्रमादवश अपने मूल-स्वभाव से दूर गए किसी जीव का अपने मूल-स्वभाव की ओर पुनः लौटने की प्रवृत्ति प्रतिक्रमण कहलाती है ।' इस सदर्भ में निम्नलिखित गायथा भी स्मरणीय है :—

स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशं गतः ।

न त्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥

अर्थात्—यदि (आत्मा प्रमादवश अपने स्थान से परस्थान में गई हो तो वहाँ से उसे वापस लौटाना ही प्रतिक्रमण कहाता है । दे० श्रीपंचप्रतिक्रमणसूत्र (जैन-साहित्य-विकास-मण्डल, १९५५), पृ० १६६ ।

१. सामादय समाय की क्रिया । 'जिसमें सम अर्थात् राग-द्वेष रहित स्थिति का आय अर्थात् लाभ हो, उसको समाय कहते हैं ।' (उपरिवत्, पृ० ३५)



करना चाहते हैं किसपर करें ? ध्यान शब्द में ही विषय का खयाल छिपा है । इसलिए महावीर ने ध्यान की जगह जिस शब्द का अधिक प्रयोग किया है वह है सामायिक । वह महावीर का अपना शब्द है । जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा में ही होता है तब उस सामायिक कहते हैं ।<sup>१</sup>

आइस्टीन ने कहा था कि समय स्वयं ( स्थान, क्षेत्र ) का ही चौथा आयाम है, अलग चीज नहीं । उसकी मृत्यु के पश्चात् इस विषय पर और काम हुआ और पाया गया कि दाश्म भी एक तरह की ऊर्जा (एनर्जी, शक्ति) है । अब वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य का शरीर तो तीन आयामों—लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई—से बना है, परन्तु उसकी आत्मा चौथे आयाम में बनी है । महावीर ने आज से लगभग २५०० साल पहले आत्मा का समय कहा था । कई बार विज्ञान जिन अनुभूतियों से बहुत बड़ी उपलब्धि कर पाता है, रहस्य में डूबे हुए सतत उस हजारों साल पहले दस लेते हैं । रूस के वैज्ञानिक निरन्तर इस तथ्य के निकट पहुँचते जा रहे हैं कि समय ही मनुष्य की चेतना है । यदि सोच लें कि समय नहीं है जगत् में, तो पदार्थ हाँ सकता है, पत्थर हो सकता है, लेकिन चेतना नहीं हो सकती, क्योंकि चेतना की जा गति है वह स्थान में नहीं है समय में है । जब आप अपने घर से यहाँ उठकर आते हैं तो आप का शरीर यात्रा करता है और यह यात्रा होती है स्थान में । आपका जगह बार में अगर पत्थर भी रख दिया गया होता तो वह भी बार में बँटकर यहाँ आ जाता । लेकिन बार में बँटे हुए आप का मन एक और गति भी करता है जिसका दूरी से कोई मवज नहीं । वह गति समय में है । हो सकता है आप जब घर में हाँ या बार में बँटे हाँ, तभी आप इस हाल में आ गए हाँ आपका मन यहाँ आ पहुँचा हाँ । लेकिन आपकी गाड़ी अभी घर के सामने खड़ी है । जब आप बार में बँठे हैं तो दो गति हाँ रही है—एक तो आपका शरीर स्थान में यात्रा कर रहा है और दूसरे आपका मन समय में यात्रा कर रहा है । चेतना की गति समय में है ।

१ दक्षिण महावीर वाणी, पृ० ५५९-५६१ । जनघम में सामायिक की प्रतिष्ठा विधिपूर्वक करनी पड़ती है । शुद्ध वस्त्र पहनकर कटासन, मुहपत्ती, चरखा, नखरार यात्री एवं कोई भी धार्मिक पुस्तक लेकर गुरु के समक्ष जाना पड़ता है और कहना पड़ता है—‘करेमि भने । सामाइय’, अर्थात् ‘हूँ पुनः । मैं सामायिक करता हूँ,’ तदनन्तर कहना पड़ता है—‘सावज्ज ताग पच्चक्खामि’, अर्थात् ‘मैं पापमयी प्रवृत्ति का प्रतिष्ठा पूर्वक धरित्याग करता हूँ ।’

सामायिक में पापमयी प्रवृत्ति का छह प्रकार से त्याग किया जाता है—(१) पापमयी प्रवृत्ति में मन से बँधे नहीं, (२) पापमयी प्रवृत्ति में मन से बँधे नहीं, (३) पापमयी प्रवृत्ति में यत्न से बँधे नहीं, और (४) पापमयी प्रवृत्ति में पाप से बँधे नहीं । श्री पंच प्रतिफलन सूत्र, पृ० ३६ ।

महावीर ने चेतना को समय और ध्यान को सामायिक कहा है। अगर चेतना की गति समय में है तो इस गति के ठहर जाने का नाम सामायिक है। शरीर की सारी गति के ठहर जाने का नाम आसन और चित्त की सारी गति के ठहर जाने का नाम ध्यान है।

समय के बिना चेतना का कोई अस्तित्व अनुभव में नहीं आ सकता। समय का जो बोध है वह चेतना का अनिवार्य अंग है। इस बात में और भी बातें अन्तर्निहित हैं। जगत् में सभी चीजें क्षणभंगुर हैं। आज है, कल न होगी। इस जगत् की लम्बी धारा में समय ही एक ऐसी चीज है जो सदा है, जो नहीं बदलता और जिनके भीतर सब बदलाव होता है। अगर समय न हो तो बच्चा बच्चा रह जायगा, कली कली रह जायगी। क्योंकि परिवर्तन की सारी सम्भावनाएँ समय में हैं। जगत् में सभी चीजें समय के बाहर हैं और परिवर्तनशील हैं, लेकिन समय 'समय' के बाहर है और परिवर्तनशील नहीं है। अकेला समय ही शाश्वत सत्य है जो सदा था, सदा होगा। महावीर आत्मा को समय का नाम इसलिए भी देना चाहते हैं कि वही तत्त्व शाश्वत, सनातन, अनादि, अनन्त है। साधारणतः हम समय के तीन विभाग करते हैं - अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन यह विभाजन बिल्कुल गलत है। अतीत सिर्फ स्मृति में है, और कही नहीं, भविष्य केवल कल्पना में है, अन्यत्र नहीं। है तो सिर्फ वर्तमान। इसलिए समय का एक ही अर्थ हो सकता है—वर्तमान। जो है वही समय है। क्षण का अन्तिम हिस्सा जो हमारे हाथ में है, महावीर उसे ही समय कहते हैं। 'समय' एक विभाजन है वर्तमान क्षण का जो हमारे हाथ में होता है। जैसे अणु-परमाणु दिखाई नहीं पड़ते, वैसे ही क्षण का वह हिस्सा भी हमारे बोध में नहीं आ पाता। जब वह हमारे बोध में आता है तब तक वह जा चुका होता है। यानी, हमारे होश से मरने में भी इतना समय लग जाता है कि समय जा चुका होता है। जिस दिन आप इतने शान्त हो जायें कि वर्तमान आपकी पकड़ में आ जाय, उस दिन आप सामायिक में प्रवेश कर गए। चित्त इतना शान्त और निर्मल चाहिए कि वर्तमान का जो कण है अत्यल्प, वह भी झलक जाय। यदि वह झलक जाय तो समझना चाहिए कि हम सामायिक को उपलब्ध हुए—यानी हम समय के अनुभव को उपलब्ध हुए, हमने समय को जाना, देखा और अनुभव किया। जब हम कहते हैं कि आठ बजा तब उतनी ही देर में घड़ी की सुई कुछ आगे जा चुकी होती है। वह कण-भर तो अवश्य सरक जाती है, आगे चली जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो कुछ कहा जाता है वह, कहते-कहते, अतीत का अंग बन जाता है, हम जब भी पकड़ पाते हैं, अतीत को ही पकड़ पाते हैं। वर्तमान हमारे हाथ से चूक जाता है। हम इतने व्यस्त और अशान्त हैं कि उस छोटे-से क्षण की हमारे मन पर कोई छाप नहीं बन पाती। हम समय से निरन्तर चूकते चले जाते हैं, इस कारण अस्तित्व से परिचित नहीं हो



पाते । वस्तुतः जा अस्तित्व है, समय भी वही है बाकी सब या ता हो चुका या अभी हुआ नहीं । जो है, उससे ही प्रवेग करना होगा ।

महावीर इसलिए भी आत्मा का समय कहते हैं कि समय के दर्शन होते ही जो उपलब्ध होता है वह आत्मा है । जब तुम अस्तित्व का ही अनुभव नहीं कर पाते तो तुम्हारे अस्तित्व का मतलब क्या है ? आत्मा तो सबके भीतर है—सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नही । हम भी आत्मा हो सकते हैं । जब हम कहते हैं कि सबके भीतर आत्मा है तो इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि हम भी आत्मा हो सकते हैं, अभी ह नहीं । हम उसी क्षण आत्मा हो जायेंगे जिस क्षण हम अस्तित्व का दर्शन करने, पहचानने में समय हो जायेंगे । इस दूसरी तरह भी समझा जा सकता है । अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं, वर्तमान आत्मा का हिस्सा है । मन हमेशा अतीत और भविष्य में रहता है—पीछे या आगे । यहाँ, इसी वक्त, अभी, अब—ऐसी कोई चीज मन में नहीं होती । मन सगृह है अतीत का और भविष्य की योजनाओं का । मन जीता है अतीत और भविष्य में । अतीत और भविष्य के बीच में एक अत्यन्त सूक्ष्म रेखा है जो दाना को तोड़ती है । यह वर्तमान है । यह रेखा इतनी चारीक है कि इसके अनुभव के लिए हमारा अत्यन्त शांत होना जरूरी है । जरा-सा कम्पन हुआ कि हम चूक जायेंगे । इसलिए जिस दिन हमारी चेतना अकम्प होगी, उसी दिन समय के क्षण का एक छोटा-सा दर्शन भी हमें उपलब्ध होगा । वर्तमान का क्षण ही द्वार है अस्तित्व में प्रवेश का । ब्रह्म में प्रवेश करें, सत्य या मोक्ष में प्रवेश करें यह वर्तमान के क्षण से ही सम्भव होता है ।

चूँकि हम वर्तमान के क्षण में व्यस्त होते हैं, इसलिए नक़्क़ ज्ञात है । इसलिए सामायिक का अर्थ है अव्यस्त होना । जब हम कुछ भी करते या सोचते नहीं होते, तब समय को पकड़ना सम्भव होता है । जहाँ कुछ किया कि समय चूक जाता है । महावीर ने आत्मा को समय का पर्याय कहा है और उन्होंने यह नाम बड़े गहरे प्रयोजन से दिया है । उनका कहना था कि यदि तुम समय का जान लो समय में खड्डा जाओ, उस दख लो तो तुम अपने को पहचान लोगे । लेकिन समय का जानना ही मुश्किल है । सबसे ज्यादा कठिन है वर्तमान में खडा होना, क्योंकि हमारी पूरी आदत चाहे तो पीछे हाने की हानी है या आगे हाने की । हम चाह तो अतीत में होंगे या भविष्य में । ऐसा आदमी विरल होता है जो वर्तमान में हो । यदि ऐसा आदमी मिल पाय तो समझना कि वह सामायिक में था । जब हम कुछ भी कहते नहीं होते, यहाँ तक कि न तो मात्र जपते होते हैं और न अपनी सास देखते हुए तब सामायिक में होते हैं । जिस में श्वास देखना कहता है वह सामायिक नहीं है । व्यथ का व्यस्तताएँ छूट जायें इसलिए मैं श्वास देखने के लिए कहता हूँ । जब कम से कम एक ही व्यस्तता रह जाय तब कहेंगे कि इससे भी छलांग लगा जायें । यह एक

ऐसी व्यस्तता है जिससे छलाग लगाने में कठिनाई न होगी। यह सामायिक के पहले की सीढ़ी है—सिर्फ छलाग लगाने की सीढ़ी।

मेरी बात अच्छी तरह समझ ले। कुछ करते जाना ही वर्तमान से चूकते जाना है। इसलिए कुछ क्षणों के लिए आप कुछ न करें, बस हो जायें। कमरे में पड़े हैं, कोने में टिके हैं—सिर्फ हैं। कुछ भी न करें। बस हैं। वृक्ष हैं, पत्थर हैं, पहाड़ हैं, चाँद-तारे हैं, सब हैं। शायद वे इसलिए सुन्दर हैं कि समय में कहीं गहरे दूबे हुए हैं। शायद हम इसीलिए इतने कुरूप, परेगान, चिन्तित और दुखी हैं कि समय से भागे हुए हैं—मानो जीवन के मूल स्रोत से कहीं झटका लग गया हो, जड़े उखड़ गई हो और हम कहीं और आ गिरे हो।

क्रियाएँ दो तरह की हैं। एक तो हमारे शरीर की क्रियाएँ हैं जो हमारी निद्रा में शिथिल हो जाती हैं, बेहोशी में वन्द हो जाती हैं। शरीर की इन क्रियाओं से कोई गहरी बाधा नहीं है और न इन्हें रोकना ही कठिन है। असली बाधाएँ तो उपस्थित होती हैं मन की क्रियाओं से जो हमें समय से चूकाती हैं। शरीर का अस्तित्व तो निरन्तर वर्तमान में है, वह हमेशा समय में है—वह एक क्षण भी न तो अतीत में जाता है और न भविष्य में। शरीर वही है जहाँ है। परन्तु झटकाता है मन। फिर भी लोग शरीर के ही दुश्मन हो जाते हैं, जब कि बेचारा शरीर हमसे शत्रुता नहीं ठानता। इसलिए साधक शरीर से दुश्मनी न साधे, वरन् अ-मन की स्थिति में पहुँचने का प्रयोग करें। उनके सारे प्रयोग इसी मन पर होने चाहिए। यह बड़े मजे की बात है कि मन होगा तो क्रिया होगी; क्रिया होगी तो मन होगा। मन कहता है—कुछ भी करो, हम राजी हैं, क्योंकि करने-मात्र से मन बच जाता है। आप कहते हैं कि मन्त्र जपो तो वह कहता है, चलो हम राजी हैं। यदि आप कहते हैं कि हम कुछ भी करना नहीं चाहते, तो मन विलकुल राजी नहीं होता।

जैन मिश्र कहते हैं कि ध्यान का अर्थ ही है कुछ न करना। जब तक हम कुछ कर रहे हैं तब तक ध्यान नहीं हो सकता। फिर भी, 'ध्यान' शब्द में क्रिया जुड़ी हुई है। 'सामायिक' शब्द में वह क्रिया नहीं है।' लगता है, ध्यान कुछ करने की

१. आचार्य रजनीश के अनुसार 'सूत्र अनुयायी बनाते हैं और बाँधते हैं। महावीर को कोई सम्बन्ध नहीं है इन सूत्रों से।...महावीर—जैसे लोगों को समझना ही मुश्किल है। क्योंकि वह जो बात कह रहे हैं, इतनी गहराई की है, और हम जहाँ खड़े हैं वह इतने उलथेपन में है बल्कि उलथेपन से भी तट पर खड़े हुए हैं और वहाँ से जो हमारी समझ में आता है, वह इन्तजाम हम कर लेते हैं। अनुयायी सारी व्यवस्था देता है, और कुछ व्यवस्थापरक सन्निष्क होते हैं जो सदा व्यवस्था देते रहते हैं।' महावीर : मेरी दृष्टि में (पृ० ३११-३१२) स्पष्ट है कि जहाँ आचार्य रजनीश 'सामायिक' को महावीरकी साधना-पद्धति का 'केन्द्रिय शब्द' (उपरि० पृ० २९१) कहते हैं वहाँ वे ऐसे सूत्रों से अपनी

वात है। 'सामायिक' में करने को कुछ नही रह जाता। 'सामायिक' का मतलब है—अपने में होना, 'समय' में होना। करना नहीं है वहाँ, होना है सिर्फ। इसलिए जब कोई पूछता है कि 'सामायिक' कैसे करें तो हमसे और गलत सवाल दूसरा नही हो सकता। वस्तुतः हमारी सारी भाषा चिन्ता करने पर खड़ी है। न करने का हम कोई खयाल ही नहीं है। सूक्ष्मतम तला पर, जब भी हम कुछ करते हैं, सदा और के साथ करते हैं। जब हम कता बनते हैं तब हम वह बनते हैं तो हम नहीं ह। तब हम अपने ऊपर कोई अभिनय लेते ह। उदाहरण के लिए उस व्यक्ति को ले जा दूकानदार बनता है। दूकानदार होना जीवन के एक बड़े नाटक में उसका अभिनय है। अगर स्वभाव को जानना हो, जो मैं हूँ उसे ही जानना हो, तो मुझे सारी नियाया का, सभी चेहरों और अभिनयों को छोड़कर बाहर हा जाना पड़ेगा। थोड़ी देर के लिए बाहर सड़े हो जान का नाम सामायिक है। एक बार मुझे पहचान हो जाय कि मेरा कोई नाम नहीं चेहरा नहीं, शरीर नहीं, कम नहीं, कोई अभिनय नहीं, मान होना है अस्तित्व मात्र मेरा स्वभाव है और जानना मान मेरी प्रकृति, तो एक मक्ति, एक विस्फोट द्वाारा। ऐसा विस्फोट व्यक्ति को जीवन के समस्त चक्कर के बाहर खड़ा कर देता है। हमारी सारी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसका ठीक अभिनय देने की है।

चीन के एक जैन फकीर ने कहा है—तुम खोजते हो इसलिए खो रहे हो, जिसे तुम खोजत हो वह तुम्हें मिला हुआ है। एक क्षण तो रुको, अपनी दीढ़ बद करो, ताकि तुम देख सको कि तुम्हें क्या मिला हुआ है ' बुद्ध को जिस दिन उपलब्धि हुई उस दिन सुबह उनस लोगो ने पूछा—आप को क्या मिला ?' बुद्ध ने उत्तर दिया—मिला कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था वही मिल गया। कैसे मिला ? बुद्ध ने कहा—'कैसे की' बात मत पूछो। जब तक "कैसे" की भाषा में सोचता था, तब तक नहीं मिला। फिर मैंने सब खोज छाट दी। उसी क्षण पता लगा कि जिस में खोजता था वह मुझे मिला हुआ था। जब कोई आत्मा को खोजने लगता है तब वह पागल्पन में उलझ जाता है, क्याकि आत्मा को खोजेगा कौन ? खोजेगा कस ? वह तो है ही हमारे पास। जब हम खोज रहे हैं तब भी, जब नहीं खोज रहे हैं तब भी। अगर यह बात ठीक से खयाल में आ जाय कि सामायिक है अप्रयास, अ खोज और अगर आप इसी क्षण में हो सकते हैं तो आप वहाँ पहुँच जायेंगे जहाँ महावीर सदा से खड़े हैं। अगर हम लक्ष्य को खोजते हुए भटकते रहें तो हम अनन्त-अनन्त जमा तक चूकते चले जायेंगे, कारण काइ लक्ष्य नहीं है जो भविष्य

असहमति प्रकट करते ह जो 'सामायिक' को किया मानते ह। 'सामादय-सुत्त' में कहा गया है—'करेमि नते । सामाय्य, सावण जोग पञ्चवसामि ।' अर्थात्, 'हे पूज्य ! मैं सामायिक करता हूँ। अतः पापवाली प्रवृत्ति को प्रतिज्ञापूर्वक छोड़ देता हूँ।'



मे है। वह हे अभी और यही। जो नहीं जानते, वे कहते हैं—‘जो खोजने की इच्छा कर रहा है, उसे खोजो।’ लेकिन जो जानते हैं, वे कहेंगे—‘जहाँ से प्रश्न उठा है, वहीं उतर जाओ—अन्यत्र न खोजो।’ सच तो यह है कि पाने की भाषा ही गलत है। जिसे पा लिया गया है उसका आविष्कार कर लेना है। इसलिए आत्मा उपलब्ध नहीं होती, सिर्फ जो ढका हुआ होता है, उसे उघाड़ लिया जाता है। और आत्मा ढकी होती है हमारी खोज करने की प्रवृत्ति से; ढकी होती है हमारी और कही होने की स्थिति से। सामायिक न तो कोई क्रिया है, न कोई अभ्यास। यह न कोई प्रयत्न है और न कोई साधना। पाने की सब आकाक्षा स्वयं के बाहर ले जाती है। जब पाने की कोई आकाक्षा नहीं रह जाती तब आदमी स्वयं में वापस लौट आता है। यह जो वापस लौट आना है और घर में ही ठहर जाना है, ‘सामायिक’ कहलाता है। महावीर ने अद्भुत व्यवस्था की है ‘अक्रिया’ में उतर जाने की। होने मात्र में उतर जाने की। जिसकी समझ में न आ जाय उसके लिए सामायिक के करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिसकी समझ में न आवे वह कुछ भी करता रहे, फर्क नहीं पड़ता।

सारांश यह है कि सामायिक के लिए कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं। कुछ देर के लिए कुछ भी करना नहीं है, जो हो रहा है, उसे होने देना है। विचार आते हो तो उन्हें आने देना है, भाव उठते हो तो उन्हें उठने देना है। सब होने देना है। थोड़ी देर के लिए आप कर्ता न रहे, बस साक्षी बन जायें। सामायिक तभी होगी जब आप विलकुल ही अप्रयास होंगे।

युद्ध या कुश्ती की एक कला का नाम है जुजुत्सू। जुजुत्सू में हमला करना नहीं सिखाते, बरन् यह बतलाते हैं कि जब प्रतिद्वन्द्वी तुम्हारी छाती में घूसा मारे तो उसके घूसे के लिए जगह बना देना, राजी होकर उसके घूसे को पी जाना। सामायिक का मतलब भी यही है—चित्त पर होने वाले हमलो के लिए राजी हो जाना। चित्त पर विचारों का, क्रोध और वासना का सतत आक्रमण जारी है। सबके लिए राजी हो जाना। कुछ करना ही मत। जो हो रहा है, होने देना। यही सामायिक है।

### ३

चारित्र-सम्बन्धी शास्त्रगत विचारों से मेरे विचारों का तालमेल नहीं बैठता। चरित्र की जो धारणा प्रचलित रही है उससे मैं विलकुल असहमत हूँ। मैं यह भी

१. उदाहरणार्थः “सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।

यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥” रत्नकरंड०।

अर्थात्—‘धर्म’ के प्रवर्तक सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धर्म कहते हैं। इनके विपरीत मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र संसार के मार्ग हैं।’

कहता हूँ कि महावीर की भी धारणा बसी न थी। वस्तुतः असली चीज है अतर्विवेक। जिसके पास अतर्विवेक नहीं है, वह बाह्य आचरण को व्यवस्थित नहीं कर सकता। अतर्विवेक हो तो बाह्य आचरण स्वयं व्यवस्थित हो जाता है उसे व्यवस्थित करना नहीं पड़ता। जिसे करना पड़ता है, वह इस बात की खबर देता है कि उसके पास अतर्विवेक नहीं है। अतर्विवेक की अनुपस्थिति में बाह्य आचरण अधा है—चाहे हम उसे अच्छा कहें या बुरा, नतिक कहें या अनतिक। हमारा समाज अच्छा आचरण उसे कहता है जिससे उसके जीवन में सुविधा बनती है बुरा आचरण उसे कहता है जिससे असुविधा होती है। समाज को व्यक्ति की आत्मा से कोई मतलब नहीं है, सिर्फ व्यक्ति के व्यवहार से मतलब है, क्योंकि समाज व्यवहार से बनता है, आत्माआ से नहीं बनता। समाज की चिन्ता यह है कि आप सच बोलें, यह चिन्ता नहीं है कि आप सत्य हों। आप झूठ हों तो कोई चिन्ता नहीं, पर बोलें सच। समाज की चिन्ता आपके आचरण से है, धर्म की चिन्ता आपकी आत्मा से है। समाज के द्वारा आचरण की जो व्यवस्था है वह मय पर आधारित है। पुलिस है, अदालत है कानून है या पाप पुण्य का डर है स्वर्ग है नरक है। परिणामस्वरूप समाज व्यक्ति का केवल पागंडी बना पाता है या अनतिक—नतिक कभी नहीं। और जो व्यक्ति पागंडी हो गया उसके धार्मिक होने की सम्भावना अनतिक व्यक्ति से भी कम हो जाती है। परम जानी जसा भीतर होता है वसा ही बाहर भी। अनानी का भी बाह्योन्मुखता एक-सा होता है। बीच में पागंडी होता है जिसका बाहर जानी जसा किन्तु भीतर अनानी-जसा होता है। उसके भीतर गाली उठती है हिंसा उठती है मगर वह 'अहिंसा परमोधर्म' की तन्नी लगाकर बैठता है चरित्रवान दिखवाई पड़ता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर का व्यक्तित्व वह जानी से उधार लेता है और भीतर का व्यक्तित्व अज्ञानी से। वह पागंडी व्यक्ति, जिसे समाज नतिक कहता है, कभी भी धर्म को उपलब्ध नहीं होता। अनतिक व्यक्ति उपलब्ध हो भी सकता है। अक्सर पापी पहुँच जाते हैं पुण्यात्माएँ मदक जाती हैं। इसके दोहरे कारण हैं। एक तो पाप दुःखदायी है। उसकी पीड़ा है जो रूपान्तरण लाती है। दूसरी बात यह है कि पाप करने के लिए समाज के विपरीत जाने के लिए भी साहस चाहिए। पागंडी लोग अतिसामान्य—मीडियोकर—होते हैं। उनमें साहस नहीं होता। साहस के अभाव में वे चेहरा बसा बना लेते हैं जैसा समाज चाहता है, समाज के डर के कारण। अनतिक व्यक्ति के पास एक साहस होता है जो कि आध्यात्मिक गुण है और उसके पास पाप की पीड़ा होती है। पागंडिया की नैतिकता साहस की कमी के कारण होती है, साहस के कारण नहीं। एक आदमी चोरी नहीं करता। आम तौर से हम उसकी प्रशंसा करते हैं। मगर चोरी न करना ही अचार हान का लक्षण नहीं है। चोरी न करने का कुल

कारण इतना हो सकता है कि आदमी तो चोर है, लेकिन चोरी करने का साहस नहीं जुटा पाता। जिन्हे हम नैतिक कहते हैं, अवसर वे साहसहीन लोग होते हैं। और, याद रहे, धर्म साहस की यात्रा है। साहसहीन लोग इसलिए नैतिक होते हैं कि उनमें साहस नहीं है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि पापी की सम्भावनाएँ धर्म के निकट पहुँचने की ज्यादा हैं उस व्यक्ति की अपेक्षा जिसे हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। जिस दिन पापी धर्म की दुनिया में पहुँचता है वह उतनी ही तीव्रता से पहुँचता है जितनी तीव्रता से वह पाप की दुनिया में गया था। नीत्से ने लिखा है—'जब मैंने वृक्षों को आकाश छूते देखा तो मैंने खोजबीन की। मुझे पता चला कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उसकी जड़ों को पाताल छूना पड़ता है। तब मुझे खयाल आया कि जिस व्यक्ति को पुण्य की ऊँचाइयाँ छूनी हो उस व्यक्ति के भीतर पाप की गहराइयों को छूने की क्षमता चाहिए।'।

मैं चाहता हूँ कि आदमी सीधा हो, चाहे वह पापी ही क्यों न हो। इसलिए मेरी भविष्यवाणी है कि आनेवाले सीं वर्षों में पश्चिम में धर्म का उदय होगा और पूरव में धर्म प्रतिदिन क्षीण होता चला जायगा। इसका कारण यह है कि पूरव पाखंडी है, पश्चिम बुरा है मगर साफ है। यह साफ बुरा होना पीड़ा देनेवाला है। इसलिए उस पीड़ा से पश्चिम को बाहर निकलना ही पड़ेगा। पाखंडी का झुठा अच्छा होना पीड़ा नहीं बनता। वह कुनकुनी हालत में होता है—कभी भाप नहीं बनता, वर्ष भी नहीं बनता। पापी आदमी वर्ष भी बन सकता है, भाप भी बन सकता है। मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर अपने को किसी प्रकार व्यवस्थित तो कर लिया है मगर व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुँचाया है। और मेरा यह भी मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पड़ता है। अगर व्यक्ति झूठे है तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है ?

अक्सर धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पड़ा है, क्योंकि वह इस झूठे समाज से राजी नहीं हो सकता। इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं को जो नाम देते हैं वह है 'अनागरिक'। असल में भिक्षु, साधु, सन्यासी का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थ में असामाजिक हो गया है। समाज का अब तक का इतिहास झूठी नैतिकता, झूठी व्यवस्था और अराजकता के बीच डोलता रहा है।

मैं यह भी कहता हूँ कि काम-वासना उतनी खतरनाक नहीं है जितना खतरनाक पाखंड है। पाखंड मनुष्य की ईजाद है और काम-वासना परमात्मा की।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सत्य से ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है। यदि काम-वासना सत्य है तो उससे भी ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है। सत्य काम-वासना की समझ से ही उत्पन्न अन्तिम अनुभूति है। काम-वासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है। इस सत्य को समझने से हम और बड़े सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं—



माना ब्रह्मचर्य वासना की ही अंतिम समग्र स हुई निष्पत्ति है। वह वासना क विरद्ध लड़ी गई बात नहीं है। वासना का निम्न ठीक स समग्र-पहचाना, वह धार धीर ब्रह्मचर्य का उपलब्ध हा जाता है।<sup>१</sup> जिनसे इसे पहचानने स इनकार कर दिया वह अपने ऊपर झूठा ब्रह्मचर्य थोप लेता है। जब मैं साधु-संन्यासिया स मिलता हूँ ता हैरान हो जाता हूँ। लोग के सामने ता क आत्मा परमात्मा की बातें बरत ह ब्रह्मचर्य के गुण गाते हैं, परन्तु एकान्त म वे पूछते हैं कि काम-वासना से छुटकारा कसे हा। इसलिए मैं कहता हूँ कि जो आदमी सेक्स को ठीक से समग्र लेता है वह ब्रह्मचारी हुए बिना नहीं रह सकता—उसे ब्रह्मचर्य की धार जाता ही होगा। अगर किसी का ब्रह्मचर्य की ओर लाना हा ता उस काम-वासना की पूरी समग्र दनी होगी। उसके उस मम्माहन को तोड़ना पड़ेगा जो उस काम-वासना दे रही है। यह जानकर हैरानी होगी कि नाधारणतया कामुक व्यक्ति उन्ना कामुक नहीं होता जितना वह साधु-संन्यासी हाता है निम्न ऊपर स ब्रह्मचर्य थोप लिया है। वह एक क्षण भी काम स छुटकारा नहा पा सकता। उसने जिसे दबाया है वह भीतर स निकलने के लिए हजारों उपाय खोज लेगा, वह उसके सारे चित्त को घेर लेगा, उसके पूर चित्त के रम रहे म प्रविष्ट हा जावगा। ऐसा व्यक्ति सेक्स के केन्द्र पर इतना दमन डालता है कि सेक्स का प्रवृत्ति दूसरे केन्द्र म प्रविष्ट हा जाती है—अर्थात्, वह उसके मन और उसकी चेतना तक म चगी जाती है। ब्रह्मचर्य सग्न है अगर बाधा न जाय। वह बंठिन है

१ रजनीग की ब्रह्मचर्य विषयक भाष्यताएँ जनधर्म या मूलभूत भाष्यताओं का सडन नहीं करती और उनमें काम-वासना की प्रगति है। उनका लक्ष्य विगुद्ध आध्यात्मिक लक्ष्य है। रजनीग काम-वासना तक रुकने को नहीं कहते, प्रत्युत उसे स्वातृति देने और समझने की सलाह देते ह, उससे सत्य को स्वीकार करने की मांग करते ह। और यह इसलिए करते ह कि ऐसी स्वीतृति से ही ब्रह्मचर्य फलित हो सकता है, अन्यथा नहीं। काम-वासना को जानना है ताकि उसमें मुक्त हुआ जा सय। उसके दमन से ब्रह्मचर्य फलित नहीं होता, उसकी स्वीतृति स उसका अतिश्रमण हा सकता है। वे कहते ह कि काम-वासना क सत्य को समझो, इससे भागो मत, करो मत, भयभीत मत होओ—इसे पहचानो, जागो। जागो, पहचानो, समझो तो काम-वासना क्षीण होगी और पूर समझ की स्थिति म रूपांतरित हो जायगी। हाँ, वे यह नहीं मानते कि मुमुक्षु ब्रह्मचर्य का रक्षा के लिए ऐसे स्थान में निवास करे जहाँ एकान्त हो, जा कम बस्तो धाना हा धार जो स्त्री आदि से रहित हो।

ज विविक्षमणादन्न, रहिय धीमणेण य।

यमचेरन्ता रक्खट्ठा, आलय सु तिसवए॥

(उत्त० अ० १६, पा० १)



अगर थोप लिया जाय । तो मैं कहता हूँ कि समाज को सम्यक् वासना सिखाओ, सम्यक् काम की शिक्षा दो । महावीर भी जिस ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए थे, वह जन्म-जन्मान्तरो की वासना की समझ का ही परिणाम था ।

किसी चीज को समझने के लिए उससे गुजरना और उसे जीना आवश्यक है । ब्रह्मचर्य की साधना की प्रक्रिया का सूत्र यह है कि सेक्स के क्षण में हम जागे हुए कैसे रहे । अगर आप दूसरे क्षणों में जागे हुए होने का अभ्यास कर रहे हैं तो आप सेक्स के क्षण में भी जागे हुए हो सकते हैं । ठीक यही बात मृत्यु के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । मृत्यु का भय इतना ज्यादा है कि हम मृत्यु को जागे हुए भोग नहीं पाते, इसलिए मृत्यु से अपरिचित रह जाते हैं । एक दफा कोई मृत्यु में जागे हुए गुजर जाय तो मृत्यु खत्म हो गई, आत्मा के अमर स्वरूप का ज्ञान हो गया और उसे पता लगा कि मरा तो कुछ भी नहीं, सिर्फ शरीर छूटा है । हम सेक्स से मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए उससे अपरिचित रह जाते हैं । जो सेक्स से परिचित हो जाय, वह ब्रह्मचर्य को जान लेता है ।

प्रकृति ने जिन्दगी के सभी कीमती अनुभवों को बेहोशी में गुजरवाने का इन्तजाम किया है । यदि ऐसा न होता तो आप उनसे गुजरने से इनकार कर देते । सेक्स प्रकृति की गहरी जरूरत है । वह सन्तति उत्पादन की व्यवस्था है । प्रकृति नहीं चाहती कि आप उसमें गड़बड़ करें । जिसे आप प्रेम आदि की सज्ञा देते हैं वह सब बेहोग होने की तरकीब है, और कुछ नहीं । प्रेयसी के पास आपको पहले मूर्च्छित होना पड़ता है, उसे मूर्च्छित करना पड़ता है । प्रेमक्रीड़ा से गुजरने के पहले सारा गोरख-घघा एक-दूसरे को मूर्च्छित करने का उपाय है ।

मेरे कहने का तात्पर्य कुल इतना है कि यदि आप किसी भी क्रिया से मुक्त होना चाहते हो तो याद रखिए—मूर्च्छित हालत में आप उससे कभी मुक्त नहीं हो सकते ।

अगर महावीर स्त्रियों को छोड़कर जंगल चले गए हैं तो हमें लगता है कि हम भी स्त्रियों को छोड़े और जंगल चले जायें । हम महावीर की बुनियादी बात समझना भूल गए । वे जब जंगल जा रहे हैं तो पीछे स्त्रियों की स्मृति नहीं है उनके मन में । लेकिन आपका जंगल जाना कुछ और होता है । वहाँ उनकी स्मृति आपको घेरे हुए होती है और आप समझते हैं कि आप वही काम कर रहे हैं जिसे महावीर ने किया था । आप भी जंगल में जाकर बैठ जायेंगे । मगर महावीर बैठेंगे तो स्वयं खो जायेंगे । आप बैठेंगे तो स्त्रियों में खो जायेंगे । आप कहेंगे कि यह तो महावीर ने भी किया था जो हम कर रहे हैं । हमारी कठिनाई यह है कि हमें ऊपर का रूप ही दिखाई पड़ता है । महावीर जंगल जाते दिखाई पड़ते हैं । उनके भीतर क्या घटी है, यह हमें दिखाई नहीं पड़ती । अगर वह दीख पड़ जाय तो बात कुछ और ही हो जाय ।

तो मेरा कहना है कि बिना अनुभव के कोई मुक्ति नहीं। पाप के अनुभव के बिना पाप से भी मुक्ति नहीं। इसलिए भयभीत होकर जो पाप से रुका है, वह पाप से भी मुक्त नहीं होता। वह पाप करने की सिफ शक्ति अर्जित करता है। आज नहीं, कल वह पाप करेगा ही और पाप करके पछताएगा। स्वयं पछताकर फिर दमन करने लगेगा और तत्पश्चात्—दमन के फलस्वरूप—फिर पाप करेगा और फिर पछताएगा। यह एक बुरा चक्र है—पाप पश्चात्ताप, फिर पाप और पश्चात्ताप। मैं कहता हूँ कि पश्चात्ताप भूलकर भी मत करना। मैं कहता हूँ जानकर पाप करना पूरे जागे हुए पाप करना। जो भी करना पूरे जागे हुए करना। गाली भी देना तो पूरा जागे हुए देना। शायद गाली देने का मौका दुबारा न आवे और पश्चात्ताप की भी जरूरत न पड़े। मेरा मतलब केवल इतना है कि हमारा कोई भी अनुभव जितना जागरूक हो सके उतना अच्छा है। दमन का सवाल नहीं है।<sup>१</sup> मेरी धारणा रही है कि अनतिक व्यक्ति को जितना बुरा कहा गया है, वह उतना बुरा नहीं होता। नैतिक व्यक्ति को जो भला कहा जाता है वह कहना सा गलत है। मेरी समझ में जीवन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति को सरल और सहज होने का मौका मिले—न उसकी निंदा हो, न उसका दमन हो और न उसको जबरदस्ती ढालने-बदलने की चेष्टा हो। समाज उसे समझने का विज्ञान और व्यवस्था दे निंदा उसे समझन का मौका दे। कोई उससे न कहें शोध मत करो, क्रोध बुरा है। स्कूलों में उस सिखाया जाय क्रोध करो लेकिन जागे हुए जानते हुए। अगर ऐसी व्यवस्था हो तो

१ रजनीश की मान्यता है कि ज्ञानी ग्रास्त्र नहीं रखते। इसीलिए ग्रास्त्रों का यह कथन कि साधु दमन करता है, ज्ञान से उदभूत नहीं है। साधुधर्म के सम्बन्ध में एक सूत्र है

समण सजय दत्त, हणेज्जा को वि कत्यइ ।

नत्ति जीवस्स नासोत्ति, एव पेहेज्ज सजए ॥

(उत्त० अ० २, गा० २७)

इसमें साधु को इन्द्रिया का दमन करने वाला तथा सवमों कहा गया है। एक अन्य सूत्र में कहा गया है कि साधु कम आने के सभी अप्रगस्त द्वारों को सब ओर से बंद कर अनाग्रयो हो जाता है और अध्यात्म तथा ध्यान-योग से आत्मा का प्रगस्त दमन एवं अनुशासन करनेवाला होता है

अप्पसत्थेहि दारेहि, सव्वओ पिहियासयो ।

अज्झप्पज्झाण जागेहि, पसत्थदमसासणो ॥

(उत्त० अ० १९, गा० ९४)

व्यक्ति धीरे-धीरे क्रोध के बाहर हो जायगा, क्योंकि समझपूर्वक कोई कभी क्रोध नहीं कर सकता ।

मेरी बात कई दफा उलटी दीखती है । कई दफा ऐसा लगता है कि इससे स्वच्छ-दता फैल जायगी, अराजकता का बीजवपन होगा । लेकिन अराजकता फैली हुई है, स्वच्छदता व्याप्त है । मैं जो कह रहा हूँ, उससे अराजकता मिटेगी, स्वच्छदता तिरो-हित हो जायगी । जिन रास्तों पर हम चल रहे हैं वे हमें साधारण बनाने के रास्ते हैं । ऐसे रास्ते भी हैं जो हमें असाधारण बना सकते हैं । समाज नहीं चाहता कि व्यक्ति असाधारण बने । उसे साधारण व्यक्ति ही चाहिए, क्योंकि साधारण व्यक्ति खतरनाक नहीं होते, वे विद्रोह नहीं करते—वे व्यक्ति नहीं, भीड़ होते हैं । समाज को भीड़ की आवश्यकता होती है, व्यक्ति की नहीं । नेता चाहते हैं भीड़, गुरु चाहते हैं भीड़, शोपक चाहते हैं भीड़ । और मैं कहता हूँ कि चाहिए व्यक्ति, क्योंकि भीड़ की कोई आत्मा नहीं होती; मैं चाहता हूँ एक ऐसी दुनिया, एक ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति ही व्यक्ति हो, भीड़ नहीं । जो गुरु अनुयायियों को इकट्ठे करते फिरते हैं, वे हिंसक वृत्ति के लोग हैं । उनका लक्ष्य व्यक्ति को मिटाना होता है, भीड़ इकट्ठी करना होता है । जो उनसे राजी होते हैं, वे स्वयं को मिटाकर अनुयायी बनना स्वीकार करते हैं । अच्छा आदमी यह नहीं चाहता कि आप उससे राजी हों । अच्छा आदमी चाहता है कि आप सोचना शुरू करें । मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी बातों को मान लें । मेरा जोर इस बात पर है कि आप भी इस भाँति सोचना शुरू करें । जीवन में सोचना शुरू हो, जागना शुरू हो, दमन वन्द हो, अनुगमन वन्द हो तो प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा मिलनी शुरू होगी और आत्मा प्रत्येक को असाधारण बना देती है ।

प्रश्न उठता है कि इन ढाई हजार वर्षों में जिन श्रावकों और साधुओं ने व्रतों का पालन किया, क्या वे सब-के-सब पाखंडी थे, क्या उनके लिए सत्य के ज्ञान की कोई सम्भावना नहीं थी ?

मैं कहता हूँ—नहीं, कभी कोई सम्भावना नहीं थी । असल में व्रत पालनेवाला कभी भी पाखंडी होने से बच नहीं सकता । व्रती पाखंडी होगा ही । व्रत लेता वही है जो भीतर सोया हुआ है । जो जग गया है, वह व्रत नहीं लेता—व्रत आते हैं उसके जीवन में । कोई व्रती पाखंडी न रहा हो, यह असम्भव है । व्रत का मतलब क्या है ? व्रत का मतलब है दमन, चित्त की उस दशा का दमन जिसके विपरीत आप व्रत ले रहे हैं । मैं कामवासना से भरा हूँ, इसलिए ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूँ; हिंसा से भरा हूँ, इसलिए अहिंसा का व्रत लेता हूँ, परिग्रह से भरा हूँ, अपरिग्रह का व्रत लेता हूँ । न तो परिग्रह का व्रत लेना पड़ता है और न हिंसा या काम-वासना का । जो हम हैं उसका व्रत लेना नहीं पड़ता । जो हम नहीं हैं, उसका व्रत



लेना पड़ता है। निश्चित ही व्रत दमन लायगा। व्रती तो निश्चय ही ही नहीं सकता। उसका व्रत ही एक शल्य है। अव्रती निश्चय हो सकता है। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि अव्रती होने से ही कोई निश्चय हो जायगा। अव्रती होना हमारे जीवन की स्थिति है। अव्रती दशा में जागना हमारी साधना है। उदाहरण के लिए कुन्दकुन्द को ही लें। वह वसा ही व्यक्ति है जसा महावीर। वह कोई व्रत नहीं पालना, केवल समझ को जगाता है। जो समझता है वह छूटता चला जाता है और जो व्यथ है आप ही विदा हो जाता है। लेकिन है वह अव्रता व्यक्ति। वह जो व्रता व्यक्ति है, वह सदा झूठ ह निपट पागवडी है। व्रत पालन से कोई कभी कहा नहीं पहुँचा। महावीर को भी मैं अव्रती कहता हूँ। कुन्दकुन्द भी अव्रती है ऐसा ही है उमास्वाति। ऐम ही है कुछ और लोग भी। लेकिन जब तुम कहते हो 'जैन श्रावक', 'जन साधु' तो न तो कुन्दकुन्द जन है, न उमास्वाति। जिन्हें जन होने का पागलपन है, वे कभी नहीं पहुँचते क्योंकि जैन होने का मम व्रत आदि से होता है।

व्रत की व्यथता का अनुभव व्रत पालने से ही होता है। अगर हम जाग जायें तो पता लग कि हमारे सारे व्रत व्यथ थे। चित्त वैसा ही रह गया है जसा था। वक्तव्य को भी मैं व्रत की भाषा मानता हूँ। यह भी व्रत की बात है। प्रेम अव्रत की भाषा है अव्रत की बात है। लेकिन अव्रत अकेला काफी नहीं है। अव्रत के साथ जागरण हा। जागरण चाहे अव्रती का हो या व्रती का, फलीभूत होता ही है। आप जिस स्थिति में हा उसी में जाग जायें। हम जो भी कर रहे हैं उसके प्रति जाग जायें। करने के प्रति जागने से फल आना शुरू हो जाता है। चारी करनेवाला चारी के प्रति जाग जाय तो उसका भी जागरण सफल होगा। जागरण के पीछे बल हागा अवश्य। हम मन्दिर जा रहे हा तो भी जागना है वेद्यालय जा रहे हा तो भी जागना है। हम जा भी करें उमे होशपूर्वक करें। होशपूर्वक करने से जो गप रह जाता है वह घम है और जो मिट जाता है वह अधम। नींद तोड़ने से बड़ा और कोई पोषण नहीं है। हमारा कोई आंतरिक गन्धु नहीं है सिवा निद्रा के, मच्छा और प्रमाद के। इसलिए महावीर से कोई पूछे कि घम क्या है तो वे कहेंगे अप्रमाद। और अधम क्या है ? वे कहेंगे प्रमाद। कोई पूछे कि साधुता क्या है ? वे जवाब

१ शास्त्र कहते हैं कि व्रती को निश्चय होगा है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित सूत्र ध्यातव्य है

एतुअ पिबास दुस्सेज्ज, सोउण्ह अरद्ध नय ।

अहिंसासे अध्वहिओ, वेहदुक्ख महाफल ॥ (नग० अ० ८, गा० २७)

अर्थात्—गंधा, तपा दुःगंधा, सरदी, गरमी, अरति (राग का अभाव), भय आदि सभी कष्टों को साधन अतीत भाव से सहन करे। (समभाव से सहन किए गए) दहिक कष्ट महाफलदायी होते हैं।

देगे : अमूर्च्छा । असाधुता क्या है ? वे कहेंगे : मूर्च्छा । उनकी सारी साधना का मूल है विवेक—कोई कैसे जागे, कैसे होश से भरा हुआ हो ।

महावीर का पीरूप काम, क्रोध, लोभ आदि से लड़ने में न था । ये तो लक्षण हैं सिर्फ । इनसे कोई पागल ही लड़ेगा । मूर्च्छा है मूल वस्तु । काम, क्रोध, लोभ इससे ही पैदा होते हैं । मूर्च्छा टूटेगी तो ये आप ही विदा हो जायेंगे । अगर मूर्च्छा से बचते हुए व्रत लेकर इन्हें खत्म करने की कोशिश की गई तो ये कभी खत्म न होंगे, क्योंकि मूर्च्छा भीतर जारी है । वह नए-नए रूपों में इन्हें पैदा करती रहेगी । एक कोने से न निकलकर दूसरे दरवाजे से ये फूट पड़ेंगे । महावीर तो बहुत स्पष्ट हैं कि साधना है अमूर्च्छा, सवर्प यानी मूर्च्छा, सकल्प यानी जागरण ।

आचाराग के एक वाक्य का अर्थ है कि 'तू बाह्य शत्रुओं से क्यों लड़ता है, अपनी आत्मा के शत्रुओं से ही लड़ ।' मैं सूत्रों की फिक्र नहीं करता, क्योंकि जो लोग उन्हें सगृहीत करते हैं वे कोई बहुत समझदार लोग नहीं होते । इसलिए उनसे तालमेल बिठाने का सवाल पैदा नहीं होता । यदि बैठ जाय तो यह आकस्मिक बात होगी । न बैठे तो मुझे इसकी परवा नहीं । 'आन्तरिक शत्रुओं से लड़' में कही-न कही बुनियादी मूल हो गई है, क्योंकि आन्तरिक शत्रु सिर्फ मूर्च्छा है । महावीर बार-बार यही कहते हैं । शत्रु एक ही है और मित्र भी एक । जागरण मित्र है और मूर्च्छा शत्रु । इसलिए सुनने वाले ने कही-न-कही मूल कर दी है । 'आन्तरिक शत्रु' से लड़ना है, न कि 'शत्रुओं' से । जो बहुत शत्रुओं से लड़ रहा है, वह बुनियादी मूल कर रहा है, क्योंकि मजे की बात तो यह है कि अगर काम चला जाय तो लोभ स्वतः चला जाता है, क्रोध चला जाता है, मोह चला जाता है । यानी वे चार जो तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं—काम, क्रोध, लोभ और मोह—संयुक्त हैं और उन सबका जो संयुक्त तना है नीचे, वह मूर्च्छा है । वहाँ से शाखाएँ निकलती रहती हैं । गहराई में उतरने वाले कहेंगे 'मूर्च्छा से लड़ना है ।' और लड़ना क्या है, जागना है । जागा हुआ आदमी कभी लोभी नहीं पाया गया और सोया हुआ आदमी कभी अलोभी नहीं हुआ, अकामी नहीं हुआ । और, याद रहे, व्रत से कभी कुछ नहीं मिटता, क्योंकि व्रत शाखाओं से लड़ाई है । महावीर और कृष्ण मुक्त हुए होंगे तो दमन से नहीं, जागरण से । फ्रायड के शोधों से यह बात पहली बार स्पष्ट हुई है । इस नियम को उसने पहली बार वैज्ञानिक ढंग से कहा है । इसलिए अब जो लोग महावीर को समझने के लिए फ्रायड के पूर्व की भाषा का उपयोग करेंगे वे महावीर को आज के युग के लिए उपयोगी बनने न देंगे । यह निश्चित है कि महावीर की मुक्ति जब भी घटी होगी, वह दमन से घटी न होगी । दमन से मूर्च्छा पर विजय पाना एक वैज्ञानिक असम्भावना है । यानी—अगर कोई कहे कि दमन से महावीर उपलब्ध हुए हैं तो फिर महावीर उपलब्ध न हुए होंगे और अगर वे उपलब्ध हुए तो उन्होंने दमन न

किया होगा। मैं मानता हूँ कि वे उपलब्ध हुए क्योंकि जैसी शांति, जैसा आनन्द और जैसी ज्योति उनके व्यक्ति में आई वैसी दमित व्यक्ति का आ ही नहीं सकती। दमित व्यक्ति के चेहरे पर, मन पर सब ओर तनाव ही तनाव होता है। सिर्फ विमुक्त आदमी के मन में वसी शांति हो सकती है जैसी महावीर के मन में है।

४

प्रश्न किए जाते हैं कि जिसे मैं सामायिक या आत्म स्थिति कहना हूँ, क्या वह चीतरागता ही नहीं है? आत्म स्थिति में होनेवाले लोग क्या जीवन-व्यवहार में आकर अपनी आत्म स्थिति खो नहीं देते? मेरा उत्तर है—नहीं, वे इसे नहीं खोते। आप चाहे जागे हो या सोए, काम कर रहे हों या शांत बैठे हों, आपकी भावना चलती ही रहती है, क्योंकि वह जीवन की स्थिति है। ऐसी ही चेतना की स्थिति है। एक बार वह हमारे खयाल में आ जाय तो फिर कभी मिटती नहीं। यानी जीवन-व्यवहार में उसका ध्यान नहीं रखना पड़ता कि वह बनी रहे—वह हमेशा बनी ही रहती है। वनपति को चौबीस घंटे यह याद रखना नहीं पड़ता कि वह वनपति है। लेकिन वनपति होने की वह स्थिति बनी रहती है चौबीस घंटे। हमारी स्थितियाँ हमारे साथ ही चलती हैं। एक पल के हजारवें हिस्से में भी अगर हम आत्म स्थिति का अनुभव हुआ है तो वह अनुभव बराबर बना रहेगा, क्योंकि हमारे पास पल के हजारवें हिस्से से बड़ा कोई समय होता ही नहीं।

सामायिक को मैं माग कहता हूँ चीतरागता को मजिल। सामायिक द्वार है चीतरागता उपलब्धि। साधन और साध्य अतन्त अलग अलग नहीं हैं। साधन ही विकसित होते होते साध्य हो जाता है। चीतरागता में परम उपलब्धि होगी उसकी जिसे सामायिक में धार धीरे उपलब्ध किया जाता है। सामायिक में पूरी तरह स्थिर हो जाना चीतरागता में प्रवेश करना है।

कृष्ण न जिस स्थिर या स्थितप्रज्ञ कहा है वह वही है जो चीतराग है। दाना शब्द बहुमूल्य है। चीतराग वह है जो सब द्वन्द्व के पार चला गया है, जो दा के पार चला गया है जो एक में ही पहुँच गया है। अब ध्यान रहे कि स्थिर या स्थितप्रज्ञ वह है जिसकी प्रज्ञा ठहर गई है, जिसकी प्रज्ञा काँपती नहीं। प्रज्ञा उसकी ही काँपती है जो द्वन्द्व में जीता है—दो के बीच जीता है। जहाँ द्वन्द्व है वहाँ कम्पन है। महावीर ने द्वन्द्व के निषेध पर जोर दिया है, इसलिए 'चीतराग' शब्द का उपयोग किया है, कृष्ण ने द्वन्द्व की बात ही नहीं की स्थिरता पर जोर दिया। एक ही चीज का दो तरफ से पकड़न की कोशिश की है दोनों ने। कृष्ण पकड़ रहे हैं दीए की स्थिरता से, महावीर पकड़ रहे हैं द्वन्द्व के निषेध से। लेकिन द्वन्द्व का निषेध होता ही प्रज्ञा स्थिर हो जाती है प्रज्ञा स्थिर हो जाय तो द्वन्द्व का निषेध हो जाता है। ये दोनों एक ही जगह खड़े हैं।



यह भी न भूले कि जीवन-व्यवहार हमसे निकलता है । हम जैसे हैं वैसा ही हो जाता है । हम मूर्च्छित हैं तो हमारा जीवन-व्यवहार मूर्च्छित होता है । जो हम करते हैं, उसमें मूर्च्छा होती है । अगर हम ज्ञान में पहुँच गए तो हमारा जीवन-व्यवहार ज्ञान से भर जाता है । अगर मूल स्रोत अमृत से भर गया तो फिर जो लहरें छलकेगी, उनमें अमृत भरा होगा ।

मैंने ऊपर जिस अन्तर्ज्योति की बात कही, वह ऐसी ज्योति नहीं जो कभी बुझती है । वह अभी भी जल रही है । वह कभी बुझी नहीं, क्योंकि वह हमारी चेतना का अन्तिम हिस्सा है— वह हमारा स्वभाव है । पीठ फेरेंगे, लौटकर देखेंगे तो उसे जली हुई पायेंगे ।

---



## पंचम अध्याय

### कर्मवाद

सर्वजीवाण कम्म तु, सगहे छन्दसागय ।  
सव्वेसु वि पएमेनु, मव्व सव्वेण वज्जग ॥१॥

—उत्त० अ० ३३ गा० १८

१

कर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ समझना जरूरी है, क्योंकि जितनी नासमझी इस ज्ञान के सम्बन्ध में है उतनी गायब किसी बात के सम्बन्ध में नहीं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि किसी सत्य चिंतन के आसपास असत्य की कितनी दीवारें खड़ी हो सकती हैं। साधारणतः कर्मवाद ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि जो हमने किया है, उसका फल हम भोगना पड़ेगा। हमारे कर्म और हमारे भाग में एक अनिवार्य-कारण सम्बन्ध है। यह बिल्कुल सत्य है कि जो हम करते हैं उससे अथवा हम नहीं भागत—भाग भी नहीं सकेंगे। कर्म भोग ही तयारी है। असल में, कर्म भाग का प्रारम्भिक बीज है। फिर वही बीज भाग में बल बन जाता है।

कर्मवाद का जो सिद्धांत प्रचलित है, उसमें ठीक बात का भी झांठ से रखा गया है कि वह बिल्कुल गलत हो गई है। उस सिद्धांत में ऐसी बात न मालूम किन कारणों से प्रविष्ट हो गई है कि कर्म तो हम अभी करेंगे और भोगेंगे अगले जन्म में। काय-कारण के बीच अंतराल नहीं होता—अंतराल हो ही नहीं सकता। अगर अंतराल आ जाय तो काय-कारण विच्छिन्न हो जायेंगे उनका सम्बन्ध टूट जायगा। भाग में मैं अभी हाथ डालूँ और जलूँ अगले जन्म में—यह समय के बाहर की बात होगी। लेकिन इस तरह के सिद्धांत का, इस तरह की धारणा का कुछ कारण है। वह यह है कि हम एक ओर तो भले आदमियों का दुख पेलत देखते हैं वहां दूसरी ओर हम बुरे लोग सुख उठाते देखते हैं। अगर प्रतिफल हमारे काय और कारण परम्पर जुड़े हैं तो बुरे लोग का सुखी हास और भले लोग का दुखी, होना, बस समझाया जा सकता है? एक आदमी भला है सच्चरित्र है इमानदार है और दुख भोग रहा है बूढ़ा पा रहा है, दूसरा आदमी बुरा है, चेद्मान है, चरित्रहीन है और

१ सभी जीव अपने आसपास छोटा विशाला में स्थित कर्मप्रदाला को ग्रहण करते हैं और आत्मा के सब प्रवेशों के साथ सब कर्मों का सब प्रकार से बाधन हो जाता है।

सुख पा रहा है, वह धन-धान्य से भरा-पूरा है। अगर अच्छे कार्य तत्काल फल लाते हैं तो अच्छे आदमी को सुख भोगना चाहिए और यदि बुरे कार्यों का परिणाम तत्काल बुरा होता है तो बुरे आदमी को दुःख भोगना चाहिए। परन्तु ऐसा कम होता है।

जिन्होंने इसे समझने-समझाने की कोशिश की उन्हें मानो एक ही रास्ता मिला। उन्होंने पूर्व जन्म में किए गए पुण्य-पाप के सहारे इस जीवन के सुख-दुःख को जोड़ने की गलती की और कहा कि अगर अच्छा आदमी दुःख भोगता है तो वह अपने पिछले बुरे कार्यों के कारण और अगर कोई बुरा आदमी सुख भोगता है तो अपने पिछले अच्छे कर्मों के कारण। लेकिन इस समस्या को सुलझाने के दूसरे उपाय भी थे और असल में दूसरे उपाय ही सच हैं। पिछले जन्मों के अच्छे-बुरे कर्मों के द्वारा इस जीवन के सुख-दुःख की व्याख्या करना कर्मवाद के सिद्धान्त को विकृत करना है। सच पूछिए तो ऐसी ही व्याख्या के कारण कर्मवाद की उपादेयता नष्ट हो गई है।

कर्मवाद की उपादेयता इस बात में है कि वह कहता है—तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो। इसलिए तुम ऐसा करो कि सुख भोग सको, आनन्द पा सको। अगर तुम क्रोध करोगे तो दुःख भोगोगे, भोग ही रहे हो। क्रोध के पीछे ही दुःख भी आ रहा है छाया की तरह। अगर प्रेम करोगे, शान्ति से रहोगे और दूसरों को शान्ति दोगे तो शान्ति अर्जित करोगे : यही थी उपयोगिता कर्मवाद की। किन्तु इसकी गलत व्याख्या की गई। कहा गया कि इस जन्म के पुण्य का फल अगले जन्म में मिलेगा, यदि दुःख है तो इसका कारण पिछले जन्म में किया गया कोई पाप होगा। ऐसी बातों का चित्त पर बहुत गहरा प्रभाव नहीं पड़ता। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति इतने दूरगामी चित्त का नहीं होता कि वह अभी कर्म करे और अगले जन्म में मिलने-वाले फल से चिन्तित हो। अगला जन्म अँवरे में खो जाता है। अगले जन्म का क्या भरोसा ? पहले तो यही पक्का नहीं कि अगला जन्म होगा या नहीं। फिर, यह भी पक्का नहीं कि जो कर्म अभी फल दे सकने में असमर्थ है, वह अगले जन्म में देगा ही। अगर एक जन्म तक कुछ कर्मों के फल रोके जा सकते हैं तो अनेक जन्मों तक क्यों नहीं ? तीसरी बात यह है कि मनुष्य का चित्त तत्कालजीवी है। वह कहता है : ठीक है, अगले जन्म में जो होगा, होगा; अभी जो हो रहा है, करने दो। अभी मैं क्यों चिन्ता करूँ अगले जन्म की ?

इस प्रकार कर्मवाद की जो उपयोगिता थी, वह नष्ट हो गई। जो सत्य था, वह भी नष्ट हो गया। सत्य है कार्य-कारण सिद्धान्त जिस पर विज्ञान खड़ा है। अगर कार्य-कारण के सिद्धान्त को हटा दो तो विज्ञान का सारा भवन धराशायी हो जाय।

ह्यूम नामक दार्शनिक ने इंग्लैंड में और चार्वाक ने भारतवर्ष में कार्य-कारण के सिद्धान्त को गलत सिद्ध करना चाहा। अगर ह्यूम जीत जाता तो विज्ञान का जन्म

मही होता । अगर चाबी तीन जाता तो घम का जन्म नहीं होता, क्योंकि चाबी ने भी बाय कारण व निदान का न माना । उसने कहा 'चाबी पित्रा भोज करा, क्याकि कोई भरोसा नहा कि जा बुरा करता है, उस बुरा ही मित्र । देखा, एक बादमी युग कर रहा है और नया नाग रहा है । चार मना कर रहा है, बचार दुगी है । जीवन के सभी वम असम्बद्ध हैं । बुद्धिमान आत्मा जानता है कि किसी वम का किसी फल से कोई सम्बन्ध नहा ।'

चाबी के विरोध में ही महावीर का वम सिद्धान्त है ।

घम भी विज्ञान है और वह भी पाप-कारण निदान पर गढ़ा है ।

विज्ञान कहना है अभी कारण, अभी बाय । परन्तु जब सधावधित धार्मिक पद्धत हैं 'अभी कारण, बाय अगले जन्म में' तो घम का वैज्ञानिक आधार तिसक जाता है । यह अन्तराल एकदम झूठ है । बाय और कारण में अंतर कोई सम्बन्ध है तो उसके बीच में अन्तराल नहीं हो सकता, क्योंकि अन्तराल हो गया तो सम्बन्ध क्या रहा ? चीजें असम्बद्ध हो गईं, अलग-अलग हो गई । यह व्याख्या नतिव लोग ने जोड़ ली, क्योंकि व समझा नहा एक जीवन को ।

मरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक वम सचाय पण्यपी है । जैसे—यदि मैं न्याय किया तो मैं शोध करने के दान में ही शोध को भागना शुरू करता हूँ । ऐसा नहा कि अगले जन्म में हमका फल पागू । न्याय का करता और न्याय का दुग भागना साथ साथ चल रहा है । शोध बिदा हो जाता है । फिर दुग का तिष्ठति देर तक चरता है । यदि दुग और आनन्द अगले जन्म में मिले और उक्त लिए प्रतीक्षा करनी होगी तो कहीं किसी को हिमाय विताय रखन की जरूरत होगी । परन्तु फल के लिए प्रतीक्षा करन की जरूरत नहीं होती । यह सन्तात मित्रा है । हिमाय विताय रखन का जरूरत नहीं होती । अन्तिम महावीर नगवा का भी विना कर सर । अगर जन्म-जन्मान्तर का हिमाय विताय रखना है तो फिर निदान की व्यदम्भा जरूरी है । नियन्त्रा की जरूरत यही होता है जहाँ नियम का ऐसा प्रयोग रखता पटना है । चाप में अना वम और फल मुझे बिना दूसरे जन्म में मिले तो हमका हिमाय करी रहना ? हमारे कुछ योग व वम परमात्मा व पात । उस पात का परमात्मा महात्मिक है जो हमारे पुण्य-पाप का हिमाय रखता है और देता है कि निदान पूरा हो रहे हैं या नहा ।

महावीर व यही वैज्ञानिक बात कहती है । उनका अन्तर्गत नियम प्रमाण है, निदान की जरूरत नहीं है । अगर निदान है तो नियम में अदृष्ट शक्ति की सम्भावना क्या होगी । अगर उसकी प्राप्ति करके सुखमय करेले और वह सन्तात निदान में छुट करेला रहना । अभी प्रमाण हमें दर्शाता है, वह आज में जन्म व जन्म और वम पागल रहना तो हम का जन्म का भाग्य दन । अगर हमका जन्म में



गिराओ तो उसके पैर नहीं टूटते, किन्ती दूसरे व्यक्ति को गिराओ तो उसके पैर टूट जाते हैं। प्रह्लाद की कथा पक्षपात की कथा है। उसमें अपने आदमी की फिक्र की जा रही है और नियम के अपवाद बनाए जा रहे हैं। महावीर कहते हैं कि अगर प्रह्लाद-जैसे अपवाद है तो फिर धर्म नहीं हो सकता। धर्म का आवार समानता है, नियम है जो भगवान के भक्तों पर उसी वेरहमी से लागू होता है जिस वेरहमी से उन लोगों पर जो उसके भक्त नहीं हैं। यदि अपवाद की बात मान ली जाय तो कभी ऐसा भी हो सकता है कि क्षय के कीटाणु किसी दवा से न मरे। हो सकता है कि क्षय के कीटाणु भी प्रह्लाद की तरह भगवान् के भक्त हो और कोई दवा काम न करे। यदि धर्म है तो नियम है और अगर नियम है तो नियन्ता में बाधा पड़ेगी। इसलिए महावीर नियम के पक्ष में नियन्ता को विदा कर देते हैं। वे कहते हैं कि नियम काफी हैं और नियम अखंड हैं। प्रार्थना, पूजा उनसे हमारी रक्षा नहीं कर सकती। नियम से बचने का एक ही उपाय है कि नियम को समझ लो। यह जान लो कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, इसलिए हाथ मत डालो।

महावीर न तो चार्वाक को मानते हैं और न नियन्ता के माननेवालों को। चार्वाक नियम को तोड़कर अव्यवस्था पैदा करता है और नियन्ता के माननेवाले नियम के ऊपर किसी नियन्ता को स्थापित कर अव्यवस्था पैदा करते हैं। महावीर पूछते हैं कि यह भगवान् नियम के अन्तर्गत चलता है या नहीं? अगर नियम के अन्तर्गत चलता है तो उसकी जरूरत क्या है? यानी—अगर भगवान् आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा कि नहीं? अगर जलता है तो वह भी वैसा ही है जैसा हम हैं, अगर नहीं जलता तो ऐसा भगवान् खतरनाक है। यदि हम उससे दोस्ती करेंगे तो आग में हाथ भी डालेंगे और शीतल होने का उपाय भी कर लेंगे। इसलिए महावीर कहते हैं कि नियम को न मानना अवैज्ञानिक है और नियन्ता की स्वीकृति नियम में बाधा डालती है। विज्ञान कहता है कि किसी भगवान् से हमें कुछ लेना-देना नहीं, हम तो प्रकृति के नियम खोजते हैं। ठीक यही बात ढाई हजार साल पहले महावीर ने चेतना के जगत् में कही थी। उनके अनुसार नियम शाश्वत, अखंड और अपरिवर्तनीय हैं। उस अपरिवर्तनीय नियम पर ही धर्म का विज्ञान खड़ा है। यह असम्भव ही है कि एक कर्म अभी हो और उसका फल अगले जन्म में मिले। फल इसी कर्म की श्रृंखला का हिस्सा होगा जो इसी कर्म के साथ मिलना शुरू हो जायगा। हम जो भी करते हैं उसे भोग लेते हैं। यदि मेरी अज्ञान्ति पिछले जन्म के कर्मों का फल है तो मैं इस अज्ञान्ति को दूर नहीं कर सकता। इस प्रकार मैं एकदम परतन्त्र हो जाता हूँ और गुरुओं के पास जाकर शान्ति के उपाय खोजता हूँ। मगर सही बात यह है कि जो मैं अभी कर रहा हूँ उसे अनकिया करने की सामर्थ्य भी मुझमें है। अगर मैं आग में हाथ डाल रहा हूँ और मेरा हाथ जल रहा है, और अगर मेरी मान्यता यह है कि

पिछले जन्म के किसी पाप का फल भाग रहा हूँ तो मैं हाथ डाल चला जाऊँगा, क्योंकि पिछले जन्म के कर्म को मैं बदल कैसे सकता हूँ ? जिन गुरुआ की यह भावना है कि पिछले जन्म के किसी कर्म के कारण मेरा हाथ गल रहा है वे यह नहीं कहेंगे कि हाथ बाहर खींचो तो जलना बंद हो जाय । इसका मतलब यह हुआ कि हाथ अभी डाला जा रहा है और अभी डाला गया हाथ बाहर भी खींचा जा सकता है । लेकिन पिछले जन्म में डाला गया हाथ आज उसे बाहर खींचा जा सकता है ? हमारी इस व्याख्या ने कि अनन्त जन्मों तक कर्म के फल चरते हैं, मनुष्य को एकदम परतंत्र कर दिया है । किन्तु मेरा मानना है कि कर्म कुछ बिया जा सकता है इसी वजह, क्योंकि जो हम कर रहे हैं वही हम भोग रहे हैं ।

जिन्दगी की विषमता को समझने के लिए ऊटपटांग व्यवस्थाएँ गढ़ ली जाती हैं। मेरी समझ में यदि कोई बुरा आदमी सफल होता है, गुणी है तो इसका भी कारण है। मैं बुरा आत्मी को एक बहुत बड़ी जटिल घटना मानता हूँ। हाँ सकता है, वह लूठ बोलता हो, बेइमानी करता हो, लेकिन उसमें कुछ और गुण होंगे जो हम खिचाई नहीं पड़ते। वह साहसी हो सकता है, बुद्धिमान हो सकता है, एक-एक बदम को समझकर उठानेवाला हो सकता है। उसने एक पहलू को देखकर ही कि वह बदमास है आपन निष्पत्ति करना चाहा तो आप गलती कर लगे। हो सकता है कि अच्छा आदमी चोरी न करता हो, बेइमानी भी न करता हो, लेकिन वह कायर हो। बुद्धिमान आदमी के लिए अच्छा हाता अक्सर मुश्किल हो जाता है। बुद्धिमान आत्मी अच्छा होने के लिए मजबूर होता है। मेरी मान्यता है कि सफलता मिलती है साहस में। अगर बुरा आत्मी साहसी है तो सफलता ले आएगा। अच्छा आत्मी अगर साहसी है तो वह बुरे आदमी की अपेक्षा हजार गुनी सफलता ले आएगा। सफलता मिलती है बुद्धिमानों से। अगर बुरा आत्मी बुद्धिमान है तो उसे सफलता मिलती है। अगर अच्छा आदमी बुद्धिमान है तो उसे हजार गुनी सफलता मिलेगी। लेकिन सफलता अच्छे और हाता से नहीं आती। सफलता आती है बुद्धिमानों से, विचारों से, विवेक से। कोई आदमी अच्छा है, मंदिर जाता है, प्रार्थना करता है लेकिन उसका काम पूरा नहीं है। अब मंदिर जाऊँ और प्रार्थना करने से क्या हाता या क्या सम्बन्ध? अगर कोई अच्छा आदमी यह कहे कि मैं गुणी नहीं हूँ, क्योंकि मैं अच्छा हूँ और वह दूसरा आत्मी गुणी है परन्तु वह बुरा है तो अच्छा आत्मन्याय वह आत्मी पुरे हाने का समूह द रहा है। वह लीन्या से भरा हुआ आत्मी है। पुरे आत्मी का जाओ मिला है यह सब पाता चाहता है और अच्छा गहरा पाता चाहता है। यानी पासोंगा ही बड़ी बढ़ती है। यदि बुरा आत्मी ने दान लगाना शुरू किया तो शायद लिए उगाये पुरे हाने का तो। पुकारा पुरे हाने की पीछा छोला, पुरे हाने का दान छोला। अच्छा आत्मी मंदिर में पूजा करता चाहता है परन्तु

बैठना चाहता है और बुरे आदमी को दस लाख रुपए मिले हैं, वह भी चाहता है। जब उसे रुपये नहीं मिलते तो कहता है कि मैं अपने पिछले जन्म के बुरे कर्मों का फल भोग रहा हूँ। उसे झूठी सान्त्वना भी मिलती है कि जहाँ वह अगले जन्म में स्वर्ग में होगा वही वह बुरा आदमी नरक में।

मैं कहता हूँ कि कर्म का फल तत्काल मिलता है, लेकिन कर्म बहुत जटिल बात है। साहस भी कर्म है और उसका भी फल होता है, साहमहीनता भी कर्म है और उसके भी फल हैं। इसी प्रकार बुद्धिमानी भी कर्म है, बुद्धिहीनता भी कर्म। इनके भी अपने-अपने फल हैं। यदि असफलता के कारण उनके भीतर होंगे तो अच्छे आदमी भी असफल हो सकते हैं। बुरे आदमी भी सुखी हो सकते हैं यदि सुख के कारण उनके भीतर वर्तमान होंगे। किसी और का दुख तो हमें दिखता नहीं, दुख सिर्फ अपना और सुख सदा दूसरे का दिखता है। ऐसे ही शुभ कर्म हमें अपना और अशुभ कर्म दूसरे का दिखता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को शुभ मानता है, क्योंकि इससे उसके अहंकार की तृप्ति होती है। सुख के हम आदी होते जाते हैं, दुख के कभी आदी नहीं हो पाते। आदमी दूसरे का देखता है अशुभ और सुख, अपना देखता है शुभ और दुख। उपद्रव हो गया तो वह कर्मवाद के सिद्धान्त का आश्रय लेता है। मेरी मान्यता यह है कि अगर वह सुख भोग रहा है तो उसमें कुछ ऐसा जरूर है जो सुख का कारण है, क्योंकि अकारण कुछ भी नहीं होता। अगर एक डाकू सुखी है तो इसका भी कारण है। साधु के दुखी होने का भी कारण है। अगर दस डाकू साथ होंगे तो उनमें इतना भाई-चारा होगा जितना दस साधु में कभी सुना नहीं गया। लेकिन अगर दस डाकूओं में मित्रता है तो वे मित्रता के सुख अवश्य भोगेंगे। साधु कैसे भोगेगा उस सुख को? डाकू कभी एक-दूसरे से झूठ नहीं बोलेंगे, लेकिन साधु एक-दूसरे से विलकुल झूठ बोलते रहेंगे। सच बोलने का जो सुख है वह साधु नहीं भोग सकता।

अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अकस्मात् कुछ भी नहीं होता। यदि कुछ घटनाओं को अकस्मात् होना मान ले तो कार्य-कारण का सिद्धान्त व्यर्थ हो जाता है। यहाँ तक कि लॉटरी भी किसी को अकस्मात् नहीं मिलती। हो सकता है कि जिन लाख लोगों ने लॉटरी लगाई उनमें सबसे ज्यादा सकल्पवाला आदमी वही हो जिसे लॉटरी मिली। ऐसे ही हजार कारण हो सकते हैं जो हमें दीख नहीं पड़ते। वस्तुतः उस घटना को ही अकस्मात् कहते हैं जिसके कारण का हमें पता नहीं होता। ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका कारण हमारी समझ में नहीं आता। जीवन सचमुच बहुत जटिल है। इसमें कोई घटना कैसे घटित हो रही है यह ठीक-ठीक कहना एकदम मुश्किल है, लेकिन इतना तो निश्चित है कि जो घटना हो रही है उसके पीछे कोई-न-कोई कारण है, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात। कर्म के सिद्धान्त



का बुनियादी आधार यह है कि अकारण कुछ भी नहीं होता। दूसरा बुनियादी आधार यह है कि जा हम कर रहे हैं वही भोग रहे हैं और उसम जन्मा के फासले नहीं हैं। हम जानना चाहिए कि हम जो भोग रहे हैं उमके लिए हमने कुछ उपाय किया है, चाहे सुख हो या दुख, चाहे शांति हो या अशांति।

२

मरी मायता है कि लाटरी भी किसी का अकारण नहीं मिलती। हो सकता है कि जिस व्यक्ति की इच्छा शक्ति सबसे अधिक प्रबल हो उसे ही लाटरी मिले। इच्छा शक्ति पर हजारों प्रयोग किए गए और यह निर्णीत हो गया है कि भीतर का सकल्प पाँस तक का प्रभावित करता है, ताश के पत्तो तक को प्रभावित करता है। यह भी आकस्मिक नहीं है कि किसी व्यक्ति को भीतरी सकल्प मिल जाता है और निगी को नहीं। भीतरी सकल्प भी उसके उन हजारों अनुभवा का फल होता है जिनमे वह गुतरा है।

प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसी एक व्यक्ति को लाटरी मिलती है, इसलिए उसे मिल गई? नहीं यदि लाटरी का मिलना निश्चय प्रयोग है तो उसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। लेकिन ऐसे भी लोग हैं जा बता दगे कि लाटरी किसका मिलेगी। हिटलर की मृत्यु को बतानेवाले लोग थे। चान भारत पर किस दिन हमला करेगा, इसकी भी भविष्यवाणी की गई थी। मरे कहा का तात्पर्य यह है कि सयाग जैसी कोई चीज नहीं है। यहा तक कि हिरोशिमा मे दो लाख व्यक्तियों का एक साथ मरना भी सयाग नहीं है। हिरोशिमा में दो लाख व्यक्तियों का मरना आकस्मिक दोषता है क्योंकि इन दो लाख व्यक्तियों के भीतर हमारा वाइ प्रवेश नहीं है। लेकिन पूछा जा सकता है कि अगु वन हिरोशिमा पर ही क्या गिरा? हिरोशिमा वाइ महत्त्वपूर्ण नगर न था। टाकियो पर गिर सकता था पर नागासाकी पर क्यों गिरा? जब तक हम इनके कारणों को भीतर—हिरोशिमा के लोग के भीतर—प्रवेश नहीं करते तब तक हमारे लिए कुछ कहना अनम्भव होगा। हो सकता है कि हिरोशिमा में ही जापान के सबसे ज्यादा आत्मघातच्छक लोग रहे हों और उन्होंने ही अणु बम को आकर्षित किया हों।

यह जानने का नितासा भी प्रबल प्रामाणिक है कि जा बच्चे अगहीन अघे या अम्रम्य पैदा होते हैं, इसम उनका क्या कसूर? उन्होंने कौन सा बम किया है जिसकी वजह से वे बच्चे भागत ह? इसके उत्तर में वैज्ञानिक कहेंगे कि माँ-बाप के जिन अणुओं से बच्चे का जन्म हुआ उनमें अधपन की गुजाइश थी, उनमें वाइ रामा यनिक बमी या निमक कारण आँख नहीं आ पाई। धार्मिक व्यक्ति का उत्तर कुछ और होगा। उनकी दृष्टि में पैदा होने के पीछे भी कारण है कि अशांति का



पीछे ही नहीं। धर्म कहता है कि मरते वक्त आदमी की ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं कि वह खुद आँख न चाहे या उसके कर्मों का पूरा योग हो सकता है उस क्षण में आँख सम्भव न रहे। जब ऐसे आदमी की मृत्यु होती है तो उनकी आत्मा उसी माँ-बाप के शरीर में प्रवेश करती है जिसमें अघे होने के सभी नयोग जुड़ गए हों।

अब प्रश्न उठता है कि जब आत्मा उसी माँ-बाप के शरीर में प्रवेश करती है जिसमें उसके लिए अघे होने के सयोग जुड़े हैं तो क्या इससे वह मिट्ट नहीं होता कि कर्मों के फल दूसरे जन्म तक जाते हैं ?

मेरा कहना है कि एक जन्म से दूसरे जन्म में कर्म के फल नहीं जाते। लेकिन जो कर्म और फल हमने किए और भोगे, उनकी एक सूखी रेखा हमारे साथ रह जाती है। उस सूखी रेखा को मैं संस्कार कहता हूँ। कर्मों के फल दूसरे जन्म तक नहीं जाते। यदि मैंने पिछले जन्म में गाली दी थी तो फल उसी जन्म में भोग लिया था, फिर भी मैं उस व्यक्ति से भिन्न हूँ जिसने गाली नहीं दी थी। मेरे पास एक सूखी रेखा है, गाली देने और गाली का फल भोगने की। इस जन्म में मेरे नाथ सम्भावना है कि कोई गाली दे तो मैं फिर गाली दूँ, क्योंकि वह सूखी रेखा जो है। न्यूनतम प्रतिरोध की वजह से मैं उसे फौरन पकड़ लूँगा। हमने जो किया और भोगा है, उसने हमें एक खास परिस्थिति दी है, एक खास संस्कारवद्धता को जन्म दिया है। वही संस्कारवद्धता हमें खास मार्गों पर प्रवाहित करती है। वे खास मार्ग सब रूपों में कारण से बँधे होंगे।

इसे एक उदाहरण से समझें। जैसे, यदि कोई आग में हाथ डालता है तो उसे उसी वक्त जलना पड़ता है। लेकिन मेरा कहना है कि यह आदमी आग में हाथ डालने की प्रवृत्तिवाला है। दूसरे जन्म में भी इससे डर है कि कहीं यह आग में हाथ न डाल दे। आग में बार-बार हाथ डालने की इसकी आदत भय पैदा करती है। फिर भी इसका यह मतलब नहीं कि यह आदमी आग में हाथ डालने को बँधा है। यह चाहे तो न डाले। इसका मतलब यह हुआ कि कर्मों की निर्जरा नहीं करनी है आपको। कर्मों की निर्जरा हर कर्म के साथ होती चली जाती है। पीछे सूखी रेखा रह जाती है। इस सूखी रेखा से आपको ज्ञान हो जाना काफी है। इसलिए मोक्ष या निर्वाण तत्काल हो सकता है, पुरानी धारणाओं के अनुसार वह तत्काल नहीं हो सकता, क्योंकि आपने जितने कर्म किए हैं उनके फल आपको भोगने ही पड़ेंगे। जब आप सारे फल भोग लेंगे तभी आपकी मुक्ति हो सकती है। और यदि इन फलों को भोगने में आपने फिर कुछ कर्म कर लिये तो आप फिर बँध जायेंगे। इस श्रृंखला का कभी अन्त न होगा। यदि पुरानी व्याख्या सही है तो कोई कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। कारण कि कल मैंने जितने पाप किए, जितनी बुराइयाँ की, उनका फल भोगना अनिवार्य है। किन्तु, उनका फल कैसे भोगूँगा ? जब कोई मुझे गाली देगा

(क्योंकि मैंने पिछले जन्म में उसे गाली दी थी) तो फिर मेरा कर्म शुरू हो जायगा, क्योंकि गाली देने की भारी वृत्ति—सूखी रेखा—मर साथ है ही। अब अगर वह मुझे गाली देगा तो मैं फिर उसे गाली दूंगा और यह सिलसिला अनन्त जन्मों तक चलता रहेगा, क्योंकि अगर एक कर्म भी गेप रह गया तो उसे भाग्य में फिर नए-नए कर्म निर्मित होने चले जायेंगे। अगर कर्मवाद की पुरानी व्याख्या सही है तो दुनिया में कर्मों कोइ भुक्त हुआ ही नहीं। लेकिन दुनिया में मुक्त लोग हुए हैं और वे इसलिए मुक्त हो सके हैं कि कर्मों के फल जामे के लिए गेप नहीं रह जाते। सिर्फ रह जाती है साधी हुई वृत्ति। अब अगर आदमी सोया ही रहे तो उही कर्मों का दोहराता चला जायगा। नाग जाय तो दहराना बढ़ कर देगा। यात्री मुझे कोइ मजदूर नहीं कर रहा है कि मैं कोइ कर्म सिमा मेरी मूर्च्छा के। अगर मैं जाग गया हूँ तो कहता हूँ कि ठीक है इस रास्ते से बहुत दूर जा चुके बहुत दुख उठा चुके।

इसलिए महावीर ने कोशिश की थी कि प्रत्येक व्यक्ति का पिछले जन्म का स्मरण हो, ताकि उसे इस बात का पूरा-पूरा एहसास हो जाय कि उसने क्या-क्या किया था। अगर किसी व्यक्ति का दा-चार जन्मों का स्मरण हो जाय तो उसे पता लगगा कि उसने बहुत दूर घन कमाया वर्तमान की, प्रेम किया, यश कमाया अपमान सहा—उसने वे सारे कर्म-बुद्धि किए थे जिन्हें वह इस जन्म में कर रहा है। ऐसा एहसास हाते ही वह जाग उठेगा और फिर इनकी ओर उमुख न होगा। उस यह साफ साफ दीख पड़ेगा कि घन, यश, प्रेम आदि सब व्यर्थ हैं। उसने घन कमाया था, परन्तु क्या हुआ उस घन का? उस पिछले जन्म में यश मिला था, परन्तु कहाँ गया वह यश? यदि वे न रहे तो फिर इस जन्म के घन और यश भी न रहेंगे। फिर इनके लिए इतनी परेशानी क्या? तो यह जागरण उसकी सूखी रेखा का तोड़ने का कारण बन जायगा। इसमें तत्काल बाध का सम्भावना है। मचता यह है कि जब भी मुक्ति होती है, वह तत्काल होती है।

इसी सन्दर्भ में एक बात और समझ लेनी चाहिए कि अयाय कुछ भी नहीं है क्योंकि जो हम कर रहे हैं वही हम माग रहे हैं। पुराना ख्याल था कि अगर मैं किसी को चाँटा मारूँ तो किसी जन्म में वह भी मुझे चाँटा मारेगा। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैं किसी को चाँटा मार दिया तो जबतक वह मुझे चाँटा न मार ल, तब तक वह भी मुक्त नहीं हो सक्ता। यात्री मरने का उपाय उसकी भी अमुक्ति का कारण बन जायगा। वह इस जन्म में मुक्त हो सकता था, मगर अब वह तब तक मुक्त न होगा जब तक वह मुझे चाँटा न मार ल। क्योंकि मुझे चाँटा मारेगा कौन? हिंसा कैसे पूरा होगा? उसे तब तो लेना ही पड़ेगा और वह भी मेरे कारण।

ऐसा तब सत्रया निराधार हात है। भरा कहना यह है कि जब मैं किसी का चाँटा मारूँ तो वह मुझे चाँटा मारेगा, यह अनिवाय नहीं है। चाँटा मारने में मैं

जिस वृत्ति से गुजरता हूँ, वह मुझे दुख दे जाती है। चाँटा लौटाने का सवाल नहीं उठता। यदि वह भी चाँटा मारता है तो उसका यह कर्म मेरे चाँटा मारने का फल नहीं है। वह उसका कर्म है जिसका फल उसे भोगना पड़ेगा। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। मैंने किसी को चाँटा मारा है। अगर वह चुपचाप खड़ा रहे और यह सोचकर कि मारनेवाला बेचारा पागल है, वह कुछ न करे और चाँटे को साक्षी भाव से देखता रहे, तो उसने कोई कर्मबन्ध नहीं किया। मेरे कर्मों की शृंखला से उसने कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा। लेकिन अगर मेरे चाँटे के उत्तर में वह भी चाँटा मारे तो वह मेरे चाँटे का उत्तर नहीं है। अपने चाँटे का उत्तर तो मैं ही भोग रहा हूँ। वह अपने चाँटे का उत्तर स्वयं भोगता है। यह उसकी कर्म-शृंखला है। इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। इसमें कुछ अन्याय भी नहीं।

इस सम्बन्ध में दो प्रश्न उठते हैं। एक तो यह कि क्या ऐसे लोग नहीं होते जो चाँटा भी मारे और उसका आनन्द भी ले? दूसरा यह कि जिसे हम चाँटा मारते हैं उसे क्या दुख नहीं होता? मैं कहता हूँ कि मैं चाँटा उसी को मारता हूँ जो चाँटे को आकर्षित करता है। यह असम्भव है कि मैं उसको चाँटा मारूँ जो चाँटे को आकर्षित न करे। आकर्षित करने की वजह से वह दुख उठाता है। आकर्षण उसका हिस्सा है। यानी कोई आदमी इस दुनिया में अकेले मालिक नहीं होता। गुलाम भी उसके साथ गुलाम होना चाहता है। नहीं तो यह सम्बन्ध बन ही नहीं सकता। जो गुलाम बनना नहीं चाहता उसे असम्भव है गुलाम बनाना। इसलिए मैं कहता हूँ कि अन्याय असम्भव है। फिर भी हमें एक ऐसी दुनिया बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें न कोई चाँटे को आकर्षित करता हो और न कोई चाँटा मारने को उत्सुक हो। अन्याय का कुल मतलब इतना हो सकता है कि अभी दुनिया में ऐसे लोग वर्तमान हैं जो चाँटा मारने को उतना ही उत्सुक हैं जितना चाँटा खाने को। जब भी कोई घटना घटती है तब उसके दो पहलू होते हैं। किन्तु हमारी दृष्टि एक ही पहलू पर जाती है और हम उस एक पहलू को देखकर ही किसी को अपराधी और किसी को निरपराध कह देते हैं। दूसरा पहलू भी जिम्मेदार होता है। जैसे, हम कहते हैं कि अँगरेजों ने आकर हमें गुलाम बना लिया। यह तो हमारी गुलामी की घटना का आधा हिस्सा है। उसका दूसरा हिस्सा यह है कि हम गुलाम होने की तैयारी में थे। इसी प्रकार सती की प्रथा थी। अन्याय कुछ भी न था। जो स्त्रियाँ जलने को राजी थी, वे ही जलती थी। जो जलने को आज भी राजी हैं वे स्टोव से आग लगा लेती हैं, जहर खा लेती हैं, कुछ भी करती हैं। मेरा कहना यह है कि उन दिनों भी सभी स्त्रियाँ सती नहीं हो जाती थी। वस्तुतः सती की व्यवस्था आग में जलने वाली औरतों के लिए एक सुविधा थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सती-प्रथा रहनी चाहिए। दुनिया ऐसी होनी चाहिए जहाँ न कोई जलाना चाहे और



न जतना । अर्थात् सिर्फ यह है कि जो हमारी जीवन-व्यवस्था है, वह हम बहुत द्रुत में डाल रही है । और दुखी हम ही बने रहें हैं, काई बना नहीं रहा है । दुनिया में ऐसा भी लागू हो जा चाँटा मारने में ही आगन्ति है । ऐसा लगता है कि ऐसे लोगो को कम के फल मागने नही पड़त । लेकिन हम खयाल नही कि जो आदमी चाँटा मारने में आनन्दित होता है वह आदमी नहीं रह गया । वह आदमी के तल से बहुत नीचे उतर जाता है । उसने चाँटा मारने में इतना खोया जितना कि चाँटा मारकर दुखी होनेवाला नही खोता । जो चाँटा मारकर दुखी होता है, वह उतना फल नही भोगता जितना वह व्यक्ति मागता है जो चाँटा मारकर आनन्दित होता है । चाँटे में आनन्द लेनेवाला व्यक्ति जगली हो जाता है—उसका विकास तल नीचे चला जाता है । उसने गत बीस पच्चीस हजार वर्षों में जो विकास किया था, वह विकास खो जाता है ।

३

जुदा तक मनुष्य के कम और विकास का सम्बन्ध है, मगर कहना है कि विकास दो तल पर चल रहा है । मेरा खयाल है कि डार्विन की खोज गहरी है सही, लेकिन एकदम अधूरी है । उसने शरीर के विकास पर सारा सिद्धान्त निर्धारित किया है । चूँकि विज्ञान आत्मा की फिक्र नहीं करता, इसलिए बात अधूरी है और आधे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है । इसका कारण यह है कि आधे सत्य में पूर्ण सत्य के हान का भ्रम पैदा होता है । यह विकास का आधा हिस्सा है । इसके दूसरे हिस्से की खोज महावीर जैसे लोगो की दन है । वे कहते हैं कि चेतना भी विवक्षित हो रही है । दूसरी बात—जहाँ चेतना है वहाँ विकास यात्रिक नहीं हो सकता । पक्षे का चरना यात्रिक है उसके पास न चेतना है और न इच्छा । यदि उसके पास चेतना हानी तो पक्षी भी कह सकता था कि आज बहुत सर्दी है, मैं नहीं चलता । मनुष्य के पास चेतना है इसलिए उसका नियन्त्रण प्रतिशत विकास स्वच्छा पर निर्भर होता है । इसलिए मनुष्य कोई पचास हजार वर्षों में ठहर गया है । श्रव उसमें कोई विकास लक्षित नही होता । निम्नतम यानि में भी एक अंग स्वेच्छा का है जो उस चेतन बनाता है । नही तो चेतन हान का कोई अर्थ नही । चेतन हाने का अर्थ यही है कि विकास में हम भागीदार हैं और अपने पतन में स्वयं जिम्मेदार । चेतना का मतलब यही है कि हमारा दायित्व है हमारी जिम्मेदारी है ।

पशु-पक्षियाँ और पेट-पीछी की इच्छा भी उनके विकास में सक्रिय होकर काम कर रही है । पहचानना मुश्किल है । हम कैसे पट्टाचौं कि पशु-पक्षी भी मानव-योनियों में प्रवेश कर रहे हैं । कई रास्ते हैं सक्ते हैं, लेकिन सरलतम रास्ता यह है कि मनुष्य को पिछले जमाने में उतारा जाय । इससे उस इस बात की प्रतीति हो जायगी

कि वह पिछले जन्मो मे कई बार पशु हुआ था और उसने भी कभी पौधे की जिन्दगी बसर की थी। महावीर ने जातीय स्मरण के गहरे प्रयोग किए थे। जो व्यक्ति उनके निकट जाता, उसे वे पिछले जन्मो मे उतारते और बतलाते कि वह उन जन्मो मे क्या था, और यदि वह पशु था तो अपने किस कर्म के कारण मनुष्य हो सका। ऐसा ज्ञान ऊपर जाने के लिए आवश्यक सोपान हो सकता है। यदि मुझे उस कर्म का ज्ञान हो जाय जिसके कारण मैं पशु से मनुष्य बना था तो मैं पुन ऐसे ही कर्म करना चाहूँगा जिनसे मैं ऊपर उठ सकूँ।

एक रात महावीर के साथ हजारों साधु-सन्यासी एक बड़े धर्मशाले मे ठहरे। उनमे एक राजकुमार भी दीक्षित था। धर्मशाले मे पुराने साधुओं को अच्छी जगह मिल गई परन्तु राजकुमार को गलियारे मे सोना पडा। जब भी कोई गलियारे से निकलता, उसकी नींद टूट जाती और वह सोचता कि बेहतर है मैं लौट जाऊँ, मैं जो था, वही ठीक था। सुबह महावीर ने उसे बुलाया और कहा—तुझे पता है कि पिछले जन्म मे तू कौन था? उसने जवाब दिया कि मुझे कुछ पता नहीं। तब महावीर ने उसके पिछले जन्म की कथा कह सुनाई और बताया कि वह पिछले जन्म मे हाथी था। एक दिन जंगल मे आग लगी। सारे पशु-पक्षी भाग चले। हाथी का एक पैर उठा ही था कि एक छोटा-सा खरगोश आ पहुँचा और उसने उसके पैर की शरण ली। खरगोश ने सोचा कि पैर छाया है, बचाव हो जायगा। हाथी भी हिम्मतवर था। उसने देखा कि उसके पैर के नीचे एक खरगोश बैठा है। उसने पैर फिर नीचे नहीं रखा। आग बढ़ती गई और हाथी जलकर राख हो गया। उसने मरते दम तक यही चेष्टा की कि खरगोश किसी तरह बच जाय। उस कृत्य की वजह से वह आदमी बना। अन्त मे महावीर ने कहा—आज तू इतना कमजोर है कि गलियारे मे सोने की वजह से भागने का विचार करने लगा? पिछले जन्म की कथा सुनते ही राजकुमार के लिए मानो सब-कुछ बदल गया। भयभीत होने और पलायन करने की बात खत्म हो गई। अब वह अपने दृढ सकल्प पर खडा हो गया। उसे एक नई भूमि मिल गई।

दूसरा रास्ता बहुत कठिन है। वह यह है कि हम बीस पशुओं के निकट रहे और उनसे अपना आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करे। हमे पता चलेगा कि उनमे भी कुछ अच्छे और कुछ बुरे है। यहाँ तक कि सड़को पर दिखाई पडने वाले कुत्ते भी सब एक-जैसे नहीं होते। उनका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। और, स्मरण रहे, उनका भी विकास स्वेच्छा से हो रहा है। यही कारण है कि सारे प्राणी विकसित नहीं हो पाते। जो श्रम करते हैं वे विकसित हो पाते हैं। जो श्रम नहीं करते वे उसी योनि मे पुनरुक्ति करते रहते हैं। अनन्त पुनरुक्तियाँ भी हो सकती हैं। लेकिन कभी-न-कभी वह क्षण भी आ जाता है जब पुनरुक्ति उबा देती है और ऊपर उठने की आकांक्षा पैदा हो जाती है।

हार्मिन शरीर के विकास को स्वचालित समझता था। किंतु उसकी यह धारणा नितांत गलत है। चेतना श्रम कर रही है विकास के लिए और वह जितनी विकसित होती जा रही है शरीर भी उसी अनपात में विकसित होता जाता है। जितना तांत्र विकास चेतना के तल पर हाता है उतना ही तीव्र विकास शरीर के तल पर होना अनिवार्य पा हो जाता है। लेकिन वह होता है पीछे, पहले नहीं। बदर का शरीर अगर कभी आदमी का शरीर बनता है तो तभी तब किसी बदर की आत्मा इसका पूर्व आदमी की आत्मा बनने के लिए कदम उठा चुकी होती है। उस आत्मा की जरूरत के लिए ही पीछे से शरीर भी विकसित हाता है। मनुष्य आगे भी गति कर सकता है और ऐसी चेतना विकसित हा सकती है जा मनुष्य से श्रेष्ठतर शरीरा को जन्म दे सके। इसमें कोई कठिनाई नहा है। लेकिन मनुष्य तक आ जाना ही कोई साधारण घटना नहीं है। लेकिन मनुष्य को इसका ख्याल न रहा। वह अपनी जिंदगी इस तरह गँवाता है माना वह उस भुक्त मिल गई हो ! लम्बी प्रक्रियाआ, लम्बी चेष्टाआ लम्बे श्रम और लम्बी यात्रा से मनुष्य की चेतना स्थिति उपलब्ध हाती है। लेकिन उसने ऐसा मान लिया है कि यह उस भ्रमन मित्र गई है !

मेरी मायता है कि एक जन्म में हम जा कमाते हैं वही दूसरे जन्म में हमारी सहज उपलब्धि होती है। दूसरे जन्म में वह हमें सम्पत्ति की तरह मिलती है और पिछला जन्म हम वैसे ही भूल जाना हाजस वने का बाप का श्रम भूल जाता है। बाप कमाता है बेटा गँवाता है क्योंकि उट का जमीरी जन्म से उपलब्ध हुई हाती है। उसे कभी ख्याल ना नहीं होता कि कितने श्रम से वह अमीरी खड़ी की गई है।

चूँकि विकास चेष्टा पर निर्भर है सकल्प और साधना की चीज है इसलिए इतने बड़े प्राणी-जगत में मनुष्या की संख्या कम है। बढ़ती भी है तो बहुत धीरे धीरे।

मैं यह भी कहता हूँ कि जन्म एक ही गढ़ा है। जन्मा का एक लम्बी यात्रा होती है। हम आज के ही नहीं हैं। हम कल भी थे, परमा भी थे। एक अवस्था हम सदा थे। कभी पक्षी थे, कभी पत्थर कभी खनिज कभी इस ग्रह पर, कभी उस ग्रह पर। हम सदा थे। होना व नाथ हम एक हैं। अस्तित्व में हमारी प्रतियुक्ति सदा थी। यह जरूरी नहीं कि हम महावीर के पास थे तब ना नहीं कि महावीर व प्रदेश में थे लेकिन सत्य यह है। यह भी हा समझना है कि हमसे कोई महावीर क निकट भी रहा हा उन गाँव में भी रहा हा जहाँ से महावीर गुजरे थे। जरूरी नहीं कि हम उनसे मिलने गए हा। लेकिन हम सदा थे और ना रहेंगे। अगर भ्रुंक्षित रह हा तो हमारा होना न होना बराबर था। जब से हम अमूर्च्छित हात हैं जागत हैं चेतन हात हैं तभी से हमारा होना का कोई अर्थ हाता है और हम जितना चेतन हात चले जाते हैं उतना ही हमारा हाता प्रगाढ़ और समृद्ध होना जाता है। नाथद हम



अर्थ में हमारा होना अभी भी नहीं हुआ। होने की लम्बी यात्रा में बहुत बार शरीर बदलने होते हैं। कारण शरीर क्षणभंगुर है, उसकी सीमा है, वह चूक जाता है। असल में पदार्थ से निर्मित कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं हो सकती। पदार्थ से जो भी निर्मित होगा, वह बिखरेगा, जो बनेगा वह मिटेगा। शरीर बनता है, मिटता है। लेकिन इसके पीछे जो जीवन है, वह न बनता है और न मिटता है। वह सदा नए-नए बनाव लेता है। पुराने बनाव नष्ट होते हैं, उनकी जगह नए बनाव आते हैं। यह नया बनाव उसके संस्कार का—उमने क्या दिया, क्या भोगा, क्या किया, क्या जाना, इन सबका—डकट्ठा सार है।

जो शरीर दिखाई पड़ता है, वह हमारा ऊपरी शरीर है। ऐसी ही आकृति का एक और शरीर है जो इस बाहरी शरीर में व्याप्त है। उसे सूक्ष्म शरीर कहें, कर्म शरीर कहें, मनोशरीर कहें, कुछ भी नाम दें—काम चलेगा। वह सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित शरीर है। जब यह बाहरी शरीर गिर जाता है तब भी वह शरीर कायम रहता है और आत्मा के साथ ही यात्रा करता है। उस शरीर की विशेषता यह है कि आत्मा की जैसी मनोकामना होती है वह वैसा ही आकार ले लेता है। हम जो कर्म करते और फल भोगते हैं, उनकी सूक्ष्म रेखाएँ उस सूक्ष्म शरीर पर बनती जाती हैं। इसलिए महावीर इस सूक्ष्म शरीर को कर्मण शरीर कहते हैं। उनका खयाल था कि हम जो भी जीते और भोगते हैं, उसके कारण विशेष प्रकार के परमाणु हमारे शरीर से जुड़ जाते हैं। विज्ञान भी कहता है कि जब आप क्रोध में होते हैं तो आपके खून में एक विशेष प्रकार का जहर छूट जाता है और प्रेम में वह अमृत से भर उठता है। इस शरीर के छूट जाने पर हमारा सूक्ष्म शरीर ही सूखी रेखाओं की तरह हमारे भोगे हुए जीवन को लेकर नई यात्रा शुरू करता है और वह सूक्ष्म शरीर ही नए शरीर ग्रहण करता है। जिस दिन सूक्ष्म शरीर मर जाता है, उसी दिन व्यक्ति को मोक्ष मिलता है। स्थूल शरीर तो बार-बार मरता है, मगर सूक्ष्म शरीर हर बार नहीं मरता। वह तभी मरता है जब उस शरीर के रहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जब व्यक्ति न कुछ करता है, न भोगता है, न कर्ता बनता है, न किसी कर्म को ऊपर लेता है और न कोई प्रतिक्रिया करता है, जब वह साक्षी-मात्र रह जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है। साक्षी की प्रक्रिया में सूक्ष्म शरीर वैसे ही पिघलता है जैसे सूरज के निकलने से बर्फ पिघलती है। सूक्ष्म शरीर को गलाना ही तपश्चर्या है।

महावीर को हम महातपस्वी कहते हैं, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने वृष में खड़ा होकर अपने शरीर को सताया था। यह ठीक है कि वे 'काया को मिटाने-वाले' थे, किन्तु उस काया का इस बाहरी काया से कोई मतलब नहीं है। उस काया का मतलब है भीतरी काया, जो असली काया है। महावीर भली भाँति जानते थे कि यह शरीर कई बार बदला जाता है, लेकिन एक और काया है जो कभी नहीं बदलती।



यह एक ही बार खत्म होती है, बढ़ती नहीं। तो उस भीतरी काया व पिघलाने में लगा हुआ श्रम ही तपश्चर्या है और उस काया को पिघलाने की प्रक्रिया का नाम ही साक्षीभाव सामायिक या ध्यान है। ऐसा हो सकता है कि पुनर्जन्म न हो। हम विराट जीवा के साथ एक हो जायें। एक होने में हम मिट नहीं जाते। यदि मिटते हैं तो बूंद की तरह ताकि सागर की तरह रह जायें। इसलिए महावीर कहते हैं कि आत्मा ही परमात्मा हो जाती है। लोग इसका मतलब नहीं समझे। इसका मतलब यह है कि आत्मा की वद परमात्मा के महासागर में मिलकर एक हो जाती है। उस एकता में, उस परम अद्वैत में परम आनन्द है, परम शांति है, परम सौन्दर्य है।



## पष्ठ अध्याय

महावीर के व्यवितत्व के नए आयाम

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।

न जुजे ऊरुणा ऊहं, सयणे नो पडिस्मुण ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० १० गा० १८

१

क्या महावीर को ऐसा कोई व्यक्ति न मिला जिसके चरणों में वे आत्म-समर्पण कर सकें ? क्या कारण था कि उन्होंने किसी गुरु की शरण न ली ?—इन प्रश्नों के उत्तर बड़े सरल हैं । महावीर को पता था कि जो दूसरे से पाया जा सकता है, उसका कोई महत्त्व नहीं । सत्य के फूल कभी उधार नहीं मिलते । इसलिए जो भी सत्य की खोज में निकला हो, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता । हाँ, असत्य की खोज करनी हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है । सत्य की खोज में गुरु अनावश्यक है । सीखने की क्षमता बहुत आवश्यक है । असली सवाल सीखने की क्षमता का ही है । जिसके पास ऐसी क्षमता है वह गुरु नहीं बनाता, सीखता चला जाता है । गुरु बनाना एक तरह का बन्धन निर्मित करना है । मेरा मानना है कि सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जो किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो । वह पूरे जीवन पर छाया हुआ है । अगर हम सीखने को उत्सुक हो तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है ।

महावीर में सीखने की अद्भुत क्षमता थी, इसलिए उन्होंने कोई गुरु नहीं बनाया । गुरु खोजा भी नहीं । वस सीखने निकल पड़े । उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है ? सब चीजें उधार हो सकती हैं, लेकिन ज्ञान उधार नहीं हो सकता । ज्ञान उसका ही होता है जो पाता है । वह दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है ।

गुरुओं और शास्त्रों की कमी न थी, वे सब तरफ मौजूद थे । सिद्धान्तों की कमी न थी, सिद्धान्त भी मौजूद थे । लेकिन महावीर ने सबकी ओर पीठ कर दी, क्योंकि

---

१. विनीत शिष्य आचार्य की पंक्ति से न बैठे, उनसे आगे भी न बैठे, उनके पीछे पीछे भी न बैठे और वह इतना निकट भी न बैठे कि उनकी जाँघ से जाँघ मिल जाय । यदि गुरु ने किसी कार्य का आदेश दिया हो तो वह शय्या पर सोते-सोते अथवा बैठे-बैठे न सुने ।

गाम्त्र की ओर या सिद्धांत की ओर या गुरु की ओर मुह करना—वासी और उचार ना के लिए उत्सुक होना था। दूसरा को, ज्यादा म ज्यादा, शब्द मिल सकते थे सिद्धांत मिल सकते थे, लेकिन सत्य नही मिल सकता था। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति आत्म समर्पण नहीं किया। यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो धुन और सीमित के प्रति क्या किया जाय ? समस्त के प्रति क्या नहीं ? एक के प्रति समर्पण म गत है। ऐसा समर्पण सीधा है। जिससे हम मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं ऐसी आकांक्षा को ध्यान म रखकर अगर समर्पण किया गया तो समर्पण कैसा हुआ ? वह सीधा हुआ, लेन-देन हुआ। समर्पण का अर्थ है बिना किसी गत या आकांक्षा के स्वयं को छोड़ देना। इसलिए कोई किसी व्यक्ति के प्रति कभी समर्पित नहीं हो सकता। समर्पित हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भा एक व्यक्ति है तो उसके प्रति भी समर्पण नही हो सकता। समर्पण सदा बेशर्त होता है।

मैं मानता हूँ कि महावीर न समर्पण किया, लेकिन किसी एक व्यक्ति के प्रति नही, समस्त के प्रति और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है, उनका हम पता नही चलता। जो समस्त के प्रति समर्पित है उसका समर्पण हमारी पहचान म नही आता क्योंकि हमारा मापदण्ड सीमित सीने का है। अगर मैं किसी व्यक्ति से प्रेम करूँ तो यह बात समझ म आ सकती है लेकिन अगर मेरा प्रेम समस्त के प्रति हो तो इसे समझना मुश्किल हो जायगा। हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं जब वह व्यक्ति से बँध जाय। इसलिए हम महावीर के प्रेम का ठीक-ठीक समझ नहीं पाते।

मेरा मानना है कि महावीर पूण समर्पित व्यक्ति थे। लेकिन पूण समर्पित व्यक्ति किसी एक के प्रति समर्पित नहीं होता। वह किसी एक के आगे सिर नहीं झुकाता, इसलिए नही कि उसमें अहंकार है बल्कि इसलिए कि उसका सिर झुका ही हुआ है सब ओर। और ध्यान रहे कि जो व्यक्ति किसी एक के प्रति झुका है वह दूसरे के प्रति सदा अकड़ा रहता है और जो व्यक्ति किसी एक के तरण छूता है वह दूसरे से चरण छुलाने को आतुर है। आपने देखा होगा कि जो आत्मी जिमी की मुशाम्मत करता है वह अपना पाछा बाँध से मुशाम्मत की माँग करता है। जो आत्मी नम्रता सिखाता है वह दूसरे से नम्रता की माँग करता है।

महावीर किसी का न तो महात्मा मानते हैं और न ही नात्मा। वे हम विचार म ही नही पड़ते। डाक लिए कोई महात्मा नही, क्योंकि कोई हीनात्मा नही। एक को महात्मा बनाओ तो शेष अनगिनत लोग की हीनात्मा बनाना जरूरी हो जाता है नही तो काम नही चलता। एक महात्मा की रेंगा सीने के लिए करोना हीनात्मा बनाना मेरा सपना करना पड़ता है। बूँकि महावीर ने किसी को गुरु नही बनाया, हम जिन जिन लोगों ने उन्हें गुरु बनाया है उन पर ने महावीर के साथ अभ्यास किया



है। वे समझ ही नहीं पाए महावीर को। जिन आदमी ने कभी किनी को अपना गुरु नहीं बनाया, वह कभी किनी को जिन्य बनाने की बात भी नहीं सोच सकता। दोनों सद्युक्त बातें हैं। जब वह अपने लिए यह ठीक नहीं मानता कि किनी का गुरु की तरह स्थापित करे तो वह कैसे मान सकता है कि कोई उने गुरु की तरह स्थापित करे? जिस महावीर ने किनी शास्त्र को नहीं माना उस महावीर का शास्त्र बना लेना कहाँ का न्याय है?

पूछा जा सकता है कि महावीर को किन चीज की खोज थी जिनके कारण उन्होंने गुरु की शरण न ली? इसमें सन्देह नहीं कि वे जिन चीज की खोज कर रहे थे उसे किसी ने अपने गुरु से नहीं पाया। हाँ, कुछ चीजें हैं जो गुरु से मिल जाती हैं। जीवन का बाह्य ज्ञान—गणित, भूगोल आदि—गुरु से मिल जाता है, लेकिन सत्य का ज्ञान गुरु से नहीं मिल सकता। अगर मैं सत्य की खोज में हूँ तो मैं किनी को बीच में लेना नहीं चाहूँगा। अगर मैं सौन्दर्य की तलाश में हूँ तो मैं अपनी आँखों से सौन्दर्य देखना चाहूँगा। महावीर उस सत्य की खोज में थे जो स्वयं में ही छिपा रहता है, किसी के पास जाकर माँगने, हाथ जोड़ने और प्रार्थना करने में नहीं मिलता। इससे कोई ऐसा न समझ ले कि महावीर बड़े अहकारी व्यक्ति रहे होंगे। उनका-सा विनम्र व्यक्ति मिलना मुश्किल है। वे न तो आदर माँगते थे और न किसी व्यक्ति-विशेष को गुरु मानकर आदर देते थे। जो समस्त के सम्मुख झुक चुका हो, उसे आदर देने-लेने से क्या मतलब? आदर देनेवाले आदर पाने की इच्छुक रहते हैं और नम्रता का मुखौटा पहनकर अपने अहकार को छिपा रखते हैं। जो न गुरु बनाता या बनता है, जो न शास्त्र रचता या मानता है, उसे अहकारी कैसे कहा जा सकता है?

सत्य की खोज करनेवालों के लिए न तो कोई मित्र होता है और न सगी-साथी। सत्य की खोज तो 'अकेले की उड़ान है अकेले की तरफ।' इसलिए महावीर बहुत सचेत थे। उनको मानने और प्रेम करनेवाले भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। तब दुनिया में विशुद्ध धर्म होता—यहाँ न कोई जैन होता, न हिन्दू, न ईसाई और न मुसलमान। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाय तो दुनिया में आदमियत होगी, धर्म होगा, लेकिन पथ न होगा। आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नहीं मालूम पड़ते क्योंकि दूसरे लोगों ने उन्हें अपना लिया है। अगर गुरुके आसपास पागलपन पैदा न हो, श्रद्धा और अन्धभक्ति पर आधारित गिरोह न बने, तो सम्प्रदाय एक-एक कर विदा हो जायँ। तब क्राइस्ट भी हमारे हो और मुहम्मद भी हमारे। महावीर ने दरिद्र होना नहीं चाहा, इसलिए उन्होंने किसी एक को नहीं पकड़ा। वे पूर्ण समृद्ध हो गए, क्योंकि सब कुछ उनका था।

लोग पूछते हैं कि क्या कारण था कि मिश्रटन के पूर्व महावीर कुछ शर्त लगा

किया करते थे धार, उदाहरणार्थ, कहते थे कि आज मैं ऐस घर से भाजन आया जिसके सामने दो गीबें लट रही हो उज्जाय का काल हो, घर के दरवाजे पर एक स्त्री खड़ी हो उसका एक पर बाहर हो और दूसरा भीतर उसकी आंखों से आंसू बहते हैं हा पर होठा पर मुस्कान हो ? जसा मैंने कहा, महावीर की खोज पहले ही जन्म में पूरी हो चुकी थी । इस जन्म में वे सिर्फ बाटने आए थे । इसलिए उन्होंने यह प्रयोग किया कि अगर मैं बाटने ही आया हूँ और मेरा स्वाध नहीं है तो विश्वसत्ता मुझे भाजन दगी ही । यदि वह न दे तो मैं भोजन भी क्या लू ? यदि वह जीवन देना चाह तो ठीक, न देना चाह तो मेरे जीवन का क्या मूल्य ? इसलिए महावीर कठिन श्रम लगाकर ही निकलते । उनमें जिजीविषा का लोभ भी न था । इसलिए वे विश्व की समग्र सत्ता की इच्छा पर अपने का छोड़ देते । उनका कहना था कि अगर विश्व का समग्र सत्ता को मेरा जीना मजूर है तो वह भोजन दे । मैं अपनी ओर से नहीं जीता और न अपने भोजन के लिए ही किसी का अनुग्रह मानूंगा ।

गहरी बात यह है कि जो व्यक्ति पूणता को उपलब्ध हुआ लोट आया है, उसके लिए कम-जसी कोई चीज नहीं । कम होता है इच्छा से, उसका जन्म होता है आकाशा से । महावीर कहते हैं कि मैं यह भी इच्छा नहीं करता कि मुझे भाजन मिलना चाहिए । मैं इसे भी विश्व-सत्ता पर छोड़ देता हूँ ।

यह समस्त के प्रति समर्पण है । अगर पूरी हवाएँ, पहाड़, पत्थर, मानवीय चेतना पशु-पक्षी, देवी-देवता चाहते हैं कि महावीर एक दिन और जीएँ तो उन्हें उनके भोजन का इतना काम करना ही होगा । इसीलिए महावीर श्रम लगा देते हैं, ताकि वे जान सकें कि विश्व-सत्ता का उनका जीवन रहना मजूर है और पूरे जगत के अस्तित्व में उन्हें भाजन दिया । बहुत अनूठा था उनका यह प्रयोग । जन मुनि आज भी ऐसा करते हैं लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं या कुछ ऐसे प्रबंध कर सकते हैं ताकि उनकी गति पूरी हो जाये । दम-पाँच लोग अपने घरों के सामने काला लटका देते हैं, एक-दो स्त्रियाँ बच्चे लेकर खड़ी हो जाती हैं । लेकिन महावीर का शर्तें कठिन हुआ करती थी और उनकी प्रति किसी व्यक्ति विशेष या श्रावकों के सामूहिक यत्न से हाना असम्भव था । जब तक विश्वसत्ता राजा न होती तब तक वे गति कभी पूरी न होती । इस तरह महावीर का जीना परमात्मा की मर्जी पर था । वे प्रत्येक पल उसकी मर्जी से ही जीना चाहते थे, अपने लिए नहीं । उनका पूरा जीवन हम बात का प्रमाण है कि विश्वसत्ता का जिन व्यक्ति की जरूरत होता है, उनका जीवन के लिए वह स्वयं आभाजन करती है ।

बुद्ध का यह त्याग भी क्या प्रचलित है । कहते हैं कि जिस घोड़े पर सवार होकर वे घर से निकलें, उसके परा की टाप बारह बारा तक गुना जा सकती थी । किन्तु उन रात जब बुद्ध उस पर सवार हो निकले, तो उसकी टाप के नीचे स्वयं पूल रखते

चले गए। टाप फूलों पर पड़ी ताकि गांव जाग न जाय। दहृत कत्तों के बाद ही प्रव्रज्या के लिए किसी का ऐसा अभिनिष्क्रमण होता है। इसलिए देवता राजमन्त्र के दरवाजे भी खोल देते हैं जैसे वे कभी बन्द ही न रहें हों। द्वार की जो कीड़े पागल हाथी के धक्के से भी न गुलती वे चुल जाती हैं और जिन दरवाजों से गुलने समय इतनी आवाज होती है कि उसे नाग नगर गुन लेता है, वे चुपचाप चुल जाती हैं। ऐसी सारी कहानियाँ कपोलकल्पित हैं, लेकिन नाथ ही ये इस बात की सूचना देती हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत्, मारा अस्तित्व सुविधा देने लगता है, क्योंकि समस्त अस्तित्व को ऐसे व्यक्ति की जरूरत होती है। मगर हम सबके लिए अस्तित्व की ही आवश्यकता रहती है। हमारी सांस चले, इसलिए हवा की जरूरत होती है, प्यास बुझे, इसलिए पानी की आवश्यकता होती है, गर्मी मिले इसलिए सूर्य की जरूरत होती है—सारे अस्तित्व की जरूरत होती अपने ही लिए। लेकिन अस्तित्व को ही जरूरत थी महावीर की। इसलिए वे कहते थे कि अगर जिन्दा रखना हो तो मेरी शर्तें पूरी करो, नहीं तो हम वापस लौट जायेंगे। न कोई गिकायत है पीछे लौटने से, न कोई नाराजगी है।

लोग पूछते हैं कि महावीर के गृहत्याग के पीछे कौन-सा असंतोष था और क्या उनका गृहत्याग जीवन और इसके नाना दायित्वों से पलायन नहीं है? पहली बात यह है कि महावीर को न तो कोई पारिवारिक असन्तोष था और न कोई सामाजिक असन्तोष। इस जन्म में तो कोई व्यक्तिगत असन्तोष भी न था। पारिवारिक असन्तोष से घिरा व्यक्ति कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक होता है वह व्यक्ति जिसके असन्तोष का न तो समाज से कोई सम्बन्ध होता है और न परिवार, सम्पत्ति या शरीर से। धार्मिक व्यक्ति का उदय तब होता है जब उसके भीतर असंतोष की आग भभक उठती है और उसे चिन्ता इस बात की होती है कि क्या ऐसा होना ही काफी है? अगर हिसक हूँ तो हिसक होना ही काफी है? अगर दुखी और अशान्त हूँ तो क्या दुखी और अशान्त होना ही पर्याप्त है? इस जीवन में महावीर को यह असन्तोष भी न था, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म पहले ही हो चुका था। पिछले जन्मों में भी उनका असन्तोष नितान्त आध्यात्मिक था, सामाजिक या पारिवारिक नहीं। आध्यात्मिक असन्तोष बहुत कीमती चीज़ है और वह जिनमें नहीं है वह व्यक्ति कभी उस यात्रा पर नहीं जा सकता जिसका अन्त आध्यात्मिक सन्तोष की उपलब्धि में होता है। जिस असन्तोष से हम गुजरते हैं उसी तल का सन्तोष हमें उपलब्ध हो सकता है। अगर धन का असन्तोष है तो ज्यादा-से-ज्यादा धन मिलने का सन्तोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बड़े मजे की बात है कि जिस तल पर हमारा असन्तोष होगा उसी तल पर हमारा जीवन भी।

महावीर को इस जीवन में किसी बात का असंतोष न था, लेकिन पिछले सारे



जन्मा में उनके असतोष की यात्रा बहुत लम्बी थी। वह असतोष यह न जानने के कारण था कि मेरा अस्तित्व, मेरा मृत्यु, मेरी वह स्थिति जहाँ मैं परम मुक्त हो जाऊँ, जहाँ न कोई सीमा रहे और न कोई बंधा, वहाँ है? महावीर उसी की यात्रा में थे और यह निर्विवाद है कि ऐसी साधनावाला व्यक्ति दूसरा के पारिवारिक और सामाजिक असतोष को मिटाने के लिए ही अधिक उत्सुक रहना है, न कि स्वयं की चिन्ता करता है। अगर हम सोचने जायें तो ऐसा आदमी मुक्ति से भिन्ना जिसे न मकान से अतृप्ति है, न कपड़ा से, न पत्नी से न अपने प्रियजन से। जब आदमी अपने प्रति ही असंतुष्ट हो जाता है तब उसके जीवन में घम की यात्रा शुरू होती है। महावीर पिछले जन्मा में नर असंतुष्ट रहे। वही यात्रा उन्हें वहाँ तक लाई जहाँ तृप्ति और सतोष उपलब्ध होता है। जिस दिन व्यक्ति अपने को स्थातस्थि करके उसे पा लेता है या वह वस्तुतः है उस दिन उसके लिए परम तृप्ति का क्षण आ जाता है। अगर वह फिर एक क्षण भी जीता है तो दूसरा के लिए ही, ताकि वह उन्हें तृप्ति के मार्ग की दिशा बना सके।

पूछा जाता है कि क्या महावीर का गृहत्याग दायित्व से पलायन नहीं है? मरा कहना है कि महावीर ने कभी गृहत्याग किया ही नहीं। गृहत्याग व लोग करते हैं जिन्हें गृह के प्रति आसक्ति होती है। महावीर न तो उस ही छोड़ा जा घर न था। मिट्टी, पत्थर के घरा की हा हम वर समझ लेते हैं या सचचा गन्त है। वस्तुतः यह शब्द—'गृहत्याग'—ही ग्रात है। असत् में महावीर घर की यात्रा में निवृत्त थे। जा घर नहीं था उसे हा छोड़ा था और जो घर था उसकी तलाश की थी। जा घर नहीं ह, हमने उस ही पकड़ रखा है। जा घर है उससे हम दूर जा पडे हैं। इसलिए शब्द के सच्चे अर्थ में पलायनवादी हम हैं, महावीर नहीं। पलायन का मतलब क्या है? एक आदमी ककड़ा और पत्थरा को पकड़कर कहता है, ये ही हमारे हीर हैं और वह अमली हीरा को छोड़ देता है। दूसरा असली हीरे का यात्रा में निवृत्त पडता है। इन दोनों में पलायनवादी कौन है? क्या आनन्द की यात्रा पलायन है? क्या ज्ञान की यात्रा पलायन है? महावीर जैसा आदमी दूधान पर बटकर व्यवसाय चलाए लेता था वर, क्या यही दायित्व होगा उसका जगत के प्रति, जीवा के प्रति? महावीर-जाना व्यक्ति घर में बैठकर बाल बच्चा को बड़ा करता रह क्या यही दायित्व होगा उसका? जब बड़े दायित्व पुकारते हैं तब छोटे दायित्व का छोड़ देना पडता है। महावीर जसा व्यक्ति जब एक घर का छोड़ता है तब उस करोड़ा घर मिल जाता है व उसके ही ज्ञान हैं। पत्नी, बेट और प्रियजन का छोड़ना है तो सारा जगत उसका प्रियजन और मित्र हा जाता है।

अपना दुःख के मार्ग को दूसरा पर लाना ही हमारा दायित्व है। अपना की यात्रा में औरों को गति देना ही हम दायित्व समझते हैं। पलायन यह करता है ना



दुखी हो। भागता वह है जो डरता हो, भयभीत हो, जिसे शक हो कि मैं जीत न सकूंगा। महावीर उस घर से निकलते हैं जिसमें आग लगी है। जब घर में आग लगती है और उसमें रहनेवाले लोग उसे छोड़कर बाहर निकल आते हैं तब उनका पलायन पलायन नहीं कहलाता, विवेक की सज्ञा पाता है। जिस घर में आग लगी हो उसमें रहना ही अपनी विवेकहीनता का परिचय देना है। हम बीमार आदमी को कभी यह नहीं कहते कि तुम पलायनवादी हो, बीमारी से भाग रहे हो, डाक्टरों के यहाँ जाते हो। एक अँधेरे में पड़ा व्यक्ति जब सूरज की ओर जाता है तब हम यह नहीं कहते कि तुम पलायनवादी हो, सूरज की ओर भागते हो। वस्तुतः हम वहाँ खड़े हैं जहाँ जिन्दगी है ही नहीं। दूसरों को पलायनवादी कहकर हम यही सिद्ध करना चाहते हैं कि हम जहाँ खड़े हैं, वहाँ से हटने की हमें जरूरत नहीं। हम बहादुर लोग हैं महावीर और बुद्ध की तरह भगोड़े नहीं। परन्तु स्मरण रहे कि जिन लोगों ने महावीर को 'महावीर' नाम दिया था, उनकी दृष्टि में महावीर पलायनवादी न थे। इसका कारण शायद यह था कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहाँ से हट नहीं सकते, वहाँ से महावीर अपने अदम्य पौरुष की वजह से हट गए थे। वह उस व्यक्ति के समान है जिसे हीरो की खदान दिखाई पड़ गई है और वह उसी की ओर भाग रहा है। ऐसे व्यक्ति का भागना पलायन नहीं है। ऐसा भागना उस व्यक्ति के भागने-जैसा नहीं है जिसके पीछे बन्दूक लगी हो। लेकिन यह भी सत्य है कि सौ सन्यासियों में निन्यानवे सन्यासी पलायनवादी ही होते हैं। उन निन्यानवे सन्यासियों के कारण सौवे सन्यासी को ठीक-ठीक समझना मुश्किल हो जाता है

## २

महावीर ने न तो नियन्ता को स्वीकार किया है, न समर्पण को, न गुरु को और न शास्त्र को। क्या यह महावीर का घोर अहकार नहीं था? क्या वे अहवादी नहीं थे?

ऐसे प्रश्न स्वाभाविक है। जो नियन्ता, गुरु, शास्त्र, परम्परा आदि के प्रति झुकता है, वह साधारणतः हमें विनीत और निरहकार प्रतीत होता है। इस सदर्भ में मेरी पहली बात यह है कि परमात्मा के प्रति झुकनेवाला भी अहकारी हो सकता है और यह अहकार की चरम घोषणा हो सकती है कि मैं परमात्मा से एक हो गया हूँ। 'अह ब्रह्मास्मि' की घोषणा अहकार की चरम घोषणा है। दूसरी बात यह है कि समर्पण में अहकार सदा मौजूद रहता है, समर्पण करनेवाला मौजूद है। समर्पण का कृत्य ही अहकार का कृत्य है। जब कोई कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है तब हमें लगता है कि परमात्मा ऊपर है और समर्पण करनेवाला व्यक्ति नीचे। यह हमारी भूल है। समर्पण करनेवाला व्यक्ति कभी नीचा

नहा हो सकता, कल चाहता वह अपना समपण वापस लौटा सकता है—कल वह कह सकता है कि अब मैं समपण नहीं करता।

महावीर में इतना भी अहंकार नहा कि वे कहें—मैं समपण करता हूँ। समपण के लिए 'मैं' तो चाहिए ही। उनमें 'मैं' का—कर्ता होना का—भाव बिल्कुल नहीं। और, जसा मैंने कहा जो व्यक्ति समपण करता है वह समपण की माग करता है। यह माग एक ही सिक्के का दूसरा हिस्सा है। लेकिन महावीर ने न तो समपण किया और न मागा। मेरी दृष्टि में यह परम निरहंकारिता है। आखिर मैं ही समर्पित होऊँगा, नियन्ता को मैं ही स्वीकृत करूँगा। महावीर के अस्वीकार में ऐसा नहा है कि नियन्ता नहीं है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि वह स्वीकार नहीं है। 'अस्वीकार' पर जोर नहीं है। महावीर यह सिद्ध करत नहीं घूमते कि परमात्मा है। उनका अस्वीकार फलित है, घोषणा नहीं। स्वीकृति और समपण के लिए भी अहंकार चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नितान्त अहंकारशून्य हो जाय तो समपण कैसा? कौन करेगा समपण? समपण कृत्य है, कृत्य के लिए कर्ता चाहिए। अगर कर्ता नहीं है तो समपण—जसा कृत्य भी असम्भव है। जब कोई कहता है कि मैंने समपण किया तो समपण से भी वह अपने 'मैं' को ही भरता है—उसका समपण भी उसके 'मैं' का ही पोषक है। वह समझता है कि मैं कोई साधारण नहीं हूँ, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हूँ।

महावीर के पास एक भग्राट गया। उसने महावीर से कहा—सब है आपकी कृपा से। राज्य है, सम्पदा है सनिक हैं शक्ति है, सब है, लेकिन सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज होती है वह मेरे पास नहीं। मैं चाहता हूँ कि उसको भी विजय कर लूँ। क्या उपाय है? कितना खर्च पड़ेगा? हँसे हमने महावीर उसके पागल्पन पर। उन्होंने कहा कि खरीदने को हाँ निकले हो तो अपने गाँव को लौट जाओ। वही एक श्रावक है, उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने में बेचेगा। वह नासमझ सम्राट उस आदमी के घर पहुँचा और हैरान हुआ देखकर कि वह श्रावक बहुत दरिद्र आदमी है। उसने सोचा कि इसे तो पूरा ही खरीद लेंगे। उसने श्रावक से वह बात कही जिसे महावीर ने कहा था और पूछा कि वह एक ध्यान का मृत्यु क्या लेगा? श्रावक हँसने लगा। उसने कहा कि चाहो तो मुझे खरीद लो लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं। सामायिक पाई जा सकती है उसे खरीदा नहीं जा सकता। लेकिन अहंकार उसका भी खरीदना चाहता है भगवान और घम को भी खरीदना चाहता है। हमारे मन में दो चीजें हैं, अहंकार और नम्रता। नम्रता अहंकार का ही रूप है, यह बात हमारे खयाल में नहीं आती। महावीर नियन्ता के प्रति, गुरु और परम्परा के प्रति न तो नम्र हैं और न अनम्र। दोनों बातें असंगत हैं महावीर के लिए। मैं एक वृक्ष के पास ~~गएँ~~ और नमस्कार न करे तो आप मुझे अनम्र न कहेंगे। लेकिन ~~एक महावीर~~ उस निकल और नमस्कार

1. 2. 3. 4.

5.

6.

7.

8.

9.

10.

11.

12.

13.

14.

15.

16.

17.

18.

19.

20.

21.

22.

23.

24.

25.

26.

27.

28.

29.

30.



हमारे सब सवाल उल्टे होते हैं क्योंकि हमारे प्रश्न वहाँ से उठते हैं जहाँ चीजें गिरकूल उगती हैं। महावीर के प्रेम में कोई शक्ति नहीं है। शायद उनका वैश्व प्रेम बना हुआ ही नहीं। उनकी सभी चीजें अपने अस्तित्व के लिए हैं तुम्हारे प्रेम के लिए नहीं। वह इसलिए कि कहा ऐसा न हो जाय कि तुम्हारा प्रेम बिदा हो चुका है और अस्तित्व का मेरी जरूरत न हो और मैं जिए चला जाऊँ। तब बमानी हो जायगी बात। महावीर किसी परमात्मा का मानते नहीं जो कि खबर कर दे और बह द, बस लौट जाओ। इसलिए अस्तित्व से ही यह खबर लेनी है। उस ही बनाना है कि उसे मेरी जरूरत है या नहीं। इसलिए चीजें लगा लेता हूँ ताकि मुझे पता चलता जाय कि अब आगे जीना है या लौट जाना ही श्रवस्वर है।

जगत का इस बात की जरूरत है कि महावीर दुवारा आए। जब कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत के प्राणियों की पुकार घूम घूमकर उसकी पास पहुँचने लगती है कि जगत कष्ट में है, दुखी है इसलिए अपना आनंद दान। यह वापना ही लौटाता है। लोगों की पुकार ही उस पुन बुला लेती है। लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता। लोग पूछते हैं कि आप किसलिए बोलते हैं? यह ध्यान में आना बटिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है इसलिए मैं बोलता हूँ। कोई सुनने वाला पुकारेगा, तभी मैं बोलूंगा। ससार में घटनाएँ उलटी घटती हैं। मैं बोलूंगा तब सुनने वाला आयगा, लेकिन अन्तजगत में घटनाएँ ऐसी नहीं घटती। अतस्तल में सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है तब बोलने वाला आता है। यदि महावीर तुम्हारे गाँव में आ जायें तो तुम कहोगे कि क्या आए हैं आप यहाँ? मने की बात तो यह है कि तुम्हीं ने बुलाया था उन्हें। महावीर का यह पीछा भी बेलनी पड़ेगी कि तुम्हीं ने बुलाया था उन्हें और तुम्हीं पूछागे कि कैसे आप आए हैं यहाँ?

यह सच है कि महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता नहीं की। इसके कारण को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। परम अहिंसा की स्थिति में व्यक्ति किसी को दुख ही पहुँचाना नहीं चाहता, सुख भी पहुँचाना नहीं चाहता। बहुत गहरे में सुख और दुख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिस हम सुख कहते हैं उसकी मात्रा अगर थोड़ी बढ़ा दी जाय तो वह दुःख में बदल जाता है। भाजन करना सुखद होता है, लेकिन आप ज्यादा भोजन कर लें तो सुख दुःख में बदल जाता है। आप प्रेम से आकर मित्रता में आपकी गले से लगा लिया। बड़ा सुखद है क्षण दो क्षण का ऐसा मिलन। लेकिन तब मैं आपको पास रखूँगा और आप छूटने के लिए तड़पा लगने तब आपकी क्या दगा होगी? आप मुझी हो सनेंगे? आधा घटा हुआ कि आप चाहेंगे, चित्ताएंगे कि कोई पुलिसवाला आए और आपको बचाए। सुख तब दुःख में बदल जाता है, यह कहना मुश्किल है। सब सुख दुःख में बदल सकता है और ऐसा कोई दुःख नहीं

जो सुख में न बदल सके। किसी माँ को ही लीजिए। वह बच्चे को गर्भ में डोती है, नौ महीने पेट में रखती है, दुख उठाती है, प्रसव की पीड़ा सहती है। बच्चे का जन्म होता है, वह उसका लालन-पालन करती है, बच्चे का वांछित सुख की तरह स्वीकारती है। बच्चे को बड़ा करना लम्बे दुःख की प्रक्रिया है। लेकिन माँ का मन उसे सुख बना लेता है। अगर आशा, सम्भावना, आकांक्षा, कामना तीव्र हो तो दुःख सुख बन जाता है।

सुख और दुःख में कोई मौलिक भेद नहीं है, हमारी दृष्टि का भेद है। आशा हो तो दुःख को सुख बनाया जा सकता है। आशा क्षीण हो जाय तो सुख दुःख में परिणत हो जाता है। महावीर कहते हैं कि न तो तुम किसी को सुख पहुँचाओ और न दुःख। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुँच जाता है जिनमें वह न किसी को सुख पहुँचाना चाहता है, न दुःख, उस दिन वह सबको आनन्द पहुँचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है। आनन्द पहुँचाने का कारण ही तभी कोई व्यक्ति बनता है जब वह सुख और दुःख के चक्कर से मुक्त हो जाता है और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जिसमें सुख-दुःख का कोई मूल्य नहीं। सुख-दुःख पहुँचाने वाले को हम अच्छा बुरा तो कहते हैं, लेकिन चूँकि हमें आनन्द को पहचानने नहीं आता इसलिए आनन्द देनेवाला व्यक्ति हमसे दिल्कुल अपरिचित रह जाता है। आनन्द चेतना से सहज ही विकीर्ण होने लगता है जो सुख-दुःख के द्वन्द्व के पार चली जाती है। निश्चित ही जिनके पास आँखें होती हैं वे उस आनन्द को देख पाते हैं।

महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुँचाने से भी उसको दुःख पहुँच जाता है—अर्थात् कभी कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुँचाने की चेष्टा भी उसको दुःख पहुँचा सकती है। यह जरूरी नहीं कि आप सुख पहुँचाना चाहते हो तो इससे दूसरे को सुख पहुँच जाय। सच तो यह है कि अगर कोई किसी को सुख पहुँचाने की कोशिश करे तो उसको दुःख पहुँचाता ही है। अगर बाप अपने बेटे को सुख पहुँचाने की कोशिश में लग जायँ, उसके सुधार की व्यवस्था करने लगे और सोचे कि इससे उसे सुख पहुँचेगा तो सम्भावना इस बात की है बेटा को दुःख पहुँचेगा और बेटा अपने पिता के ठीक विपरीत जायगा। इसलिए अच्छे बाप अच्छे बेटों को पैदा नहीं कर पाते। अच्छे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा होना अपवाद है। अच्छा बाप बेटे को अनिवार्यतः विगाड़ने का कारण बनता है। सुख इतनी सूक्ष्म चित्त-दशा है कि कोई पहुँचाना चाहे तो नहीं पहुँचा सकता। मैं लेना चाहूँ तभी ले सकता हूँ। इसलिए महावीर ने सुख पहुँचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड़ दी, और कहा कि अगर कोई तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुःख होगा। लेकिन तुम सुख पहुँचाने मत चले जाना।

४ । कारण है कि मंगलवार म तिरे हृष्ट - तदा उगता, मृग का राशो तदा दो  
 ५ । तदा त पांच तदा द्वाद । य पुरता तदा मत् । स्तिता उत सुपताय म - तात  
 ६ । दाने सिरेने सर तदा ॥ १ दाना तर दैता हो मरगो है जिता तात र प्रयाग  
 ७ । तदा ॥ १ ॥ १ । त तार त दृष्टि म ता तमीर तदा है उमे तारत म काई सतायत  
 ८ । त पते तद त सता । तह ता मेलता मत् है त पर म तदा है । स्तिता ह्म  
 ९ । त तात का मया - त । ति दुग रर म मने हा म तले पुरुता । म पर म मगदा  
 १० । दम ताव स दम तिता ता म दुग व तदा है आर ज र तदा कि आर उगत  
 ११ । पांच ठोक मर दे ता उत काई तात हा ही जाव । मता जरुसी है मता तदा यह  
 १२ । मंगलवार का अच्छी तरह मान्यता । दमतिता जिनी पहला म उत व्यक्ति पर फेंक  
 १३ । मरम म पोरतर म - ता है । अमर म ता परम स्थिति का उगता है तात है  
 १४ । उत्तरा हाता मात्र कम्पता है । उता माता जो मात्र ताता है । जीना होता है उता  
 १५ । ताता स तोता है । जिता वाम मता छाता गही है उहे तो मुठ करता पदता है  
 १६ । पांडिया का माता करता पदता है अमता माता पदता है । य वि - तुल कीड़ता  
 १७ । को बतते हैं । यत्न मत् म दनता मुठ ती मृग तातो ।

महावीर का भीति उन तन्त्र पर है जिस तन्त्र पर गुण-गुण वस्तुतः का भाव  
विना हो जाता है अर्थात् निष्कामाकार जाते हैं । विनाय में उन तन्त्र का कंट्रोलिटी  
( उप्रेरक ) एजेंट रहने है जिसकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है । उदाहरण के  
लिए हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को ल । यदि आप इन दोनों का आस-पास ल आएं  
तो वे अलग अलग ही रहेंगे, यदि यदि धीरे से बिजली चमक जाय तो दोनों मिल  
जायेंगे और इनके दम मिलने से पानी तयार हो जायगा । बिजली की चमक कोई  
योगदान नही करती, यदि उनकी मौजूदगी ने ही वे मिल जाते हैं । जिस भीति  
नीतिव तन्त्र पर कंट्रोलिटिक एजेंट है, उसी भीति साध्यात्मिक तन्त्र पर महावीर जते  
लाग हाता हैं जिसकी निष्कामाकार काम करती है । उनकी मौजूदगी ही हजारों,  
लाखों चेतनाओं का जगता देता है स्वस्थ करती है ।

महावीर ने सभी किसी की सेवा नहीं पा, यह इजाजत रहेगा । इसे मिटाया नहीं जा सकता । यह अभियोग सब तक रहेगा जब तक हम बेगल तयि के मित्रों पहचानते रहें । जिस दिन हम ती सौ राए के गोट पहचानना शुरू कर देंगे उस दिन महावीर एक नई अवस्था लेकर प्रगट होंगे और उनपर अभियोग लगाएवाल लाग दो पीढी व हो जायेंगे ।

लोग पूछते हैं कि यद्यपि पृथ्वी बहुत विशाल है फिर भी क्या कारण है कि दो तीन प्रदेशों में ही चौबीसा तीथर हुए ? हमारे उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त



होगा कि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करती है। इस प्रकार एक शृंखला-सी निर्मित हो जाती है। जिस क्षेत्र में किसी तीर्थंकर का अवतरण होता है उस क्षेत्र की चेतना ऊँची उठ जाती है जिससे दूसरा तीर्थंकर पैदा होता है, और उस दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा। इन तरह तीर्थंकरों की शृंखला बन जाती है। यह भी जानकर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुण्य पैदा होते हैं तो करीब-करीब एक शृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेर लेते हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, अजित, सजय आदि सब-के-सब विहार में ही हुए और वह भी पाँच सौ वर्षों के अन्दर। इन्हीं पाँच सौ वर्षों में एथेन्स में सुक्रात, जरस्तू, प्लेटो आदि तथा चीन में कन्फ्यूसियस और लाओत्से हुए। पाँच सौ वर्षों में सारी पृथ्वी पर प्रतिभा का मानो शृंखलाबद्ध विस्फोट हुआ। जब महावीर की कीमत का कोई इन्सान पैदा होता है तो वह अपने-जैसे सैकड़ों लोगों के पैदा होने की सम्भावना भी पैदा करता है। ऊपर से दीरता है कि महावीर और बुद्ध परस्पर विरोधी हैं। लेकिन महावीर के विस्फोट का फल है बुद्ध—फल इस अर्थ में कि अगर महावीर न होते तो बुद्ध का होना मुश्किल था। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण काव्यप, गोशाल सब विरोधी हैं। लेकिन किसी को खयाल नहीं कि वे सब एक ही शृंखला के हिस्से हैं। एक का विस्फोट हुआ है तो हवा बन गई है। उसकी उपस्थिति ने सारी चेतनाओं को डकट्टा कर दिया है और आग पकड़ गई है। प्रतिभा के विस्फोट के लिए उप-युक्त हवा चाहिए।

यह भी स्मरणीय है कि तीर्थंकरों का सत्या से कोई सम्बन्ध नहीं। पच्चीसवाँ तीर्थंकर भी हो सकता था, लेकिन जैनो ने उसे स्वीकार नहीं किया। वही नई शृंखला का पहला पैगम्बर बना। यदि जैन पच्चीसवाँ तीर्थंकर मान लेते तो बुद्ध को एक अलग शृंखला में रखने की जरूरत न पड़ती। वे पच्चीसवें तीर्थंकर हो जाते। कठिनाई यह है कि जब भी कोई परम्परा अपने अन्तिम पुरुष को पा लेती है तो फिर वह उसके बाद दूसरों के लिए द्वार बन्द कर देती है। चूँकि नई प्रतिभा नए-नए उपद्रव लाती है, इसलिए उसे पुरानी शृंखला में स्थान पाना मुश्किल हो जाता है। इसलिए पच्चीसवें को नई शृंखला की पहली कड़ी होना पड़ता है। बुद्ध पच्चीसवें हो गए होते, कोई बाधा नहीं अगर जैनो ने द्वार खोल रखे होते। एक और कारण हो गया कि बुद्ध उसी वक्त मौजूद थे, इसलिए द्वार बन्द कर देना एकदम जरूरी था। अगर वे पुरानी शृंखला में आते तो सब अस्त-व्यस्त हो जाता, महावीर की बातें भी अस्त-व्यस्त हो जाती, नई व्यवस्था बनानी पड़ती और वह नई व्यवस्था मुश्किल में डाल देती। इस वजह से दरवाजा बन्द कर दिया गया और कहा गया कि चौबीस से ज्यादा तीर्थंकर हो ही नहीं सकते और यह कि चौबीसवाँ तीर्थंकर हो चुका।

यह सारी व्यवस्था अनुयायियों की है। उन्हें डर होता है कि यदि नई प्रतिभा



श्रीवृत्त हुई तो उनकी पुरानी व्यवस्था, पुरानी श्रृंखला अस्त व्यस्त हो जायगी । इस लिए व दरवाने बन्द कर रखते ह जिनसे उनकी श्रृंखला मे नई प्रतिमाओं का प्रवेश न हो । उनकी पुरानी श्रृंखला मे जो लोग सम्मिलित हा पात हैं उनमे भी अस्त व्यस्त करने की प्रवृत्ति थी, लेकिन अनुयायी उनकी वाता का श्रृंखलायुद्ध कर लेते ह उनमे सगति बिठा लेते हैं । मुहम्मद के बाद मुसलमानों ने दरवाजा बन्द कर लिया, नीजस के बाद ईसाइया ने और बुद्ध के बाद बौद्धा ने । कहा जाता है कि बुद्ध मत्स्य के रूप मे एक और अवतार लेंगे, लेकिन वह अवतार भी बुद्ध ही लेंगे, कोई दूसरी आत्मा नहीं ।

इस दो तीन सौ वर्षों मे रमण और कृष्णमूर्ति सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली आदमी हुए, लेकिन न तो रमण के पीछे कोई श्रृंखला बन सकी और न कृष्णमूर्ति के पीछे । कृष्णमूर्ति ऐसी श्रृंखला बनाने के विराध मे ह और रमण के पीछे कोई श्रृंखला ना न पाई । इस कीमन का कोई आदमी न मिला जा रमण के सन्देश को आगे बढा सने । रामकृष्ण को विवेकानन्द मिला । विवेकानन्द नाकितशाली पुण्य थे, अनुभवी गुरु । नाकितशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया, लेकिन चक्र मे ज्यादा जान नहीं है । वह चलनेवाला गहरी है । रामकृष्ण बहुत अनुभवी थे, लेकिन तीर्थ स्वर होने की कोई स्थिति नहा थी उनकी । इसलिए उन्होंने विवेकानन्द के कंधे पर हाथ रखकर शिष्य का काय विवेकानन्द से ही लिया । लेकिन चूकि विवेकानन्द अनुभवी न थे, इसलिए श्रृंखला बन न पाई । रामकृष्ण की मृत्यु हो गई । फिर विवेकानन्द रह गए और उन्होंने ही रामकृष्ण के अनुभवों को व्यवस्था दी । यह व्यवस्था विवेकानन्द की है । यदि विवेकानन्द के पास रामकृष्ण के अनुभव होते तो एक श्रृंखला शुरू हो जाती ।

## सप्तम अध्याय

### अस्तित्व और अहिंसा

एगो ह नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सड ।  
एव अदीण-मणसो, अप्पाणमणु सासड ॥'

१

महावीर उन थोड़े से चिन्तको मे हैं जिन्होंने जीवन के प्रारम्भ की बात को स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि मे अस्तित्व का कोई प्रारम्भ नहीं हो सकता। अस्तित्व सदा से है और सदा रहेगा। प्रारम्भ की धारणा हमारी नासमझी से पैदा होती है। हमारा भी कोई प्रारम्भ नहीं, कोई अन्त नहीं। जब कोई चीज बनती और मिटती है तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो भी बनता है वह मिटता है। लेकिन बनना और मिटना प्रारम्भ और अन्त का पर्याय नहीं है, क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप मे मौजूद होती है। इसी तरह जो चीज मिटती है वह मिटने के बाद किसी दूसरे रूप मे मौजूद हो जाती है। महावीर कहते हैं कि जीवन मे सिर्फ रूपान्तरण होता है। प्रारम्भ असम्भव है, क्योंकि अगर हम यह माने कि कभी प्रारम्भ हुआ तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारम्भ कैसे होगा? अगर उसके पहले कुछ भी न हो तो प्रारम्भ होने का उपाय भी नहीं। अगर हम यह मान ले कि कुछ भी न था—न तो समय था और न स्थान ही—तो प्रारम्भ कैसे हुआ? प्रारम्भ होने के लिए कम से कम समय तो पहले चाहिए ही ताकि प्रारम्भ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है तो सब पहले हो गया।

इस जगत् मे मौलिक रूप से दो ही तत्त्व हैं—समय और स्थान। महावीर की दृष्टि मे प्रारम्भ की बात हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारम्भ नहीं हुआ और, याद रहे, जिसका कभी कोई प्रारम्भ नहीं हुआ उसका कभी अन्त भी नहीं हो सकता, क्योंकि अन्त होने का मतलब होगा कि एक दिन कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा?

---

१. 'मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और मैं किसी दूसरे का नहीं हूँ,'—इस प्रकार अदीन मन से विचारता हुआ आत्मा को समझाये (समझाना चाहिए)।

अस्तित्व अनादि है, अनन्त है, सनातन है । लेकिन रुपांतरण रोज होता है । कल जो रेत थी वही आज पहाड़ है, आज जो पहाड़ है, कौन जाने वही कल रेत में परिवर्तित हो जाय । लेकिन होना नहीं मिटेगा । रेत में भी वही था, पहाड़ में भी वही होगा । अस्तित्व का अनस्तित्व होना उतना ही असम्भव है जितना अनस्तित्व का अस्तित्व होना । इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही नहीं मानी । उन्होंने कहा कि जय स्रष्टि की गुरुआत ही नहीं होती तो शुद्धात करनेवाले की धारणा को बीच में लाना ठीक नहीं । जय शुद्धात ही नहीं होती तो स्रष्टा की क्या जरूरत ? यह बड़े साहस की बात थी उन दिनों । उन्होंने कहा—स्रष्टि है, पर स्रष्टा नहीं, क्योंकि अगर स्रष्टा है तो प्रारम्भ की बात माननी पड़ेगी । यदि स्रष्टा है तो भी गूँथ से उसका प्रारम्भ कहा हो सकता । और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर गूँथ कहना क्या है ।

आस्तिक्य का कहना है कि यदि कोई चीजा को बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए । लेकिन आस्तिक्य ने एक गहरा सवाल किया—अगर चीजा का बनानेवाला कोई है तो फिर परमात्मा को बनानेवाला भी होना चाहिए । और फिर उस बनानेवाले का बनानेवाला फिर उसका, फिर उसका । इस प्रकार एक अंतहीन विवाद लगा हो जाएगा । इसलिए, महावीर कहते हैं कि आस्तिक्य भूल में है और अपनी मूर्ख के कारण ही वह नास्तिक्य के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता ।

स्वयं महावीर परम आस्तिक्य है । लेकिन वह कहते हैं कि बनानेवाले को बीच में लाने की जरूरत नहीं है । अस्तित्व पर्याप्त है । कोई बनानेवाला नहीं है । हाँ सबना है कि हमका पता चल जाय कि पृथ्वी का प्रारम्भ कब हुआ और इसका अन्त कब होगा लेकिन पृथ्वी जीवन कहा है, जीवन का एक रूप है । इसी प्रकार में भी जीवन नहीं है जीवन का सिर्फ एक रूप है । अनन्त जा है गहराई में, वह सदा से है । उससे ऊपर की लहर आई है गई है बहती है । आएंगी, जाएंगी, बदलेंगी । परन्तु ना गहराई में है जो केन्द्र में है, वह सदा में है और सदा रहेगा । ऐसा ही समझ लें कि अस्तित्व एक सागर है, उस पर लहर उठती हैं आती हैं, जाती हैं लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारम्भ हुआ हो, न समा है और न हो सकता है । इसी बात का हम चाहता इस प्रकार समझ सकते हैं । हम यहाँ लफ्फो के तन्ना पर बैठे हुए हैं । यदि हमसे पूछ सकता है कि आपका स्थितन समाल रगा है ? हम कहेंगे—कड़ी के तन्ना । फिर वह पूछ सकता है कि लफ्फो के तन्ना का कौन समाल हुए है ? हम कहेंगे—तमा । वह पूछ सकता है जमीन का कौन समाले हुए है ? हम उत्तर देंगे—ग्रहा उपग्रहा का पुनःवासण । फिर वह पूछ सकता है कि ग्रहा उपग्रहा का कौन समाल हुए है तो शायद हम और गोजन चले जायें । अनन्त यदि कोई पूछे कि हम समग्रको, हम पूरे को निगम मनी ग्रह उपग्रह आ गये हैं कौन समाल हुए है तो



कहना पड़ेगा कि अब बात जरा ज्यादा हो गई। यह प्रश्न असंगत है कि इस समग्र को किसने सँभाल रखा है, क्योंकि 'समग्र' और 'किसने' की धारणा ही परस्पर विरोधी है। समग्र के बाहर यदि कुछ है तो समग्र की समग्रता पूरी कहाँ हुई ? अगर सँभालनेवाले को हम बाहर रखते हैं तो समग्र अभी पूरा नहीं हुआ और अगर सब-कुछ उसके भीतर है तो बाहर कोई वचता नहीं जो उसे सभाले। सबको कोई भी सँभाले हुए नहीं है—सब स्वयं सँभला हुआ है। इसलिए महावीर कहते हैं कि जीवन स्वयंभू है—न इसको बनानेवाला है और न मिटानेवाला। यह स्वयं है।

मेरी अपनी समझ है कि जो लोग अस्तित्व की गहराइयों में जाएँगे वे स्रष्टा की धारणा को कभी स्वीकार नहीं कर सकते। चूँकि हम लहरों का हिसाब रखते हैं इसलिए हम परम सत्य के सम्बन्ध में भी पूछना चाहते हैं कि वह कब शुरू हुआ, उमका कब अन्त होगा। सूरज बनेगा, सूरज मिटेगा। वह भी एक लहर है। पृथ्वी दो अरब वर्ष चलेगी। वह भी मिटेगी, बनेगी। वह भी एक लहर है। हजारों पृथ्वियाँ बनी हैं और मिटी हैं। हजारों सूरज बने हैं और मिटे हैं। प्रतिदिन कहीं-न-कहीं कोई सूरज ठंडा हो रहा है और किसी-न-किसी कोने में कोई नया सूरज जन्म ले रहा है। इस वक्त भी अभी जब यहाँ बैठे हैं, कोई सूरज बूढ़ा हो रहा है। आकार बनेगे और बिगड़ेगे, आकृति उठेगी और गिरेगी। सपने पैदा होंगे और खोएँगे। लेकिन जो सत्य है, वह सदा है। वस्तुतः यह कहना भी गलत है कि सत्य है, क्योंकि जो है वही सत्य है। सत्य के साथ 'है' को भी जोड़ना बेमानी है, क्योंकि 'है' उसके साथ जोड़ा जा सकता है, जो 'नहीं है' हो सकता है। हम कह सकते हैं कि 'यह मकान है', क्योंकि 'मकान नहीं है' यह भी हो सकता है। लेकिन 'सत्य है'—ऐसा कहने में कठिनाई है, क्योंकि 'सत्य नहीं है'—यह कभी नहीं हो सकता। इसलिए 'सत्य' और 'है' पर्याय-वाची हैं। इनका एक साथ दोहरा उपयोग करना पुनरुक्ति है।

इस तथ्य का थोड़ा सा खयाल आ जाय तो सब बदल जाता है। तब पूजा और प्रार्थना नहीं उठती, तब मस्जिद और मन्दिर खड़े नहीं होते—तब आदमी ही मन्दिर बन जाता है। आदमी का उठना-बैठना, चलना-फिरना सब पूजा और प्रार्थना हो जाती है। इस बात का बोध हो जाता है कि मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है और वह सबके भीतर है, वह एक ही है। इस बोध के बाद व्यक्ति खो जाता है, अहंकार मिट जाता है। और तब जिसका जन्म होता है उसी का नाम है 'बदला हुआ चित्त'।

## २

मेरी दृष्टि में जड़ और चेतन दो पृथक् चीजें नहीं हैं। वे केवल पृथक् दिखाई पड़ती हैं। जड़ का मतलब है इतना कम चेतना कि हम उसे अभी चेतन नहीं कह

पात, चेतन का अर्थ है इतना कम जड़ कि हम उसे अभी गड़ नहीं कह पाते । वे एक ही चीज का दो छार हैं । जड़ता चेतन हाती चली जा रही है । उसमें भीतर फूटा चेतन छिपा है । फल सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है । जिस हम गड़ कहते हैं वह अप्रकट चेतन है—गाती जिसकी अभी चेतना प्रकट नहीं हुई । जड़ में हम चेतन दिखाई नहीं पड़ता, कारण कि हमारी देखने की क्षमता बहुत सीमित है । पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है जार चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति । इसलिए मरी नष्टि में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का झगडा अर्थ नहीं रखता । वह आध गिगम का झगडा है । कोई कह सकता है कि गिलास आधा खाली है और बरत गिगम के गाली हाने पर दे सकता है । वही दूसरा व्यक्ति इस बात पर जार दे सकता है कि गिलास आधा भरा है । दाता ही ठीक कहते हैं सिर्फ उनका चार भिन्न है । एक गाली पर जोर देकर चला है दूसरा भरे पर । इसलिए अध्यात्मवाद और पदार्थवाद में बुनियादी भेद गता है । भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आत्मी को राक सकता है विभाग से । अध्यात्मवाद विकासगीत बना सकता है आदमी का । जहाँ पदार्थवाद मनस्य को एकत्म उदास कर सकता है वहाँ अध्यात्मवाद गति देता है विकास के द्वार खोलता है ।

दूसरी बात—म कहता हूँ कि अत गही हा सकता, अत असम्भव है । अत इसलिए असम्भव है कि किसी चीज का अत गदा दूसर का प्रारम्भ हाता है । आर प्रारम्भ की अवधारणा असम्भव है क्योंकि प्रारम्भ के लिए भी पहले कुछ सत्ता में होना चाहिए नहीं तो प्रारम्भ हा ही नहा सकता । यानी प्रारम्भ का सम्भव के लिए भी प्रारम्भ के पहले अस्तित्व चाहिए । और जब पहले अस्तित्व चाहिए तो वह प्रारम्भ नहा रह गया । जहाँ कुछ अत होता है, वही प्रारम्भ होता है यानी प्रत्येक अत प्रारम्भ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारम्भ अत को जन्म देता है । अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस गि पृथ्वी का प्रारम्भ हुआ तो हम पाएंगे कि उसका पहले कुछ था जिससे प्रारम्भ हुआ । फिर जब उसका पता लगा लिया तो पता चला कि उसके भी पहले कुछ था जिससे प्रारम्भ हुआ । गता प्रारम्भ काय न गता हो सकता और अगर गूय में प्रारम्भ हा सकता है तो गूय का गूय बनना गन्त होगा । उसका मतलब हाता कि काय न चीज की तरह कुछ छिपा है या प्रकट होता । फिर वह गूय न रहा । गात किता की यह जाय, प्रारम्भ का माग्ना असम्भव है । प्रारम्भ कभी है हा गता ।

हम सबक मत में यह प्रकाश टट सकता है कि ज्ञान का निम्न निम्न गुणों का अनिर्गुण परिणामितियों में महावीर-अन सन्निध का विस्तार क्या हाता ? उत्तर साधक

मे आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें उसका कोई उल्लेख नहीं है। उल्लेख न होने का कारण बहुत गहरा और बुनियादी है। महावीर-जैसी चेतना की अभिव्यक्ति में परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए 'भिन्न-भिन्न परिस्थिति' कहने का कोई अर्थ नहीं। भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त सदा समान है। प्रत्येक स्थिति में साधारण आदमी का चित्त रूपान्तरित होता रहता है। जैसी स्थिति होती है वैसा चित्त हो जाता है। इसी को महावीर बन्धन की अवस्था कहते हैं। स्थिति दुख की होती है तो उसे दुखी होना पड़ता है, सुख की होती है तो वह सुखी हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नहीं है। सिर्फ बाहर की स्थिति जैसा मौका देती है चित्त वैसा ही हो जाता है। इसका मतलब यह भी हुआ कि चेतना अभी उपलब्ध ही नहीं हुई।

असल में महावीर होने का मतलब ही यही है कि भीतर अब कुछ भी नहीं होता। जो होता है वह सब बाहर होता है। यही महावीर, काइस्ट, बुद्ध या कृष्ण होने का अर्थ है। भीतर विलकुल भ्रष्टा छूट जाता है। वे दर्पण-मात्र रह जाते हैं।

दो तरह के चित्त हैं जगत् में—फोटो-प्लेट की तरह या दर्पण की तरह। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं उन्हें को राग-द्वेष-ग्रस्त कहते हैं। असल में फोटो-प्लेट बड़ा राग-द्वेष रखती है। वह जकड़ती है जल्दी, फिर छोड़ती नहीं। राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है। समाविस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह जीता है। वह न सम्मान को पकड़ता है और न गाली को। इसलिए महावीर के चित्त की अलग-अलग स्थितियाँ नहीं हैं जिनका वर्णन किया जाय। इसलिए वर्णन नहीं किया गया। कोई स्थिति ही नहीं है। एक समता आ गई है चित्त की। गाली देनेवाले या कान में कीले ठोकनेवाले भी उस चित्त को विचलित नहीं कर पाते। ऐसा कहना गलत है कि महावीर ने ऐसे लोगों को क्षमा कर दिया और आगे बढ़ गए। क्षमा तभी की जा सकती है जब मन में क्रोध आ गया हो। क्षमा अकेली बेमानी है। तो मैं आपसे कहता हूँ कि महावीर क्षमावान् नहीं थे क्योंकि महावीर क्रोधी नहीं थे। वे शून्य भवन की तरह थे। भवन में आवाज गूँजती थी, निकल जाती थी और फिर भवन शून्य हो जाता था। हम फर्नीचर से भरे लोग हैं, फोटो-प्लेट ने भीतर बहुत इकट्ठा कर लिया है, इसलिए आवाज गूँजती ही नहीं।

अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड़-जैसा मालूम पड़े, क्योंकि हम जड़ को ही पहचानते हैं। परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे-जैसा मालूम होने लगे। उतना ही सरल, उतना ही निर्दोष। शायद बच्चे-जैसा व्यवहार भी करने लगे और तब हमारे लिए यह तय करना मुश्किल हो जाय कि यह आदमी मन्दबुद्धि है या परम ज्ञानी। लेकिन दोनों में बुनियादी फर्क है। सन्त की सरलता ज्ञान की है। उसकी सरलता पूर्ण उपलब्धि की सरलता है। वह उन



अनुभव से गुजर चुका है जिनसे बच्चे को गुजरना पड़ेगा। बच्चे की सरलता अज्ञान का है। वह अभी निर्दोष दीखता है, लेकिन उसका निर्दोषता जाती रहेगी। वह जटिल होता चला जायगा। किन्तु सत की सरलता लीट आई है वह फिर निर्दोष हो गया है। अब इस निर्दोषता के खो जाने का सवाग नहीं है।

अब एक अन्य प्रश्न पर विचार करें। पूछा जाता है कि क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है? क्या महावीर के बाद अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ? पहली बात यह है कि कुछ ऐसी चीज हैं जो कभी विकसित नहीं होती—विकसित हो ही नहीं सकती। बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुए पच्चीस सौ साल हो गए। यह पूछना यह है कि अब जिन्हें ज्ञान उपलब्ध हुआ है वह बुद्ध के ज्ञान से विकसित है या नहीं? ध्यान ज्ञान के विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ध्यान है स्वयं में उत्पन्न ज्ञान। स्वयं में चाह लाख साल पहले उत्पन्न हो और चाहे अब उत्पन्न—एक ही प्रकृति। स्वयं में उत्पन्न होना अनुभव एक है स्वयं में उत्पन्न की स्थिति एक है। महावीर की अहिंसा उनकी स्वानुभूति का ही बाह्य परिणाम है। भीतर उन्होंने जाना जीवन की एकता को और बाहर उनके व्यवहार में जीवन का एकता अहिंसा के रूप में प्रतिफलित हुआ। अहिंसा का मतलब है जीवन की एकता का सिद्धांत। इस बात का सिद्धांत कि जो जीवन भरे भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने का हाथ चोट किस पहुँचा सकता हूँ? मैं ही हूँ तुम भी फटा हुआ। जिसे यह अनुभव हुआ कि मैं ही सबमें फैला हुआ हूँ, या सब में ही जुड़े हुए जीवन हैं—उनके व्यवहार में अहिंसा फलित होती है। अहिंसा कम और ज्यादा नहीं हुआ करती। वह वक्त का सामान होती है या प्रेम के समान। जो वक्त कम है वह वक्त ही नहीं है। प्रेम या तो होता है या नहीं होता—उसके टुकड़े नहीं होते, प्रेम विकसित सभी हो सकता है जब वह थोड़ा थोड़ा हो। अवसर हमारी पसन्द विकसित होता है इसलिए हम सोचते हैं कि प्रेम विकसित हो रहा है। पसन्द और प्रेम में बहुत फर्क है। पसन्द कम और ज्यादा हो सकती है लेकिन प्रेम न कम होता है न ज्यादा। चाहे तो वह होता है या नहीं होता। दुनिया में अहिंसा, प्रेम—जसी चीजें जब उपलब्ध होता हैं तो पूर्ण ही, अथवा बिलकुल उपलब्ध नहीं होता।

अज्ञान की डिग्रियाँ होती हैं, ज्ञान की नहीं। कोई कम अज्ञानी हो सकता है और कोई ज्यादा अज्ञानी। लेकिन एक आदमी कम ज्ञानी हो और दूसरा ज्यादा ज्ञानी—यह बिलकुल ही असंगत, निरर्थक बात है। दो अज्ञानियाँ में भी ज्ञान का फल नहीं होता, सिर्फ सूचना का फल होता है। चूँकि हम अज्ञानी हैं इसलिए छोटे-बड़े माप में जीते हैं और ज्ञानियों के भी छोटे बड़े होने का हिसाब लगाते रहते हैं। इसलिए ही तो पूछते हैं कि बनीर बड़े कि नानक बड़े कि महावीर, राम बड़े कि कृष्ण, ब्राह्मन् बड़े कि मुहम्मद? ज्ञानियों में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। एक



सीमा है मनुष्य की। उस सीमा के बाहर मनुष्य छलाँग भर लगा जाय तो फिर परमात्मा की कशिश उसे खींच लेती है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता। उस सीमा के बाद कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता। फिर सब पर बराबर कशिश काम करती है। उसी सीमा को मैं कहता हूँ विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार में कूद जाता है उस दिन के बाद उसके लिए कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता। हमारे सब भेद-भाव कूदने के पहले के भेदभाव है।

महावीर ने जो छलाँग लगाई है वही कृष्ण की छलाँग है, वही क्राइस्ट की। इसलिए अहिंसा का कोई विकास नहीं होता। महावीर ने इसका कोई विकास किया हो, इस भूल में भी नहीं पड़ना चाहिए। अनुभव की अभिव्यक्ति में भेद है, अहिंसा का अनुभव समान है। ऐसा कुछ नहीं है कि महावीर ने पहली बार अहिंसा का अनुभव किया हो। लाखों लोगों ने पहले भी किया था और लाखों लोग पीछे करेंगे। यह अनुभव किसी की वपौती नहीं है। परिवर्तनशील जगत् में विकास होता है। शाश्वत, सनातन अन्तरात्मा के जगत् में विकास नहीं होता। महावीर—जैसे व्यक्ति चाक की कील के निकट पहुँच गए हैं—जहाँ कोई लहर नहीं, कोई तरंग नहीं, जहाँ कभी विकास नहीं होता, गति नहीं होती। याद रहे—कील नहीं चलती, इसलिए चाक चल पाता है। जो कील का सहारा पकड़ लेता है, वह कभी चूर नहीं होता। अस्तित्व के विकासचक्र की कील का ही नाम परमात्मा, धर्म या आत्मा है।



आप कहते हैं कि अहिंसक व्यक्ति का भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय में सदेह पैदा करता है। ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है उसका कोई विरोधी नहीं होता। जिसके मन में द्वेष, विरोध, घृणा, हिंसा न हो, उसके प्रति घृणा, हिंसा और द्वेष कैसे हो सकता है? ऊपर से यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पड़ती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है, सिद्धान्त जितने सरल होते हैं जीवन उतना सरल नहीं है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के विरोधी पैदा होने की सम्भावना अधिक है। उसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि चूँकि हम सब हिंसक हैं, इसलिए हिंसकों से हमारा ताल-मेल बैठ जाता है, चूँकि अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच अजनबी है, इसलिए उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी में हम इतने ज्यादा निन्दित प्रतीत होने लगते हैं कि इसका बदला लिये बिना नहीं रह सकते। पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्ति के मन में, अनजाने ही, तीव्र बदले का भावना पैदा करता है।

महावीर के लाखों विरोधी रहे होंगे। यह स्वाभाविक है। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर सन्देह नहीं होता। इससे खबर मिलती है कि आदमी पूर्ण अजनबी था,

ऐस अजनबी को स्वीकार कर सनता बठिन था । जिसके लिए स्वीकार करना सरल था उसक लिए वे भगवान थ । भगवान बनाना भी जस्वीकार करने की ही एक तरकाव है । यह दूसरी और आखिरी तरकीब है जिससे हमन उन्हें मनुष्य-जानि से बाहर निकाल दिया है । अगर व्हरे तक मेरी आवाज न पहुँचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गुगा था । मेरे बोलने पर इसलिए शक नहीं किया जा सकता कि वहरा तक मेरी आवाज नहीं पहुँची । महावीर के अहिंसक होने म इसलिए शक नहीं हो सकता कि हिंसक चित्त तक उनकी आवाज नहीं पहुँची । बहुत गहरे म हम व्हरे हैं ।

इसी सम्बन्ध मे यह भी पूछा जाता है कि महावीर के प्रेम मे क्या कुछ कमी थी जा वे मखली गोगाल्व को समझा न पाण ? निश्चित ही, पूण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है । लेकिन इसमे यह सिद्ध नहीं होता कि पूण प्रेमी समझा ही पाए । क्योंकि दूसरी तरफ पूण घणा भी हो सकती है जा समझने को राजी न हो पूण गहरापन भी हो सकता है जा मुनने को तैयार न हो । महावीर की अहिंसा का जाच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जाच करना गलत है । सोये महावीर को ही देखना उचित है । सूरज का जानना हो तो किसी अंधे आदमी को माध्यम बना कर जानन की कोशिश करना अनुचित है । लेकिन कई बार ऐसा होता है कि हमारी खुश की आँखें इतनी कमजोर होती ह कि सीधा देखना मुश्किल हो जाता है । इसलिए हम ग्रीच के गुरुआ को खोजते हैं जाचार्यों से सम्भव कायम करते ह, टीका-कारों की सहायता लेते हैं । गीता को सीधा नहीं देखते, टीकाकारा क माध्यम से देखत है ।

यह भी याद रह कि महावीर न 'सिद्धात्ता की चर्चा नहीं की और न अहिंसा, सत्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह अर्चय आदि सिद्धान्त ही हैं । इसलिए इनक सीये प्रयोग की बात ही गलत है । इनका सीया प्रयोग हो ही नहीं सकता । उदाहरण क लिए उन आदमी को लें जो भूसा इकट्ठा करना चाहता है । ऐसे व्यक्ति को गेहूँ बोना पडता है भूसा नहीं । अगर वह भूसा पदा करन के लिए भूसा ही बाँदे तो जो पास का भूसा है वह भी खेत म सड़ जायगा कुछ भी पदा न होगा । अहिंसा, अपरिग्रह अर्चय, अस्तेय—ये सिद्धान्त नहीं हैं उप-उत्पत्तियाँ हैं भूसे की तरह । जहाँ समाधि पैदा हाती है वहाँ ये सब भूसे की तरह आप ही पदा हा जात हैं । अहिंसा, सत्य आदि छाया की तरह आते हैं समाधि क अनुभव म । ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आ जात हैं । महावीर ने अहिंसा नहीं साधा क्योंकि अहिंसा साधन बात सिफ हिंसा को दयात है । आर दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता । अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार हा मिलेंगे । महावीर के भीतर है समाधि और बाहर है

ब्रह्मचर्य । अगर उन्होंने ब्रह्मचर्य की साधना की होती तो ब्रह्मचर्य होता बाहर और भीतर होता व्यभिचार । महावीर जैसे व्यक्ति को समझना हो तो बाहर से भीतर की ओर देखने की कोशिश न करना । भीतर से बाहर की ओर देखना ।

महावीर की जो उपलब्धि है, वह है समाधि । उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियाँ हैं वे हैं सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि । न तो ये सिद्धान्त हैं और न इनके सीधे प्रयोग की ही कोई जरूरत है । हाँ, करने की कोशिश की है बहुत लोगो ने और वे कोशिश में विफल हुए हैं, विकृत हुए हैं । प्रयोग तो करना है ध्यान का । सत्य, ब्रह्मचर्य आदि आएँगे छाया की तरह । अहिंसा नहीं साधनी है, साधना है ध्यान । अहिंसा फलित होती है । जैसे ही समाधि फलित होती है वैसे ही कुछ चीजें विदा हो जाती हैं । हिंसा विदा हो जाती है, क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का सम्बन्ध नहीं जुड़ता ।

अक्सर हमें लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरों को भी साधु बनाने के लिए कहते रहे । यह हमें इसलिए लगता है कि हम असाधु हैं और हमारी धारणा है कि अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पड़ेगा । सच्चाई यह है कि साधुता आती है, साधु बनना नहीं पड़ता । जो साधु बनता है उसकी साधुता थोड़ी, झूठ, आडम्बर-मात्र होती है । साधु बनना अभिनय की बात है । 'महावीर साधु बने'—यह उनके लिए गलत शब्दों का प्रयोग है । बनना होता है चेष्टा से; महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से । महावीर ने किसी को भी साधु बनने के लिए नहीं कहा । उन्होंने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है । प्रयास करके हम चाहे कुछ भी बन जायें, पर साधु नहीं बन सकते । साधुता तो आत्मपरिवर्तन है, पूरा-का-पूरा आत्मपरिवर्तन । गायद महावीर को पता भी न चला होगा कि वे साधु हो गए हैं । होने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त धीमी, शान्त और मौन है । बनने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त घोषणापूर्ण है, बैड-वाजे के साथ चलती है ।

आप ध्यान का छोटा-सा प्रयोग करें । यह आत्म-स्मरण का प्रयोग हो । आधा घंटा रोज बैठकर स्वयं रह जाएँ, सब भूल जाएँ । मन में जुआ न खेले, उतनी देर मन में शराब न पीएँ, मांस न खाएँ—बस इतना बहुत है । छह महीने के प्रयोग के बाद आप कहेंगे—जो आनन्द मैंने उस आधे घंटे में पाया वह सारे जीवन में न मिला । तब आप मांस नहीं खा सकते, शराब नहीं पी सकते । महावीर का ध्यान ऐसा ही था । जो उस ध्यान से गुजरेगा वह मांसाहार नहीं कर सकता । महावीर किसी को नहीं कहते कि मांसाहार न करो । वह ध्यान ही ऐसा है कि उससे गुजरनेवाला व्यक्ति मांसाहार कर ही नहीं सकता । वह ध्यान इतने जागरण और आनन्द में ले जाता है कि शराब का क्षणिक आनन्द उसके सामने ठहर नहीं पाता ।



५

लोग कहते हैं कि यद्यपि महावीर समानता के समर्थक थे फिर भी उनके सध में मा-वी-सध उपस्थित रहा था। इस सम्बन्ध में कुछ बुनियादी बातें ध्यान में रखनी होंगी। पहली बात तो यह है कि महावीर के मन में स्त्री पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव न था। समानता की पकड़ इतनी गहरी थी कि मनुष्य और पशु में या मनुष्य और पौधे में भी वे असमानता का भाव नहीं रखते थे। फिर भी स्त्री पुरुष के बीच साधु-सव में उन्होंने कुछ भेद किया था जिसके कुछ सूक्ष्म कारण हैं। महावीर स्त्री के विरोध में नहीं हैं स्त्री चित्त के विरोधी हैं। वे पुरुष के पक्ष में नहीं हैं लेकिन पुरुष होने का एक गुण है उसका पक्ष में है। पुरुषत्व का अर्थ है सक्रियता। महावीर का माग सभी सक्रियता का माग है। उनकी पूरी साधना—जसा मैंने पहल भी कहा है—सकल्य और श्रम की साधना है। तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुम्प होना पड़ेगा। इसी बात का लोग ने गम्भीर समझ लिया। एसा समझ लिया कि स्त्री योनि से मोक्ष असम्भव है। बात बिल्कुल दूसरी है। पुरुष यानि स ही मोक्ष हो सकता है महावीर के माग पर लेकिन पुम्प योनि का मतलब नारीर से पुम्प हो जाना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है निष्क्रियता का त्याग। जिस प्रकार लना को वध का सहारा चाहिए उसी प्रकार स्त्री भी पुम्प का सहारा मांगती है। महावीर महारे के एकदम गिलाफ है। तुमने सहारा मांगा कि तुम पशु हुए।

जना के एक तीसकर हैं—मल्लिवाइ। मल्लिवाई स्त्री थी, लेकिन दिगम्बरा ने उन्हें मल्लिनाथ कहा है। उन्हें स्त्री कहना वास्तव में बमानी है। उन्होंने कोई सहारा नहीं मांगा। इसलिए स्त्री कभी? मल्लिवाई कहा ही नहीं दिगम्बरा ने। उन्होंने कहा—मल्लिनाथ। पीछे झगड़ा खड़ा हो गया कि मल्लिवाई स्त्री थी या पुम्प? दिगम्बरो ने कहा—पुरुष दिगम्बरा ने कहा—स्त्री। दोनों ठीक हैं। मल्लिवाई स्त्री थी लेकिन उसका चित्त की जगह स्त्रिया जैसी न थी।

रवीन्द्रनाथ पुरुष थे मगर उनके पास स्त्रिया का-मा चित्त था। वे रवीन्द्रवाइ कह जा सकते हैं। नाथद सनो कविया के पास ऐसा ही स्त्रीचित्त होता है। असल में नाथद काव्य का जन्म ही नहीं हो सकता पुम्प चित्त से। स्त्री का पूरा चित्त काव्य, स्वप्न और कल्पना का है। असल में यवि का मतलब भी है निष्क्रिय चित्त।

महावीर की नृष्टि में न पुम्प ऊंचा है और न स्त्री नीची है। अतः यह भी कहते हैं कि स्त्री चित्त को माय नहीं है। स्त्री भी माय की अधिकारिणी है लेकिन चित्त पुम्प का होना चाहिए। हाँ, यदि मीरा के माग से जाना जाता है तो स्त्री चित्त हो सकती है। उस माग से पुम्प के लिए कोई मक्ति नहीं है। महावीर का माग पुम्प का माग है इसलिए उस माग पर स्त्री के लिए कोई गुआइश नहीं है। यह भी गलत है

कि अधिक लोग बीच का रास्ता पकड़ते हैं जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा-पाठ भी। ध्यान पुरुषमार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री-मार्ग का हिस्सा। दोनों के घोल-मेल से मुक्त होना मुश्किल है। महावीर के मार्ग पर स्त्रियाँ उपेक्षित हैं, ऐसा नहीं है, बल्कि स्त्री-चित्त उपेक्षित है जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुष-चित्त उपेक्षित है।

एक साध्वी ने कहा है कि महावीर के मार्ग पर यह बड़ी बेवृत्त बात है कि एक दिन के दीक्षित साधु को भी सत्तर वर्ष की दीक्षित साध्वी प्रणाम करेगी। यह पुरुष के लिए बहुत सम्मान की बात जान पड़ती है और लगता है कि इससे स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया। बात उलटी है। महावीर ने यहाँ अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दिया है। फ्रायड के पहले किसी आदमी ने ऐसी सूझ नहीं दिखलाई। लेकिन सूझ इतनी गहरी है कि दिखलाई नहीं पड़ती। चूँकि आक्रामक पुरुष-चित्त ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नहीं, इसलिए महावीर ने बड़ा मुगम उपाय किया है कि स्त्री पुरुष को आदर दे। स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उस पुरुष के अहकार को कठिनाई हो जाती है उस स्त्री को पाप की ओर ले जाने में। इसलिए महावीर ने कहा कि स्त्री कितनी ही वृद्धा हो, पुरुष को आदर दे, उसके पैर छू ले, ताकि उसके अहकार को कठिनाई हो जाय और वह स्त्री को पाप में ले जाने की कल्पना भी न कर सके। अगर ध्यान से देखा जाय तो मालूम होगा कि झुकती तो स्त्री है, किन्तु सम्मान उसे ही मिलता है, पुरुष का अनादर होता है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यह भी ध्यान रखे कि महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियाँ। यह अनुपात हमेशा ऐसा ही रहा है। साध्वियाँ जितनी साध्वियाँ होती हैं, साधु उतने साधु नहीं होते। चूँकि वे किसी भी काम में पहल नहीं करती, इसलिए जहाँ भी होती हैं वे वहीं रुक जाती हैं। अगर स्त्री को काम-वासना में दीक्षित न किया जाय तो वह आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर सकती है। स्त्री को काम-वासना में भी दीक्षित करना पड़ता है, धर्म-साधना में भी दीक्षित करना पड़ता है—वह पहल लेती ही नहीं। इसलिए निर्दोष लड़कियाँ मिल जाती हैं, निर्दोष लड़के बहुत मुश्किल से होते हैं। चूँकि लड़कियाँ कभी कोई पहल नहीं दे सकती, इसलिए महावीर ने व्यवस्था की कि हर स्थिति में साध्वी साधु को आदर दे। इससे पुरुष के अहकार की भी बड़ी तृप्ति हुई। साधुओं ने समझा होगा कि हमारा बड़ा सम्मान हुआ। वे आज भी यही समझ रहे हैं। लेकिन इस व्यवस्था का कारण विलकुल मनोवैज्ञानिक था। अगर एक स्त्री आपके पैर छू ले तो आप उस स्त्री को काम की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जायेंगे, आपके अहकार को बड़ी बाधा होगी। आप उस सम्मान की रक्षा करना चाहेंगे। यदि इस विधान के विपरीत पुरुष ही स्त्री के पैर छूता तो बात

उलटी होती। याद रहे कि स्त्री की कामुकता उसके पूरे शरीर में व्याप्त होती है। चूँकि पुरुष की कामुकता सिर्फ काम केन्द्र के पास होता है इसलिए उसे सिर्फ सम्भाग से आनन्द आता है। अगर पुरुष स्त्री के पर भी छू ले तो स्त्री में काम की सम्भावना जाग्रत हो सकती है।

महावीर की इस मनोवैज्ञानिक व्यवस्था की ऐसी व्याख्या किसी ओर न नही की। अतः तब के व्याख्याकार यही कहते रहें कि महावीर की इस व्यवस्था का कारण यह है कि पुरुष की यानि ऊँची है और स्त्री का नीची, इसलिए स्त्री ही पुरुष यानि को नमस्कार करे।

महावीर ने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए हैं—श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। उनकी माधना पद्धति श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। कोई सीधे ही एकदम साधु नहीं हो सकता। पहले उस श्रावक बनना होगा। साधना, ध्यान और सामायिक श्रावका के लिए हैं। जब वे इनसे गुजर जाएँ तब वे साधु-जीवन में प्रवेश कर सकते हैं। महावीर किसी को पहले ही साधु की दीक्षा नहीं देते। यह भी आवश्यक नहीं कि कोई साधु बने ही। श्रावक रहकर भी मोक्ष पाया जा सकता है। सिर्फ महावीर ने ही यह कहने की हिम्मत की है। साधु होना अनिवार्य नहीं है। मान लीजिए कि आप गहरे ध्यान में गए और आपका वस्त्र पहनना ठीक मालूम पड़ता है तो आप वस्त्र पहनना जारी रखें। यदि वस्त्र अनावश्यक प्रतीत हो तो छोड़ दें, अथवा नहीं। अयान—महावीर की आस्था है कि घर में रहकर ही यदि कोई ध्यानस्थ हो जाता है तो वह घर नहीं छोड़े। अगर उसे लगता है कि घर व्यर्थ है तो वह उसे छोड़ दे।

परम्परा से प्रामाणिक एवं निर्णीत महावीर के जीवन का यह बौद्धिक एवं तथ्यपूर्ण विश्लेषण समाज को स्वीकृत हो यह आवश्यक नहीं। समाज को मेरी बातें स्वीकृत हो इसका मुझे ध्यान नहीं। समाज का स्वीकृत हान से ही यह विश्लेषण ठीक हो सकता है ऐसी भी कोई बात नहीं। प्राथमिक रूप से जो मैं कह रहा हूँ समाज से उसकी अस्वीकृति की ही अधिक सम्भावना है लेकिन अगर जा मैं कह रहा हूँ वह बुद्धिमत्तापूर्ण, वैज्ञानिक एवं तथ्यगत है तो अस्वीकृति को टूटना पड़ेगा—अस्वीकृति जीत नहीं सकता। और अगर यह तथ्यपूर्ण नहीं है अवैज्ञानिक है तो अस्वीकृति जीत जायगी। मैं इस पर ध्यान नहीं देता कि मेरी बातों का कौन स्वीकार करता है कौन अस्वीकार। मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मैं कह देता हूँ। अगर वह सत्य होगा तो आज नहीं वरन् स्वीकार कर लिया जायगा। असत्य करोड़ा वर्षों तक चले ता भी वह असत्य ही है। सत्य मिलकुत् न चल पाए ता भी वह सत्य है। असत्य स्वीकृति में जाता है, किन्तु सत्य स्वीकृति की परवा नहीं करता। वह अस्वीकृति में जी लेता है क्योंकि उसका पास अपने पर हूँ, अपना साँस



है, अपने प्राण है और वह अनन्त काल तक प्रतीक्षा कर सकता है। मुझे चिन्ता नहीं कि लोग मेरी बातों को मानें ही। जिस व्यक्ति को ऐसी चिन्ता होती है वह कभी सत्य बोल ही नहीं सकता। जैसा हमारा समाज है, उसके जीने के लिए असत्य अनिवार्य-सा हो गया है। यदि दुःख, पीडा, शोषण, अहंकार, द्वेष आदि से भरे हुए इस समाज को जिलाना हो तो वह असत्य पर ही जी सकता है। अगर ऐसे समाज को बदल कर प्रेम से भरे हुए एक नए समाज की स्थापना करनी हो जिसमें ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-महत्वाकांक्षा आदि न हो तो फिर इसकी नींव सत्य पर कायम करनी होगी।

सभी चाहते हैं कि आनन्द मिले, लेकिन वे स्वयं को बदलना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि प्रकाश मिले, लेकिन उन्हें आँख न खोलनी पड़े। याद रहे कि महत्वाकांक्षी चित्त कभी भी आनन्दित नहीं हो सकता। उसे जो भी मिल जायगा उससे उसकी तृप्ति न होगी और जो नहीं मिलेगा उसके लिए वह पीडित रहेगा। महत्वाकांक्षा और आनन्द में विरोध है। प्रेम देना कोई भी नहीं चाहता, प्रेम माँगना चाहता है। यह भी ध्यान रहे कि जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी माँगता ही नहीं। माँगता सिर्फ वही है जो दे नहीं पाता। हमारी यही कठिनाई है कि हम हमेशा से यही चाहते रहे हैं कि आनन्द हो, शान्ति हो, प्रेम हो, लेकिन जो हम करते हैं वह इनका एकदम उलटा होता है। उससे न शान्ति हो सकती है, न प्रेम और न आनन्द। प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या में जी रहा है और चाहता है कि उसे आनन्द मिले। मगर ईर्ष्यालु चित्त कभी आनन्द नहीं पा सकता। ईर्ष्या और आनन्द परस्पर विरोधी अनुभूतियाँ हैं। उनके विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरुआत है। जैसे ही कोई इस बोध को उपलब्ध हो जाता है कि ईर्ष्या से भरे हुए चित्त में आनन्द का वास नहीं हो सकता, वैसे ही क्रान्ति शुरू हो जाती है, क्योंकि विरोध दिख जाए तो फिर उसमें जीना मुश्किल है।

अन्त में एक और प्रश्न पर विचार करें। इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार आसक्ति अथवा राग कर्म-बन्ध का कारण है उसी प्रकार द्वेष और घृणा भी। तब महावीर ने ससार, शरीर आदि के प्रति घृणा का भाव पैदा करके ससार त्याग का उपदेश क्यों दिया ?

राग-द्वेष दोनों एक ही तरह के उपद्रव के कारण हैं। राग का ही उलटा द्वेष है—राग शीर्षासन करता हुआ द्वेष है। दोनों फाँसते हैं, दोनों बाँध लेते हैं। मित्र भी बाँधता है, शत्रु भी बाँधता है। न तो हम मित्र को भूल पाते हैं और न शत्रु को। कभी-कभी तो शत्रु के मरने से हमारा बल ही खो जाता है, क्योंकि बल उसके विरोध में बनकर आता है। लेकिन जिसे बधन ही दुःख हो गया, वह न मित्र



बनाता है और न शत्रु । वह अपनी ही जिंदगी को दूर खड़ा होकर देखने लगता है, खुद प्रष्टा हो जाता है, राग-द्वेष व बाहर हो जाता है । कर्ता हमारा राग-द्वेष स धिरा हाता है जकर्ता साक्षी बन जाता है ।

महावीर ससार या शरीर के प्रति द्वेष नहीं सिखाते । लेकिन जिहाने महावीर का नहा समझा व जरूर ऐसी ही शिक्षा दत हैं । शरीर से ऐसा प्रेम करनेवाला आदमी मुश्किल से पदा हुआ होगा । ससार के प्रति न तो द्वेष सिखाते हैं और न राग करने की सलाह देते ह, क्योंकि वे तो कहते ही यह है कि द्वेष बांध लेता है, प्रेम बांध रता है । वे द्वेष सिखा ही नहीं सकते । व सिखात हैं कि अपने द्वेष अपने राग, अपनी घणा अपने प्रेम—इन सबके प्रति जाग जाओ । इन्हें जागकर देख लो । जिस दिन इन्हें पूरी तरह देख लोगे उस दिन पाओगे कि राग विराग, मित्रता शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । महावीर बाएँ जाना नहीं सिखा सकत क्योंकि व जानते हैं कि जो बाएँ जायगा उसे दाएँ जाना पड़ेगा । वे एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम बाएँ जाओ न दाएँ—ठहर जाओ बीच में खड़े हो जाओ । न द्वेष रह और न घणा न राग और न विराग । ध्यातव्य है कि महावीर विरागी नहीं हैं । वस्तुतः जो विरागी उनके पीछे पड़े हुए है, वे गल्ती म पड़े हुए हैं । महावीर को उन विरागिया से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि विरागी हुए कि उन्होंने राग अजित करना शुरू कर दिया । महावीर कहत हैं कि प्रेम द्वेष दोनों को देख ला । दाना को पहचान ला । फिर तुम अपने म आ जाओगे । तीन दिशाएँ हैं ।' एक प्रेम की ओर ले जाती है दूसरी घणा की ओर । जा इनके द्वन्द्वा से बच जाता है वह त्रिकोण के तीसरे बिंदु पर आ जाता है जहा जाना आना नहीं है सिर्फ ठहर जाना है । वहाँ प्रज्ञा स्थिर हो जाती है । वहाँ ठहर कर हम देव पाते हैं । अगर राग और द्वेष को देखना है ता किसी की ओर न जाएँ । ठहरकर देख लें कि राग क्या है द्वेष क्या है क्रोध क्या है ।

यह केवल ध्यान की भूमिका है । जस ही कोई स्वयं म ठहर जाता है वसे ही वह उस द्वार पर पहुँच जाता है जहा स ज्ञान की गुरुआत होती है । लेकिन स्वयं म खड़ा हाता पहला बिंदु है । फिर वहा से यात्रा भीतर की ओर हो सकती है । राग द्वेष म होन का अर्थ है स्वयं के बाहर हाता कही ओर होना । जा आदमी धन इकट्ठा करने म लगा है उसका ध्यान धन पर हागा और जा धन के त्याग म लगा है उसका भी ध्यान धन पर । धन पर ही दृष्टि होगी उन दोनों की ।

## अष्टम अध्याय

### निगोद और अन्तर्यात्रा

सिद्धाण वुद्धाण पार-गचाण परपर-गचाण ।

लोअग्गमुवगचाण, नमो सचा सव्व-सिद्धाणं ॥'

—'सिद्धाण वुद्धाण'—नत्र (सिद्धाण-थुई)

१

निगोद की धारणा महावीर की मौलिक धारणा है। इसका अर्थ है—बन्धन में प्रसुप्त आत्माओं का लोक। निगोद प्रथम है, मोक्ष अन्त में और संसार मध्य में। निगोद से उठकर आत्मा संसार में आती है, संसार से उठकर मोक्ष में। मोक्ष है मुक्ति, निगोद है पूर्ण अमुक्ति जहाँ बिल्कुल अन्वकार है, जहाँ गहरी निद्रा है—यानी जहाँ इसका भी होश नहीं है कि बन्धन है। निगोद मूर्छित आत्माओं का वह लोक है जहाँ से आत्माएँ धीरे-धीरे उठती हैं और इस मध्यम लोक में आती हैं। संसार है स्वप्न, निगोद है निद्रा और मोक्ष है जागृति। अब प्रश्न उठता है कि आत्माएँ कहाँ से आती हैं? महावीर यह नहीं मानते कि आत्माओं का सृजन होता है। आत्माएँ सदा से हैं। परन्तु वे आती कहाँ से हैं? महावीर कहते हैं कि इस जगत् में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अनन्त न हो। कोई भी चीज सख्या में हो नहीं सकती, क्योंकि अगर चीजे सख्या में हो तो फिर जगत् असीम नहीं हो सकेगा—और जगत् सीमित नहीं है। निगोद का अर्थ है—अनन्त आत्माएँ जहाँ प्रसुप्त हैं और वह भी अनन्त काल से। आत्माएँ एक-एककर उठती हैं और संसार में प्रवेश करती हैं, फिर संसार से मुक्त होती चली जाती हैं और दूसरे लोक में पहुँचती हैं जहाँ वे परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं। प्रश्न है कि क्या कभी ऐसा भी होगा कि सभी आत्माएँ हो, जायँगी? नहीं ऐसा कभी होने को नहीं, कारण कि आत्माएँ अनन्त हैं। 'अनन्त' शब्द हमारे खयाल में नहीं आता, क्योंकि हमारा मस्तिष्क अनन्त की धारणा को नहीं पकड़ पाता। अनन्त का मतलब है जहाँ सख्या होती ही नहीं। लेकिन असंख्य का मतलब अनन्त नहीं होता।

---

१. सिद्धिपद को प्राप्त किए हुए, सर्वज्ञ, संसार का पार प्राप्त किए हुए, परम्परा से सिद्ध बने हुए, और लोक के अग्रभाग पर गए हुए, ऐसे सर्वसिद्ध भगवन्तो के लिए सदा नमस्कार हो।

तो निगोद का अर्थ है मूर्छित आत्माआ का लोक । ससार है जब मूर्छित आत्माआ का लोक, मोक्ष है परम अमूर्छित आत्माआ का लोक । चूँकि हमारा मन सख्याआ में ही सोचना है इसलिए निरन्तर यह सवाल उठता है कि अमूर्छित आत्माएँ कितनी हैं और कितनी मुक्त हो गई हैं ? यह न मूलें कि आत्माएँ अनन्त काल से मुक्त हो रही हैं और अनन्त आत्माएँ मुक्त हो चुकी हैं । मजे की बात तो यह है कि अनन्त से कितना ही निवालो पीछे अनन्त ही शेष रह जाता है । गणित की बड़ी पहेलियाँ में से यह एक है कि अनन्त से हम कुछ भी निकालें, अनन्त ही शेष रहता है । इसलिए निगोद आज भी उतने का उतना ही बना रहगा । आत्माएँ मुक्त होती चली जायँगी, लेकिन मांस में भीड़ नहीं बढ़ेगी । सामान्य गणित इस रहस्य को सुझा नहीं सकता । किंतु गणित की कई बातें आज गलत सिद्ध हो चुकी हैं । उदाहरण के लिए नयी ज्योमेट्री की इस धारणा को लें कि सीधी रेखा होती ही नहीं । चूँकि जमीन गोल है, इसलिए कितनी सीधी रेखा क्या न हो यदि तुम उसको दोनों तरफ बनाते चले जाओ तो अंत में वह वृत्त बन जायगी । सभी सीधी दीखनवाली रेखाएँ वृत्त का हिस्सा हैं और वृत्त का हिस्सा सीधा नहीं हो सकता । इसलिए जगत में कोई रेखा सीधी नहीं है । यह भी हमारे खयाल में आना मुश्किल है । साधारण गणित कहता है कि बिंदु वह है जिसमें लम्बाई चौड़ाई नहीं है, मगर ज्योमेट्री कहती है कि जिसमें लम्बाई चौड़ाई न हो वह तो हो ही नहीं सकता इसलिए कोई बिंदु नहीं है—सभी रेखाओं के खंड हैं, छोटे खंड । रेखा है बड़े वृत्त का खंड और बिंदु है रेखा का खंड । सभी बिंदुओं में लम्बाई-चौड़ाई होती है । सख्या बिल्कुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है । यहाँ कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसकी मर्यादा हो । प्रत्येक चीज असत्य है और अगर हम असत्य का खयाल करें तो गणित बेकार हो जाता है । वह बना है काम उलझा हुआ हिसाब से सख्या से । इस काम चलाऊ गणित से अगर हम जगत के सत्य का जानने जायें तो हम मुश्किल में पड़ जायेंगे । महावीर की बात गणित से उलटी है । वस्तुतः जो भी सत्य के खोजी हैं उनकी बात गणित से उलटी होगी । इसलिए उपनिषद् भी कहती है कि वह पूरा ऐसा है कि उससे अगर तुम पूरा को भी बाहर निकाल लो तो पूरा ही शेष रह जाता है । उसमें जरा भी कमी नहीं पड़ती । हम जब भी कुछ निकालते हैं तब पीछे कभी पड़ जाती है क्याकि हमें सीमित से ही कुछ निकाला है सदा । अगर हमने असीमित से भी कुछ निकाला होता तो हम पता चलता । असीमित या हम कुछ भी अनुभव नहीं ।

१ ॐ पूणमद पूणमिद पूर्णत पूणमुदच्यते ।

पूणस्य पूणमादाय पूणमेवावशिष्यते ॥

—ईशावास्योपनिषद् १



इसलिए निगोद अनन्त है, उसमें कभी कमी नहीं पड़ती। मोक्ष अनन्त है, वहाँ कभी भीड़ नहीं होती। दोनों के बीच का सन्तार भी अनन्त है, क्योंकि दो अनन्तों को जोड़नेवाली चीज अनन्त ही हो सकती है। दो अनन्तों का जो नेतु बनता है, वह सीमित कैसे हो सकता है? अनन्तों को अनन्त ही जोड़ सकता है।

और यह भी स्मरण रहे कि निगोद से आत्मा सीधे मोक्ष तक नहीं पहुँच सकती। मूर्च्छित आत्मा को अमूर्च्छा के रास्तों से गुजरना ही पड़ता है। जब आप निद्रा से जागते हैं तो विलकुल जाग नहीं जाते; बीच में तन्द्रा का एक काल है, जिससे आप गुजरते हैं। सोने और जागने के बीच तन्द्रा का एक अल्पाधिक काल होगा ही, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जब आप न तो जाग गए होते हैं और न सोए हुए। सोने की ओर भी झुकाव होता है और जागने की ओर भी। निगोद से सीधे कोई मोक्ष में नहीं जा सकता। सन्तार से गुजरना ही पड़ता है।

यह भी संभव नहीं कि मुक्त आत्माएँ पुनः सन्तार को लौट आएँ। निगोद से सन्तार और सन्तार से मोक्ष की यात्रा जल की यात्रा की तरह नहीं है। जल भाप बनता है और फिर वादल। वादल वरम कर समुद्र में पुनः आ मिलता है। यह न भूले कि पानी, भाप और समुद्र तीन चीजें नहीं हैं। जल का चक्र एक ही चीज का यांत्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूँद मुक्त होकर पानी के बाहर नहीं हो पाती। चक्र घूमता रहता है। जहाँ तक मोक्ष का सम्बन्ध है, वहाँ से लौटना मुश्किल है। हाँ, सन्तार में कोई चक्कर लगा सकता है। एक मनुष्य हजार बार मनुष्य होकर चक्कर लगा सकता है, क्योंकि वह सोया हुआ है। अगर वह जाग जाय तो चक्कर लगाना बंद कर दे, वह बाहर हो जाय चक्कर के। चूँकि मोक्ष समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए उससे लौटना असम्भव है। पदार्थ का जगत् निगोद में है। हम कह सकते हैं कि पानी गरम करेंगे तो भाप बनेगा ही। ऐसा जल नहीं देखा गया जो कहे कि मैं भाप नहीं बनूँगा। उसके पास कोई चेतना नहीं है। हम पानी के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि वह भाप बनेगा ही। लेकिन मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसे निष्कर्ष निकाले नहीं जा सकते और न कुछ पूर्व सूचनाएँ ही दी जा सकती हैं। यह जरूरी नहीं कि जिसे हम प्रेम दे वह हमें भी प्रेम दे। मनुष्यों के सम्बन्ध में, उनकी प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, कारण कि उनमें चेतना है। पदार्थ की सारी व्यवस्था यांत्रिक है, मनुष्यों की नहीं। पदार्थों के नियम हैं—यथा, पानी को गर्म करते जाओ तो एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी कि पानी भाप बन जायगा। यह तिब्बत में करो या अफ्रीका में। वह भाप बनेगा ही। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे हमारी यांत्रिकता टूटती चली जाती है और आदमी में आकर यह बहुत शिथिल हो जाती है। आदमी के सम्बन्ध में पक्का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा? तरह-तरह के लोग हैं और उनकी तरह-तरह की चेतना है।

मोक्ष में तो प्रेडिकशन ( भविष्यवाणी ) मिलना ही नहीं हो सकती । वहाँ तो आत्माएँ पूर्ण मुक्त हैं ।

मनुष्य का पूर्ण विज्ञान बताना मुश्किल है । किसी का हम गाली में तो साधारणतः बड़ा प्राप्य करेगा लेकिन कोई महावीर भी मिल सकता है जो गाली सुनकर भी चुपचाप खड़ा रह और प्राप्य न कर । आदमी जितना ही चेतन होता जायगा वह उतना ही प्रेडिकशन के बाहर होगा । जितना नीचे उतरेंगे, चक्कर उतना ही सुनिश्चित है । जितना ऊपर उठेंगे, चक्कर उतना ही निश्चित है । पूर्णतया ऊपर उठ जान पर चक्कर नहा रह जाता—सिर्फ आप रह जाते हैं बाई दबाव और दमन नहा जाता । यहाँ मुक्ति और स्वतन्त्रता का अर्थ है । यद्यपि से मोक्ष की ओर जो यात्रा है, वह अचेतन से चेतन की ओर यात्रा है ।

## २

मैंने कहा है कि महावीर की आत्मा मुक्त होकर भी वापस आ गई थी । क्या मुक्तात्माएँ घूम फिरकर फिर निर्गोल में उहा पहुँच जाती ?

महायान में कहा गया है कि बुद्ध का निर्वाण हुआ और वे मोक्ष के द्वार पर पहुँच गए । जब द्वारपात्र न उनका स्वागत किया और भीतर चलने का कहा तब बुद्ध ने जवाब दिया—जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है तब तब मैं भीतर का जाऊँ ? अनामन है यह । अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बंधे हैं तुम्हारे हैं । इतना कह कर बुद्ध आनन्द में प्रवृत्त हो गए ।

यह कहानी महायान बौद्धों में प्रचलित है । हमारा अर्थ यह है कि मुक्त हो जाना ही मोक्ष में प्रवृत्त करना नहीं है । मुक्त होता मानव का प्रवृत्त-द्वार है । मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष में प्रवृत्त हो सकता है, अन्यथा नहीं । लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवृत्त करना उहा है । द्वार पर पहुँचकर भी कोई वापस लौट सकता है । मैंने कहा था कि एक बार वापस लौटने का उपाय ना है । जो उपाय हुआ है वह अगर अविध्यमन नहीं हो पाया और ना मिला है वह अगर बाँटा न जा सता तो जीवन में एक बार फिर वापस लौटने का सम्भावना रह जाती है । पटल के एक जान पर भी मादकता यात्रा दूर घटती जाती है । ठीक वैसे ही अगर यात्रा में मुक्ति हो जाय तो यात्री दर जीवन भर जाता है । पटल यात्रा में हो गया है तो व्यक्ति लौट सकता है । लेकिन न लौटना चाह तो बाँटी दर पर रहता है—बहुत दूर उहा । मुक्त व्यक्ति यात्रा में एक आपन के लिए यह लौट आ सकता है । तब जो व्यक्ति लौटता है — तो ही में जीवन भर अवतार परम्परा में रहता रहता है । वह यात्रा बाहर से मिल सकता है तो ना जा सकता हुआ है तो बाँटा हो सकता के लिए लौट आता है । इन यात्रा मान है और न बाँटा ।

सभी मुक्त व्यक्ति रुकते हो, ऐसा भी नहीं है। लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं वे हमें ईश्वरीय दूत जैसे लगते हैं, क्योंकि वे हमारे बीच से नहीं आते। वे उस दशा से लौटते हैं जहाँ से साधारणतः कोई भी नहीं लौटता। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग धारणाएँ प्रचलित हैं। हिन्दू उन्हें अवतार कहते हैं और मानते हैं कि उनके रूप में ईश्वर स्वयं उतर रहा है—वहाँ से उतर रहा है जहाँ हम जाना चाहते हैं। स्वभावतः अवतरण की धारणा बनाने-वालों को इसका खयाल न रहा कि वह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा, तभी तो वह वापस लौटा है। इस आधे हिस्से पर उनकी दृष्टि नहीं गई। जैन धर्मानुयायियों ने अवतरण की बात ही नहीं की, उन्होंने तीर्थंकर कहा जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जिसके मार्ग पर चलकर कोई पार जा सकता है। लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है जो पार तक गया होगा। तीर्थंकर से उस व्यक्ति का बोध होता है जो उस पार को छूकर लौट आता है। मैं मानता हूँ और यही उचित भी है कि पार गया हुआ व्यक्ति कम-से-कम एक बार लौटकर खबर दे और बताये कि उसने क्या देखा और पाया उस पार। जैनो ने अवतरण की बात नहीं की, क्योंकि ईश्वर की धारणा उन्होंने स्वीकार नहीं की। इसी प्रकार ईसाइयों ने न तो तीर्थंकर की धारणा की और न अवतार की। उन मुक्तात्माओं के लिए जो लौट आए हैं वे 'ईश्वरपुत्र' का प्रयोग करते हैं। उनका खयाल है कि ईश्वर के सम्बन्ध में जो खबर देता है वह ईश्वर के उतना ही निकट होगा जितना बाप के निकट बेटा होता है। बेटा बाप के प्राणों का हिस्सा होता है। ईश्वर पुत्र ईश्वर की खबर तभी दे सकता है जब वह सचमुच ईश्वर का बेटा हो, जब ईश्वर का ही खून बहता हो उनकी धमनियों में। जगत् में इस तरह की अन्य धारणाएँ भी प्रचलित हैं।

तो, मैं कह रहा था कि मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का सवाल नहीं है। महावीर लौट चुके हैं। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। मैत्रेय के नाम से भविष्य में उनका एक अवतरण होगा। बुद्ध को सत्य की जो उपलब्धि हुई थी वह इसी जीवन में हुई थी, इसके पहले जीवन में नहीं। उन्होंने जो पाया था वह इसी जीवन में पाया था। इसलिए उनके आने की उम्मीद है। जीजस भी आएँगे। थियोसॉफिस्टों ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया था। वह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। कुछ लोगों ने प्राणों को सकट में डालकर आमंत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया कि मैत्रेय की आत्मा उनमें प्रविष्ट हो जाय। कृष्णमूर्ति को तैयारी में बीस-पच्चीस वर्ष लग गए। उनकी जैसी तैयारी हुई, दुनिया में वैसी किसी आदमी की शायद ही हुई हो। अत्यन्त गूढ़ साधनाओं से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर तैयारियाँ पूरी हुईं। सारी दुनिया से कोई छह हजार लोग उस स्थान पर



एकत्र हुए जहा कृष्णमूर्ति में मैत्रेय की आत्मा के प्रविष्ट होने की घटना घटनवाली थी। लेकिन शायद मूल चक्र हा गई और वह घटना न घटी। कृष्णमूर्ति न गुरु होन में इनकार कर दिया, क्योंकि वह अत्यन्त ईमानदार आदमी हैं। ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने में बड़ी बाधा है। कोई शरीर इस योग्य नहीं मिल रहा है कि मैत्रेय उतर जाय और कोई गम ऐसा निमित्त नहीं हो रहा है कि मैत्रेय के लिए वह अवसर बन जाय। हो सकता है कि दो चार हजार वर्षों तक लगातार प्रतीक्षा करनी पड़े। हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त हो जाय और वस चेतना विदा हो जाय। कृष्णमूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया और अब ऐसा कोई प्रयोग पृथ्वी पर नहीं किया जा रहा है।

उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यन्त जरूरी है, इसलिए मने कहा कि महावीर की उपलब्धि पिछले जन्म की उपलब्धि है। इस जीव में उन्होंने उसे चाटा है, इसलिए अब उनकी चेतना के लौटने का सवाल नहीं है। फिर हम यह अजीब सा लगता है कि यद्यपि बुद्ध का मर पच्चीस सौ वर्ष बीत चुके फिर भी उनका अवतरण न हुआ। जीजस भी नहीं आए। समय की हमारी जो धारणा है उसकी वजह से हमको ऐसी कठिनाई होती है। सपना में सैकड़ों वर्ष बीत जाते हैं, परन्तु जब नींद टूटती है तब आप पाते हैं कि घड़ी में अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। जागने के समय की धारणा अलग है, सोने के समय की गति अलग है। भुवन व्यक्तियों के लिए समय की गति का कोई अर्थ नहीं रह जाता—वहाँ समय की गति है ही नहीं, केवल हमारे तल पर समय की गति है। केन्द्र पर परिधि से खींची गई सभी रेखाएँ मिल जाती हैं और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं वैसे-वैसे मिलती जाती हैं। जितना हम जीवन-केन्द्र से दूर हैं, उतना ही समय बड़ा है और जितना हम जीवन-केन्द्र के करीब आते हैं, उतना ही समय छोटा होता जाता है। इसलिए शायद आपने कभी खयाल नहीं किया होगा कि दुख में समय बहुत लम्बा होना है और सुख में बहुत छोटा। सुख भीतर के कुछ निवृत्त है दुख कुछ दूर। जाग्रतावस्था में हम समय की परिधि पर खड़े होते हैं, सोने में हम अपने भीतर आ जाते हैं। स्वप्न भीतर की ओर है जाग्रति बाहर की ओर। स्वप्न में हम अपने केन्द्र के ज्यादा निवृत्त होते हैं जाग्रत में ज्यादा दूर। व्यक्ति के केन्द्र पर पहुँचने की दशा का ही नाम समाधि है। समाधि में समय एकदम मिट जाता है—समय होना ही नहीं। सब एक परिधि पर है केन्द्र पर नहीं। वहाँ परिधि से खींच गई सभी रेखाएँ संयुक्त हो जाती हैं।

दूसरी बात आपने पूछी है कि जन्म प्रकृति में सभी चीजें चक्रीय गति में चलती हैं तब मुक्तात्माएँ इस नियम का अपवाद करने का सकती हैं? वे भी निगाह से मोक्ष तक जाती होंगी और मोक्ष से लौटकर निगोत्र में जन्म पहुँचती होंगी। जहाँ सभी कुछ



चक्रवत् घूमता ही, वहाँ सिर्फ आत्मा की गति को चक्रीय न माना जाय, यह नियम का खडन मालूम पड़ता है। बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष से बीज आ जाते हैं। फिर बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष में बीज आ जाते हैं। किसी वैज्ञानिक से पूछा गया था कि मुर्गी और अंडे में कौन पहले है। वैज्ञानिक ने उत्तर दिया कि पहले-पीछे का तो सवाल ही नहीं है, कारण कि मुर्गी और अंडा दो चीजे नहीं हैं। तब प्रश्न उठता है कि मुर्गी है क्या? उत्तर है कि मुर्गी है अंडे का रास्ता या यो कहे कि अंडा है मुर्गी का रास्ता, मुर्गी पैदा करने के लिए। घड़ी के काँटे की तरह सभी चीजें घूम रही हैं। इसलिए आत्मा इस नियम का अपवाद कैसे हो सकती है? अपवाद हो सकती है। वस्तुतः मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नहीं। इसलिए सामान्य नियम लागू नहीं हो सकते। असल में जो आत्माएँ चक्र के बाहर कूद जाती हैं वे ही मुक्तात्मा कहलाती हैं। नहीं तो उन्हें मुक्त कहने का कोई मतलब नहीं। ससार का मतलब है—जो घूम रहा है, घूमता ही रहता है। मुक्त का अर्थ है जो इस घूमने के बाहर छलांग लगा गया है। मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते हैं तो मुक्ति व्यर्थ हो गई। अगर आत्मा मोक्ष से निगोद को वापस लौट आती है तो वे सब-के-सब पागल हैं जो मुक्त होने की कोशिश करते हैं। अगर सबको घूमते ही रहना है तो मोक्ष और मुक्ति की बात व्यर्थ हो जाती है। हाँ, जैसा मैंने कहा, एक बार मुक्तात्मा भी अपनी इच्छा से उस चक्र में लौट आ सकती है। परन्तु चक्र पर बैठी हुई ऐसी आत्मा चक्र के साथ घूमती नहीं। अब उसके लिए घूमने का कोई मतलब नहीं। वह हमारे बाजार में खड़ी होगी भी तो उसे बाजार का हिस्सा होना नहीं पड़ता। मुक्त व्यक्ति हमारे बीच भी खड़ा होगा, लेकिन ठीक हमारे बीच नहीं होगा। वह होगा हमारे बीच और हम से विलकुल अलग। कहीं उससे हमारा मेल होगा और कहीं नहीं। वह कुछ और ही तरह का आदमी होगा।

आवागमन से छूटने की जो कामना है वह उन लोगों को उठी है जिन्हें इसे घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड़ गई। उन्होंने देखा कि जन्मो-जन्मो से एक-सा घूमना हो रहा है, हम घूमते चले जा रहे हैं और इससे छलांग लगाने का खयाल नहीं आता। छलांग लग सकती है। अगर चाँद पर जाना है तो जमीन की कशिश से छूटना ही होगा। यदि जीवन के बाहर जाना है तो किसी-न-किसी रूप में वासना के बाहर निकलना होगा। वासना भी एक प्रकार की कशिश ही है जो हमें ऊपर उठने नहीं देती। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो तृष्णा और वासना है वह हमें अस्थिर रखती है और कहती है—वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ। वह चक्र के भीतर इशारे करती है और कहती है—धन कमाओ, यश कमाओ, ज्यादा उम्र बनाओ। जो व्यक्ति एक क्षण भी वासना के बाहर हो गया वह अन्तरिक्ष में यात्रा कर गया, उस अन्तरिक्ष में जो हमारे भीतर है। वह जीवन के चक्र के बाहर छलांग लगा

गया, क्याकि उमन कहा कि न मुन्हे यग चाहिए और न घन, न उग्र, न सतान । मैं पुत्र हाना नहा चाहता । वासना के चक्र से बाहर हाते ही आप यह देखकर हैरान हो जायेंगे कि जिसे आपन अनंत जमा से पान की आभाक्षा की थी वह आपके पास ही था, वह मिला ही हुआ था । अपनी आर देखन भर की जरूरत थी । लेकिन जम अंतरिक्ष-यात्रा तब तक नहा हा सगनी जब तक कि हम जमीन की कशिश से छूट न जायें, वैसे ही अन्तर्यात्रा भी तब तक नही हा सकती जब तक हम वासना की कशिश में मुक्त न हो जाय । और वासना की कशिश धरती की कशिश से ज्यादा मजबूत है क्याकि जमीन की जो कशिश है वह खींचने की एक जट शक्ति है और वासना की जो कशिश है वह एक सजग चेतन शक्ति है । इस चक्र के बाहर जिसे भी छलांग लगानी हो, उस वासना के बाहर होना पडता है । साक्षी का भाव वासना के बाहर ले जाता है । जैसे ही कोई यकिन साक्षी हुआ कि वह वासना के बाहर चला गया ।

लेकिन यह न मूल कि जीवन में साक्षी होना बहुत कठिन है । हम नाटक फिलम तक में साक्षी नहीं होत । कई बार तो ऐसा हा जाता है कि बाहर की जिदगी हम उनना ज्यादा नहा पकडती जितनी चित्र की कहानी पकड लेती है । अगर हमें स्मरण आ सके कि हम भी एक लम्बा नाटक खेल रहे हैं तो शायद हम भी साक्षी हा सकें । बहुत गहरे में जीवन और फिलम में ज्यादा फक नहीं है । हमारा शरीर उसी तरह विद्युत् कणा से बना है जिस तरह फिलम के परदे पर दिखाई पडन वाला शरीर विद्युत्-कणा से बना है । मैं यह नहीं कहता कि आप नाटक न निभाएँ । सचमुच जा इस नाटक का जितना अच्छी तरह निभा लेता है वह उतनी ही कत्तय निष्पत्ति समझा जाता है । वस्तुतः नाटक निमान के लिए ही है और मजेदार भी होता है । वस, एक बात न भूलें चाह और सब क्या न मूल जायें । वह यह है कि यह जीवन सिर्फ नाटक है । स्वामी रामतीथ जस लोगो को इस रहस्य का पता था । तभी तो रामतीथ हमेशा अय पुरुष ( 'यड पसन ) में ही जोलते थे । जब उन्हें गाँगी पडती तो वे हँसते और कहते—'खो ! राम का कैसी पडी ? राम कसी मुश्किल में फँसे ? आ गया न मजा ?

यह खयाल कि मैं कहा और हूँ, अलग हूँ, सारे खेल से वही दूर हूँ, साक्षी बना देता है और वासना की दौड टूट जाती है । खेल फिर भी चलता है क्याकि आप अकेले खिलाडी नहा । जहाँ बुद्धिमत्ता आती है वहाँ गगन माया से—नाटक से—अलग नहीं हो जाता । वहाँ नाटक और जगत एक ही हो जात हैं । जिस दिन साक्षी जीवन से अलग खडा हा जाता है उसी दिन वह दौड के बाहर हो जाता है ।

महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है । सभी साधनाएँ मौलिक रूप से साक्षी की ही साधनाएँ हैं कि हम किस भाँति देखनवाले हो जायें, न तो भागने वाले रह जायें और न करने वाले । सिर्फ साक्षी रह जायें ।

उसका सहायक हो जाता है, सारे जगत् की सहायता उसकी ओर चुम्बक की ओर खिंचने लगती है। क्यों खिंचने लगती है यह सवाल नहीं, नियम है। नियम यही है कि असहाय होते ही कोई व्यक्ति बेसहारा नहीं रह जाता—मर नहारे उसके हो जाते हैं। अमुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती।

एक दिन एक घटना घटी। कृष्ण ने दो-चार कौर लेकर थाली हटा दी और वे भाग खड़े हुए। रुक्मिणी ने साश्चर्य पूछा—आपको क्या हो गया है, कहाँ जा रहे हैं? कृष्ण ने रुक्मिणी की बात न सुनी। वे दरवाजे की ओर उन प्रकार दौड़े मानो कहीं आग लग गई हो। फिर ठिठक गए और वापस लौटकर भोजन करने लगे। रुक्मिणी के विस्मय का पारावार न था। कृष्ण ने कहा कि मेरा एक भक्त रास्ते में गुजर रहा था और लोग उसे पत्थरों से मार रहे थे। वह मजीर बजाए चला जा रहा था, मेरा ही गीत गा रहा था। तनिक भी क्रोध न था उसके मन में। वह तो सिर्फ देख रहा था उन्हें कि वे पत्थर फेंक रहे हैं। खून की धारा वह रही थी। इसलिए मेरे जाने की जरूरत पड़ गई। रुक्मिणी ने पूछा कि फिर आप लौट क्यों आए? कृष्ण ने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर पहुँचा तब तक मेरे भक्त ने मजीर फेंक डाला और उसने एक ईंट उठा ली—उसने अपना इन्तजाम खुद कर लिया। अब मेरी कोई जरूरत न रह गई। जब व्यक्ति अपना इन्तजाम स्वयं कर लेता है तब जीवन की गक्तियों के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। सन्यासी का मतलब सिर्फ इतना है कि कोई अपने लिए इन्तजाम नहीं करता, सब-कुछ छोड़कर अमुरक्षा में खड़ा हो जाता है। मलूक ने कहा है कि पछी काम नहीं करते, अजगर चाकरी नहीं करता, सब के देने वाले हैं राम। यह आलस्य की शिक्षा नहीं है, बहुत गहरे में अमुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है।

ऐसी ही असुरक्षा में महावीर असंग हो गए हैं। न कोई सगी है न कोई साथी। जीवन की गहराइयों में कहीं कोई शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उनमें एक नियम यह भी है कि आप जिसके पीछे भागेगे, वह आप से भागता चला जायगा और जिसका मोह त्यागेगे वह आपके पीछे आता रहेगा। जो धन छोड़ता है, उस पर धन की वर्षा होती है, जो मान त्यागता है, उस पर मान की वर्षा होती है। जो सुरक्षा छोड़ता है, उसे सुरक्षा उपलब्ध होती है। जो सब-कुछ त्याग देता है, उसे सब-कुछ उपलब्ध हो जाता है। वह एक घर छोड़ता है, लेकिन सब घर उसके हो जाते हैं। जब वह एक प्रेमी की फिक्र छोड़ता है तब शायद सबका प्रेम उसका हो जाता है।

इन्द्र और महावीर की परस्पर वार्त्ता की बात कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है। यह एक कहानी है। इसका उल्लेख इसलिए होता है कि हम कहानियाँ ही समझ पाते हैं और वह भी जब उन्हें ऐतिहासिक कहा जाता है। जो भी अद्भुत व्यक्ति



पदा होता है वह इतना अदभुत होता है कि उसके आस पाम काव्य बन जाता है कथाएँ बन जाती हैं। क्याएँ सच हा, ऐसी बात नहीं। जब काव्य को जार स पकड़ लिया जाता है और उसे जीवन का सत्य बना लिया जाता है तब कविना मर जाती है। इतना अनूठा है महावीर का जीवन कि उसे शायद तथ्यों में कहा ही नहीं जा सकता। इसलिए उसके साथ हम काव्य जोड़ना ही पड़ता है। और जब हम काव्य जोड़ते हैं तभी कठिनाई शुरू हो जाती है। जड़ लोग काव्य को जीवन का तथ्य मानने लगते हैं। यह जरूरी नहीं कि कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य भी न हो। यदि तथ्य ही काव्य हो तो काव्य खत्म हो जाय, फिर काव्य का कोई सत्य ही न रह जाय। यदि कोई प्रेमी कह कि मेरी प्रेयसी का चेहरा चांद है तो इसे काव्य समझिए। विज्ञान तो कहता है कि चांद पर बड़े साई-खड्डे हैं फिर किसी का चेहरा चांद सा कैसे हो सकता है ? असल में प्रेमी कुछ और ही कह रहा है। वह कह रहा है कि चांद को देखकर उसे मन में छाया छू जाती है चांदी की धार छूट जाती है, वैसे ही किसी के चेहर से प्रेम सुधा बरसती है चित्त रस सिक्त हो उठता है। इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कमीटी पर कसने लगे तो आप गलती में पड़ जायेंगे। इसलिए मैं इन सारी बातों का काव्य और रूपक कहता हूँ, बोध-कथा मानता हूँ। इनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं जो कि शायद किसी अन्य माध्यम से कही नहीं जा सकती थीं। कहानियाँ सत्य को कहने का एक ढंग हैं जिससे सत्य रूपा भी न रहे और मृत भी न हो। नासमझ आदमी ही कहानियाँ को सत्य बना लेता है और सत्य बना कर सारे व्यक्तित्व का झूठा कर देता है।

४

महावीर ने दूसरा का सहारा नहीं लिया यह सही है। लेकिन साथ ही प्रश्न उठता है कि यदि सहारा न लेना महत्वपूर्ण है तो क्या सहारा न देना भी उतना ही महत्वपूर्ण नहीं ? यदि है तो महावीर की अभिव्यक्ति उनके श्रावक और श्रमण दूसरों को सहारा क्यों देते रहे ? जब मैं सहारा नहीं लेता तब सहारा देनेवाला भी कौन होता हूँ ?

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। साधारणतः ऐसा ही दिखाई पड़ता है कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नहीं लेता तो वह भी किसी का सहारा न दे। यह तक एकदम श्रांत है। जब हम कहते हैं कि सहारा नहीं लेता है तब इसका पूर्ण मतलब इतना है कि भीतर जाने में हम किसी के साथ की जरूरत नहीं—भीतर हम अकेले ही जाना होगा। इसलिए मैं सभी सहारों का इनकार करता हूँ। लेकिन अगर यह बात मैं किसी का कहने जाऊँ कि सहारा न लेने तो मटक जाओगे तो एक अर्थ में मैं उसको सहारा दे रहा हूँ और दूसरे अर्थ में उसे सहारे में बचा रहा हूँ। इसमें दोनो बातें हैं। महावीर जो सहारा दे रहे हैं वह इसी तरह का सहारा है। वे लोगो को

कहते हैं कि मैं अकेला भीतर गया। यदि तुम सहारा पकड़ रहे हो तो भीतर नहीं जा सकोगे। वेसहारे हो जाओ। यह मुझे हक है कि मैं किमी को इतनी बात कह दूँ कि विधि से कमी कोई नहीं पहुँचा है, इसलिए तुम विधि मत पकड़ना और मेरी बात भी मत पकड़ना। इसकी भी तुम खोज-बीन करना, क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकड़ा तो यह तुम्हारी विधि हो जायगी।

यूनान के सोफिस्टों का कहना था कि कोई चीज सिद्ध ही नहीं है। जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमें सब पहलू मौजूद हैं और तर्क देनेवाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है और शेष पहलुओं को पीछे हटा देता है।

यह बात सच है कि किसी का सहारा कमी मत लेना, क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। परन्तु यह कहकर भी तो मैं आपको सहारा ही दे रहा हूँ न? अब आप क्या करोगे? सोफिस्टों ने एक उदाहरण दिया है और कहा है कि सिसली से एक आदमी एथेन्स पहुँचा। यहाँ आकर उसने कहा कि सिसली में सब लोग झूठ बोलनेवाले हैं। एक व्यक्ति ने उससे पूछा कि तुम कहाँ के रहने वाले हो? उसने उत्तर दिया—मैं सिसली का रहने वाला हूँ। यह सुनकर लोग मुश्किल में पड़ गए। अब वे क्या करें? यदि उस व्यक्ति की बात मान लें तो सभी सिसली वासी झूठे ठहरते हैं और चूँकि वह भी सिसली का रहने वाला था, इसलिए वह भी झूठा ठहरता है। और चूँकि वह भी झूठा है, इसलिए उसकी बात सच नहीं मानी जा सकती। यदि उसकी बात सच मान ली जाय तो वह झूठा साबित हो जाता है और चूँकि वह झूठा है, इसलिए उसकी बात सच्ची नहीं हो सकती। यदि यह मान लिया जाय कि सिसली में कम-से-कम एक व्यक्ति सच्चा है तो यह बात गलत होगी कि वहाँ सब झूठ बोलने वाले लोग हैं। जिन्दगी इतनी जटिल है कि दोनों बातें सही हो सकती हैं। सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग भी हो सकते हैं और इस आदमी का वक्तव्य भी सही हो सकता है, क्योंकि सब लोग सब समय झूठ नहीं बोलते।

महावीर कहते हैं कि जीवन के एक पहलू को पकड़कर कोई दावा करे तो यह है एकान्त। एकान्तवादी वह है जिसने जीवन का एक ही कोना देखा है। अगर वह सब कोने देख लेगा तो अपना आग्रह छोड़ देगा। वस्तुतः महावीर बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं। वे कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी गलत है, क्योंकि वह भी एकान्त है। सत्य के अनेक पहलू हैं और सत्य इतनी बड़ी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही हो सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकान्तवादी हूँ—यानी, सब एकान्तों को स्वीकार करता हूँ। अनुभव के अनन्त कोण हैं और प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। वस, भूल वहाँ हो जाती है जहाँ वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है और कहता है कि मैंने जो जाना, वही ठीक है।

आपन यह कहानी सुनी होगी कि एक हाथी के पास पाँच अघे सड़े हो गए । जिनन हाथी के पर छुए उसन कहा कि हाथी सम्भे की तरह है बटे के वक्ष की तरह है, जिनन वान छुए उसन कहा कि हाथी गहूँ साफ करनवाले सूफ की तरह है । इस प्रकार पाँचा अघा न आपन अपन दाव गिए । महावीर कहत हैं कि उनका दृष्टि परम्पर विराधी नहीं है । जब पूछिए ता जिहें हम विराधी दृष्टियाँ कहते हैं व जब एक-दुसरे के परिपूरक है और सब एक हा सच के भिन भिन वान हैं । भिक हमारी सामिन दृष्टि के कारण ही यह भव विराधी निराद पड रहा है । महावीर कहत हैं कि अगर हम भव दृष्टिया का नाड लें ता भी सत्य पूरा नहीं हा जाता, क्याकि आर दृष्टियाँ भी हो सक्ती हैं जा हमार सवाल भ न हा । इसलिए महावीर जमन की सम्भावना रखत ह, एक का आग्रह नहीं करत । उन युग पर उनका प्रभाव बहुत कम पडा, इसका यहा कारण है । बुद्ध का दृष्टि एक और पक्की है व उन पर सस्ता से सड़े रहत ह और इत-भाष भी यहाँ यहाँ नहा हिरत । यह बटे भजे की बात है कि हम जिसे साफ दृष्टिवाँ कहते ह वह एकांतवादी होता है । महावीर साक नहीं मालूम पडत । वे हर बात में 'हाँ' कहत हैं, हर बात में 'न' भी । इसका मतलब है कि चाहे तो उन्हें पता नहा या पता है ता साफ-साफ पता नहा । यहा कारण है कि अन्तराष्ट्रीय विचारका भ बुद्ध या वनायुगियन का नाम लिया जाता है महावीर का नहा । बगोड़ों लाग मिल जायगे पृथ्वी पर जिहान महावीर का नाम की रनी नहीं गुना । महावीर वादा नहा हैं और ना मानी नहीं है, उसका बात हमारी समझ में मुश्किल में आती है । जा गुमगत है उनसे बन्ना विचार नहा किया क्याकि निन्दनी विरोधी स नही है । विचार करेयान व्यक्ति ऐसा सच नहा कह सक्ता जा एकाग्र, पूरा और दावदार हो । उसका दावा का गई सत्य का प्रत्या घोषण भ निमित्त होगी । तकिन निमित्त उनसे अज्ञान की सूचना का जायगी, जब कि निमित्त उनके ज्ञान का सूत्र है । ज्ञानी जितना ताद्वता भ दावा करता है उतनी ताद्वता भ जाती गहा कर सक्ता । अज्ञान भ ज्ञाना हा दावा कर सक्ता है क्याकि जगकी समझ हमनी कम है, उनसे ज्ञाना इतना कम है जाना इतना कम है कि उस कम में वह व्यग्रता बता सक्ता है । महावीर का अज्ञान का यही अघ है कि कहीं दृष्टि पूरा ना है नाद दृष्टि विराधी नहा है । भव दृष्टियाँ नहायाना हैं और भव दृष्टियाँ विगी पड गत्य भ मनानि हो जाती हैं । जा गिराट मन्द का जानता है यह किती कर ता पण भ ज्ञान और न विराम भ । इसलिए मैं कहता हूँ कि जना अनारत दृष्टिवाँ ज्ञान नहा है क्याकि व ज्ञानाता है परम्पर हैं—वे कहत हैं कि हम भव मार का कम भ हैं । तकिन महावीर का वाद ज्ञान नहा है । नाम महावीर की दादग पुनर्जात पृथा । पहला नुसखाना ता न्ह कि बन्ना तर जारा क्या नहा दुर्बल मरी तीर हाथ यह कि जिह ज्ञान नह उनका बात पड़ता, व पणवर हा नह—जिह न



वन पाए और जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए । मजे की बात तो यह है कि अनेकान्त को भी महावीर के अनुयायियों ने 'अनेकान्तवाद' बना दिया है । 'अनेकान्त' का मतलब है 'वाद' का विरोध और वाद का मतलब ही होता है दावा । यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार-दो हजार वर्ष बाद पुन प्रमावी हो सके । जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ़ रही है, 'वादी' चित्त नष्ट होता जा रहा है । जितनी बुद्धि-मत्ता बढ़ रही है आदमी उतना ही निष्पक्ष होता चला जा रहा है । आज नहीं तो कल, सम्प्रदाय और वाद जाएँगे ही ।

## ५

महावीर जिसे सन्यासी कहते हैं वह एक ऐसा अवादी व्यक्ति है जो असुरक्षा में जीता है, जो अगृही है । लेकिन आज का सन्यासी महावीर के सन्यासी का उल्टा आदमी है । वह आज के गृहस्थों से ज्यादा सुरक्षित है । गृहस्थ के ऊपर हजारों चिन्ताएँ और झंझटे हैं, सन्यासी मस्त है । उसे न कोई दिक्कत है और न कोई कठिनाई । खाने-पीने का प्रबन्ध है, मन्दिर है, आश्रम है । सन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित है जब कि सन्यासी का मतलब वह व्यक्ति है जिसने सुरक्षा का मोह छोड़ दिया और जो असुरक्षा में ही जीने लगा । सन्यासी वह है जो कल की बात नहीं करता, भविष्य का विचार नहीं करता, योजना नहीं बनाता, बस प्रति-पल, क्षण-क्षण जिए चला जाता है । मौत आए तो वह राजी है, जीवन हो तो राजी है ! ऐसी ही चित्त-दशा का नाम सन्यास है और ऐसा ही व्यक्ति अगृही है । सुरक्षा ही गृह है और असुरक्षा अगृह । सुरक्षा में जीनेवाला व्यक्ति गृहस्थ है और सुरक्षा में न जीनेवाला अथवा असुरक्षा की स्वीकृति में जीनेवाला व्यक्ति सन्यासी है, अगृही है ।

इस सम्बन्ध में लोग पूछते हैं कि महावीर ने सन्यासियों से यह क्यों कहा कि तुम गृहस्थों को विनय मत देना, उनको तुम नमस्कार मत करना ? महावीर के पीछे आनेवाले साधुओं ने महावीर के इस कथन का दूसरा ही मतलब निकाला है । उन्होंने इसे 'अहकार की प्रतिष्ठा' बना ली है—यानी वे सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे उनकी पूजा करें । लेकिन महावीर ने यह कही नहीं कहा कि साधु गृहस्थ से पूजा ले, सन्यासी गृहस्थ से विनय माँगे । उन्होंने केवल इतना ही कहा कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे । गृहस्थ का मतलब ही वह आदमी है जो अज्ञान से घिरा है । उसके अज्ञान की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है । उसके अज्ञान को बढ़ाना अनुचित है । अहकार न बढ़ जाय गृही का, इसलिए महावीर कहते हैं कि साधु उसे विनय न दे । लेकिन महावीर को पता न था कि उनका साधु ही इस कथन को अपने अहकार के पोषण के लिए प्रमाण बना लेगा और इस अहकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए ।





## नवम अध्याय

### महावीर की भाषा

जो सहस्स सहस्साणे, संगामे दुज्जए जिए ।  
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जग्गो ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० ६, गा० ३४

महावीर की भाषा प्राकृत थी, संस्कृत नहीं । वस्तुतः संस्कृत कभी भी लोकभाषा नहीं थी । वह सदा से पंडितों की—दार्शनिकों और विचारकों की—भाषा रही है । महावीर के युग में प्राकृत ही साधारण जन की भाषा थी । ग्रामीण लोग इसी लोकभाषा का प्रयोग करते थे, कारण कि प्राकृत मूलभाषा है और उसके परिष्कृत रूप को ही हम संस्कृत कहते हैं । हमारे देश में दो परम्पराएँ चलती थीं । एक परम्परा थी जो संस्कृत में ही लिखती और सोचती थी । वह बहुत थोड़े लोगों की थी । एक प्रतिशत लोगों का भी उसमें हाथ न था । ज्ञान का जो आन्दोलन चलता था वह बहुत थोड़े से अभिजातवर्गीय लोगों का था । जनता अनिवार्य रूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी । महावीर और बुद्ध—दोनों ने जनभाषाओं का उपयोग किया । शायद यह भी कारण है कि हिन्दू ग्रन्थों में महावीर का कोई उल्लेख नहीं है । न उल्लेख होने का कारण है, क्योंकि संस्कृत में उन्होंने न तो शास्त्रार्थ किए और न कोई दर्शन विकसित किया ।

आज भी हिन्दुस्तान में अंग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है । हो सकता है कि मैं हिन्दी में बोलता चला जाऊँ तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूँ । चूँकि महावीर ने जन्म-भाषा का प्रयोग किया, पंडितों के वर्ग ने उन्हें बाहर ही रखा । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर-जैसी प्रतिभा का व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बड़ी परम्परा में, उसके शास्त्र में, उस समय के लिपिवद्ध ग्रन्थों में उसका कोई उल्लेख न हो, विरोध में भी नहीं । मैं इसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह मानता हूँ कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं जो जनता की है । पंडितों से शायद उनका बहुत कम सम्पर्क बन पाया । पंडितों का अपना एक अभिजात भाव है । वे साधारण जन नहीं हैं । वे साधारण

---

१. इसकी अपेक्षा कि पुरुष दुर्जय संग्राम में दस लाख शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे वह अपनी ही आत्मा पर विजय प्राप्त कर ले । यही श्रेष्ठ विजय है ।

जन की भाषा में न बोलत हैं न सोचत ह। व असाधारण जन ह, चुन हुए लोग हैं।

महावीर और बुद्ध की बड़ी से बड़ी क्रांतिया में एक क्रांति यह भी है कि उन्होंने धर्म की ठेठ बाजार में लाकर खड़ा कर दिया, ठेठ गांव के बाघ। वह किसी भवन के भीतर बंद चुन हुए लोगों की बात न रही वह सबकी—जो सुन सकता है, जा समझ सकता है—बोल हो गई।

महावीर ने संस्कृत का उपयोग नहीं किया। उसके और भी कई कारण हैं। असल में जो भाषा किसी परम्परा से संबद्ध हो जाती है, उसके अपने सम्बन्ध हो जाते हैं और उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। जब कोई उस शब्द का प्रयोग करता है तो उस शब्द के साथ जुड़ी हुई परम्परा का सारा भाव पीछे खड़ा हो जाता है। इस दृष्टि से जनता की सीधी-सानी भाषा अदम्य है। वह काम करने की, व्यवहार और जीवन की भाषा है। उसमें बहुत शब्द ऐसे हैं जिन्हें नए अर्थ दिए जा सकते हैं। और महावीर के लिए शब्दों था कि वे अपने नए चिंतन के लिए नई शब्दावली लें। संस्कृत सैकड़ों वर्षों में हजारों वर्षों में परम्परा-बद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित हो गया था। इसलिए उचित यह था कि जनपद जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाय। इस भाषा को नए अर्थ, नए शब्द, नए अर्थ दिए जा सकते हैं। इसलिए उन्होंने सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस भाषा में अदम्य चमत्कारपूर्ण व्यवस्था की। यह इस बात का भी प्रमाण हो सकता है कि महावीर का मन शास्त्रीय नहीं है। वे सुली जिन्गी के पदापाती हैं, गुरु आवाज के नीचे नग्न गड़े हैं, इसलिए शास्त्र को बिल्कुल हटा देते हैं शास्त्रीय व्यवस्था को भी हटा देते हैं। ऐसे लोगों की हमारा गहरा पड़ जाती है जो हम सच्ची जिन्गी का स्मरण दिलाए। नहीं तो कितना बड़ी सतराव है। वे सच्चा जीवन होने का अर्थ पदा करती हैं। लोग कितना वे परमात्मा को प्रायना करने लगते हैं। 'आग शब्द आग नहीं है। किसी भवन पर आग लिख देना से भवन जल नहीं जाता। कितना में लिखे 'जल से प्यास नहीं बुझती। कितना का परमात्मा भी जली परमात्मा नहीं है।

आम जनता की सीधी-सानी बातचीत की भाषा में शब्दाल नहीं होता। उसमें न प्यास होती है, न परिभाषा। महावीर ने इसी भाषा के शब्द लिए और जनता से सीधी बात शुरू कर दी। वे जनता के आदमी हैं और इस अर्थ में वे पवित्र नहीं हैं। और उन्होंने यह भी न पाया कि उनका कोई शास्त्र निमित्त है। उन्होंने पुनिचिन्तन रूप में शास्त्र को राखने की राशि की होगी। इसलिए उनकी मृत्यु के दो चार भी वर्षों तक, जब तक लोग को उठा स्पष्ट स्मरण रहा होता कि शास्त्र नहीं लिखते हैं शास्त्र नहीं लिखा जा सका होता। फिर लोग



ने सोचा होगा कि कहीं महावीर का कहा हुआ विस्मरण न हो जाय, इसलिए चलो, उसे हम लिपिवद्ध कर ले, शास्त्रवद्ध कर लें। महावीर खो जायेंगे, लेकिन उनकी बातें शास्त्रों में बची रहेगी। हम भूल जाते हैं कि जब महावीर-जैसा जीवन्त व्यक्ति भी खो जाता है तो क्या शास्त्रों को बचाना सम्भव है? महावीर-जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही विदा हो जाता है और जब यहाँ कुछ भी स्थिर और स्थायी नहीं है, तब शब्द और शास्त्र भी विदा हो जायें। जीवन का नियम है जन्म लेना और मर जाना। जब जीवन का यह नियम महावीर को भी नहीं छोड़ता तो महावीर की वाणी पर यह नियम लागू क्यों न हो? हम क्यों आना वाँचें कि शब्दों को बचाकर हम महावीर को बचा लेंगे। क्या बचेगा हमारे हाथ में? अगर तो वृक्ष ही जायगा, केवल राख बच पायगी। राख ही बचायी जा सकती है क्योंकि वह मृत है। लेकिन खतरा यह है कि हम राख को ही कहीं अगर न समझ लें। महावीर ने चाहा होगा कि राख न बचे। कीमत की चीज अगर है, वह तो बचेगा नहीं और राख से कल यह धोखा हो सकता है कि यही है अगर। महावीर हिम्मतवर आदमी थे। अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना बड़े साहस की बात है। उनकी दृष्टि में जो मरनेवाला है वह मरेगा ही। जो नहीं मरनेवाला है, वह नहीं मरेगा। जो मरनेवाले को बचाने की कोशिश करते हैं वे बड़ी भ्रांति में पड़ जाते हैं। वे ही अक्सर राख को अगर समझ लेते हैं। शास्त्र में जो धर्म है वह राख है। जीवन में जो धर्म है वह अगर है।

यह ध्यान रखने की बात है कि जगत् में जो भी महत्त्वपूर्ण है, जो भी सत्य और सुन्दर है, वह लिखा नहीं गया, वह कहा ही गया है। जब हम कहते हैं तो कोई जीवन्त सामने होता है जिससे हम कुछ कहते हैं। लिखनेवाले के समक्ष कोई भी मौजूद नहीं है, सिर्फ लिखनेवाला मौजूद है। इस जीवन्त सम्पर्क के कारण महावीर ने न तो शास्त्रों की भाषा का उपयोग किया, न शास्त्रीयता का। उन्होंने अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने न दी और दिखा दिया कि ज्ञान की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति अनधिकारी नहीं है।

लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि क्या अनधिकारी को ज्ञान नहीं मिलना चाहिए? मैं कहता हूँ कि यह निर्णय कौन करेगा कि कौन अधिकारी है और कौन अनधिकारी? फल नहीं कहता कि अधिकारी को सौदर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को ही हम अपना सुगंध देंगे। सूरज नहीं कहता हमसे कि अधिकारी को ही प्रकाश मिलेगा। खून नहीं कहता कि मैं अधिकारी के शरीर में ही बहूँगा। जगत् अधिकारी की माँग नहीं करता। भगवान बड़ा नासमझ है, वह अनधिकारियों को जीवन देता है। और पंडित बड़ा समझदार है, वह अधिकारी को पक्का कर ले तब ज्ञान देगा! अधिकारी की बात ही अत्यन्त व्यापारिक और तरकीब की बात है। धर्म

क खिन्नाफ विमान इसीलिए जीता है कि धम है थाड़े से लोगो के हाथ म और विमान ने सत्य द दिया है सबके हाथ म । विमान की जीत का कारण यह है कि उसने पहली दफा नान को साबलौकिक बना दिया है । महावीर ने इस सम्बन्ध म वही भारी क्रान्ति की । उन्हाने ठेठ बाजार म पहुँचा दी मागी बात । इससे पडिता को क्रोध भी बहुत हुआ । उनका धया इसलिए चलता था कि बातें गुप्त थीं । महावीर न धम की सारी गुत्थी सुल्झा दी, इसलिए पडित उन पर नाराज रहे हा तो कोई आश्चर्य नहीं । उन्हाने वह काम किया जो एक डॉक्टर सीधी हिन्दी म प्रिस्क्रिप्शन लिखकर कर सकता है । एस डॉक्टर पर दूसरे सभी डॉक्टर नाराज हा जायगे कि तुम क्या कर रहे हो तुमस सारा धया चौपट हो जायगा । महावीर शास्त्रा का बीच में लाना ही नहीं चाहत क्योंकि शास्त्रा को लाते हा शास्त्रीयता आती है पाडित्य आता है दूरान आती है सारी प्रवस्था जाती है । वे ऐसे बाल रहे हैं जैसे कि कोई पहला आत्मी जमीन पर खडा होकर बोल रहा हा और उस किसी शास्त्र का कोई पता भी न हो ।

## दशम अध्याय

### गोशालक की कथा का महत्त्व

नाडवाडज्ज किञ्चण ॥<sup>१</sup>

—आ० ध्रु० १, अ० २, उ० ४

असल मे कहानियो को समझना बहुत मुश्किल है क्योकि वे प्रतीकात्मक होती है। गोशालक की कथा भी प्रतीकात्मक है। उमने महावीर पर तेजोलेंग्या का प्रयोग किया है। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिमसे कोई भी जलकर भस्म हो सकता है। महावीर को बचाने के लिए एक नाघु उठता है और वह नष्ट हो जाता है। दूसरा उठता है और वह भी मर जाता है। महावीर देखते रहते हैं। तीसरा उठता है, परन्तु महावीर उसे रोक लेते हैं। प्रश्न है कि पहले दो साधुओं के प्रति महावीर की तटस्थता का कारण क्या था? उन दो नाघुओं के प्रति उनमे करुणा क्यों न आई? अगर रोकना ही था तो वे पहली ही बार रोक देते ताकि दो व्यक्ति न मर पाते।

इसमे बहुत-सी बातें हो सकती है। पहली बात यह कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। हो सकता है कि वह सिर्फ अहकारवश उठा हो और यह दिखाने उठा हो कि मैं महावीर को बचा सकता हूँ। अहकार को कोई भी बचा नहीं सकता। महावीर भी नहीं बचा सकते। कहानी का अर्थ यह हो सकता है कि दो गोशालक थे—दो अहकार थे जो लडने को खडे हो गए। महावीर चुप रह गए। तीसरा व्यक्ति विनम्र और सीधा-सादा रहा हो और सिर्फ आहुति देने को उठा हो। जब तक एक व्यक्ति और मरे तब तक भी महावीर जी जाएँ, इसलिए उठा हो। महावीर उसे रोकते है। असल मे कहानियाँ सारी बातें स्पष्ट नहीं कर पाती। हजारों साल से चलने के कारण उनके रूखे तथ्य ही हाथ मे रह जाते है। असल मे जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए महावीर ने कुछ नहीं किया वे ऐसे व्यक्ति रहे हो जिन्हे बचाया ही नहीं जा सकता था। हो सकता है कि वे महावीर के लिए नहीं, अपने लिए ही खडे हुए हो। हो सकता है कि वे गोशालक को यह दिखा देना चाहते हो कि हम भी कुछ है। महावीर के पास सिवा दर्शक होने के और कोई उपाय न रहा हो। तीसरे व्यक्ति को वे रोकते है, जिसका अर्थ यह भी हो सकता है कि वह—तीसरा व्यक्ति—निरहकार रहा हो और वह



सिर्फ इसलिए उठा हा कि जितनी देर में मैं मरूँगा उतनी देर तो महावीर बचे रहें। यह इतनी विनम्रता से उठा हो कि महावीर को कुछ कहना ही पड़ता है, उसे रोकना ही पड़ता है। महावीर के चित्त में क्या हुआ, यह समझना कठिन है, क्योंकि हम ऊपर से तथ्य तो देखते हैं परन्तु हम यह खयाल में नहीं आता कि भीतर क्या कारण हो रहा था। हो सकता है कि उन दाना के प्रति भी करुणा रही हो, क्योंकि महावीर की करुणा कोई गतबद चीज नहीं है। ऐसा न था कि वह उन लोगों के प्रति ही प्रकट होती थी जो महावीर के अनुयायी थे। सम्भवतः महावीर को यह पता है कि उन्हें रोकने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि कुछ लोग हैं जो रोकने से और बढ़ते हैं। वे न रोके जायें तो शायद रुक जायें। अहंकारी व्यक्ति को रोकने से वह और तेज होता है। शायद महावीर इसलिए ही चुप रहते हैं।

आदमी के मन को समझना बड़ा कठिन है। यह समझना मुश्किल है कि आदमी का चित्त किस भाँति काम करता है। महावीर किसी को क्या रोकते हैं और किसी को नहीं, यह ऊपर से जाना नहीं जा सकता। इस घटना को भीतर से देखना चाहिए। उनकी करुणा समान है लेकिन व्यक्ति भिन्न भिन्न हैं। वे जानते हैं कि रोकना किसके लिए साधक होगा और किसके लिए नहीं, रोकने से कौन रुकेगा और कौन नहीं। इसलिए हो सकता है, वे दा व्यक्ति को ही नहीं, दो से व्यक्तियों को भी न रोकते। और भी बहुत सी बातें हैं जिन्हें महावीर जानते हैं पर जो साधारणतः देखी नहीं जा सकती। महावीर यह देख सकते हैं कि इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है। यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का इसलिए वे चुप रह सकते हैं। हो सकता है कि उस व्यक्ति की उम्र समाप्त न हुई हो जिसे उन्होंने रोका है। महावीर जैसे व्यक्ति को समझना बहुत कठिन है। इसलिए उनके संबंध में कोई निष्कर्ष निकालना महंगा होगा। जहाँ हम खड़े हैं वहाँ से हम जो दीख पड़ता है हम उस तक ही साच सकते हैं। जिन्हें दूर तक दिखाई पड़ता है वे क्या सोचते हैं, क्या सोचते हैं, वे साचते भी हैं या नहीं—यह सब जानना हमारे लिए मुश्किल है। ज्यादा से ज्यादा हम अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यही साच सकते हैं कि उस हालत में हम होत, तो क्या करते। दा आदमियों का न मरने दत या फिर तीनों का ही मरने दत। हम उस चेतना स्थिति का कोई अनुभव नहीं है जो बहुत दूर तक देगती है।

कभी गोगालक के साथ महावीर किसी गाँव में गुजर रहे थे। गोगालक ने कहा—जो होनेवाला है वही होता है। महावीर कहते हैं—ऐसा ही है जो हान वाला है वही होता है। जिन गत से वे गुजर रहे थे उसमें दा टहनियावाला एक पौधा लगा था। उसमें अभी बलिया लगी थी। ऐसी बलियाँ जो बल फूल बनती। गोगालक ने उस पौधे को उखाड़कर फेंक दिया और कहा कि ये बलियाँ फूल बनने



वाली है, पर अब न बनेगी। नव्या समय वे दोनों मिखा लेकर वापस लौटे। इन बीच पानी बरस गया था और उन पीवे ने कीचड़ में फिर अपनी जड़े पकड़ ली थी और वह फिर खड़ा हो गया था। उसे देकर महावीर ने कहा कि देव ! वह कली फूल बनने लगी, पीवा लग गया है जमीन में और कली फूल बन जायगी।

जिसे दूर की बातें दिखाई पड़ती हैं उसे बहुत भी ऐसी बातें दिखाई पड़ती हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते। महावीर के नवय में तो कई ऐसी बातें हैं जो साधारण लोगों की समझ में मुश्किल से आती हैं। जैसे, वाम तौर पर महावीर गटे होकर ध्यान करते हैं। यह भी साधारण नहीं लगता, क्योंकि साधारण लोग बैठकर ध्यान करते हैं। महावीर को परम ज्ञान की उपलब्धि होती है गोदोहासन में। यह बड़ा अजीब आसन है। वे गाय नहीं डुह रहे थे वे वैसे ही बैठे थे जैसे कोई गाय को डुहने नमय बैठता है। कारण क्या था ? यह बड़ी विचित्र स्थिति मालूम पड़ती है। इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं।

पहली बात तो यह है कि गोदोहासन हमें असहज लगता है, लेकिन सहज और असहज हमारी आदतों की बातें हैं। पश्चिम के लोगों के लिए जमीन पर बैठना असहज है। जो अभ्यास में है, वही सहज मालूम पड़ता है, जिसका अभ्यास नहीं है, वह असहज मालूम पड़ता है। हो सकता है कि महावीर पहाड़ पर, जंगल में, घूप-ताप में रोज इसी आसन में बैठते रहे हों। यह बहुत कठिन नहीं है। फिर महावीर की एक धारणा और भी अद्भुत है। वे कहते हैं कि पृथ्वी पर जितना ही कम दबाव डाला जाय उतना ही अच्छा। इसमें उतनी ही कम हिंसा होने की संभावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नहीं बदलते, क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो तो दूसरी करवट विलासपूर्ण है। दूसरी करवट लेने में कोई चींटी, कोई मकोड़ा अकारण मर सकता है।

कुछ कौमो में जब लोग मिलते हैं तो नाक से नाक रगड़ कर नमस्कार करते हैं। यह उनके-लिए सहज है। कुछ लोग हैं जो जीभ निकालकर नमस्कार करते हैं। पश्चिम में चुम्बन सहज सरल-सी बात है। हमारे लिए यह भारी ऊहापोह की बात कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। जो अभ्यास में हो जाता है वह सहज लगने लगता है। महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पजों पर बैठते रहे होंगे। उनके लिए यह सहज भी हो सकता है। इस आसन में सो भी नहीं सकते। महावीर कहते हैं—भीतर पूर्ण सजग रहना है और पूर्ण सजगता के लिए अधिक श्रम जरूरी है। हो सकता है कि निरन्तर प्रयोग से उन्हें पता चला हो कि उकड़ू बैठने से नींद नहीं आ सकती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि महावीर का मस्तिष्क परम्परागत नहीं है। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण नहीं करते। उन्हें जो सरल और आनन्दपूर्ण लगेगा, वह वैसा ही करेंगे। हम सब परम्परा के अनुयायी हैं। जैसे सभी

बैठन हैं, वैसे ही हम भी बैठते हैं। महावीर इस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। हम यह भी खयाल नहीं है कि हम उस तरह के कपड़े पहनते हैं ता उस तरह के आदमी हो जाते हैं और दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं ता दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं, एक ढंग से बैठते हैं ता एक तरह के आदमी हो जाते हैं और दूसरे ढंग से बैठते हैं ता दूसरी तरह के आदमी। हमारा जो भूमिस्थ है वह इन छोट छोट सबेता पर ही जीता और चलता है। हो सकता है कि महावीर का उकड़ू बैठना एक अजीब घटना है। साधारणतः कोई उकड़ू नहीं बैठता। उनका उकड़ू बैठना गौतमहामन में ध्यान करना मेरी दृष्टि में गहर से गहरा अर्थ रखता है। वह यह कि चित्त पर इस तरह बैठन का कोई जोर नहीं है पुनः। गरीर की इस स्थिति में पुराना चित्त जोर नहीं डाल सकता।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ यह है कि आसन से ध्यान का काइ सम्बन्ध नहीं है। ध्यान है आंतरिक घटना और आसन है बाहर गरीर की स्थिति। महावीर यह भी सूचना देना चाह रहे हैं कि यह धारणा गलत है कि पद्मासन में या सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी। यदि पद्मासन या सिद्धासन में ही ज्ञान हो ता इसका अर्थ यह भी होगा कि ज्ञान गरीर की बैठक से बँधा है। अतः मैं जान को गरीर से क्या लेना-देना? भीतर जो है वह किसी आसन में उपलब्ध हो सकता है। महावीर के गौतमहामन की मूर्तियाँ जिनका वे मंदिरों में नहीं मिलती। मूर्तियाँ बनी हैं पद्मासन में, क्योंकि पुरानी धारणा है कि ज्ञान का पद्मासन में ज्ञान होता है। महावीर को हम जसा देखना चाहते हैं वसा ही बना लेते हैं। दिगम्बर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएँगे तो एक झाड़ के पास बनाएँगे, ताकि झाड़ में उनकी नग्नता छिप जाय। ये लोग महावीर से ज्यादा हाँस पार हैं। झाड़ के पास महावीर को खड़ा करना बमानी है। लेकिन हमारा निमाग अत्यंत धुंध है और अपना हिसाब में नव-वृद्ध फौरन टांग लेता है। फिर जो शक हम बनाते हैं या जो व्यवस्था देते हैं वह हमारी हानि है। एक आदमी अगर नगा हान की हिम्मत करे ता उसके अनुयायी उसे नगा न हाने देंगे। अगर वह नगा हो ही जाय तो वे कई तरकीबों निकालेंगे और पीछे पीछे पातकर उसे बराबर कर देंगे और कहेंगे कि वह आदमी कभी नगा नहीं हुआ। इसी तरह गान्धियाँ पैदा होती हैं और मर जाती हैं। रोज राज प्राप्ति की जम्हूरत पड़ जाती है ता योग की जम्हूरत पड़ जाती है जा फिर से आकर बीजा का तोड़ दें। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। लेकिन यही होता रहा है कि क्रान्तिवारी जितना बड़ा हागा उमका उतना ही पाना लीप पोत दिया जायगा। हम बाद पता नहीं कि गान्धिवारी कस लागे थ। आज उनका और ही गलत उपलब्ध है जा कि वे कभी नहीं रहे होंगे।

मैं कहता हूँ कि किसी भी आसन में—सोए बैठे, खड़े और लड़े—ध्यान हो





## एकदश अध्याय

महावीर की दृष्टि महावीर का भोग

आयातुले पयासु ।<sup>१</sup>

—सू० श्रु० १, अ० ११, गा० ३

१

‘दृष्टि’ शब्द ‘दशन’ का पर्याय नहीं है। जहाँ दृष्टि एकांगी, अधूरी और सड़ खान होती है वही दशन सदा समग्र होता है। दशन कभी भी अधूरा नहा होता। जब तक मेरे चित्त में विचार है तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दशन नहीं, क्योंकि मैं अपने विचार के चश्मे से देखूंगा। मेरे विचार का जा रंग होगा वही उस चीज पर पड़ जायगा जिसे मैं देखूंगा। दशन हागा तब जब मैं निर्विचार हो जाऊँगा। विचार दृष्टि तक ले जाती है और निर्विचार दशन तक। इस सम्बन्ध में एक बात और भी समझ लेनी चाहिए। दशन कितना भी समग्र क्यों न हो—समग्र हागा ही—जब कोई उसे प्रकट कर ले जायगा, तब फिर दृष्टि गुरू हो जायगी, क्योंकि दशन को प्रकट करने के लिए विचार का उपयोग करना पड़ेगा। विचार चीजा का ताडकर दशन है, परन्तु सत्य में सभी चीजें जुड़ी हुई हैं। अगर हम विचार से देखन जायेंगे तो जन्म अलग दीयेगा और मृत्यु अलग। जन्म और मृत्यु को विचार में ताडना अत्यन्त कठिन है क्योंकि जन्म मृत्यु की उलटी चीज है। लेकिन यस्तुत जन्म और मरण एक ही चीज के दो छोर हैं। जन्म जन्म ग गुरू हाता है वही मृत्यु पर बिना हो जाता है। एक ही यात्रा का पहला बिन्दु जन्म है और अन्तिम बिन्दु मृत्यु।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण और ग्राइस्ट को जो अनुभूति हुई थी वह समग्र है, लेकिन जब वह उस अमि प्रकट कर ले तब वह समग्र नहा रह जाती—तब वह एक दृष्टि बन जाती है। जमीलिए जो प्रकट दृष्टियाँ हैं, उनमें विरोध पड़ जाता है। दशन में कोई विरोध नहीं है लेकिन प्रकट दृष्टि में विरोध है। उदाहरणार्थ आप आर हम श्रीनगर आए। हमारे और आपके लिए ही नहा, सत्ता के लिए श्रीनगर एक हा है। फिर हम दाना श्रीनगर से लौट। कोई हमसे पूछता है—आपने वहाँ क्या दाना? इसमें उत्तर में मैं ना पहुँगा वह उसमें भिन्न हागा जो आप कहेंगे। हा सत्ता

है, मुझे झील पसन्द हो और मैं झील की बात करूँ और आप को पहाड पसन्द हो और आप पहाड की बात करे। हो सकता है कि मुझे दिन पसन्द हो और मैं सूरज की बात करूँ और आपको रात पसन्द हो और आप चाँद की बात करे। दर्शन में श्रीनगर एक था, वहाँ रात और दिन जुड़े थे, पहाड और झील जुड़े थे, वहाँ सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए तो हमने चुनाव किया, एक दृष्टि अपनायी। जैसे ही कोई बात बोली जायगी वैसे ही वह दृष्टि बन जायगी। दृष्टियों को दर्शन समझने की भूल होती रही है। इसलिए जैनो की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिन्दुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर हम दर्शन की बात करे तो हिन्दू, मुसलमान, जैन—सब खो जायँगे।

महावीर का जो अनुभव है वह तो समग्र है, लेकिन अभिव्यक्ति समग्र नहीं हो सकती। समग्र अकथ है, वर्णनातीत है। छोटे-से, सरल अनुभव भी समग्ररूपेण प्रकट नहीं हो सकते, फिर परमात्मा का अनुभव तो बहुत बड़ी बात है! आपने फूल को देखा। वह बहुत सुन्दर है। आपने उसकी अनुभूति का वर्णन करना चाहा। जब आपने उसके सौन्दर्य का वर्णन किया तो आपको लगा कि बात कुछ अधूरी रह गई। जो आपको अनुभव हुआ जीवन्त, जो आपका सम्पर्क हुआ फूल से, जो सौन्दर्य आप पर प्रकट हुआ, जो सुगन्ध आई और हवाओं ने फूल का जो नृत्य देखा—वह सब आपके लिए अकथ है और आप महसूस करते हैं कि आपकी अभिव्यक्ति कभी पूर्ण नहीं हो सकती। जब कोई असाधारण अनुभव को कहने जाता है तब उसकी अभिव्यक्ति में इतनी कमी पड़ जाती है कि उसका हिसाब लगाना कठिन है। दुनिया में जितने सम्प्रदाय हैं वे सब कही हुई बातों पर निर्भर हैं—जानी हुई बातों पर नहीं। जानी हुई बातों पर कभी सम्प्रदाय निर्मित हो जायँ, यह असम्भव है।

एक बार अपने शिष्यों की राय से फरीद कवीर के आश्रम में रुके। कवीर के शिष्य भी चाहते थे कि दोनों ज्ञानियों में बातचीत हो और वे उसका आनन्द ले। फरीद उस आश्रम में दो दिन रुके। दोनों पास-पास बैठे लेकिन कोई बातचीत नहीं हुई। दोनों गले-गले मिले, हँसे और फिर फरीद की विदाई भी हो गई। कवीर के शिष्यों ने फरीद के जाते ही पूछा 'यह क्या! दो दिन कैसे चुप रहे आप?' कवीर ने कहा 'दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी और दूसरा अज्ञानी भी बोल सकते हैं, परन्तु दो ज्ञानियों के बोलने का उपाय क्या है? जो बोलता है वह नाहक अज्ञानी बन जाता है। उसे लगता है कि जो जाना गया है वह अपार है और बोला हुआ बहुत छोटा है। तो जो बोलता है वह नासमझ होता है।'

जहाँ ज्ञान है वहाँ भेद नहीं और जहाँ शब्द है वही भेद है। इसलिए महावीर ने जो जाना है वह तो समग्र है लेकिन उन्होंने जो कहा है वह समग्र नहीं। वह

एकान्त ही है खड है। इसीलिए जन भी सहित और एकांतिक है क्योंकि महावीर  
 ११ कहा है वह जन्मे ही पकड़ सनन म समय होता है। महावीर का सम्प्र उसकी  
 पन्ना म गहा जा सकता, इसलिए वह जन होकर बैठ जायगा। वह अनकात का  
 मा 'वाद' बता लेगा, महावीर के दान को भी दृष्टि बना लगा और उस पकड़कर  
 बैठ जायगा। इसलिए सभी अनुयायी खड सत्य का पकड़नवाले हात हैं। सभी  
 सत्ताला का यही आग्रह होता है कि मेरा खड सम्प्र है। ऐसे दाव सारा मनुष्य  
 जाति का खड-खड म बांट दत हैं। मनुष्य, जो जन्म है, इसी तरह टुकड़ा और  
 सम्प्रदाय म पटककर टूट गया है। दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदाय हाग,  
 दान पर जोर हागा तो सम्प्रदाय नहीं हागे। मेरा सारा बन्ध दान पर है, दृष्टि  
 पर नहा। महावीर का भी जार दान पर था। दृष्टि ही सबसे बड़ी बाधा है दान  
 म। दृष्टिमुक्त, दृष्टिगुण हानर ही में पूण का जान सरता हूँ।

२

यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि महावीर न घर म ही रहकर साधना क्या  
 नहीं की? घर और बाहर हम दो विरोधी चीजें मालूम पडती हैं। इस बात का  
 हम सवाल नहीं आता कि घर और बाहर, दोनों एक ही विराट के दो हिस्से हैं।  
 जो सगि एत क्षण पहले बाहर थी वह एक क्षण बाद भीतर हा जाती है और पुन  
 बाहर। क्या बाहर है और क्या भीतर? हमारी जा दृष्टि है वह बड़ी सीमित है।  
 घर से हमारा मतलब है जो अपना है और बाहर से हमारा मतलब है जो अपना  
 नहीं है। लेकिन क्या ऐसा नहा हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो  
 जा अपना नहीं है? अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाय तो घर और बाहर  
 का अंतर ही पदा न हो। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा या घर भी  
 वह नहा है कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तब है  
 कि जिस व्यक्ति को जिम्मा पडना शुरू होगा—उसे बाहर और भीतर की जो भेद,  
 भा है वह मिट जायगी। यही बात है यही नीति। घर के भीतर हवाएँ कुछ  
 अलग हैं घर के बाहर न? घर का प्रमाण घर म जा गया है वह कुछ अलग है  
 उस प्रमाण से बाहर है? हाँ, स्वता हा कर है कि दीवाना न हमकी प्रगल्भा छीत  
 सा है। दीवाना ने, सीमाभा न हवाया की स्वच्छता छीत ला है। जब स्वच्छ हवाभा  
 के लिए बाई घर मे बाहर जाता है तब हम नहीं करता कि उमा घर छाट दिया है।



कोई पराया है। तभी यह सम्भव भी है कि पराये की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे।

इस 'मेरे' की दुनिया में हमने कई तरह की दीवाले उठाई हैं—पत्थर की भी और प्रेम की भी, राग की भी और द्वेष की भी। लोग इसी कारण पूछते हैं कि महावीर ने घर क्यों छोड़ दिया? क्या घर में सावना सम्भव न थी? नहीं, घर ही सम्भव न था—घर ही असम्भावना थी। हमें एक ही बात दिखाई पड़ती है कि महावीर ने घर छोड़ा। इसका कारण यह है कि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं। घर को छोड़ने की बात ही हमारे लिए असह्य है।

महावीर ने घर छोड़ा या कि घर मिट गया? जैसे ही जाना वैसे ही घर मिट गया जैसे ही समझा वैसे ही मेरा और अपना कुछ भी न रहा। दस करोड़ मील जो सूरज है, वह भी हमारे प्राणों के स्पन्दन को बाँधे हुए है, वह भी हमारे घर का हिस्सा है। लेकिन कब हमने सूरज को अपना साथी समझा? कब हमने माना कि सूरज भी मित्र है अपना? लेकिन जिसे हम अपने परिवार का नहीं समझते उसके बिना न तो हमारा परिवार होगा और न हम होंगे। दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारे हृदय की घड़कन का हिस्सा है। दूर के चाँद-तारे भी, दूर के ग्रह-उपग्रह भी किसी-न-किसी अर्थ में हमारे जीवन के हिस्से हैं। यदि पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है, लेकिन वह गाय नहीं जिसने आपके लिए दूध बना दिया है। घास को सीधे चरकर आप दूध बना नहीं सकते। बीच में एक गाय चाहिए जो घास को उस स्थिति में बदल दे, जहाँ से वह आपके योग्य हो जाय। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने भी मिट्टी को बदला है और उससे, जल और हवा से, अपना निर्माण किया है। घास आपके घर के भीतर है या बाहर? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की कोई सम्भावना नहीं है और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती। अगर हम आँख खोलकर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमें एक कडी न हो तो कुछ भी न होगा। सामने पड़ा हुआ पत्थर भी किसी-न-किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा है। जिसको जीवन की इस विराटता का अनुभव होगा वह कहेगा कि सभी मेरे हैं, सभी अपने हैं या कोई भी अपना नहीं है।

अतः यह कहना अनुचित है कि महावीर ने घर छोड़ा। असल में जब उन्हें बड़े परिवार के दर्शन हुए तब छोटा परिवार खो गया। जिसको सागर मिल जाय वह बूँद को कैसे पकड़े बैठा रहेगा? ज्ञान विराट में ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बाँधकर पकड़ा देता है। अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है, ज्ञान निरन्तर विराट से विराट होता जाता है। महावीर ने घर नहीं छोड़ा, उनके लिए घर को पकड़ना असम्भव हो गया। पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ वह बड़े घर का हिस्सा हो गया। त्याग



मम गए अथ को खयाल म रगें । त्याग का अथ कुछ छाड़ना नहीं, विराट का पाना है । लेकिन त्याग मध्य में पतरा है, कारण कि उसमें छोड़ने का भाव छिपा हुआ है । मेरी दृष्टि में महावीर या बद्ध या वृष्ण-जैसे लोग को त्यागी कहने में चुनियानी भूत है । इनमें बड़ा भागी खाना असम्भव है । त्याग का अर्थ है कुछ छाड़ना, त्याग का अर्थ है कुछ पाना । महावीर से बड़ा कोई भोगी हाना असम्भव है क्योंकि जगत में जा भी है यद्यपि उन्का ही ही गया है—उन्का भाग भी अनन्त हो गया है । एत विराट को त्यागने की सामर्थ्य धृष्ट चित्त में नहीं होती । धृष्ट, धृष्ट को ही त्याग समझता है इसलिए वह धृष्ट को पकड़ लेता है । घर सूना नहीं है महावीर का, सिर्फ बड़ा हो गया है । गद्दी न अपना को सागर में छाड़ दिया है । अथ उन्का कोई विनारा नहीं है । जीवन की यात्रा मूलतः विनारा को छाड़ने की या बड़े विनारा का पाना की यात्रा है । जिसका अमीन और अनन्त मित्र जाता हो उससे यदि हम पूछें कि तुमने विनार क्या छाड़े तो क्या उत्तर देगा वह ? वह सिर्फ हसगा और कहगा कि जाओ, अपने विनारा का छाड़कर देखो कि क्या पाया है मैं ।

मेरा सन्तुष्ट है कि त्याग की यात्रा न हो और बल दिया जाय विराट भाग पर । मेरी अपना समझ है कि धृष्ट हमने अपने महापुरुष का त्याग से बाध दिया है इसलिए हम उनका निवृत्त नहीं पहुँच पाते । इसका कारण यह है कि त्याग हम—जिसी का भा—अपीत नहीं कर सक्ता । बहुत गहरे में त्याग का बात ही विषय की बात है । छाड़ना आमघाती है । स्वस्थ भावना चाहता है, दया छोड़ना चाहता है क्योंकि वह भोग नहीं सकता । इसलिए बीमार और आमघात चित्त का त्याग टकटके ही चारों ओर पग पग पर । इसलिए तो त्याग कहते हैं बुद्धावस्था में धर्म की क्या जरूरत ? यह तो बुद्धावस्था का चिह्न है । इसलिए मन्त्रि, मन्त्रि और निरर्थक में बूढ़ लोग निराश पड़ते हैं । मैं कहता हूँ भाग और ज्ञान त्याग । पर त्याग का भाग, क्योंकि उन्का भाग जाता है । धृष्ट पर मत रह जाना । विराट का सामने रहो मत । दोषा बूढ़ जाया सागर में । भाग सागर का भाग । सामर्थ्य चित्त का भाव भाग का है छाड़ना का नहीं । इसलिए सामर्थ्य चित्त का भाव भाग का और उल्टा है तो उन् विराट भाग का लिए आमर्षित करता चाहिए । अपना उल्टा हो रहा है । जो छाड़ना भाग त्याग पाता रहा है उन्का भी विषय का भाव दा जा रहा है जो कहता जा रहा है कि उन्का भाव दाकार करा । मैं दा गन्ता हूँ कि अगर हम विराट का भाग । आत्मनः तत् धृष्ट का विषय करता पड़ना । गन्ता का सागर जाता है तो यह गद्दी नहीं रह जायगा । अन्तिम हम बात पर जाय मत दा । मैं दा विराट पर तो गन्ता का सागर दा । पर दा दा । इसका उल्टा कि दा सागर दा । दा दा आमर्षित भाग । उन्का दा दा दा दा दा है कि दा । त्याग म दा ।

यह भी सत्य है कि जिस प्रकार 'त्याग' शब्द ने अब तक गलती की, वैसे ही मेरा 'भोग' शब्द भी गलती कर सकता है। सभी शब्द गलती कर सकते हैं। अन्ततः शब्द गलती नहीं करते, लोग गलती करते हैं। लेकिन 'त्याग' शब्द व्यर्थ हो गया है। त्याग के विपरीत कोई शब्द नहीं है सिवा भोग के। लेकिन यह भी स्मरण रहे कि मेरा भोग त्याग के विपरीत नहीं है। मैं कह रहा हूँ कि यदि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना हो तो पहली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ेगी। मेरा जोर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखने पर है, आगे बढ़ने पर है—पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नहीं है। रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेता है, स्वस्थ चित्त नहीं समझ सकता। 'त्याग' शब्द पर जोर देने का परिणाम यह हुआ है कि जो स्वस्थ, जीवन्त और जीने के लिए लालायित है वह उस ओर नहीं गया है। मैं यह कह रहा हूँ कि यह जो जीवन्त धारा है इसे आकृष्ट करो। और यह तभी आकृष्ट होगी जब विराट् जीवन का खयाल इसके सामने होगा और कहा जायगा कि कुछ छोड़ना नहीं है, पाना है। और छोड़ना होगा ही इसमें, क्योंकि बिना छोड़े कुछ भी पाया नहीं जा सकता। जीवन को जीना है, उसकी आत्यन्तिक उपलब्धियों में, उसके पूर्ण रस में, उसके पूर्ण सौन्दर्य में। छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नहीं बन सकता। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है। मेरी दृष्टि यह है कि महावीर ने घर छोड़कर जिस आनन्द की अनुभूति की, वह खबर देती है कि उन्होंने घर छोड़ा नहीं, उन्हें बड़ा घर मिल गया। जो मिल गया है वह चारों ओर से उन्हें आनन्द से भर रहा है। लेकिन महावीर के पीछे चलनेवाले साधुओं को देखे। ऐसा लगता है कि वे सड़क पर खड़े हैं और उनके पास जो था वह खो गया है और जो मिलना था वह उन्हें मिला नहीं। तो एक अव्यूरे में अटक गए हैं उनके प्राण। वे कष्ट में जी रहे हैं मानो, एक परेशानी में हैं। हम किसी को परेशानी में जीते देखकर आदर क्यों देते हैं? असल में इसमें भी बड़ी गहरी हिंसा का भाव है। परेशान आदमी को हम आदर देते हैं। परेशानी यदि स्वेच्छा से ली गई होती है तो हम उसे और भी आदर देते हैं। हमारा यह आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरों को दुख देना चाहते हैं। दूसरों की पीड़ा-परेशानी हमारे भीतर की किसी गहरी आकांक्षा को तृप्त करती है। जब कोई ज्यादा-से-ज्यादा सुख में जाने लगता है तो हम दुख में जाने लगते हैं। किसी का सुखी होना हमें दुखी बना देता है। मनुष्य जाति भीतर से रुग्ण है, इसकी वजह से त्यागियों और तपस्वियों को सम्मान मिलता है। अगर मनुष्य जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगों को सम्मान मिलेगा। अब तक सिर्फ दुखी आदमियों को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य जाति के भीतर दूसरे को दुख देने की प्रबल हिंसा आकांक्षा का हिस्सा है।

यह न भूले कि काँटा चुभोनेवाला भी बीमार है और काँटा चुभोनेवाले को आदर देनेवाला भी खतरनाक है, रुग्ण है। इसी प्रकार फल संघनेवाला भी स्वस्थ है और

फूट सूधनेवाले का सम्मान देनेवाला भी स्वस्थ है। एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें सुख का समादर हो दुख का अनादर हो। लेकिन हुआ उलटा है और हमने उन लागा को भी दूखी लागा की श्रेणी में रख दिया है जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे। वस्तुतः महावीर-जिस व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोग में गिना जाना चाहिए। लेकिन हमारी त्याग की दृष्टि ने उनके सारे सुख और आनन्द को क्षीण कर दिया। हमने यह कहना शुरू किया कि यह आदमी इतने आनन्द में इसलिए है कि इसने इतना इतना त्याग किया। लेकिन बात उलटी है। यह आदमी इतने आनन्द में है कि इससे इतना त्याग हो गया। त्याग हो जाना इतने आनन्द में होने का परिणाम है। मैं छोटन की भाषा के ही विरोध में हूँ। बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह छोटे घर के दुश्मन हो गए। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब छोटे घर में रहना असम्भव हो गया। जब बड़ा घर मिल गया तो छोटा घर उसका हिस्सा हो गया।

भाग भी भ्रान्ति ला सकती है। प्रत्येक चीज भ्रान्ति ला सकती है। फिर भी अगर चुनाव करना हो तो मैं कहूँगा कि भाग ही ठीक है क्योंकि वह जीवन के स्वस्थ, सहज और सरल होने का प्रतीक है। यह भी बड़े मन की बात है कि जो आदमी भोगन चलेगा उससे त्याग धीरे धीरे अनिवार्य हो जायेंगे और वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा वैसे-वैसे बने भोग की सम्भावनाएँ प्रकट होंगी। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भाग की सम्भावनाएँ छिप जायेंगी, नए भोग की सम्भावनाएँ प्रकट नहीं होंगी और वह आदमी सुखता चला जायगा। तो मैं कह रहा हूँ कि भाग अन्ततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अन्ततः भोग नहीं बनता। एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य का उपलब्ध हो सकती है, लेकिन जो गवरदस्ती ब्रह्मचर्य थोपकर साध्वी बन गई है उसका ब्रह्मचर्य का उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। वेश्या अपने निरन्तर के अनुभव में ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान होती है लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरन्तर वासना की दिशा में गतिमान करता है।

महावीर के जब बाल बढ़ जाते थे तो वे उन्हें उखाड़ देते थे। इसका कारण यह था कि वे अपने पास उस्तरा भी नहीं रखते। जिस व्यक्ति ने सारे जीवन का अपना ही मान लिया है वह यह भी समझ गया है कि बल के लिए कौन कौन देता पिरे, बल सुबह जो होगा, होगा। महावीर के लिए सरलतम यही था कि बाल उखाड़ लिए जायें। साल में साल में बढ़ जायें तो फिर उखाड़ दिए जायें और यात्रा चलती रहे। उस्तरा-जसा हथका सामान भी क्या ढाया पाय? एस बाप को ढोन की जरूरत? सामान को पकड़कर रखने में सुरक्षित हाथ की कामना दाना है जो महावीर में नहीं थी। इसलिए वे वातावरण अशुद्ध रखते हैं। सुरक्षा या कोढ़ पाय नहीं कुछ रखने का भाव नहीं परन्तु का एक दण है जो बाल



उखाड़ता है, जो बाल उत्पाड़ने में रग लेता है। वह भी एक तरह से नताना है अपने को। जब महावीर में दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव न रहा तो वे खुद नग्न खड़े हो गए। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने को नगा दिखाना चाहते हैं। यह पागलो का वर्ग है। महावीर के आम-पान ऐसे मन्यागी हो गए हैं जो यह चाहते हैं कि कोई उन्हें नगा देवे। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सों में भी सरल होगा। मगर जिसे नग्नता में रस मिलता हो उसके लिए यह मोग का ही हिरगा है। उसके लिए बल उस बात पर नहीं कि कपड़े छुटे, बल इस बात पर है कि नग्नता जाई। जो आदमी सिर्फ इसलिए नग्न हुआ है कि दूसरे लोग उसको नगा देंगे, वह बीमार है। वह जीवन के अन्य हिस्सों में भी सरल नहीं होगा। दूसरे हिरगों में भी उसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी। इस तरह का धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक चीज है क्योंकि उसमें धर्म भी जुड़ा हुआ है। धार्मिक पागल निरीह नहीं होता, दूसरों को निरीह करता है।

धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। पर इस औचित्य को तोड़ देने की जरूरत है और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए कि यह तभी टूटेगा जब हम दुख को धर्म से अलग करेंगे। इस दुखवाद के भीतर ही सारा औचित्य छिप जाता है। मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है, परम सुख की खोज। और धार्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं भी आनन्द की ओर निरन्तर गति करता है और इसके लिए चेष्टारत होता है कि चारों ओर निरन्तर आनन्द बढ़े। न तो वह स्वयं को दुख देता है और न दूसरों को दुख देने की आकांक्षा करता है। उसके मन में दुख के प्रति न कोई आदर है न कोई सम्मान। ऐसे व्यक्ति को अगर हम धार्मिक कहे तो धर्म परम आनन्द की दिशा बनता है। परन्तु अब तक वह परम दुख की दिशा बना हुआ है।

### ३

कहा जाता है कि महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। नासाग्र दृष्टि का मतलब है—आँख आधी बंद और आधी खुली। अगर नाक के अग्र भाग को आप आँख से देखेंगे तो आधी आँख बंद हो जायगी, आधी खुली रहेगी। साधारणतः हम चाहे तो नींद में अपनी आँखों को बंद रखते हैं या जागरण में खुली। नासाग्र दृष्टि होती ही नहीं। पूरी बंद आँख निद्रा में ले जाती है और पूरी खुली आँख जागरण लाती है। ध्यान दोनों से अलग अवस्था है। वह न तो निद्रा है और न जागरण। वह निद्रा-जैसा शिथिल है और जागरण-जैसा चेतन। न तो वह नींद है और न जागरण। वह तीसरी अवस्था है। उसमें नींद और जागरण, दोनों के तत्त्व हैं। नींद में जितनी शिथिलता होती है उतनी ही ध्यान में होनी चाहिए और

जागरण में जितना चतय होता है उतना ध्यान में होना चाहिए । तो ध्यान एक मध्य अवस्था है और नासाग्र दृष्टि आँख के पीछे के स्नायुआ का मध्य अवस्था में छोड़ देती है ।

बंद आँख में सब मिट जाता है, केवल व्यक्ति रह जाता है, खुली आँख में सब सत्य हो जाता है और व्यक्ति मिट जाता है । आधी बंद और आधी खुली आँख का यह भी अर्थ है कि न तो हम सबसे दूर हुए हैं और न सबसे जुड़े हुए हैं । न तो यह बात सच है कि सब सच है और हम झूठे हैं और न यही कि सब झूठे हैं और हम सच हैं । महावीर का सारा जोर सम पर है निरंतर । 'सम्यक्' शब्द उनका प्रयोग २५ में सर्वाधिक आनेवाला शब्द है । प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहाँ सड़ा हो जाना जहाँ अतिया न हो । आँख के मामले में भी अति न हो । न तो आँख पूरी खुली हो और न पूरी बंद । ससार भी सत्य है आधा और हम भी सत्य हैं आधे । जगत माया है यह बंद आँख का अनुभव है । अगर बाँद पूरी खुली आँख के अनुभव से जिए तो इन्द्रिया के रस ही दोष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है, जगत सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है । महावीर कहते हैं 'जगत भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है ।' न तो जगत असत्य है और न आत्मा । पदार्थ भी सत्य है और परमात्मा भी । दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं । दोनों सत्य हैं और प्रतीक है वह नासाग्रदृष्टि—यानी महावीर कभी पूरी आँख बंद करके ध्यान नहीं करेंगे और न अपनी आँखा का कभी पूरी खोलकर ध्यान करेंगे । आधी आँख खुली और आधी बंद ताकि बाहर और भीतर एक सम्बन्ध बना रहे । जागे भी रहें और न जागे भी । बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का । चाबाक जैसे लोग ने ध्यान नहीं किया, बस खुली आँख रखा । साधारणतः हम चार्वाक का भागी बहेंगे । मैं चार्वाक को त्यागी बहूँगा । यद्यपि वह भी पर जी रहा है फिर भी बहुत बाहर जी रहा है । खाने पीने तक उसका याग है । अत्योग की ओर उसकी दृष्टि नहीं है । महावीर प्रत्येक चीज में एक सन्तुलन और समता का ध्यान रखते हैं । इस लिए उनकी दृष्टि श्वर और चार्वाक, दानो की दृष्टि से भिन्न है ।

साधारणतः जागति के दो ही रूप हो सकते हैं बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी । बहिर्मुखता जीवना का व्यथता में उल्ला देती है और भीतर से तोड़ देती है । अन्तर्मुखता जीवन से तोड़ देती है, भीतर झुका देती है—सब तरफ से दरवाजे बन्द कर देती है । पहली बात उतनी ही अघूरी है जितनी दूसरी बात । असार में एक तीसरा स्थिति भी है जिस पर महावीर का बल है । इस स्थिति में न तो हम भीतर दमकते हैं और न बाहर । सिर्फ दगना रह जाता है सिर्फ प्रकाश जिनका कोई फायदा नहीं है । न तो हम अन्तर्मुखी होते हैं और न बहिर्मुखी । इस स्थिति में व्यक्ति निष्क होता है । यम, यह होता मात्र ही जागति है—पूर्ण जागृति । तो महावीर कहते हैं कि जो पूरी

तरह जाग गया वही साधु है, जो सोया है वही असाधु है। असाधु दो तरह के हो सकते हैं : एक जो बाहर की ओर सोया हुआ है और दूसरा जो भीतर की ओर सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता है जो सोया हुआ ही नहीं है, जिसमें मूर्छा नामकी चीज नहीं।

एकाग्रता और ध्यान के बुनियादी फर्क को भी ख्याल में ले लेना चाहिए। ध्यान का किसी एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाना ही एकाग्रता है। एकाग्रता का बिन्दु बदलता नहीं, बचलता का बिन्दु बदलता जाता है। एकाग्रता में एक बिन्दु रह जाता है, शेष सब सो जाता है। ध्यान में ऐसा कोई बिन्दु ही नहीं होता जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। ध्यान एकाग्रता नहीं, बस जागरण है। किसी एक चीज के प्रति जागरण नहीं, वरन् समस्त के प्रति। जागरण का यही अर्थ है। जब मेरी ओर एकाग्रता होगी तब पक्षियों का कलख, कुत्ते का भौकना आदि सुनाई नहीं पड़ेगा। जब जागरण होगा तब एक साथ घटनेवाली नयी घटनाओं का पता चलेगा। अभी भी एक साथ हजारों घटनाएँ घट रही हैं। इन सबके प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। जब चेतना के दर्पण पर विचार प्रतिफलित होने लगे, साँस की घटकन सुनाई पड़ने लगे, आँख के पलकों का हिलना महसूस होने लगे तभी पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि होती है। यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है। हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता। उपयोग न करने के कारण जेप के प्रति मूर्छा है और कुछ ही के प्रति जागरुकता। इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्छा कहाँ से आई? मूर्छा कहीं से भी नहीं आई। यह हमारे द्वारा निमित्त है।



# द्वादश अध्याय

## उपसंहार

न तस्मै जाइ व कुल व ताण,  
णणत्थ विज्जाचरण सुचिण्ण ॥<sup>१</sup>

—सू० श्रु० १, अ० १२, गा० ११

१

महावीर व समय म विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे लेकिन धारा मत हो चुकी थी। यह मृत धारा कितने समय तक चल सकती थी? महावीर ने नई विचार दृष्टि को जन्म दिया, गई हवा फली, नया सूरज निकला। लेकिन पुरानी लीक पर चढ़नेवाले लोग न नए को स्वीकार नहीं किया। व अपनी लीक पर चढ़ गए। ऐसा भी हुआ कि महावीर न जो कहा था, वह भी चला और जो पिछली परम्परा थी वह भी चलती रही। परन्तु परम्परा मान होने से कोई जीवित नहीं होता। बरिज बात उल्टी है। जब वाइ चीज परम्परा बनती है तब वह मर गई होती है। आचार्यों का होना यह सिद्ध नहीं करता कि वे किसी जीवित परम्परा के ही वश्वर हैं। सच तो यह है कि उनका होगा इस बात की खबर है कि अब कोई अनुमवी व्यक्ति जीवित न रहा। इसलिए जो जाना गया था उसको जाननेवाले लोग गुरु का काम निवाहन लगते हैं। साधु भी ह लेकिन न ता साधुआ से कुछ होता ह और न शिक्षका से, जब तक कि जीवित अनुमव का लिय हुए कोई व्यक्ति न हो।

महावीर व माग दान म इस बान से कोई अवरोध नहा पड़ता कि पिछले तीवकर के लोग शेष थे। उनम जा भा समझदार साधव जीवित थे व महावीर के साथ आ गए। जो जिही आर अघे थ, आग्रह रखत थे वे अपना लीक का पट्ट मर चलत गए। फिर एम व्यक्तिया का जन्म पिछले व्यक्तिया से नहा जाड़ा जा सकता। जब भी जन्म मे जरूरत होती है प्राण पुनार करते हैं, तब वाइ न-वाइ उपसंघ चेतना वरुणाग्र वापस लौट आती है। एक वकत था कि लोग ईश्वर का शान्ति करन का भी गूँट करत थे। अब लोग एमे हैं कि इनकार करन का भी गूँट

१ मनुष्य की जाति अथवा कुल भेद सार से तार नहीं सकते। वेदत ज्ञान और सदाचार ही उसे तार सकते ह।



उठाना नहीं चाहते । महावीर के वक्त पुरानी परम्परा चढ़ती थी, पुराने गुन दे, पर वे मृत थे । उनमें कोई जीवन न था । इसलिए महावीर के आविर्भाव पर कोई असंगति की बात नहीं कही जा सकती ।

महावीर की मौलिकता के सम्बन्ध में इनका ही कहना पर्याप्त होगा कि सत्य न तो नया है और न पुराना । जो नया है वह न तो पुराना होगा और न कभी नया । जो नया होता है, वही कब पुराना हो जाता है । जो आज पुराना दीखता है, वही कल नया था । असल में सत्य के सम्बन्ध में ये विशेषण एकदम व्यर्थ हैं । नया वह होता है जो जनमता है, पुराना वह होता है जो बूटा होता है । सत्य न तो जनमता है और न बूटा होता है, न मरता है । बाबल नए-पुराने हो सकते हैं, लेकिन आकाश न नया है न पुराना । सत्य भी नया और पुराना नहीं है । इसलिए जब भी कोई दावा करता है कि सत्य प्राचीन है या नया, तब भी वह मूर्खतापूर्ण दावा करता है । सत्य एक निरन्तरता है, शाश्वतता है । महावीर और बुद्ध जो कहते हैं वह गायद वही है जो निरन्तर मौजूद है । लेकिन उससे हमारा सम्बन्ध निरन्तर छूट-छूट जाता है । इसलिए वे चिल्ला-चिल्लाकर, पुकार-पुकार कर उस ओर हमारी आँखें उठवाते हैं । आँखें उठ भी नहीं पाती कि वे फिर वापस लौट आती हैं । इन अर्थ में जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो, कहना चाहिए, नया ही उपलब्ध होता है । दूसरे का सत्य वासी हो जाता है और हमारे लिए कभी किसी काम का नहीं होता । इस अर्थ में भी सत्य को नया कहा जा सकता है । वस्तुतः हमारे लिए सत्य तभी काम का होगा जब वह फिर नया होगा । सवाल यह नहीं है कि महावीर ने नया क्या दिया ? सवाल यह है कि उनका जीना विलकुल नया था या नहीं ? इसमें शक नहीं कि महावीर का जीना सामान्य जन के जीने से विलकुल भिन्न था, विलकुल नया-नया इस अर्थ में नहीं कि वैसा पहले कभी कोई नहीं जिया होगा । कोई भी जिया हो, करोड़ों लोग जिए हो, तो भी फर्क नहीं पड़ता । जब मैं किसी को प्रेम करता हूँ तब वह प्रेम नया ही होता है । मुझसे पहले करोड़ों लोगो ने प्रेम किया है, लेकिन कोई भी प्रेमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं जो प्रेम कर रहा हूँ वह वासी या पुराना है । दूसरे का प्रेम किसी दूसरे के काम का नहीं होता । तो महावीर विलकुल अपने ही सत्य को उपलब्ध होते हैं । वह बहुतो को उपलब्ध हुआ होगा और होता रहेगा, फिर, भी उस उपलब्धि पर किसी व्यक्ति की कोई सील-मोहर नहीं लगेगी ।

महावीर ने अहिंसा को जो अभिव्यक्ति दी है वह एक दम अनूठी और नई है । गायद वैसी किसी ने भी पहले नहीं दी थी । अभिव्यक्ति नई हो सकती है क्योंकि वह पुरानी भी पड़ जाती है । अब महावीर की अभिव्यक्ति पुरानी पड़ गई है । आज

अगर मैं कुछ कहूँगा तो वह कल पुराना पड़ जायगा। सत्य न नया होता है और न पुराना पड़ता है। सारी किलावा म भी लिया हो तब भी सत्य पुराना न होगा। तब व्यक्ति को उसकी उपलब्धि होगी तब वह नए की ही उपलब्धि होगी। सत्य सदा मे है लेकिन जब व्यक्ति सत्य से सम्बन्धित होता है तब सत्य उसके लिए गया हो जाता है। और प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति जिसे वह अभिव्यक्त करता है, नई होती है क्योंकि वैसे अभिव्यक्ति कोई दूसरा नहीं दे सकता। इसका कारण यह है कि वसा कोई दूसरा व्यक्ति न तो हुआ है, न है और न हो सकता है। मेरे पदा होने मे या आपके तम मे कितना बड़ा जगत सम्बन्धित है, इसका हमें कोई खयाल नहीं है। मेरे पदा होने मे आज तक विश्व की जो भी स्थिति थी, वह सब की सब जिम्मेदार है और मुझे फिर से पैदा करना हो तो विश्व की ठीक वही स्थिति पूरी-पूरी पुनरुक्त हो, तभी मे पैदा हो सकता हूँ। मेरे पिता चाहिए, मेरी मा चाहिए। वे भी उही पिताआ और माताआ से पदा हाने चाहिए जिनसे वे पैदा हुए थे। इस तरह हम पीछे लाटते चले जाएँ तो देखेंगे कि विश्व की पूरी स्थिति एक छोटे से व्यक्ति के पदा होने मे संयुक्त है। अगर इसमे एक इंच भी इधर उधर हो जाय तो मैं पदा नहा हो सकूँगा। जो भी पदा होगा वह दूसरा होगा। जगत का पूरा-का पूरा अतीत फिर से पुनरुक्त हो तभी मे पैदा हो सकता हूँ। यह कैसे सम्भव है? तो निश्चय ही किसी व्यक्ति को दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। इसलिए किसी व्यक्ति के अनुभव को, उसकी अभिव्यक्ति को भी दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। इस अर्थ मे सत्य का अनुभव व्यक्तिगत है।

## २

मैं मत मतान्तरा का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूँ। न कोई जैन है, न बौद्ध, न कोई हिन्दू है और न मुसलमान। ससार मे लोग चाहे धार्मिक हैं चाहे अधार्मिक। जो धार्मिक है वह बुद्ध, महावीर, कृष्ण और फाइस्ट हो सकता है। लेकिन वह हिन्दू, जैन, मुसलमान या ईसाई नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमिया के सम्प्रदाय हैं। इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म या कोई सम्प्रदाय नहीं है, सब सम्प्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने को हिम्मत नहीं जुटा पाता, बुद्ध नहा हो सकता, कृष्ण नहा हो सकता। चूँकि वह धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है इसलिए वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है कि महावीर तो हम हो नहीं सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। लेकिन उस पक्ष नहा कि जिन हुए बिना कोई जैन कस हा सकता है? जिसने जीता नहा सत्य का उस जैन कसे कहा जा है? महावीर इसलिए जैन हैं कि उन्होंने सत्य को जीता है। जैन कि वह महावीर को मानता है।

मेरा तो कोई पक्ष नहीं, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है इसलिए मैं महावीर की बात करता हूँ, बुद्ध से मुझे प्रेम है, मैं बुद्ध की बात करता हूँ, कृष्ण से मुझे प्रेम है, मैं कृष्ण की बात करता हूँ। मैं किसी का अनुयायी नहीं हूँ। इस बात का आग्रह मन में जरूर है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। इनके पीछे चलने में कोई कहीं पहुँच नहीं सकता, लेकिन इन्हें अगर कोई पूरी तरह से समझ ले तो स्वयं को समझने के लिए बड़े गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि मानव-धर्म की स्थापना नहीं की जा सकती। दुनिया में कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। मनुष्य एक दूसरे से इतना भिन्न है कि कभी एक धर्म का होना असम्भव है। मेरी दृष्टि यह है कि मानव-धर्म एक हो, यह बात ही बेमानी है। धार्मिकता हो जीवन में। धार्मिकता के लिए किसी संगठन की जरूरत नहीं। मैं इस चेष्टा में नहीं हूँ कि एक मानव-धर्म स्थापित हो, मैं इस चेष्टा में हूँ कि धर्मों के नाम से सम्प्रदाय विदा हो जायें। वस, वे जगह खाली कर दे। मेरी दृष्टि यह है कि अगर सम्प्रदाय मिट जायें तो अधार्मिक आदमी बहुत कम रह जायेंगे। यदि सभी धर्मों के सार को इकट्ठा कर लिया जाय तो इससे कोई सम्प्रदाय खंडित न होगा। मानव-धर्म स्थापित करने की चेष्टा में एक और धर्म की स्थापना हो जायगी, एक और सम्प्रदाय बन जायगा। मेरी सलाह है कि सम्प्रदाय-मात्र का विरोध किया जाय और धार्मिकता की स्थापना की जाय—धर्म की नहीं, धार्मिकता की।

तीसरी बात—महावीर और बुद्ध-जैसे व्यक्तियों ने भगवान् को जो इनकार किया है, उस इनकार में भगवत्ता का इनकार नहीं है। ईश्वर को इनकार किया है लेकिन, ईश्वरता को पूर्ण स्वीकृति दी है। अगर वे ईश्वर को मानते तो इनमान की स्वतंत्रता पूरी नहीं हो पाती और अगर उसके रहते इनसान को स्वतंत्र मानते तो यह स्वतंत्रता बेमानी होती। यानी, अगर ईश्वर है और हम उसे स्रष्टा, नियम आदि नामों से पुकारते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि आदमी पूर्ण स्वतंत्र है तो, महावीर कहते हैं, इन दोनों बातों में मेल नहीं है। ईश्वर की मौजूदगी ही इनसान की स्वतंत्रता में बाधा बनेगी। नियम उसकी परतंत्रता के जनक होंगे। इसलिए महावीर परमात्मा को इनकार करते हैं ताकि परतंत्रता का कोई उपाय न रह जाय। इसका यह मतलब नहीं कि वे परमात्मा को नहीं मानते। इसका मतलब है कि वे परमात्मा के व्यक्तित्व को इनकार करते हैं और परमात्मा को सबसे व्याप्त मानते हैं, नियामक नहीं। परमात्मा के ऊपर वे किसी को नहीं बिठाते। यदि हम यह मान ले कि परतंत्रता परमात्मा की इच्छा है, जैसा कि साधारण आस्तिक मानता है, तो मनुष्य विलकुल परतंत्र हो जायगा। यदि यह कहा जाय कि हम अपनी इच्छा से इस जगत् में नहीं हैं या कि ईश्वर की इच्छा से ही हम यहाँ हैं तो जगत् कठपुतलियों का खेल हो जाता है। जहाँ परम स्वतंत्रता है वहाँ प्रत्येक चीज में अर्थ है। इसी परम स्वतंत्र-



नना की घोषणा के लिए महावीर को कहना पड़ा कि ईश्वर नहीं है। साधारण आस्तिक की धारणा है कि परमात्मा नियामक है, नियन्ता है, स्रष्टा है। यदि ऐसी बात है तो मनुष्य की स्वतन्त्रता खत्म हो गई। मगर गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर स्वतन्त्रता है। कण-वण में प्राप्त जो परम स्वतन्त्रता है, उससे समग्र वा नाम ही परमात्मा है। अगर हम इस समय पाएँ तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं रह जाता। इतना ही कहना काफी होता है कि तूने स्वतन्त्रता को जिस ढंग से चुना है वह दुःख लायगा। इससे ज्यादा कुछ भी कहना अयुक्त है।

मैं कहता हूँ कि स्वतन्त्रता जगत् की मौलिक स्थिति है। दो गइ स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता नहीं होती। किसी ने भी स्वतन्त्रता नहीं दी और न किसी ने स्वतन्त्रता ली। स्वतन्त्रता लेनी तभी पड़ती है जब कि परतन्त्रता हो। अगर स्वतन्त्रता है तो उसे न कोई देता है, न कोई लेता है। वह जगत् का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है। काइ उसको दुःख के लिए उपयोग करता है वर कोई सुख के लिए उपयोग करता है वर। लोग मुझसे निरन्तर पूछते हैं कि आप लागा का इतना समझाते हैं, इससे क्या हुआ? तो मैं कहता हूँ कि यह प्रश्न ठीक नहीं है। मेरा काम था चिलाना। लागा ने मुझसे कहा भी न था कि चिल्लाओ। यह मेरी मोज थी, यह मेरा चुनाव था। यह उनकी मोज थी कि उन्होंने सुना या उनकी मोज थी कि नहीं सुना। यह उनकी मौन थी कि उन्होंने सुना और अनसुना कर दिया। इस बात में मैं भी स्वतन्त्र था और वे भी स्वतन्त्र थे। हम सब अपनी-अपनी स्वतन्त्रता में जी रहे हैं, इसलिए वही मोज है। और जीवन बड़ा रमण्य है। कहीं कोई राकनवाला नहीं है कहा कोई मालिक नहीं है। हम ही मालिक हैं हम ही निर्णायक। इतना ही समय में आ जाय तो फिर समयने का क्या दोष रह जाता है?

मेरी दृष्टि में प्रारब्ध भी जीवा का नियामक नहीं है। अपने किए हुए निणय ही प्रारब्ध बन जाते हैं। आज तुम जा करोगे, वही निणय बनगा और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उसमें। बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। जा आदमी स्वतन्त्र होने का निणय करता है अन्त में वही मुक्त हो जाता है। ससार भी एक प्रारब्ध है। मनुष्य द्वारा किए गए निणय के फल को ही प्रारब्ध कहते हैं।

सुख के खोजी को महावीर ने स्वर्ग का खोजी कहा है। आनन्द का खोजी, उनकी दृष्टि में, मोक्ष का खोजी है। दुःख का खोजी नरक का खोजी है सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी। स्वर्ग मोक्ष नहीं है। महावीर के पहले बहुत यापन धारणा यहाँ थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है। सब सुख मिल गया तो परम उपलब्धि हो गई। लेकिन मनोवैज्ञानिक रीति से समझना चाहिए कि जहाँ सुख होगा, वहाँ दुःख अनिवार्य होगा। जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अंधकार अनिवार्य है। जब हम दुःख में होते हैं तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिफल आशा दिया जाता है कि अभी प्रकट होता हूँ। लेकिन दोनों ही चीजें

एक है और अगर समझ में आ जाय तो सुख का भ्रम टूट जाता है। सुख का भ्रम टूटे तो दुख का साक्षात् होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दुख का साक्षात् नहीं होगा क्योंकि इस भ्रम के कारण हम दुख को सहनीय बना लेते हैं, हम उसे झेल लेते हैं। सुख का भ्रम टूट जाय तो भागोगे कहाँ, यह कभी सोचा है ? जब सब ओर दुख के काँटे हमें छेद लेते हैं और भविष्य की कोई आशा नहीं रह जाती तब हम स्वयं में लौटते हैं। जिस दिन दुख का पूर्ण साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापिसी शुरू हो जाती है, व्यक्ति लौटने लगता है। दुख से भागोगे तो सुख में पहुँच जाओगे, दुख में जाओगे तो आनन्द में पहुँच जाओगे। दुख से भागे नहीं, खड़े हो गए, दुख को पूरा देखा और उसका साक्षात् किया तो रूपान्तरण शुरू हुआ। दुख का साक्षात् आनन्द की यात्रा बन जाता है।

आम तौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुखी हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती, जब कि सच्चाई यह है कि हम जो इच्छा करते हैं वह दुख का बीज है। जब हमारी इच्छा बिना पूरा हुए इतना दुख दे जाती है तो अगर वह पूरी हो जाय तो कितना दुख दे जायगी, बहुत मुश्किल है कहना। पाने का, जीतने का, सफल होने का भी जो सुख है वह सब चला जाता है। प्रेयमी दूर से जैसी लगती है, वैसी पास से नहीं। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती ही है। जिसे हम नहीं देख पाते, उसकी जगह हम अपना सपना ही रख देते हैं। हम धनी होना चाहते हैं और इसके लिए प्रतियोगिता करते हैं, हममें प्रतिस्पर्धा का भाव होता है। जिस दिन सारी पृथ्वी का धन मिल जाता है, उस दिन प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है, धन ही दुख का कारण बन जाता है। स्मरण रहे कि सुख प्रतियोगिता में था न कि धन में। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाय तो वह व्यक्ति आत्महत्या कर लेगा। अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएँ पूरी कर दी जायँ तो उसी वक्त पृथ्वी समाप्त हो जाय। इच्छाओं की पूर्ति सुख नहीं लाती बल्कि दुख का कारण बनती है। यदि उनकी अपूर्ति इतना दुख लाती है तो उनकी पूर्ति कितना दुख लायगी। आखिर यह दिखाई पड़ जाय तो तुम सुख की आशा को छोड़ दोगे। सुख की आशा एक दुराशा है, असम्भावना है। जिस व्यक्ति की आशा छूट जाती है, वह दुख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह है कि दुख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने में लौट आता हूँ, क्योंकि सुख पाने की चेष्टा छोड़ देता हूँ।

इतिहास की दृष्टि में महावीर अतीत की घटना भले ही हो, साधक के लिए वे भविष्य की घटना हैं। आनेवाले किसी भी क्षण में साधक वहाँ पहुँच सकता है जहाँ

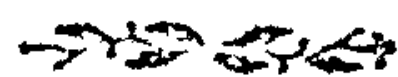
महावीर पहुँचे थे। और जब तक वह उस जगह नहीं पहुँच जाता तब तक महावीर का समय पाना मुश्किल है। उस अनुमति का वह कसे समझ सकता है जो उस कभी नहीं हुई? अर्थात् कैसे समझेगा प्रकाश के सम्बन्ध में? महापुरुष को समझना अत्यन्त कठिन है बिना स्वयं महापुरुष हुए। महावीर का समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना सम्भव नहीं है। महावीर को समझना हो तो स्वयं को समझना और स्थावरित करना ज्यादा जरूरी है। शब्द, सिद्धान्त और परम्परा से समझन की कोशिश करते हैं तो भूल ही जाती है। स्वयं के भीतर उतरते ही हम उस जगह पहुँचेंगे जहाँ कभी महावीर पहुँचे थे। तभी हम उन्हें समझ पायेंगे।

महावीर के सम्बन्ध में मैंने जो बातें कहा, उनका शास्त्रा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए हाँ सकता है कि बहुतों को वह कठिन मालूम पड़े, स्वीकार योग्य भाँस न हो। शास्त्रीय बुद्धिवाला को वे अजीब दीखें और वह पूछे कि शास्त्रा में ये बातें कहा हैं? उनसे मैं कह देना चाहता हूँ कि ये बातें शास्त्रा में हाँ या नहीं स्वयं में खोजनेवाला इन्हें अवश्य पा लेंगे और स्वयं से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता। मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नहीं है। मैं शास्त्रा में विश्वास नहीं करता, बल्कि उन सभी बातों को सदिग्ध इस कारण मानता हूँ कि वे शास्त्रा में लिखी हुई हैं। मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्रा को नहीं रखा है और महावीर को सीधा देखने की कोशिश की है। सीधा हम उसे ही देख सकते हैं जिससे हमारा प्रेम है। प्रेम प्रत्येक वस्ती को वस्त्र ही खोल देता है जन्म सरज। हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानते हैं जीते हैं इसलिए जान नहीं पाते। महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान जायेंगे और एक भजे का बात तो यह है कि जो महावीर को प्रेम करेगा वह बृष्ण, आइस्ट या मुहम्मद का प्रेम करने से बच नहीं सकता। अगर महावीर से प्रेम होगा तो उसे महावीर में जा लिगाई पड़ेगा, वही बहुत गहरे में मुहम्मद बृष्ण और आइस्ट में भी दृष्टिगत होगा। यह असम्भव है कि कोई व्यक्ति महावीर से प्रेम करे और बुद्ध से नहीं। प्रेम न किसी पर ठहरता है न किसी का राबता है न किसी का ठहराता है। प्रेम की न कोई गत है न कोई सोदा। प्रेम तो परम मुक्ति है। प्रेम का आप इकट्ठा नहीं कर सकते, ज्ञान को कर सकते हैं। प्रेम तो बाँटना ही पड़ता है। प्रेम को इकट्ठा करनेवाला प्रेमी नहीं हो सकता। जितना बाँटे, उतना प्रेम।

अगर हमारा चित्त पूर्वग्रहों से भरा है तो हम प्रेमपूर्ण नहीं हो सकते। महावीर जन्मे व्यक्ति किसी धारणा पर बस नहीं जा सकते। अमल में अद्भुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि उस पर पुरानी बसोटीयाँ काम नहीं करती। प्रतिभावाली व्यक्ति न केवल खुद का निर्मित करता है बल्कि खुद का भाव ज्ञान की बसोटीयाँ भी निर्मित



करता है । इसलिए सभी पूर्वग्रहों से मुक्त होकर मैंने महावीर के सम्बन्ध में चर्चा की । किन्हीं सूचनाओं, धारणाओं अथवा नापदों के आवार पर उन्हें नहीं कसा । प्रेम के दर्पण में वे जैसे दीप्त पड़े वैसे बात मैंने बही । अपनी बातों में मैं अनिवार्य रूप से उतना ही मौजूद हूँ जितना महावीर मौजूद है । उनमें हम दोनों हैं । यहाँ मैं तो उस महावीर की बात कर रहा हूँ जिसमें मैं भी सम्मिलित हूँ, जो मेरे लिए एक आत्मगत अनुभूति बन गया है ।





द्वितीय खंड



# प्रथम अध्याय

## अहिंसा

अदुवा अदिनादाण ।<sup>१</sup>

—आ० श्रु० १, अ० १, उ० ३

अहिंसा जोर हिंसा में बुनियादी भेद है। जहाँ अहिंसा हमारा स्वभाव है हिंसा अनित्य गुण है, पायी गयी है। हिंसक बनने के लिए हम कुद्व करता पडा। हिंसा हमारी उपलब्धि है, हमने उसे सोजा है, उसका निमाण किया है। अहिंसा हमारी उपलब्धि नहीं हो सकती। आदमी स्वभाव से हिंसक नहीं है, वह हिंसक हो नहीं सकता। हिंसा दिया गया है वही भी नहीं ले जाती और कोई भी व्यक्ति दुःख की कामना नहीं करता। हिंसा ऐक्सिडेंट है, सयोगिक है—यह हमारे जीव की धारा नहीं है। इसलिए जो हिंसक है वह भी जोरों से घटे हिंसक नहीं हो सकता, अहिंसक घोषित घटे अहिंसक हो सकता है। हिंसक को किसी बतुल के भातर अहिंसक होना ही पड़ता है। असत्य में अगर वह हिंसा करता है तो इसलिए करता है कि बिना के साथ वह अहिंसक हो सके। जोर का लक्ष्य भी अचारी है और हिंसक का लक्ष्य भी अहिंसा है।

सत्य और द्रष्टव्य सत्य विधायक हैं। धर्म की भाषा में इन दो विधायक सत्य को छाड़कर सब गलत बनावतमक हैं। जिन्हें मैं पर महाग्रन्थ कहता हूँ वे गलत बनावतमक हैं। जब ये पाँचो—अहिंसा, अपरिग्रह, अचीय अकाम और अप्रमाद—फूट जायेंगे तो भीतर जा उपलब्ध होगा, बल होगा सत्य, और बाहर जो उपलब्ध होगा वह होगा द्रष्टव्य। सत्य का अर्थ है जिस हम भीतर जायेंगे द्रष्टव्य का अर्थ है जिस हम बाहर जायेंगे द्रष्टा जहाँ धर्म, ईश्वर-जसा आचरण। ईश्वर-जसा आचरण उम्मीद हो सकता है जो ईश्वर हो जाय। सत्य का अर्थ है ईश्वर-जसा हो जाता उसका अर्थ है द्रष्टा। जो ईश्वर-जसा हो गया उसकी जो धर्म होती उम्मीद का नाम द्रष्टा धर्म है। द्रष्टव्य अर्थात् द्रष्टा जसा आचरण।

अगर टीचर में समझें तो अहिंसा पर कोई विचार नहीं हो सकता कि अहिंसा पर विचार हो सकता है? और हिंसा में गलत पर विचार हो सकता है। प्लान रहति अहिंसा का मध्यम कि दाना ही है—हिंसा का न होना, हिंसा का अभाव। भूमि

१ जीव की हिंसा करना एक प्रकार का अरुणता है। यही धारो है।



धर्म परम स्वास्थ्य है, इसलिए धर्म को भी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। बीमारी की परिभाषा हो सकती है, स्वास्थ्य की नहीं। चर्चा निरर्थक धर्म की हो सकती है, धर्म की नहीं। स्वास्थ्य को जाना जा सकता है, उसे जिया जा सकता है, स्वस्थ हुआ जा सकता है, लेकिन उसकी चर्चा नहीं हो सकती। इसलिए सभी धर्मशास्त्र वस्तुतः धर्म की चर्चा करते हैं।

हिंसा को मैं पहला धर्म मानता हूँ, और जो हिंसक है उनके लिए यह पहला व्रत है। ऐसे भी हम हिंसक हैं। हमारे हिंसक होने में भेद हो सकते हैं, कारण कि हिंसा की अनेक पतें हैं, इसकी इतनी सूक्ष्मताएँ हैं कि उसे पहचान पाना मुश्किल होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिसे हम हिंसा कहते हैं वह अहिंसा का बहुत स्थूल रूप होता है और जिसे हम अहिंसा कहते हैं वह हिंसा का ही बहुत सूक्ष्म रूप होता है। उदाहरण के लिए मैं गांधीजी की अहिंसा को हिंसा का सूक्ष्म रूप कहता हूँ और कृष्ण की हिंसा को अहिंसा का स्थूल रूप मानता हूँ। हिंसक के लिए ही अहिंसा पर विचार करना जरूरी है। इसलिए यह समझ लो कि दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया। जैनो के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। उनमें एक भी न तो ब्राह्मण था और न वैश्य। बूढ़ भी क्षत्रिय थे। दुनिया में अहिंसा का खयाल वहाँ पैदा हुआ जहाँ हिंसा घनी थी, सघन थी। जो चौबीस घंटे हिंसा में रत है उन्हें ही यह दिखाई पड़ता है कि हिंसा हमारा स्वभाव या हमारी अन्तरात्मा नहीं है।

मैं यह मानकर चलूँगा कि हम हिंसक लोग इकट्ठे हुए हैं। जब मैं हिंसा के अनेक-अनेक रूपों की बात करूँगा तब आप समझ पायेंगे कि आप किस रूप के हिंसक हैं। और अहिंसक होने की पहली शर्त है, अपनी हिंसा को उसकी ठीक-ठीक जगह पर पहचान लेना, क्योंकि जो व्यक्ति हिंसा को ठीक से पहचान लेता है, वह हिंसक नहीं रह जाता। हिंसक रहने की एक ही तरकीब है कि हम अपनी हिंसा को अहिंसा समझने जायें। इसलिए असत्य सत्य के वस्त्र पहन लेता है। असल में असत्य को जब भी खड़ा होना हो तो उसे सत्य का चेहरा उधार लेना ही पड़ता है। एक सीरियन कथा कहती है कि एक बार सौंदर्य की देवी पृथ्वी पर उतरी और एक झील में स्नान करते हुए दूर निकल गई। तभी कुरूपता की देवी को मौका मिला, उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और वह चलती बनी। कथा कहती है कि तभी से सौंदर्य की देवी उसका पीछा कर रही है और खोज रही है उस कुरूपता को जिसने उसके वस्त्र पहन लिये हैं। कुरूपता अब भी सौंदर्य के वस्त्र पहने हुए है।

हिंसा को भी खड़े होने के लिए अहिंसा बनना पड़ता है। इसलिए अहिंसा की दिशा में जो पहली बात जरूरी है वह यह है कि हिंसा के चेहरे पहचान लेने जरूरी है, खासकर उन चेहरों को पहचान लेना जरूरी है जो उसके अहिंसक चेहरे हैं। दुनिया में कोई भी पाप सीधा घोखा देने में असमर्थ है। पाप को भी पुण्य की आड़

म हो घोखा दना पड़ता है। पाप अपन में हारा हुआ है। हिंसा जीत नहीं सकती। लेकिन दुनिया स हिंसा नहीं मिटती, क्योंकि हमने हिंसा के बहून से अहिंसक चेहरे खोज निकाले हैं।

सबसे पहली हिंसा दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होता है। जस ही मैं कहता हूँ कि आप दूसरे हैं वैसे ही मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। अगर मैं दूसरे के प्रति अहिंसक होना असम्भव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं। ऐसा हमारा स्वभाव है। वस्तुतः दूसरे को दूसरा स्वीकार करने में ही हिंसा शुरू हो गई। मात्र का कथन है कि वह जो दूसरा है वह नरक है। दूसरा नरक नहीं है, दूसरे का दूसरा समझना नरक है। जिस क्षण हम दूसरे का अपना समझते हैं उसी क्षण गर और उसका बोच जा घारा बहती है वह अहिंसा की है। दूसरे को अपना समझना का क्षण ही प्रेम का क्षण है।

लेकिन जिसे हम अपना समझते हैं वह मा गहरे में दूसरा ही बता रहता है। पत्नी भी दूसरी है चाहे बितनी मा अपनी हो। बेटा भी दूसरा है, चाहे बितना मा अपना हो। अपना वहाँ में मा दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता। प्रेम अपना ढग स हिंसा करता है। पत्नी अपने पति का प्रेमपूर्ण ढग में मताती है। जब साना प्रेमपूर्ण होता बड़ा सुरक्षित हो जाता है। मृताने का बड़ा मुश्किल मित्र जाती है क्योंकि हिंसा अहिंसा का चेहरा आठ लगा है। शिक्षा विचारों का मताता है और कहता है कि तुम्हारे हित के लिए हा सता रहा हूँ। इसलिए जिस व्यक्ति का हिंसा के प्रति जागना हा, उस पहलू आना के प्रति का जागना हिंसा के प्रति जागना होगा। मरा सदा है कि दुनिया में अपना बनाने वाला जितनी मरपाए हैं सब की मय हिंसक हैं। परिवार स ज्यादा हिंसा और बिना मरपा न गया की, लेकिन उसकी हिंसा बड़ा गुप्त है। इसलिए अगर सदागी का परिवार छोड़ देता पड़ता था तो उसका कारण था—गुप्तमय हिंसा से बाहर हो जाना। यह जानना था कि हिंसा का एक गुप्तमय जाल है जो अपना पहनवाले पर रह है। उनसे लड़ना नो मुश्किल है क्योंकि वे हमारे हित में ही पर रह हैं। परिवार का हा फटा हुआ रूप ममाज है इसलिए ममाज न जितना हिंसा का है उतना हिंसाव सगना कठिन है।

मरा तो यह है कि ममाज न व्यक्ति का पराजय-पराजय मार टागा। इसलिए प्याज रह कि जब आप किसी ममाज के सदस्य की हैमियत स हिंसा में व्यवहार करत हैं तब आप हिंसक हात हैं। जब आप जन का तरह किसी व्यक्ति स व्यवहार करत हैं तब सब हिंसक हैं। हिंसा या मुसलमान की तरह व्यवहार करत है या आप हिंसक हैं। ममाज व्यक्ति हा अहिंसक नता हा पाता तो ममाज के अहिंसक हात का सम्भावना मरा दूर है। ममाज हा अहिंसक हा हा मरा मरता, इसलिए दुनिया में

जो बड़ी हिंसाएँ हुई हैं वे व्यक्तियों द्वारा नहीं, वरन् समाजों द्वारा हुई हैं। अगर किसी मुसलमान को हम कहे कि इस मन्दिर में आग लगा दो तो अकेला मुसलमान, व्यक्ति की हैसियत से, पच्चीस बार सोचेगा। लेकिन दस हजार मुसलमानों की भीड़ में वह मन्दिर में आग लगाने को तैयार हो जायगा, क्योंकि दस हजार की भीड़ एक समाज है। हिन्दू भी मस्जिद के साथ ठीक यही कर सकता है।

समाज का मतलब है अपनों की भीड़। और दुनिया में हिंसा मिटानी तब तक मुश्किल है जब तक हम अपनों की भीड़ बनाने की जिद बन्द नहीं करते। अपनों की भीड़ का मतलब है एक ऐसी भीड़ जो सदा परायों के खिलाफ खड़ी हो। इसलिए दुनिया के सभी संगठन हिंसात्मक होते हैं, चाहे यह संगठन परिवार ही क्यों न हो। परिवार दूसरे लोगों के खिलाफ खड़ी की गई इकाई है। राज्य दूसरे राज्यों के खिलाफ खड़ी की गई राजनैतिक इकाई है। मनुष्य उस दिन अहिंसक होगा जिस दिन वह निपट मनुष्य होने को राजी होगा।

इसलिए महावीर को जैन नहीं कहा जा सकता, और जो उन्हें ऐसा कहते हों वे महावीर के साथ अन्याय कर रहे हैं। कृष्ण को हिन्दू नहीं कहा जा सकता। वे किसी समाज के हिस्से नहीं हो सकते। वे दूसरी इकाइयों के साथ जुड़ने को राजी नहीं हैं। सन्यास समस्त इकाइयों के साथ जुड़ने से इनकार है। असल में संन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है। अपनों का चेहरा भी हिंसा का सूक्ष्मतम रूप है, इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं वह भी अहिंसा नहीं बन पाता। अहिंसा उस क्षण शुरू होती है जिस क्षण दूसरा नहीं रह जाता। यह नहीं कि वह अपना है। वह है ही नहीं।

दूसरों के दिखाई पड़ने का कारण दूसरों का होना नहीं है। दूसरों के दिखाई पड़ने का कारण बहुत अद्भुत है। दूसरा इसलिए दिखाई पड़ता है कि मुझे अपना कोई पता नहीं है। अपने आत्म-अज्ञान को मैंने दूसरे का ज्ञान बना लिया है। हम दूसरे को देख रहे हैं, क्योंकि हम अपने को देखना नहीं चाहते। दूसरे का होना आत्म-अज्ञान से पैदा होता है। 'दूसरे' से मेरा मतलब दूसरे की चेतना से नहीं है, दूसरे के शरीर से है। न आपकी चेतना से मुझे कोई प्रयोजन है और न मुझे आपकी चेतना का कोई पता है। जिसे अपनी ही चेतना का पता नहीं, उसे दूसरे की चेतना का पता हो भी कैसे सकता है? मुझे आपके शरीर का पता है और अपने शरीर का पता है। अगर ठीक से कहे तो कह सकते हैं कि हिंसा दो शरीरों के बीच का सम्बन्ध है। दो शरीरों के बीच अहिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। शरीरों के बीच सम्बन्ध सदा हिंसा का होगा।

कई प्रेमियों ने अपनी प्रेयसियों की गर्दन दवा डाली है। प्रेम के क्षणों में मार ही डाला है। अदालतें नहीं समझ पाई कि यह कैसा प्रेम है। लेकिन



जदालता को समझना चाहिए कि यह थोड़ा आगे बढ़ गया प्रेम है ! यह सम्बन्ध जरा अधिक घनिष्ठ हो गया है ! दो शरीरों के बीच में जो सम्बन्ध होता है, वह चाहे छुरा मारने का हो या चुम्बन आलिंगन का, उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं है । छुरा मारने का जो रस है वह भी यौन का सुख है । असल में सम्भोग का सुख दूधर के शरीर में प्रवेश करने का ही सुख है ।

यदि आप किसी वैज्ञानिक को प्रयोगशाला में जाएं तो वहाँ आपको यह देखकर हैरानी होगी कि यद्यपि अनगिनत चूहे मारे जा रहे हैं, मेढर काट जा रहे हैं कितने ही जानवर उल्टे-सीधे लटकाए जा रहे हैं कितने जानवर वही पड़े हैं फिर भी वैज्ञानिक को पक्का खयाल है कि वह हिंसा नहीं कर रहा है । उसका खयाल है कि वह जादू की कृति में प्रयोग कर रहा है । बस ऐसी ही हिंसा अहिंसा का मुन्कोटा पहन लेती है । जब आप किसी से प्रेम करते हैं तब उस समय आपको इस बात का खयाल करना चाहिए कि आपके भीतर की हिंसा ही तो प्रेम की गन्ध उड़ा देती जाती ? यदि वां जाती है तो वह खतरनाक से खतरनाक शक्ति है, क्योंकि उसका स्मरण जाना बहुत मुश्किल है ।

स्वयं में उत्पन्न हो रही चेतना अहिंसा बन जाती है दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना हिंसा बन जाती है । लेकिन हम दूसरे का ही पता है । अगर मरी अपनी भी कोई शक्ति है तो वह आपके द्वारा—दूसरे के द्वारा—नी गई शक्ति है । इसलिए मैं सदा डरा रहूँगा । वही आपके मन में मेरे प्रति बुरा खयाल आ जाय । अक्सर की बटिंग पाइ पाइकर मैंने अपना चेहरा बनाया है । आपकी बातें सुनकर, आपकी धारणाएँ इकट्ठी करके, मैंने अपनी प्रतिमा बनाई है । यदि मैं पिता हूँ तो मुझे पिता होने का पता नही है । किसी के बटा हान भर का पता है । स्वयं में भी मैं दूसरा को देखता हूँ, आगत में भी दूसरे ही निराद पड़ते हैं । ध्यान के लिए धटना हूँ तो दूसरा का ही ध्यान करता हूँ । जिस दिन मैं स्वयं को दान लगाता हूँ तो आप दूसरे की तरह दिखाई पड़ता पड़ ही जायेंगे ।

महावीर जब चौड़ी में बचकर चलते हैं तो इसका कारण वह नहीं, तो आपका चौड़ी से बचकर चलने में रहता है । आप जब चाटी से बचकर चलते हैं तब आप चाटी से बचकर चलते हैं । महावीर जब चाटी से बचकर चलते हैं तब आप आप पर आप ऊपर पड़ जाते इसलिए बचकर चलते हैं । महावीर का बचकर चलना सिद्धांत है आपका बचकर हिंसा । आप द्वारा बचकर चलने में हमारा मौजूद है । आप चाटी में बचकर चलते हैं क्योंकि आप ने उसे बचाने की हिंसा है । और हिंसा अहिंसा है कि आप उरत । कि वही पाप न लग आप । चाटी के मरने से बड़ा रसक न जाना पड़े । चाटी में आपका कोई प्रयाज नहीं है, प्रयाज सदा आप से है । जगत में दूसरे में तो हमारा पातल है वह शरीर का ही पातल है ।



चेतना के तल पर दो नहीं हैं हम। दूसरे को बचाये हम या सहानुभूति दिग्लायें तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। दूसरे को बचाना भी हिंसा ही है। जिन दिन हम ही रह जाते हैं और बचने को कोई भी नहीं रह जाता, उस दिन अहिंसा फणित होती है।

महावीर की अहिंसा को नहीं समझा जा सका, क्योंकि हम हिंसकों ने महावीर की अहिंसा को हिंसा की शब्दावली दे दी। हमने कहा, दूसरे को दुःख मत दो। लेकिन ध्यान रहे कि जब तक दूसरा है तब तक दुःख जारी रहेगा। दूसरे की मौजूदगी भी हिंसा बन जाती है। आपके लिए ही नहीं, आपको मौजूदगी भी दूसरे के लिए हिंसा बन जाती है।

महावीर की जिन्दगी की एक बहुत अद्भुत घटना है। वे सन्यास लेना चाहते थे। उन्होंने अपनी माँ से पूछा कि मैं सन्यास ले लूँ? माँ ने उत्तर दिया—जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक तुम सन्यास नहीं ले सकते, मुझे बड़ा दुःख होगा। महावीर लौट गए। यदि उनकी वृत्ति हिंसक होती तो वे कहते—नहीं, मैं सन्यास लेकर ही रहूँगा, ससार तो सब माया-मोह है! कौन अपना? कौन पराया? लेकिन नहीं, वे चुपचाप लौट गए। माँ मर गई, पिता मर गए। मरघट से लौटने पर महावीर ने अपने बड़े भाई से सन्यास लेने की अनुमति माँगी। भाई ने कहा—पागल हो गए हो? माता-पिता तो छोड़ ही गए, क्या तुम भी हमें अनाथ छोड़कर जाना चाहते हो? महावीर चुप हो गए। फिर उन्होंने सन्यास की बात न की। ऐसे मोक्ष से क्या लाभ जिसमें किसी को दुःख देकर जाना पड़ता हो?

महावीर रुक गए सही, लेकिन वर्ष-दो वर्ष में घर के लोगो को ऐसा लगने लगा कि वे घर में हैं ही नहीं। उनकी उपस्थिति अनुपस्थिति-जैसी हो गई। उनका होना न होने-जैसा हो गया। वे हवा की तरह हो गए। तब घर के लोगो ने कहा कि उन्हें रोकना फिजूल है, अब वे जाना चाहे तो जा सकते हैं। ओर उन्होंने कहा कि अब तो बहुत देर हो चुकी है। मैं तो जा चुका हूँ!

दूसरों के कारण हम एक झूठा अहंकार पैदा करते हैं, जो हम नहीं है। अहंकार हमारा कामचलाऊ अस्तित्व है। हमें अपना पता नहीं है कि कौन है? जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूँ, वह भी कहता है, मैं हूँ। होने का दावा तभी किया जा सकता है जब 'कौन होने' का पता हो। मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ? लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं हूँ। यह मेरा 'मैं' कहाँ से आया? यह मेरे ज्ञान से पैदा नहीं हुआ, क्योंकि जिन्होंने भी स्वयं को जाना, उन्होंने 'मैं' कहना बन्द कर दिया। जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने स्वयं को खो दिया। जिन्होंने स्वयं को नहीं पाया, वे कहते हैं 'मैं हूँ'। यह 'मैं' कहाँ से आया? इसे समाज ने पैदा किया। वे जो दूसरे हैं, उनके साथ व्यवहार करने के लिए आपको एक शब्द खोज लेना पड़ा—'मैं'। जैसे हमने

नाम साज लिया है वैसे ही हमने 'मैं' की खोज कर ली है। हम पदा तो अनाम ही हात हैं, पर समाज हम नाम दे देता है जा जिन्दी भर बना रहता है।

रामतीय अमरीका में थे। कुछ लोग ने उन्हें गालिया दी ता वे हँसते हुए घर लौट आए। जब उनके मित्रों का पता चला तो वे बहुत नाराज हुए। रामतीय ने कहा, मुझे कोई गाली देता तो मैं कोई जवाब देता। वे लग राम को गाली दे रहे थे। राम से अपना क्या लेना देना? इस नाम के मित्र भी तो मैं हो सकता था। जब वे राम का गालिया दे रहे थे तब हम भी भीतर ही भीतर मुग़ा हो रहे थे कि देखो, राम को कसी गालिया पड़ रही हैं। बनागे राम तो गाली पड़ेगी। उन्होंने नाम दिया, उन्होंने ही गाली दी। नाम भी उनका गाली भी उनकी। हम तो बाहर हैं।

वह दूसरा भी झूठा है और यह मैं? मेरा यह 'मैं' भी झूठा है। ये दोनों झूठ एक साथ जितने रहते हैं। जिस दिन दूसरा गिरता है उसी दिन 'मैं' गिर जाता है। 'मैं' और तू के गिर जान से जो शेष रह जाता है वह अहिंसा है। मैं यह नहीं कहता कि आप 'मैं' शब्द का उपयोग ही नहीं करें। करना ही पड़ेगा। महावीर ने भी किया है, लेकिन तब वह गन्द है माया का खेल है। जब वह अस्तित्व नहीं है तब उसे सिर्फ एक शब्द ही मानना चाहिए। ध्यान रहे कि इस 'मैं' और 'तू' के बीच का उपद्रव पैदा हुआ है, वही हिंसा है। दो झूठा के बीच जो भी होगा, वह उपद्रव ही होगा।

अहिंसा तो एक है, किन्तु हिंसाएँ अनन्त हैं। ये सारी बी-सारी हिंसाएँ निबलती हैं एक ही करने से—मैं और तू के करने से, आत्म ज्ञान के करने से। महावीर से अगर कोई पूछे कि अहिंसा क्या है, तो वे कहेंगे आत्मज्ञान। हिंसा क्या है तो वे कहेंगे आत्म अज्ञान। अपने को ही न जानना हिंसा है। यह अजीब बात है। हम तो समझते थे कि दूसरा का दुख देना हिंसा है और सुख देना अहिंसा। लेकिन ध्यान रहे दूसरे का चाह सुख दो या दुःख, हर हात में दुःख ही पहुँचता है। दुःख की सड़ आवाजाएँ व्यथना जाती हैं क्योंकि दूसर का सुख दिया ही नहीं जा सकता। सुख सिर्फ स्वयं को दिया जा सकता है। किस पति ने किस पत्नी को कब सुख दिया? किस पत्नी ने किस पति का कब सुख दिया? पहुँचाते सभी सुख हैं, पहुँचता सारा दुःख है। असल में दूसर को हम सुख पहुँचा ही नहीं सकते, दूसरे के साथ हम अहिंसक ही नहीं रहते। हम दूसर का फूल भी फेंक कर मारेंगे ता जब वह लगगा, तब पत्थर हो जायगा।

ध्यान रहे कि भगवान की मूर्ति पर चढ़ाए गए फूल भी हिंसा की सूचना देते हैं। उनमें भी दूसर की स्वीकृति है। भक्त वह नहीं है जिसने भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ाए। भक्त वह है जो राजा निकल और जिसने भगवान के सिवा कुछ भी

नहीं पाया । फूल में भी उसको पाया और पत्थर में भी और जो पूछने लगा कि किसको चढ़ाऊँ, किसके लिए चढ़ाऊँ ? कैसे चढ़ाऊँ ? कौन चढ़ाए ?

जब कोई अहिंसा को उपलब्ध होता है तब दूसरा मिट जाता है और दूसरा तब मिटता है जब हम स्वयं को जानते हैं, उसके पहले नहीं ।

इस खयाल में न पड़ें कि मासाहार न करने से आप अहिंसक हो गए । मासाहारी जितना भला आदमी मालूम पड़ता है, गैर-मासाहारी उतना भला आदमी नहीं मालूम पड़ता । यह अजीब-सी बात है । डघर मैं निरन्तर सोचता रहा तो मेरे खयाल में आया कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता, थोड़ा मास खा लेता, थोड़ा बे-वक्त जग जाता, कहीं नृत्यगृह में नाच लेता तो शायद दुनिया में करोड़ों आदमी मरने में बच जाते । हम यह न भूले कि मास न खाने से कोई महावीर नहीं हो सकता । अगर मास न खाने से कोई महावीर हो जाय तो महावीर होना दो कौड़ी का हो गया ! जितनी कीमत मास की, उतनी ही कीमत महावीर की हो गई । इससे ज्यादा न रही । धर्म इतना सस्ता नहीं है कि हम मास नहीं खाएँगे तो धार्मिक हो जाएँगे । मैं यह नहीं कहता कि आप मास खाएँ या आप मदिरा पिये । आप मास नहीं खाते, भला है, लेकिन इस मूल में न पड़े कि आप धार्मिक हो गए, अहिंसक बन गए । आचरण से अहिंसा पकड़ी जायगी तो खतरनाक है । जब कोई आचरण से अहिंसा को पकड़ता है तब सूक्ष्म रूप से वह हिंसक होता चला जाता है । जब हिंसा सूक्ष्म बन जाती है तब उसे पहचानना मुश्किल हो जाता है । मैं आप को कई तरह से दवा सकता हूँ । एक दवाना हिटलर का भी है, आपकी छाती पर छुरी रखकर और दूसरा दवाना महात्मा का, अपनी छाती पर छुरी रखकर । आम तौर से दो तरह के आदमी होते हैं—दूसरे को सतानेवाले और स्वयं को सतानेवाले । दुनिया में कोड़े मारनेवाले सन्यासी हुए हैं, कांटों पर लेटनेवाले सन्यासी हुए हैं । दूसरे को भूखा मारनेवाले उतने ही अधार्मिक हैं जितना अपने को भूखा मारनेवाले । यदि दूसरे को सताना अधार्मिकता है तो अपने को सताना धार्मिकता कैसे हो सकता है ? सताना अगर अधार्मिक है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसको सताया ?

महावीर की मूर्ति देखी है ? क्या आपको ऐसा लगता है कि इस आदमी ने कभी अपने को सताया होगा ? कथाएँ झूठी होंगी या फिर यह मूर्ति झूठी । इन आदमी ने अपने को सताया नहीं है । मैं तो समझता हूँ कि महावीर के नग्न हो जाने में उनका सौन्दर्य ही कारण है । कुरूप आदमी नग्न नहीं हो सकता । महावीर सर्वाङ्ग-मुन्दर है । कथाएँ कहती हैं कि इस आदमी ने अपने को बहुत सताया । ये सारी कथाएँ मनगढ़त हैं । यदि ऐसी नहीं है तो हमें महावीर की मूर्ति बदल देनी चाहिए । असल में इन कथाओं की रचना आत्मपीड़कों ने की है । ऐसे आत्मपीड़क व्यक्ति महावीर के आनन्द को भी दुख बना लेते हैं, उनकी मीज को त्याग समझ लेते हैं ।



अगर महावीर किसी दिन खाना नहीं खाते तो वह अनशन नहीं, उपवास है। अनशन का मतलब है भूखे मरना, उपवास का अर्थ है इतने आनन्द में होना कि भूख का पता भी न चले। जत्र ध्यान बहुत भीतर है तो गरीर का खयाल नहीं रह जाता।

यत्न में स्मरण रखें कि अहिंसा न तो किसी और को सताती है, न स्वयं को। अहिंसा सताती ही नहीं। हिंसा ही सताती है। हिंसा के गहस्य रूप हैं, उसके सयस्त रूप हैं अच्छे रूप हैं बुरे रूप हैं। अगर हम दाना से सजग हो जायें तो शायद अहिंसा की सोच हो सकती है।



## द्वितीय अध्याय

### अपरिग्रह

धणधन्नपेसवग्गेसु, परिग्रहविवज्जणं ।  
सव्वारभरिच्चाओ, निम्ममत्त सुदुक्करं ॥'

—उत्त० अ० १९, गा० २९

दूसरे महाव्रत 'अपरिग्रह' को समझने के लिए परिग्रह को समझ लेना आवश्यक है। परिग्रह का अर्थ है वस्तुओं पर मालिकियत की भावना—'पजेसिवनेत्त'। वस्तुओं के प्रति ही नहीं, हम व्यक्तियों के प्रति भी परिग्रही होते हैं।

परिग्रह हिंसा का ही एक आयाम है। सिर्फ हिंसक व्यक्ति ही परिग्रही होता है। जैसे ही हम किसी व्यक्ति या वस्तु पर मालिकियत की घोषणा करते हैं वैसे ही हम गहरी हिंसा में उतर आते हैं। बिना हिंसक हुए मालिक होना असम्भव है। मालिकियत हिंसा है। पति मालिक है पत्नी का। पति शब्द का अर्थ ही मालिक होता है। स्त्रियाँ पति को स्वामी भी कहती हैं। स्वामी भी पर्याय है मालिक का। परिग्रह का अर्थ है स्वामित्व की आकाक्षा। पिता बेटे का मालिक बन जाता है, गुरु शिष्य का। जहाँ भी मालिकियत है वहाँ परिग्रह है, हिंसा है। बिना किसी को गुलाम बनाए मालिक नहीं हुआ जा सकता। बिना परतन्त्रता थोपे स्वामी होना असम्भव है।

मनुष्य के मन में मालिक बनने की आकाक्षा क्यों है? इसका कारण है कि हम अपने स्वामी नहीं हैं, हमें अपने ऊपर भी अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति अपना मालिक हो जाता है, उसकी मालिकियत की धारणा खो जाती है। चूँकि हम अपने मालिक नहीं हैं, इसलिए हम इस अभाव की पूर्ति आजीवन दूसरों के मालिक होकर करना चाहते हैं। लेकिन कोई सारी पृथ्वी का मालिक हो जाय तो भी यह कभी पूरी नहीं हो सकती। अपना मालिक होना एक आनन्द है, दूसरे का मालिक होना सदा दुःख है। इसलिए जितनी बड़ी मालिकियत होती है, उतना बड़ा दुःख पैदा होता है। पर याद रहे कि दूसरे का मालिक बनकर अपनी मालिकियत नहीं पाई जा सकती। असल में मालिकियत दोहरी परतन्त्रता है। जिसके हम स्वामी बनते हैं वह तो हमारा गुलाम बनता

१. धन-धान्य, नौकर-चाकर आदि का परिग्रह छोड़ना, सर्व हिंसक प्रवृत्तियों का त्याग करना और निर्ममत्व भाव से रहना, यह अत्यन्त दुष्कर है।

ही है, हम भी उसका गुलाम बनना पड़ता है। मालिक अपने गुलाम का गुलाम होता है। पति अपनी पत्नी का कितना भी मालिक बनता है वह अपनी पत्नी का गुलाम भी होता है। सम्राट जहां अपने साम्राज्य का मालिक होता है, वहां वह भय का गुलाम भी होता है क्योंकि जिन्हें हम परतंत्र करते हैं वे हमारे प्रति विद्रोह और बगावत शुरू करते हैं, वे भी हम परतंत्र करना चाहते हैं। मालिक और गुलाम में इतना ही फर्क होता है कि एक की गुलामी दृश्य होती है और दूसरे का अदृश्य। हम जिसे गुलाम बनाते हैं वह हम भी गुलाम बना लेता है। बड़े गुलाम वे हैं जिन्हें दूसरा के सम्राट होने का भ्रम पड़ा होता है। और बड़े गरीब वे हैं जो बाहर की सम्पत्ति से भीतर की गरीबी मिटाना चाहते हैं। इसी तरह बड़े परतंत्र वे ही हैं जो दूसरा का परतंत्र करके स्वयं स्वतंत्र होने के खयाल में मटकते हैं। कोई भी आदमी किसी को परतंत्र करके स्वतंत्र नहीं हो सकता। जेलखाने का बाहर खड़ा सतरी भी उतना ही बंद है जितना जेलखाने में बंद बंदी। एक दीवाल के भीतर बंधा है, दूसरा दीवाल के बाहर। न दीवाल के भीतरवाला भाग सकता है, न दीवाल के बाहरवाला। मजे की बात तो यह है कि दीवाल के भीतरवाला भागने का उपाय भी करता है बाहरवाला भागने का उपाय भी नहीं करता। वह इस खयाल में होता है कि वह स्वतंत्र है। जिंदगी के अनूठे रहस्य में एक रहस्य यह भी है कि हम जिसे बांधते हैं उससे ही हम बंध जाना पड़ता है।

परिग्रह की पहली कोशिश यह होती है कि मुझे यह खयाल भूल जाय कि मैं अपना मालिक नहीं हूँ। कितना ही पता चलना है कि मैं अपना मालिक नहीं हूँ उनका ही मैं बाहर की मालिकयत्न को फैलाता चला जाता हूँ। मैं भीतर मालिक क्या नहीं हूँ? जा भीतर है उसमें जानना ही नहीं, इसलिए उसका मालिक होना असम्भव है। बादगाहत इस बात से शुरू होती है कि मैं जितना हूँ उतना ही पर्याप्त हूँ। कोई कभी यह है जिसे मुझे पूरी करनी पड़े कोई कभी नहीं है जिसकी बजह से मैं खाली रहूँ। बादगाहत एक भीखरी आपत्ता है। सब है इसलिए कोई कभी नहीं है। लेकिन सम्राट के पास कुछ भी नहीं है। हम सब भीतर खिंचे हैं। हम खिंचता को हम परीचर से मकान से पग और पद से चरों का घेरा करते हैं। घन का ढेर लगा दा है, फिर भी भीतर की खिंचाव ज्यादा है। मेरी दृष्टि में अमीरी का एक ही स्तर है कि उसमें गरीबी दिखाई पड़ती है। इसलिए मैं सब अमीरी के पग में रहता हूँ। वह जो भीतर की खिंचाव है उसका भरणे के लिए परिग्रह है। यदि हम बाहर की चीजों को छोड़ दें तो क्या भीतर की खिंचाव मिट जायेगी? अगर बाहर की चीजों के हान से भीतर की खिंचाव तब मिटी तो बाहर की चीजों के न हाने से क्या मिटेगी? लेकिन आदमी का मन बुनियादी भूख से भरा हुआ है। पहले यह सोचना है



कि बाहर की चीजों को इकट्ठा करने से भर लूंगा, फिर जब पाता है कि उसकी रिक्तता ज्यों की त्यों बनी है तब सोचता है कि बाहर की चीजों को छोड़कर अपने को भर लूँ। वह पागल है। जब चीजों से भरा न जा सका, तब चीजों के हटाने से कैसे भर जायगा ? इसलिए ध्यान रहे, अपरिग्रह का अर्थ बाहर की चीजों को छोड़ना नहीं है; अपरिग्रह का अर्थ भीतर की पूर्णता को पाना है।

मैं कहता हूँ कि परिग्रह का सम्बन्ध वस्तुओं से नहीं है, उसका सम्बन्ध वस्तुओं पर मालिकियत कायम करने से है। जिस दिन इसका ज्ञान होता है कि मैं अपना मालिक हूँ, उसी दिन भीतर की रिक्तता भर जाती है, अन्यथा नहीं। यह जो अपनी मालिकियत है, वह एक विधायक उपलब्धि है। ऐसी मालिकियत के आते ही बाहर की पकड़ छूट जाती है। बाहर की पकड़ सिर्फ इसलिए होती है कि भीतर की कोई पकड़ नहीं होती। हम बाहर पकड़े चले जाते हैं और जिसे भी पकड़ते हैं उसकी हत्या करना शुरू करते हैं। पति अपनी पत्नी को मारना शुरू कर देता है, पत्नी अपने पति को मारना शुरू कर देती है। जब हम किसी व्यक्ति को मारकर उसके मालिक हो जाते हैं, तब मालिक होने का मजा चला जाता है। बिना मारे मालिक नहीं हो सकते और मारा कि मजा गया। इसलिए मन एक पत्नी से दूसरी पत्नी पर और दूसरी से तीसरी पर जाता है। एक मकान से दूसरे मकान पर, दूसरे से तीसरे पर। एक गुरु से दूसरे गुरु पर, एक शिष्य से दूसरे शिष्य पर। जिस चीज के हम मालिक हो जाते हैं, वह बेमानी हो जाती है, मुर्दा हो जाती है। इसलिए प्रेयसी जितना सुख देती है, उतना पत्नी नहीं देती। पत्नी बनते ही स्त्री मर जाती है।

इसलिए समझदार परिग्रही व्यक्तियों को छोड़कर वस्तुओं का संग्रह करते हैं, धन इकट्ठा करते हैं। जब घर में कुर्सी आती है तब वह मरी हुई ही आती है। उसको कहाँ रखना है, इसके आप पूरे मालिक हैं। जब हम किसी व्यक्ति को घर में लाते हैं तब उसे भी कुर्सी बनाना चाहते हैं। लेकिन न तो हम व्यक्तियों से अपने को भर सकते हैं और न वस्तुओं से। हम सिर्फ अपने से भर सकते हैं, लेकिन अपने का हमें कोई पता नहीं है। तो एक बात मैं आपसे कहना चाहूँगा कि आपके पास जो भी है, उस पर एक दफा गौर से नजर डालकर देखे और स्वयं से पूछे कि उससे आप रचमात्र भी भर सके हैं ? क्या उसने इतना भर भी आपको कही भरा है ? अतीत का अनुभव तो यही कहता है कि परिग्रह भर नहीं पाता, लेकिन भविष्य की आशा यही होती है कि शायद कुछ और मिल जाय और मैं भर जाऊँ। अपरिग्रही की दृष्टि तो तब आती है जब आशा पर अनुभव की विजय होती है।

असल में जो पाना है वह है दिशा 'बीइंग' की, और जो हम पा रहे हैं, वह है दिशा 'हैविंग' की। जो हम पा रहे हैं वे हैं चीजें और जो हमें पाना है, वह है



आमा। ये चीजें कभी भी आत्मा नहीं बन सकती। अनेक जन्मों का अनुभव भी हम इस बात से रोव नहा पाता कि हम वस्तु को आत्मा न बना सकेंगे—‘हैविंग’ वगैरी ‘बीइंग’ नहीं बन सकता। कभी नहीं। इसलिए महावीर या बुद्ध या जीजस उन लोगों का पागल कहते हैं जो परिग्रह में पड़े हैं।

सुना है मैंने कि डायोजनिज ने सिक्न्दर से एक बार पूछा कि अगर तू पूरी दुनिया पा लेगा तो फिर क्या करेगा? यह सुनकर सिक्न्दर उदास हो गया। उसने कहा—ठीक कहते हैं आप, क्योंकि दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है। अगर मैं एक पा दूंगा तो फिर क्या करूँगा?

आपने कभी सोचा है कि आप जो चाहते हैं, वह आपको मिल जाय तो क्या होगा? अगर हम कभी इस दुनिया में कल्पवृक्ष बना सकें तो प्रत्येक आदमी को महावीर हो जाना पड़ेगा और सारी दुनिया अपरिग्रही हो जायगी। जैसे ही कोई चीज आप को तत्काल मिल गई, वैसा ही वह बेकार हो गई। आप फिर पुरानी जगह रुके हो गए। आप एक मूख हैं एक खालीपन एक रिक्तता, जो हर चीज के प्राद फिर आगे आकर लपटी हो जाता है। मनुष्य की वासनाएँ सकुलर हैं गाल है इसलिए आगा उपलब्ध बनती हुई दिखाई पड़ती है, बनती कभी नहा। हम अपने को घोखा दिए चले जाते हैं। हम सोचते हैं कि एक रुपया हम मिल जाय तो हम आनन्दित हो जायेंगे। रुपया हमें मिल जाता है पर हम आनन्दित नहा होते। साचते हैं, दूसरा मिल जाय। वह भी मिल जाता है तीसरा भी मिल जाता है परन्तु आनन्द नहीं मिलता। हम भूल जाते हैं कि दूसरा रुपया भी पहले रुपए की प्रतिलिपि है कापी है तीसरा दूसरे की प्रतिलिपि है वह भी उसी का चेहरा है। ये मिलते चल जाते हैं और हम इनमें खो जाते हैं। करोड़ रुपए एकत्र हो गए फिर भी आशा ज्यादा की क्या है। इसलिए कभी-कभी हम हैरानी हाती है कि करोड़पति भी एक रुपए के लिए इतना पागल क्या होता है। करोड़पति भी एक रुपए के लिए उतना ही दीवाना होता है जितना वह होता है जिसके पास एक भी नहा है। आपके पास कितना रुपया है इससे कोई फरक नहीं पड़ता। वह जो आगे है जो नहीं है आपके पास वह दोन्ना चला जाता है। और वह बार करोड़पति तो और भी ठपण हा जाता है क्योंकि उसका अनुभव बताता है कि करोड़ रुपए हो गए फिर भी अभी उपलब्ध नहा हुई। अब एक-एक रुपए का जितना जोर से पकड़ा जा सके उतना ही ठीक है, क्योंकि जीवन चुब रहा है। वह भूल जाता है कि दुनिया में कोई कभी कभी नहा पहुँचता जहाँ बर पहुँचना चाहता है। पासना सदा वही रहता है जो शुरू करते धक्का होता है। हम के दिन जितना पासना होता है, मृत्यु के दिन उतना ही पासना होता है। सिर्फ एक फरक पड़ता है। जन्म के दिन सूरज निकलता है, मृत्यु के दिन सूरज उल्टा है जोर अघेरा होता है। जन्म के दिन आगाएँ होती हैं, मृत्यु के दिन विपाद

होता है, हार होती है। जन्म के दिन आकाक्षाएँ होती हैं, अभीप्साएँ होती हैं, दौड़ने का बल होता है, मृत्यु के दिन थका मन होता है, हार होती है, हम टूट गए होते हैं। लेकिन फिर भी ऐसा समझने की भूल न करे कि मरता हुआ आदमी परिग्रही हो जाता हो। मरता हुआ आदमी भी यही सोचता है कि काश, थोड़ा वक्त और होता तो दौड़ लेता और पहुँच जाता।

जिसे सीखना है वह एक अनुभव से भी सीख सकता है और जिसे सीखना नहीं है वह अनन्त अनुभवों से भी नहीं सीख सकता। हम ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने सीखना बन्द कर दिया है। जिन्हे हम महावीर या कृष्ण या बुद्ध कहते हैं, वे ऐसे लोग थे जो जिन्दगी के अनुभव से सीखते हैं। हम ऐसे लोग हैं जो सीखते ही नहीं। हम सासारिक लोग हैं। ससार का मतलब होता है—चक्र। ससार एक चक्र है, जिस चक्र में हम एक ही बात दोहराए चले जाते हैं। कल भी आपने क्रोध किया था और कल भी आपने कसमे खायी थी कि अब क्रोध नहीं करेंगे। आज फिर आप क्रोध करेंगे और आज फिर आप पछताएँगे, कसमे खाएँगे कि क्रोध नहीं करेंगे। कल भी यही होगा, परसों भी यही। हम आदमी नहीं, मशीन हैं। हमसे ज्यादा बुद्धिहीन प्राणी खोजना बहुत मुश्किल है। हम सीखते ही नहीं।

जिन्दगी में जो बड़ी-से-बड़ी बात सीखने की हो सकती है, वह यह है कि परिग्रह एक व्यर्थता है। यह मैं नहीं कहता कि वस्तुएँ व्यर्थ हैं, आपके घर में जो कुर्सी है वह व्यर्थ है। कुर्सी व्यर्थ कैसे हो सकती है? मकान व्यर्थ कैसे हो सकता है? इसकी अपनी सार्थकता है। मैं जो कह रहा हूँ वह यह है कि वस्तुओं से अपने को भर लेने की कोई सार्थकता नहीं है। परिग्रह के प्रति अगर हम थोड़ी-सी भी आँख खोलकर देख लें तो हम अचानक पायेंगे कि मालकियत की भावना विदा हो गई है। जिस दिन हमारी पकड़ छूट जाती है उस दिन हम अकेले रह जाते हैं। न तो पत्नी रह जाती है, न मित्र, न भाई, न मकान। ये सब अपनी जगह हैं और एक बड़े खेल के हिस्से हैं। जिन्दगी के सारे सम्बन्ध शतरंज के खेल हैं। उसके नियम हैं, उनका पालन करना चाहिए। और ध्यान रहे जो आदमी जिन्दगी को खेल समझता है उसके लिए नियम-पालन बड़ा आसान हो जाता है, कठिनाई ही नहीं रह जाती, गम्भीरता तिरोहित हो जाती है। लेकिन कुछ लोग खेल को ही जिन्दगी बना लेते हैं और खेल में भी गम्भीर हो जाते हैं। तब खेल में भी तलवारे निकल जाती है।

स्मरण रखे कि जिन्दगी की सारी की सारी व्यवस्था अपनी जगह ठीक है। वस्तुएँ वस्तुएँ हैं, घन घन है, पद पद है। इनमें आत्मा कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं। इस स्मरण से अपरिग्रह फलित होता है। इससे परिग्रह से मुक्ति मिलती है। छोड़कर भाग जाने का नाम परिग्रह से मुक्ति नहीं है। इसलिए जिन्हे हम सन्यासी कहते हैं, वे साधारणतया इन्वर्टेड परिग्रही हैं—वे शीर्षासन करते हुए परिग्रही हैं। जो आप

ह, वही व हैं, बल्कि कई मामला म व आपमें भी ज्यादा गम्भीर हैं। मैं तो नाच ही नहीं सकता कि सयासी भी गम्भीर हो सकता है। सयासा अगर गम्भीर है तो इसका मतलब है कि वह सिर्फ नीपासन लगाकर सड़ा हो गया है ससारी है। गम्भीरता का मतलब है कि ससार बड़ा मायक है, नाममनिया का यह जा जाल है वह बड़ा भीमती है। परिग्रह नासमझी है परिग्रह व विलाफ साधा गया त्याग भी नाममनी है। चीजा का पकड़ना पागल्पन है तो चीजा को छोड़कर भागना कम पागल्पन नहीं। चीजा के प्रति मोहग्रस्त होना पागल्पन है तो चीजा के प्रति विरक्त होना कम पागल्पन नही है। यदि परिग्रही पागल है तो सयासी भी उससे कम पागल नही है। सयासा मित्त है और मुझसे कहते हैं कि कई दफा मन म ऐसा मन्द उठता ह कि सन्यास लेकर कहा हमने भूल तो न की ? एम सन्दह का उठना स्वाभाविक है। जो भाग रहे ह वे भी कम परगान नहीं हैं। वे सयासिया के पर छूत रहते हैं जाकर। व साचत हैं कि सन्यासी बड़े आनन्द म होते हैं। सयासी एवान्त म सदिग्ध होता है, भीड म आवस्त। जब लोग उसने पैर छूते हैं तब पक्का हो जाता है कि लाग आनन्द म नहीं हैं—यदि हाते ता उसके पैर न छूत। अगर किसी का अपना झूठा सयास बनाए रगना हो तो भीड अनिवाय है।

नही, न तो वस्तुएँ पकड़ने योग्य हैं, न छोड़ने योग्य। इसलिए अपरिग्रह का अर्थ न ता विराग है और न त्याग। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कहीं आप ससार का छाड़कर भागने न लगें, वहीँ आप घर-द्वार का छाड़कर जंगल की राह न लें। अपरिग्रह का मतलब मालकियत के नाश का त्याग है। अपरिग्रही वह है जिसम मालकियत का कोई नाश न रहा। उसन बाहर की दुनिया म मालकियत साजनी बन्द कर दी। इसका यर्थ अर्थ नहीं कि बाहर की दुनिया का छाड़कर वह भाग गया। भागेगा कहीं ? जहाँ वह जायगा वहाँ बाहर का दुनिया है। सयासी होकर वह युग के नीचे बैठ जायगा सही परन्तु जयाही काई आकर कहेगा कि हटा यहाँ से, इस बक्ष व नीचे हम घुना रमाना चाहत हैं त्याहा वह कहगा कि बन्द करा यह बखाम, इस पर मरा पहले स बन्ना है यह बख मरा है यह मन्दिर मरा है यह आश्रम मरा है। परिग्रह स भागा हुआ आदमी फिर परिग्रह पदा पर गेगा, क्याकि उम इच्छा पता न हागा कि परिग्रह क्या है। जनता उसका रोवगा, अनुयायी उसका रोवेंगे। तब सयासी बटुन मूर्ख रास मारेगा। वह अनुयायी दबटठा करन लगेगा। जा मजा किमी का तिजोरा व मामन दया गिनन म आता है, वही मजा उमका अनुयायी को गिनन म आता है।

जिन्दगी तागा म नहीं ममती ना मबती। जिन्दगी जहाँ है वहाँ उम मममान का उममन है और जब यह उमन ला जाती है तो अचानक एम पात है कि कुछ मात्रे एकदम बिदा हो गइ। छाप्ती नहीं पठती। जिन्दगी को समझ जाय ही मात्र



कियत का भाव विदा हो जाता है। पति-पत्नी अपनी जगह हैं, लेकिन बीच से माल-कियत चली गई। पति पति नहीं रह जाता, सिर्फ मित्र रह जाता है। पत्नी पत्नी नहीं रह जाती, सहचरी बन जाती है। अपरिग्रह का मतलब है हमारे और व्यक्तियों के बीच ही नहीं, हमारे और वस्तुओं के बीच के सम्बन्ध का रूपान्तरण। मालकियत गिर गई और अपरिग्रह फलित हो गया। इसलिए अपरिग्रह त्याग से ज्यादा कठिन बात है। वैराग्य बड़ी सरल बात है, क्योंकि वह दूसरी अति है और मन का पेड़ुलम दूसरी अति पर बहुत जल्द जा सकता है। जो आदमी बहुत ज्यादा खाना खाता है उससे उपवास कराना सदा आसान है। जो आदमी स्त्रियों के पीछे पागल है उसे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवाना बहुत आसान है। जो आदमी बहुत क्रोधी है, उसे अक्रोध की कसम दिलवाना सदा आसान है। लेकिन, ध्यान रहे, अक्रोध का यह व्रत भी क्रोधी आदमी ही ले रहा है, इसलिए जल्द ले रहा है। अगर कम क्रोधी होता तो सोचकर लेता। अगर और कम क्रोधी होता तो शायद लेता ही नहीं, क्योंकि व्रत लेने के लिए भी क्रोध का होना जरूरी है।

अपरिग्रह जब फलित होता है तब मध्य में फलित होता है। आप अपरिग्रह की विलकुल चिन्ता न करें। आप चिन्ता करें परिग्रह को समझने की। परिग्रह को छोड़ने की भी चिन्ता न करें, चिन्ता करें उसे समझने की। आप देखेंगे कि सब मिल जाय फिर भी कुछ नहीं मिलता, हम खाली के खाली ही रह जाते हैं। और स्मरण रखें कि जिन्हे हम बाँधते हैं उनसे ही हम बँध भी जाते हैं और उनके गुलाम हो जाते हैं। अपरिग्रह वहाँ है जहाँ न त्याग है, न भोग, न वस्तुओं की पकड़ और न वस्तुओं का त्याग।



## तृतीय अध्याय

### अचीर्यं

दत्तमोहणमाइस्म, अदत्तम्स्य विवज्जण ।

अणवज्जेसणिज्जस्म, गिण्हणा अवि दुक्कर ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० १९, गा० २८

- हिंसा का एक आध्यात्मिक परिग्रह है। हिंसक हुए बिना परिग्रही होना असम्भव है। जब परिग्रह विक्षिप्त हो जाता है तब चोरी का जन्म होता है। चोरी परिग्रह की ही विक्षिप्तता है। यदि परिग्रह स्वस्थ हो तो उससे धीरे धीरे अपरिग्रह का जन्म होता है। जब वह अस्वस्थ होता है तब पराधी चीज अपनी दिशा में पड़ने लगता है, यद्यपि दूसरा अपना नहीं दिखाई पड़ता। अस्वस्थ परिग्रह दूसरे को तो दूसरा मानता है लेकिन दूसरे की चीज को अपना मानने की हिम्मत करने लगता है। अगर दूसरा भी अपना हो जाय तब दान पैदा होता है। जब दूसरे की चीज भर अपनी हो जाय और दूसरा दूरा रह जाय, तब चोरी पैदा होती है।

चोरी और दान में बड़ी समानता है। दोनों एक ही चीज का दो छोर हैं। यदि चोरी में दूसरे की चीज का अपना बन न की भांति है तो दान में दूसरे का अपना बनाने की भांति। चोरी में हम दूसरे की चीज छीनकर अपनी कर लेते हैं, दान में अपनी चीज दूसरे की कर देते हैं। एक अर्थ में दान चोरी का प्रायश्चित्त है। दानी अकार अनीत का चार होता है और चोर अकार तविध्य का दान। धर्म का सम्बन्ध बरतुआ की चोरी से उतना नहीं जितना गहरी चारिया में है। चोरी गलत का गहरा आध्यात्मिक अर्थ है। अगर किसी दिन समाज पूरी तरह समूह हो गया तो चोरी बन्द हो जायगी। अनुशा की चोरी अनिश्चय गरीबी के कारण पैदा होती है। लेकिन और भी चारियाँ हैं। महाग्रहण का सम्बन्ध इन गहरी चारियाँ में है।

चोरी का गहरा आध्यात्मिक अर्थ यह है कि जो मरता जा रहा है उसे भी अपना पोषित करना। बहुत-बुद्ध मरता जा रहा है जिसमें अपना पोषित किया है यद्यपि मैं कभी किसी की चोरी नहीं की। शरारत मरता जा रहा है, लेकिन मैं पोषित करता हूँ कि वह मरता

१ दत्त पुत्ररत्न का तिसरा भी उसका भाग्यिक व विष्णु विष्णु प्रभु न करना साथ ही निरव्य (पापवर्जित) और लयलोच यन्त्रों की प्रज्ञा करना—ये दोनों माने अत्यन्त दुष्कर हैं। (लक्ष्मीविलासप्रसन्न व निरव्यनुसार उपपन्न में ली जाने योग्य।)

है। अव्यात्म की दृष्टि में यह चोरी हो गई। जिस दिन मैंने घोषणा की कि मैं गरीब हूँ उन्ही दिन आध्यात्मिक अर्थों में मैंने चोरी की। माँ के पेट में एक तरह का शरीर था मेरे पास। आज अगर मेरे नामने उसे रख दिया जाय तो मैं खाली आँखों से इसे देख नहीं सकूँगा और न यह मानने को राजी होऊँगा कि कभी यह मेरा गरीब था। फिर वचन में एक शरीर था जो रोज बदलता रहा। इस प्रकार मुझे कितने ही शरीर मिले और इन सारे गरीब को मैं कहता रहा कि यह मैं हूँ। कोई अभिनेता उतना अभिनय नहीं करता जितना अभिनय मैं करता हूँ। वचन में लेकर मृत्यु की घड़ी तक अभिनय करता रहूँगा। मेरा जीवन अभिनय की लम्बी कहानी है। सभी मुझ-जैसे ही हैं। ऐसा एक भी आदमी नहीं जो अभिनय न करता हो। कुशल-अकुशल का फर्क भले ही हो, लेकिन ऐसा कोई नहीं जो अभिनेता न हो। जिस दिन अभिनय करना बन्द हो जाय उन्ही दिन व्यक्ति के भीतर धर्म का उदय होता है।

जिस शरीर को हम अपना मानते हैं वह भी अपना नहीं है और हम जिस व्यक्तित्व को अपना मानते हैं वह भी अपना नहीं। हमारे मुखीटे उबार के मुखीटे हैं और अपने ऊपर लगाए गए चेहरे दूसरों के चेहरे। जो बड़ी से बड़ी आध्यात्मिक चोरी है वह चेहरों की चोरी है। हम जो भी बाहर से साधते हैं वह स्वभावतः हमारा चेहरा ही बनता है, जो भीतर से आता है वही हमारी आत्मा होती है। हम धर्म को बाहर से ही साधते हैं। अवर्म होता है भीतर, धर्म होता है बाहर। चोरी होती है भीतर, अचोरी होती है बाहर। परिग्रह होता है भीतर, अपरिग्रह होता है बाहर। इसलिए हम जिन्हे धार्मिक आदमी कहते हैं उनसे ज्यादा चोर व्यक्तित्व खोजना बहुत मुश्किल है। आध्यात्मिक अर्थों में चोरी है उसे दिखाने की कोशिश जो आप नहीं है। हम सब बहुत चेहरे तैयार रखते हैं। जब जैसी जरूरत होती है वैसा चेहरा लगा लेते हैं और जो हम नहीं हैं वह दिखाई पड़ने लगते हैं। हमारी मुस्कराहट आँसुओं को छिपाने का इन्तजाम होती है, हमारी प्रसन्न मुद्रा उदासी को दवा लेने की व्यवस्था होती है। आदमी जैसा भीतर है वैसा बाहर दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह आध्यात्मिक चोरी है। इस प्रकार की चोरी करनेवाले लोग वस्तुएँ नहीं चुराते, व्यक्तित्व चुराते हैं। और याद रहे, वस्तुओं की चोरी बहुत बड़ी चोरी नहीं है, व्यक्तित्वों की चोरी बहुत बड़ी चोरी है।

जिस आदमी को अचोरी की साधना करनी हो उसे पहली बात यह समझ लेनी चाहिए कि वह भूलकर भी कभी व्यक्तित्व न चुराए। महावीर से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जायगा। बुद्ध और कृष्ण से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जायगा। अब दूसरा कोई भी आदमी दुवारा महावीर नहीं हो सकता—हो ही नहीं सकता। वे सारी की सारी स्थितियाँ दुवारा नहीं दोहराई जा सकती जो महावीर के होने के वक्त हुई थी। न तो वह पिता खोजे जा सकते हैं, न वह माँ खोजी जा सकती है। न तो



वह युग गाजा जा सकता है और न वे चाँद-तारे जिनके नीचे महावीर का जन्म हुआ था। इसलिए दूसरा कोई आत्मी जब भी महावीर होने की कोशिश करेगा तब वह चोर महावीर हो जायगा। इस तरह की चोरी की ही हमन दुर्भाग्यवश, धम समान लिया है। इसलिए हमम काइ जन है काई इसाई है काई हिन्दू है, कोइ गौद्ध है। यह धम के नाम पर गंगा चोरी है। अनुमाया चोर होगा ही आत्मात्मिक अर्थों में। उसने दूसरे व्यक्तित्वा को चुराकर अपन ऊपर ओटना पुरुष कर लिया है—उन व्यक्तित्वा को जा उमज नहा हैं। पापम इसका परिणाम होगा। न तो मैं किसी की जगह जो सकता हूँ और न किसी की जगह भर सकता हूँ। भरा अनुभव अनिवायरूपण निजी हागा और जिस दिन निजी हागा उसी दिन मैं अचोरा को उपलब्ध होऊँगा, उसके पहले नहीं। जिस दिन मेरे पास कोई ओझा हुआ व्यक्तित्व न होगा उस दिन मैं अचोरी को उपलब्ध हो जाऊँगा अथवा मैं तोर ही बना रहूँगा।

ध्यान रहे, वस्तुआ की चोरी उस दिन बहुत जल्द बन हो जायगी जिस दिन वस्तुएँ बहुत ज्यादा हो जायगी लेकिन व्यक्तित्वा की चोरी जारी रहेगी। हम चुराते ही रहेंगे, दूसरों को आइत हा रहेंगे। इस पर आप जरा गौर करेंगे कि आप स्वयं ज्ञान की निम्नत जुटा पाए या नहा। अगर नहा जुटा पाए तो आपका व्यक्तित्व की अनिवाय आधार गिरा चोरी की हागी। आपन काई और बाने की कोशिश ता नहा की? आपने चेतना अवबतन में कहा भी ता किसी जोर जमा हा जान या आप्रह नहा है? अगर है तो उस आप्रह का ठीक में गमनकर उममे मुक्त हा जाना जरूरी है, अन्यथा अचारी या म्यति पैदा नहा होगी। और यह चोरी एक ऐसी चोरी है जिससे आपको कोई राय नहा सकती। धन के चार का तो पकड़ा जा सकता है परंतु व्यक्तित्व जमी मूढम बीज के चार या कौन पकड़ेगा? क्या पकड़ेगा? व्यक्तित्व की चोरी एक ऐसी चोरी है जिसमें किसी न कुछ छोनत भा नहा और आप चार नो जान हैं। व्यक्तित्व की चोरी आसान और सरल है। मुबद्द में उठकर यह दावना जरूरी है कि मैं कितनी बार दूसरा हा जाना हूँ कितनी बार धारित नहा हा पाता व्यक्तित्वा के कारण।

मुझे ता गता लगता है कि तोर। क नाम अकार अपना व्यक्तित्व हागा है परंतु माधुआ के पास नहा हागा। अगर आप चोरी की आँख में तबिले तो एता लगता कि वह जा है है मजिरी में जाए और माधुआ को अंतरा में हाँकें ता लगता कि वह जा नहा है क्या सीमा रह है। यह महावीर की तरह गाऊ-या है उठन-बगन है टीक महावीर के हार बागम है। स्विट या हाता बयन बाहर में है। मुझे आत्मी अकार पती हागा है जा वह है क्योंकि मुर का काई आइता नहा। अच्छा आत्मा अकार कहा हागा है जो वह नहा है क्योंकि अकार का आइत का मा हागा है। अच्छा हागा ता बहुत बटिन है अइना दातन मरन है। अच्छा हागा ता अच्छा है,



लेकिन अच्छे को ओढ़ लेना खेल है, कन्वीनिएण्ट है। अनैतिक जगत् में नैतिक होना तपश्चर्या है, एक दुरे समाज में नैतिक होना कठिनाई मोल लेना है। चारों तरफ से चोटे पड़ती है, इसलिए सुविधापूर्ण है वस्त्र ओढ़ लेना। नैतिकता के वस्त्र ओढ़ो बाजारों में, सार्वजनिक स्थानों में।

इसलिए हमारे पास दो तरह के चेहरे हैं—प्राइवेट फेसेज और पब्लिक फेसेज। हमारे ऊपर नकली चेहरों की इतनी परतें हैं और अनन्त जन्मों की चोरी इतनी गहरी और इतनी लम्बी है कि हमारा असली चेहरा—निजी चेहरा—विलकुल छिप-सा गया है। एक मुखौटा उतारो तो दूसरा उसके नीचे है। प्याज की तरह हो गए हैं हम सब। हमने अनन्त जन्मों में इतने व्यक्तित्वों की चोरी की है और इतने मुखौटे ओढ़े हैं कि हमारा अपना तो कोई चेहरा ही नहीं रह गया है। अगर हमारे छिलके उतारे जाएँगे तो आखिर में शून्य रह जायगा। उसी शून्य से अचोरी में गति होगी, उसके पहले नहीं। अगर हमें यह पता चल जाय कि हमारा कोई चेहरा ही नहीं है तो बड़ी उपलब्धि है यह।

चोरी से बचने की कोशिश का नाम अचोरी नहीं है। जो चोरी से बचा है वह भी चोरी से बचा हुआ चोर है, जिसने चोरी की है वह चोरी में फँस गया चोर है। दोनों ही चोर हैं। एक की चोरी व्यवहार तक चली गई है, दूसरे की चोरी मन तक रह गई है। लेकिन अचौर्य का सम्बन्ध असली चेहरे से है, अपने चेहरे से है। क्या हमारे पास अपना चेहरा है? पति के सामने पत्नी को कुछ और होना पड़ता है अपने पड़ोसियों के सामने कुछ और। तत्काल चेहरा बदल जाता है। अपने मालिक के सामने हम कुछ और होते हैं और अपने नौकर के सामने कुछ और। मालिक के सामने हम पूँछ हिलाते हुए होते हैं और नौकर के सामने उड़्ड। कई दफे बहुत लोगों के बीच हम गिरगिट हो जाते हैं। चेहरों की यह बदलाव तनाव पैदा करती है। जिस आदमी के पास एक चेहरा है उसको तनाव नहीं होता। तनाव सदा होता है चेहरों को बार-बार बदलने से। लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं। गियर बदलने के परंपरागत तरीके की जगह हमने अब सरल तरीकों का आविष्कार किया है। अब मोटर गाड़ियों में ऑटोमैटिक गियर होते हैं। हम भी अपने चेहरे बदलते नहीं, हमारे चेहरे स्वतः बदल जाते हैं। चेहरे को बदलने के लिए हमने ऑटोमैटिक गियर खोज निकाले हैं। नौकर आया कि चेहरा बदला। मालिक आया कि चेहरा बदला। पत्नी आई कि चेहरा और हुआ। प्रेयसी आई कि चेहरा और हुआ। पुराने आदमी को धार्मिक होने में बड़ी सुविधा थी। उसके पास कन्वेन्शनल गियर थे। उसको चेहरा बदलना पड़ता था, इसलिए उसे यह भी पता चलता था कि मैं अपना चेहरा बदल रहा हूँ। आधुनिक सभ्यता ने कन्वेन्शनल गियर हटा दिए हैं। सभ्य आदमी और असभ्य आदमी में जो फर्क है वह मेरी दृष्टि में कन्वेन्शनल गियर और ऑटो-

मटिक गियर का फव है, और कोई फव नहीं। सम्य आदमी का धार्मिक हाना मुश्किल हो जाता है क्योंकि उसे चारी का पता ही नहीं चलता।

जीजस, बुद्ध और महावीर एक असम्य दुनिया में पैदा हुए थे। सम्य दुनिया में हम बुद्ध महावीर और जीजस जस आत्मी पदा नहीं कर पा रहे हैं। असम्य आदमी इतना वचन नहीं था। मैं आपसे कहना चाहूँगा कि अचारी को समझने के लिए अपन चेहरे बदलने के प्रति आपका सजग होना पड़ेगा। अचारी के महाव्रत में आप अपने चेहरे का बदलना देखें। घर से मंदिर की आर जात समय जरा होनपूर्वक देखें कि चेहरा किस जगह बदलता है। किस जगह दूकानदार हटता है और सच्चा साधक आता है। जहा लिखा रहता है 'कृपया जूता यहा वहा नीचे तरती होनी चाहिए— कृपया चेहरा यहाँ। कई लोग ता अपना चेहरा लिये ही भीतर घुस जात ह। जूता लिय मंदिर में चले जाएँ तो उतनी अपवित्रता नहीं होगी, जितनी चेहरा लिये चले जाएँ ता होगी।

मेरी सलाह है कि जब आप चेहरा बदलें तो जरा होन रख कि आप इस वक बदल रह हैं। अब तक आप दूसरा पर हँसत रहे हैं अब आप अपने ऊपर हँसना शुरू कर देंगे। और जब आप जान बूझकर चेहरा बदलेंगे ता चेहरा बदलना मुश्किल हो जायगा और धीरे धीरे आपको एहसास हागा कि आप हमारा अभिनय करन रहे हैं। धीरे धीरे चेहरा बदलना कठिन हा जायगा और जत्र चेहरा बदलना कठिन हागा तथा वाच का अंतराल बढेगा और आप कभी कभी चेहरे क बिना रह जाएगे, तब आपका असला चेहरा जनमगा—आपके भीतर आपका चेहरा आना गुप्त होगा। तो पहली बात यह है कि चौबीस घटे बदलते हुए चेहरो का खयाल रखना और दूसरी यह कि किसी का चेहरा—चाहे वह महावीर का हा या कृष्ण का या ब्राइस्ट का—अपना बनाम की कोशिश मत करना। भूलकर मत करना। अनुयायी बनना ही मत अथवा चार बन बिना कोई उपाय ही नहीं।

जो बहुत इमानदारी से चोरी करता है वह चेहरे चुराता है, जो बईमानी से चेहरे चुराता है वह चेहरा नहीं चुराता, सिफ विचार चुराता है। पंडित के पास सिफ विचार की चारी हाती है, तथाकथित साधु क पास चेहरा की चारा। दा तरह की चोरी है—विचार का और चेहरे की। चेहर की चोरी करनेवाले आदमी को हम इमानदार चार कहत हैं। जब आचरण में बाध विचार आता है तब उसका सुगंध और होती है क्योंकि आचरण आत्मा में आता है। जिस आत्मी का आचरण विचार में आता है वह आत्मी चार है। शास्त्र में आया हुआ विचार खुद भी चारी है फिर शास्त्र में आए हुए विचार के अनुसार जीवन का ढाल लना और बढा चारी है। मैं नहीं कहता कि विचार के अनुसार आचरण हा। मैं कहता हू कि आचरण के अनुसार विचार हा।

ध्यान रहे, जिस आदमी को अपनी जिन्दगी में रूपान्तरण लाना हो उसे स्थगन से—पोस्टपॉन्मेंट से—वचना चाहिए। उसे चाहिए कि वह दूसरे को अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार न ठहराए। जिसने भी इस दुनिया में स्थगन की नीति अपनायी, रूपान्तरण में विलम्ब होने दिया और दूसरे को जिम्मेदार ठहराया, वह आदमी धार्मिक नहीं हो पाया। धार्मिक आदमी वह है जो कहता है कि पूरे का पूरा दायित्व मेरा है। अधार्मिक आदमी कहता है कि दायित्व किसी और का है, मैं तो भला आदमी हूँ, लोग मुझे बुरा किए दे रहे हैं। मैं कहता हूँ कि आधा अच्छा आदमी बुरे आदमी से भी बुरा है। आधे सत्य पूरे असत्यो से बुरे होते हैं, क्योंकि पूरे असत्य से मुक्त हो जायेंगे आप, आधे असत्य से कभी मुक्त नहीं होंगे। आधा सत्य वधन का काम करेगा।

तो मैं आपसे कहूँगा कि विचार के अनुसार आचरण मत करना, आचरण के अनुसार ही विचार करना, ताकि चीजे साफ हो और अगर चीजे साफ हुईं तो कोई भी आदमी इस दुनिया में बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकता। आप भी अपने बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकते और एक दफा यह पता चल जाय कि मैं एक बुरी पर्ट के साथ जी रहा हूँ तो इस पर्ट को उखाड़ फेंकने में उतनी ही आसानी होगी जितनी पैर से काँटा निकालने में होती है। प्याज की इस पर्ट को, इस ओढ़े हुए व्यक्तित्व को उघाड़कर फेंक देने में उतनी ही आसानी होगी जितनी शरीर से मैल को अलग कर देने में होती है। लेकिन अगर कोई आदमी अपनी मैल को सोना समझने लगे तो कठिनाई हो जायगी।

हम उपदेश ग्रहण करने को बहुत आतुर और उत्सुक होते हैं। फिर हम सोचते हैं कि उसके अनुसार आचरण बना लेंगे। यह आचरण वैसा ही होगा जैसा रगमच पर अभिनेता का होता है। पहले उसे खेल की स्क्रिप्ट मिल जाती है, पाठ मिल जाता है, फिर वह उसे कठस्थ कर लेता है, इसके बाद वह रिहर्सल करता है और अन्ततोगत्वा आकर मच पर दिखा देता है। अभिनय का मतलब ही है विचार के अनुसार आचरण, लेकिन आत्मा का मतलब कुछ और है। इसका मतलब है आचरण के अनुसार विचार।

अगर चोरी खोनी है तो ओढ़े हुए चेहरे खोने ही चाहिए और वह क्षण आना ही चाहिए जब आपका कोई चोर चेहरा न हो। चोर चेहरे को हटाइए, चाहे महावीर से लिये हो, चाहे बुद्ध या कृष्ण से। उन चेहरों को हटाइए और उसको खोजिए जो आपका है। जिस दिन आपके सारे चेहरे गिर जायेंगे उस दिन अचानक आपके सामने वह रूप प्रकट होगा जो आपका है। जैसे ही वह रूप प्रकट होता है वैसे ही आप अचोरी को उपलब्ध हो जाते हैं। याद रखिए, जिस आदमी ने व्यक्तित्व चुराने वन्द कर दिए उसने चेहरे चुराने वन्द कर दिए। जिसने आचरण चुराने वन्द कर दिए वह आदमी वस्तुएँ नहीं चुरा सकता, यह असम्भव है।



काई कह सकता है कि हमारा चोर होने में मात्राएँ हैं डिग्रीज हैं। हो सकता है कि हम दो पैसे न चुरात हा, लेकिन इसमें यह मत समझ लेना कि हम अचोर हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि हमने दो पैसे चुराए कि दो लाख ? चोरी में कोई मात्रा हो सकती है ? दो पैसे चुराऊँ तो भी मैं उतना ही चोर हूँ जितना दो लाख चुराने वाला चोर होता है ।

हम बच्चा से कहते हैं कि तुम विवेकानन्द जसा हो जाओ। इस बच्चे की कीमत सी गलत कि वह विवेकानन्द जसा हो जाय ? अगर वह विवेकानन्द जसा हो गया तो चार हो गया। हम कहते हैं महावीर जसा हो जाओ। अब कोई गलती की है आपने पदा हाकर ? अगर महावीर का ही मित्र पैदा होने का हक है पृथ्वी पर तो अबतक दुनिया खत्म हो जानी चाहिए। वह हो चुके पदा मामला खत्म हो गया। अब आपके होन की क्या जरूरत है ? महावीर की काबल कापा होन की क्या आवश्यकता है ? कृपा करके वह भी मत करना जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो कह रहा हूँ उसमें समझ लेना और छोड़ देना। समझ आपसे पास रह जाय, विचार नहीं। सुरमि रह जाय, फल नहा। यह समय आपका जिन्दगी को बदले तो बदल देना, न बदले तो ऊपर से थापन की वांछित मत करना अथवा जारी रहेगा।



# चतुर्थ अध्याय

## अकाम

सल्ल कामा विस कामा, कामा आसीविसोपमा ।

कामे य पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोमगइ ॥१

—उत्त० अ० १, गा० ५३

ऊपर जिन तीन व्रतों की हमने बात की उन सबके आधार में काम की शक्ति ही काम करती है। अकाम ही अहिंसा, अपरिग्रह और अचीर्य का आधार है, कामवासना अर्थात् चाह, हिंसा, परिग्रह और चीर्य का आधार। काम (कामना, इच्छा) के मार्ग में यदि बाधा उपस्थित हो तो काम हिमक हो उठता है, अगर कोई बाधा न हो और काम सफल हो जाय तो वह परिग्रह बन जाता है।

विज्ञान की दृष्टि में आज सारा काम ऊर्जा का समूह है, एनर्जी है। धर्म इन शक्ति को परमात्मा का नाम देता है। विज्ञान इस शक्ति को अभी एनर्जी मात्र ही कह रहा है। विज्ञान थोड़ा आगे बढ़ेगा तो उससे एक और भूल टूट जायगी। जैसे विज्ञान को पता चला कि पदार्थ ऊर्जा का सघन रूप है वैसे ही उसे आज नहीं तो कल पता चलेगा कि चेतना का सघन रूप एनर्जी है। प्रत्येक व्यक्ति इसी ऊर्जा का स्फुलिंग है, एक छोटा-सा रूप है। यह ऊर्जा अगर बाहर की ओर बहे तो वह काम बन जाती है और अगर भीतर की ओर बहे तो अकाम बन जाती है, आत्मा बन जाती है। भेद सिर्फ दिशा का है। जब कामना घर की ओर लौट पड़ती है तब अकाम का जन्म होता है; जब काम-ऊर्जा बाहर की ओर बहती है तब आदमी धीण, निर्वल और निस्तेज होता चला जाता है। जिसे हमें पाना है, शक्ति उसी की ओर प्रवाहित होनी चाहिए। अगर हमें बाहर की वस्तुएँ उपलब्ध करनी हैं तो शक्ति को बाहर जाना पड़ेगा और अगर हमें आत्मा पानी हो तो शक्ति को भीतर जाना पड़ेगा।

काम को मैं बाहर बहती हुई ऊर्जा कहता हूँ। अकाम से मतलब है भीतर बहती हुई ऊर्जा। शक्ति चाहे तो बाहर की ओर बहे या भीतर की ओर। जब वह बाहर की ओर बहती है तब हमें सब-कुछ उपलब्ध हो सकता है, केवल आत्मा

१. कामभोग शल्यरूप है, कामयोग विष के समान है और कामभोग भयंकर सर्प-जैसे है। जो कामभोग की इच्छा करता है, वह उसे प्राप्त किए बिना ही दुर्गति में जाता है।

उपलब्ध नहीं हो सकती। व्यक्ति सब-कुछ पा सकता है सिर्फ स्वयं का खो देता है। सब पा लेने का भी कोई सार नहीं, यदि स्वयं खो जाय। जब ऊँचा भीतर की ओर बहती है तब वह अकाम बन जाती है। काम का अर्थ है—इच्छा कामना निजायर। जब भी हम कोई कामना करते हैं तब हम बाहर की ओर बहना पड़ता है। कुछ पाने को है बाहर इसलिए हम बाहर की ओर बहना पड़ता है। हम सब बाहर बहते हुए लोग हैं, हम सब कामनाएँ हैं। चीज़ों से घटे हम बाहर का ओर बह रहे हैं किसी को धन पाना है, किसी को यश, किसी का प्रेम। आश्चर्य उन लोगों का देखकर होता है जो परमात्मा का पाने के लिए बाहर का तरफ बहते चल जाते हैं। जिसे मोक्ष पाना है वह भी साचता है कि मात्र वही ऊपर है, बाहर है।

परन्तु ध्यान रहे धर्म का बाहर से कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए जिनके श्वर बाहर हा वे समझ लें कि उनका धर्म से कोई नाता नहीं है। जिनका माक्ष बाहर हो वे अच्छी तरह विश्वास कर लें कि वे धार्मिक नहीं हैं। पाने की कोई भी चीज़ जिनके लिए बाहर हो वे समझ लें कि वे कामी हैं। सिर्फ एक ही स्थिति से काम में मुक्ति होती है और वह यह कि हम भीतर बहना शुरू करें।

जन्म के साथ हम शक्ति लेकर आते हैं और मृत्यु के साथ शक्ति गवाँकर वापस लौट जाते हैं। जो व्यक्ति मृत्यु के साथ भी शक्ति लेकर वापस लौटता है उस फिर आने की जरूरत नहीं रह जाती। अकाम जन्म-मरण से मुक्ति है काम बार-बार ससार में लौट आने का कारण है। काम है मृत्यु की खोज, अकाम है अमृत की तलाश।

स्मरण रहे कि मनुष्य की कोई भी कामना कभी ठीक अर्थों में पूरी नहीं होती, हाँ नहीं सकती। बाहर की तरफ दौड़ना ही जिसकी जिदगा बन गई है वह एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि दूसरी का जनमा लेता है। बहना चाहिए कि वह एक के बाद अनेक इच्छाओं को जनमा लेता है फिर दौड़ना शुरू कर देता है। सब धुँधिल तो हम बाहर की तरफ दौड़ती हुई अजगैर हैं इसलिए हम खाली कारतूमा की तरह मर जाते हैं। इसलिए हमारी मृत्यु सौंदर्य नहीं हो पाती, एक अनुभव नहीं बनती। मृत्यु की पीड़ा निस्तब्ध और खाली हो गए आदमी का है जो सब भाँति रिक्त हो गया है जिसमें अब कुछ भी नहीं बचा। लविन मोन मा आनन्द देती है उस जो खाली नहीं, भरा हुआ है। हम नरे हुए कस रह जाय, इस रहस्य का समझ पाने के लिए अकाम है लेकिन अकाम का समझन के लिए पहले काम की समस्त यात्रा समझ लेनी चाहिए। इस समझ ले ता भीतर की तरफ बहना बड़ा गरल बात हो जाती है।

हम पता है कि पन्नाथ अणुया से बना है। इस सदी में पता है कि प्रत्येक



अणु के भीतर अनन्त ऊर्जा छिपी है। अगर अणु को तोड़ दिया जाय तो विस्फोट होता है और शक्ति बाहर वह जाती है। विज्ञान ने अणु को तोड़ा है, धर्म ने जोड़ा है। इसलिए धर्म का नाम है योग, जोड़। मनुष्य की चेतना भी अणु है और यदि हम उस अणु को टूटा हुआ रहने दें तो उससे सब वह जाता है, अनन्त ऊर्जा बाहर निकल जाती है। अगर वह अणु टूटे नहीं, बरन् सन्तुलित हो जाय, बन्द हो जाय तो भीतर अनन्त ऊर्जा उपलब्ध होती है। इस अनन्त ऊर्जा की अनुभूति अनन्त परमात्मा की अनुभूति है, इसका अनुभव अनन्त आनन्द का अनुभव है। इस अनुभव के बाद फिर कुछ अनुभव करने को शेष नहीं रह जाता। लेकिन ऐसा समझना चाहिए कि आदमी टूटा हुआ अणु है, चेतना का टूटा हुआ ऐटम है। उसमें छेद है।

जन्म के क्षण में हम ऊर्जा से भरे हुए होते हैं। जब तक जन्म नहीं होता तब तक हम भरी बाल्टी होते हैं। जन्म के साथ बाल्टी ऊपर उठी कुएँ से कि पानी गिरना शुरू हुआ। अगर ठीक से समझे तो जन्म के साथ ही हमारी मृत्यु शुरू हो जाती है, हमारा खाली होना शुरू हो जाता है। हम फूटी बाल्टी की तरह खाली होने लगते हैं। अगर कोई व्यक्ति अपने पूरे जीवन की ऊर्जा को ठहरा ले तो वह जिम ताजगी का अनुभव करेगा उसका हमें कोई भी पता नहीं। और काम, ऊर्जा को खोने की विधि है। काम के अनेक रूप हैं जिनमें सर्वाधिक सघन रूप यौन है। इसलिए धीरे-धीरे काम और यौन, काम और सेक्स पर्यायवाची बन गए। भोजन से ऊर्जा मिलती है, नींद से ऊर्जा बचती है और व्यायाम में ऊर्जा जगती है। इस ऊर्जा का बहुत सा अंश सिर्फ जीवन-व्यवस्था में व्यय हो जाता है। भोजन के समय आप साधारण मृत पदार्थ को भीतर ले जाते हैं और आप की जीवन-ऊर्जा उसे जीवन्त बनाती है। इनमें बहुत ऊर्जा व्यय होती है। चलते-फिरते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है, बैठते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है। जीवन की इन सारी आवश्यक प्रक्रियाओं के बाद जो थोड़ी-बहुत ऊर्जा बचती है उसका आप सिर्फ सेक्स में उपयोग करते हैं। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति दिन भर धन कमाए और संध्या समय जाकर उसे नदी में फेंक आए। यह बड़ी ऐव्सर्ड जिन्दगी है। अजीब पागलपन है ! इकट्ठा करना, फेंकना, इकट्ठा करना, फेंकना।

ऊर्जा का इकट्ठा करना तो ठीक है, लेकिन खोने के लिए ही इकट्ठा करना बहुत बेमानी है। यह जिन्दगी नहीं हो सकती, कहीं भूल हो रही है। अगर कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए मकान बनाता हूँ कि गिरा दूँ तो हम कहेंगे कि उसका दिमाग ठीक नहीं। लेकिन हम सब जिन्दगी में करते क्या हैं ? यही तो करते हैं। इधर आप ऊर्जा कमाते और यौन में व्यय करते हैं उधर सन्यासी ऊर्जा को सदेह की दृष्टि से देखता है, उपवास करता है, खाना कम खाता है। आप कमाकर खो देते हैं, वह



कमाला ही नहीं । लेकिन सयासी लम्बे अरसे से अपने को घावा दे रहा है । उस वास से यौन नष्ट नहीं होता, बेहाना पड़ा रहता है । पड़ा रहता है, प्रतीक्षा करता रहता है कि जब शक्ति मिले तो छूटूँ ।

गृहस्थ और सयासी आतियों के उलट छोर हैं । अकाम का अर्थ है कि शक्ति तो पदा हो लेकिन यौन से विसर्जित न हो । जब शक्ति बहुत बड़े पमाने पर संगृहीत होती है जब उस सम्मोग में विसर्जित नहा दिया जाता तब वह आपके भीतर ऊँच गमन गुरु करती है । जब भी कोई शक्ति रोकी जाती है तब वह ऊपर उठती है । अमा आपकी शक्ति यौन केन्द्र के ऊपर नहा उठती । और ध्यान रह सक्रम मनुष्यका निम्नतम सेंटर है । समय लें कि मनुष्य के भीतर सेक्स जैसे छह द्वार और हैं और ऊँचा एक-एक द्वार पर जाती है । जब वह यौन केन्द्र से ऊपर उठकर अन्य चक्रा पर जाती है तब आप हरान होत ह और कहत हैं कि मैं क्या पागल था, मैं शक्ति को कहाँ खो रहा था ? सचमुच आप व्यक्तित्व की पहली परत पर ही जीत है—सेक्स की परत पर जहाँ कवड-पत्थर से ज्यादा कुछ नहा मिल सकता । अगर वहाँ से ऊँचा इटठा हा और थोड़ी आगे बढ़े ला दूसरा चक्र सक्रिय हो उठता है, खुलन लगता है । जब आपकी ऊँचा सातवें चक्र पर पहुँचती है मस्तिष्क तब, तब सेक्स सेंटर (मूलाधार) और सहस्रार के बीच अन्भुत शक्ति प्रवाहि होने लगती है, आपकी कुडलिनी जाग जाती है, आप आत्मज्ञान का उपलब्ध होते ह । जिस दिन आपकी समस्त ऊँचा इक्कठी हाकर आप के मस्तिष्क के चक्रा का चलान लगनी है, उस दिन पहली बार आप ब्रह्म का उपलब्ध हात ह ।

लेकिन हम ता पहुँचे ही चक्र पर खो जाते हैं । वह हमारा छिद्र सब कुछ विदा करवा देता है । लेकिन मैं यह नहीं कहता कि आप सेक्स का काम-वासना को दबाएँ । अगर आपने दबाया और रोका ता वह विद्राह कर उठेगी । शक्ति का दबाया नहा जा सकता, सिफ माग दिया जा सकता है । सेक्स से लम्बेवाले लाग जिदगी भर के लिए कामुक हो जात हैं । सेक्स से लडकर कभी कोई व्यक्ति ऊपर के चक्रा तक नहीं पहुँचा । ब्रह्मचर्य सेक्स से लडाई नहा है ।

इसलिए याद रह कि हमारे पास अतिरिक्त ऊँचा चाहिए हा जो ऊपर के चक्रा का गतिमान कर सक । ऊँचा को पदा करने का ही नहीं, उसे नई दिगाएँ दन का भी इतजाम होना चाहिए । इस सम्बन्ध में दा-तीन सूत्र स्मरणीय हैं ।

पहला सूत्र ता यह है कि यदि हम वतमान में जीएँ तो ऊँचा इक्कठी हागी और ऊपर की ओर प्रवाहित होने लगगी । जो भविष्य में जीने की कोशिश करता है उसकी ऊँचा बह जाती है । भविष्य दूर है और भविष्य से हमारा जो सम्बन्ध है वह कामना का ही हो सकता है । भविष्य है नहा, भविष्य हागा । और हागा से हमारा सम्बन्ध सिफ कामना या इच्छा का हा सकता है । वासना का मतलब हो है भविष्य में जीन

पडेगे जो काम नहीं है, जो सिर्फ खेल है, लीलाएँ हैं। कृष्ण की तरह उसे यही समझना होगा कि जिन्दगी एक खेल है। नाच रहे हैं, पर कुछ मिलनेवाला नहीं। वाँसुरी बजा रहे हैं, पर कुछ मिलनेवाला नहीं। राम की तरह उनकी कर्सीटी उपयोगिता की न होगी। राम बहुत उपयोगितावादी है, इसलिए एक घोड़ी के कहने पर पत्नी को बाहर कर देते हैं। रघुकुल-परम्परा के लिए वे क्या नहीं करते ? परन्तु यज्ञ, व्रज आदि सब-कुछ उपयोगिता है, बहुत गम्भीर मामला है। अगर स्त्री की जगह कृष्ण होते तो सीता को न निकालते। हो सकता है, वे खुद ही वाँसुरी बजाते हुए भाग जाते। वे सीता की अग्नि-परीक्षा भी न लेने—बहुत बेहूदी बात मालूम पड़ती। प्रेम की भी कही परीक्षा होती है ? प्रेम अपने आप में पवित्र है : उनकी और कोई पवित्रता नहीं हो सकती। सीता ने राम की अग्नि-परीक्षा नहीं ली, यद्यपि राम नी अकेले थे, उनका भी क्या भरोसा ? स्त्री का तो थोड़ा-बहुत भरोसा हो सकता है, पुरुष का होना जरा मुश्किल है। लेकिन सीता ने नहीं कहा कि राम की भी परीक्षा हो। सीता के लिए जिन्दगी एक गम्भीरता नहीं, खेल है। और स्मरण रहे, प्रेम परीक्षा नहीं माँगता, वह सब परीक्षाएँ दे सकता है।

जिन्दगी जितनी गम्भीर होती जा रही है कामुकता उतनी ही बढ़ती जा रही है। आप जितना गम्भीर होंगे, तनाव से उतना ही भरते जायँगे और तनाव से जितना ही भरेंगे उतना ही रिलीफ चाहेंगे, काम की ओर प्रवृत्त होंगे और आपकी कामुकता बढ़ेगी। आप बक्ति फेंककर अपने बोझिल चित्त को हलका करेंगे।

तीसरा सूत्र है—जिन्दगी को गम्भीरता से न ले। गम्भीरता बुनियादी रोग है, लेकिन आमतौर से साधु-संन्यासी बहुत गम्भीर होते हैं। जिन्दगी गम्भीरता नहीं है। जो जिन्दगी में गम्भीर है वह कभी काम से मुक्त नहीं हो सकता। जिन्दगी खेल बन जाय तो आदमी काम से मुक्त हो सकता है। ध्यान रहे कि वच्चे इतने अकाम इस कारण होते हैं कि उनकी जिन्दगी गम्भीर नहीं होती। जैसे-जैसे वे गम्भीर होते जाते हैं, वैसे-वैसे उनकी जिन्दगी में सेक्स भरता जाता है।

सेक्सुअल मैच्युरिटी की दृष्टि से लड़कियाँ जहाँ चौदह साल में सयानी होती थी वहाँ अब वे ग्यारह साल में सयानी होने लगी हैं और सम्भावना है कि इस सदी के अंत में वे सात साल में सयानी होने लगेगी। असल में लड़कियाँ अब सात साल में ही उतनी गम्भीर हो जाती हैं जितनी चौदह साल में पहले हुआ करती थी। शिक्षा, व्यवस्था, शिष्टाचार, सभ्यता आदि रोज भारी होती जा रही है। इस बोझ और गम्भीरता के अनुपात में ही वच्चे सेक्स की शक्ति को बाहर फेंकने के लिए मार्ग खोजने लगते हैं। इससे उलटा भी हो सकता है। अगर हम देर तक उन्हें हलका रख सकें तो बीस-पच्चीस साल तक वे काम से बचाए जा सकते हैं। जितनी गम्भीरता बढ़ेगी, उतना बोझ बढ़ेगा, जितना बोझ बढ़ेगा, उतना तनाव होगा और

जितना तनाव होगा उतना ही विकास की माग होगी। इसी कारण पहले गुरुकुल में युवका का जिन्दगी को खेल बनाया जाता था। न परीक्षाओं की गम्भीरता थी, न जिन्दगी से लड़ने की गम्भीरता थी। जिन्दगी एक खेल था गुरुकुल में, इसलिए पच्चीस साल तक युवक काम के बाहर रह जाते थे उन दिनों।

अब ऐसा नहीं होता। बाप जब भी बेटे में मिलता है तब गम्भीर होता है। बेटा भी बाप से बचा रहता है। मरा मताह है कि आप बच्चा के साथ खेलें—एक घंटा खेलें और देखें कि आपकी काम क्षति में कितना फर्क पड़ने लगा है। चित्र बनाएँ घर की दीवालों को सज्यें रंगें। यह जरूरी नहीं कि वह चित्र किसी बड़े चित्रकार के चित्र—जैसे हा, जरूरी यह है कि वह आपसे निकले। घर के आँगन के साथ नाचें, खेलें—कभी घर के आँगन के साथ नाचा है आपन ? अकाम की आर बढ़ना चाहते हो तो जीवन को सजनात्मक बनाएँ—दो चार क्षण भी सजने में लगाएँ, बगीचे में काम करें, गाँवें, गाएँ, गम्भीरता का कुछ देर के लिए अलग कर दें। पल पल जीयें, भविष्य और कामना से मुक्त हो, सजनात्मक बनें। चरित्र बनाने में हा न लगे, बल्कि जीवन में थोड़ी सी लीला भी आने दें और, अंतिम बात, जब भी मीका मिले तो होशपूर्वक समस्त इन्द्रिया के द्वार बंद कर मातर दें, भीतर सुनें भीतर सूँघें। इन्द्रिया से जो बाहर किया है वह भीतर करने की काशिश करें भीतर के अपने नाद है अपने स्वाद है।



## पंचम अध्याय

### अप्रमाद

दुमपत्ताए पडुयए, जहा निवड्ड राजगणाण अच्चए ।

एव मणुयाण जीवियं, समयं गोयम । मा पमायए ॥'

—उत्त० अ० १०, गा० १

यद्यपि मनुष्य मात मजिलो का भवन है, फिर भी वह केवल एक मजिल को जानता है, उस एक में ही जीता और मर जाता है। जिन मजिल में हम जीते हैं, उसका नाम चेतन मन है। उसके नीचे दूसरी मजिल है जो तलघरे में है, जमीन के नीचे है। उस मजिल का नाम अचेतन मन है। उससे भी थोड़ा और नीचे समष्टि अचेतन का तल है और उसके भी नीचे ब्रह्म अचेतन का तल। जिस मजिल पर हम रहते हैं उसके ठीक ऊपर अति-चेतन की ('सुपर-कॉन्सस' की) मजिल है और उसके ऊपर समष्टि चेतन ('क्लेक्टिव कॉन्सस') की मजिल। समष्टि चेतन की मजिल के ठीक ऊपर ब्रह्म-चेतन ('कॉज्मिक कॉन्सस') का तल है। यद्यपि यह मकान सप्त-मजिला है, फिर भी हमसे अधिकश लोग चेतन मन में ही जीते और मर जाते हैं। आत्मज्ञान का अर्थ है सात मजिल की इसी व्यवस्था से पूर्णतया परिचित हो जाना। इसमें कुछ भी अनजाना रहा तो मनुष्य अपना मालिक कभी नहीं हो सकता।

चेतन मन की मजिल में ही जीते रहने का नाम प्रमाद है। प्रमाद का अर्थ है मूर्छा, बेहोशी, निद्रा या सम्मोहित अवस्था। और साधना का लक्ष्य है इस प्रमाद को तोड़ना, इस मूर्छा से जागना। चूंकि हम एक ही मजिल में जीते हैं और केवल उससे ही परिचित रहते हैं, हमारी अवस्था उन लोगों की-सी होती है जो सोए हुए होते हैं। यदि हम जागे हुए होते तो बाकी मजिलों से अपरिचित रह जाना असम्भव होता। हम सोए हुए हैं, इसलिए हम जहाँ हैं वही जी लेते हैं। हमें और मजिलों का पता नहीं चलता।

फ्रायड ने जिस अचेतन मन की बात की है वह उसका अनुभव नहीं है, केवल अनुमान है। इसलिए पश्चिम का मनोविज्ञान अभी भी योग नहीं बन पाया। 'मनो-विज्ञान उस दिन योग बनेगा, जिस दिन वह अनुभव में रूपांतरित होगा।

१. जिस तरह रात बीतने पर वृक्ष के पीले पत्ते झड़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य-जीवन का भी एक-न-एक दिन अन्त आता ही है; ऐसा समझकर हे गौतम ! तू समय-मात्र का प्रमाद न कर।

ऊपर और नीचे फली हुई मन की मजिला का हमें तब तक पता नहीं चलेगा जब तक हम अपनी मजिल में सोए हुए हैं। इसलिए पहले हम अपने सोए हुए हान के तथ्य को ठीक से समझ लें जिससे जागने की यात्रा गुरु की जा सके। क्या आपने कभी खयाल किया कि आप सोए हुए आत्मी हैं? गायद नहीं, क्याकि सोए हुए आदमी का दस्तना भी पता चल जाय कि मैं सोया हुआ हूँ तो जागने की गुरुआत हो जाती है। असल में इतनी बात का पता चलना कि मैं सोया हुआ हूँ, जागने की खबर है। सोए हुए का अनुभव भी जागने का अनुभव है नींद का नहीं।

हम शोध करते हैं, गालियाँ बकते हैं साँव को क्षमा माँगते हैं और कहते हैं—माफ़ करें, मेरे मुँह से ऐसी बातें निकल गई जिन्हें मैं नहीं चाहता था। क्या पूछा जा सकता है कि मैं नहीं चाहता था तो बातें किस निकल गई? क्या मैं जागा हुआ था या सोया हुआ? जब जब मैंने शोध किया है तब-तब मुझे यह अनुभव हुआ है कि जा मुझे नहीं करना चाहिए वही मैं करता रहा हूँ। इससे जाहिर है कि मैं सोया हुआ आदमी हूँ। यदि सोया हुआ न होता तो मुझे इस बात का पता रहता कि मैं वही कर रहा हूँ जो मुझे नहीं करना चाहिए। हम पश्चात्ताप इसलिए करते हैं कि हमारे समस्त काय बेहारी में होते हैं। जब होश का क्षण आता है तब पछतावा होता है। होश में जीनेवाले आदमी की जिंदगी में पश्चात्ताप नहीं होता क्योंकि वह जो भी करता है वह पूरी तरह समझ-बूझकर करता है। पछतावा वह है जो सोया हुआ है।

अंगरजी का एक मुहावरा है—फॉलिंग इन लव'। मुहावरा इसलिए ठीक है कि हम प्रेम में सोयी हुई हालत में करते हैं, प्रेम में मूर्छित हो जाते हैं। इसलिए प्रेमी-जन अक्सर कहते हैं कि मैंने प्रेम नहीं किया, हो गया। हो गया का क्या मतलब है? चीज नीचे में ही होती है, जागने में की जाती है। आपने प्रेम किया है या हा गया है? अगर हा गया है तो आप बहोश आदमी हैं। आप मर्ीन हैं यश हैं आप पर चीजें घट रही हैं। आप उन्हें कर नहीं रहे, यही आपका प्रमाद है। आप जो भी कर रहे हैं सोए हुए कर रहे हैं। प्रेम धणा दास्ती दुश्मनी, नाप, क्षमा प्राय चित्त—गव सोए हुए हो रहा है। आपकी जिया ना रहा है। आपकी इस अवस्था का नाम प्रमाद है। मैं रात की नींद की बात नहीं कर रहा हूँ दिन की नींद की बात कर रहा हूँ, जब कि हम जाग हुए भी सोए हुए हान हैं। कभी-कभी, किसी तनरे के क्षण में, घापी दर हम जाग उठते हैं, अचघा नहीं। इसलिए हमारे मन में गतर की ना इच्छा पदा हानी है गतर में भी घाडा रस जान लगता है क्योंकि गतर में हम जागत हैं। जुण का वाक्पण जागने के रस से ही आता है। हम हगार तरफ के रतर घुने हैं जिनमें हम क्षणभर का जाग पाते हैं। फिर नाद शुरू हो जाती है। इस आकस्मिक उपाया से यदि कभी पूरा तरह जाग रहा सकता है।

माधारण जन की बात तो दूर रही, आज का कलाकार भी सोया हुआ आदमी है। मच पूछिए तो जहाँ कहानी खत्म होनी चाहिए वहाँ खत्म न होकर वह कहीं और भटक जाती है, कहीं और पूरी होती है। कवि चाहता कुछ है, लिखता कुछ। इसका कारण यह है कि सचेतन कला अभी तक पैदा ही नहीं हुई, निर्व्यक्तिक कला का अभी तक जन्म ही नहीं हुआ। अभी तो सोए हुए आदमी कविता लिखते हैं। वे शुरू कुछ करते हैं और हो कुछ जाना है। सोए हुए आदमी चित्र बनाते हैं, कहानियाँ रचते हैं, दुनिया चलाते हैं। सोए हुए आदमी का क्या मनोना ? लेकिन कहानी की बात छोड़ दें। जिन्दगी में आप जो बनना चाहते थे, वह बन पाए ? नायब ही कोई ऐसा मिले जो कहे—मैं बन गया जो मैं बनना चाहता था।

हमें इस बात का साफ-साफ ज्ञान नहीं होता कि हम क्या बनना चाहते हैं। नींद में यह कैसे साफ हो सकती है ? पता ही नहीं चलता कि हमें क्या बनना है। एक धीमी-सी, सोयी हुई आकांक्षा होती है कि मैं यह बनना चाहता हूँ, नाफ नहीं। साथ ही यह भी पता चलता रहता है कि मैं वह भी नहीं बन पा रहा हूँ जो मैं बनना चाहता था। मरते वक्त सभी को लगता है कि जिन्दगी बेकार गई, जो होना चाहते थे वह नहीं हो पाये—हालांकि मरता हुआ आदमी भी साफ-साफ नहीं कह सकता कि क्या होना चाहते थे।

हम जो तय करते हैं वह खो जाता है, जो नहीं तय करते वह हो जाता है। तय करके लोटते हैं कि आज पत्नी से झगडा नहीं करना है। पत्नी तय करके रखती है कि अब कलवाली साँझ फिर न आ जाय। फिर वे आमने-सामने आते हैं और कल की साँझ वापस लौट आती है। जो तय किया था वह खो जाता है। यह हमारी सोयी हुई अवस्था है। महावीर ने इसे प्रमाद कहा है—प्रमाद, अर्थात्, सोए हुए होना। यदि यह स्मरण आ जाय कि मैं सोया हुआ हूँ तो खोज शुरू हो सकती है। इसलिए अप्रमाद का पहला सूत्र है इस बात की समझ कि मैं सोया हुआ हूँ, नींद का बोध। नींद को तोड़ने का पहला सूत्र है नींद को ठीक से पहचान लेना, यह जान लेना कि आप चाहे दूकान जाते हो या मन्दिर, आप हमेशा सोए हुए जाते हैं, सोए हुए मित्रता करते हैं, सोए हुए उठते-बैठते हैं। ध्यान रहे, कुछ प्रमादी धर्म को भी नींद में ही साधते हैं, नींद में ही मालाएँ फेरते हैं, नींद में ही व्रत करते हैं। धर्म सोए-मोए नहीं हो सकता। सोए-सोए, सिर्फ अधर्म हो सकता है। इसलिए धर्म के नाम पर भी सिर्फ अधर्म ही होता है।

साधना गहराई है और सिद्धि एक ऊँचाई। साधना नीचे जाती है, सिद्धि ऊपर जाती है। जड़े जितना ही नीचे उतरने लगती हैं, वृक्ष उतना ही आकाश को छूने लगते हैं। अगर वृक्ष को ऊपर जाना है तो जड़ को नीचे जाना ही पड़ता है। सीधे ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए साधक को पहले अपनी ही गहराइयों



म उतरना पड़ता है ताकि वह सिद्धि के आकाश का छू सके । उस चतन से अचतन में, अचेतन से ब्रह्म अचेतन में जाना पड़ता है । जब वह चतन से अचेतन में जाता है तब अचानक ऊपर का भी एक दरवाजा खुल जाता है—अतिचतन का दरवाजा । जब वह समष्टि अचतन में प्रवेश करता है तो साथ ही समष्टिगत चतन का भी दरवाजा खुल जाता है । जब वह ब्रह्म-अचतन में जाता है तब उसी समय ब्रह्मचतन का दरवाजा खुल जाता है । वह जितना नीचे उतरता है उतना ही ऊँचा उठना जाता है । इस लिए ऊँचाई की फिज छाड़ दें, गहराई की फिज करें ।

अपनी ही गहराइयाँ में हम कैसे उतरें ?

अगर कोई पूछे कि हम तरना कैसे सीखें तो उस हम क्या कहेंगे ? उस हम कहेंगे कि तरना गुरु करा । पहली बार जब कोई पानी में उतरता है तब बिना तैरना सीखे ही उतरता है । असल में त्रिना सीख तैरने के लिए उतर जाने से ही सीखन की शुरुआत होती है । हाँ, इतनी ही सावधानी बरतें कि गहरे पानी में न उतरें ।

तो आपस में परम जागरण की आकांक्षा बहा रखता हूँ । घाड़े में पानी में उतरना गुरु करें । अपनी छाटी छाटी क्रियाओं का जानना शुरू करें । छोटी छोटी क्रियाओं का प्रति जागना गुरु करें । कपड़ा पहन रह हा तो जागे हुए पहन, जूत टार रहे हा तो जागे हुए डालें, कुछ सुन रह हा तो जागे हुए सुनें । इसके बाद उन क्रियाओं के प्रति जागें जिनके लिए पड़ताना पड़ता है । मोघ घणा, अमद्रता आदि के प्रति जागें । अगर आप सुबह से उठकर साँध तक जागने का प्रयोग करेंगे तो थोड़े ही दिनों में आप एकदम दूसरे आदमी हो जायेंगे । आपका प्रमाद टूट जायगा । हमका प्रमाण क्या होगा कि आपका प्रमाद टूट गया ? इसका प्रमाण यह होगा कि नाच में भी आपका जागरण शुरू हो जायगा । जिस दिन जागरण में आपकी जाग टूटगी उसी दिन आप नींद में भी सचेतन प्रवेश कर सकेंगे ।

आप रोज सोन हैं । यदि आपकी उम्र माठ साल की है तो आपने बीस वर्ष सावर बिताए । लेकिन आपका पता है कि नींद कब आती है कब आती है ? क्या है नाद ? अपने जीवन की दृष्टि बड़ी घटना सभी आपका परिचय नहीं हुआ रहता । अभी आप तो यह जानते हैं कि आप क्या साएँ, गीत का जवेरा आपका ऊपर कैसे गिरा आप नाद में कब डूब आर न यह कि सुबह नींद कब टूटी, कसे बिदा हुआ गइ ? जिस दिन आप जागरण का घड़ियाँ में जाग जायेंगे और जागने की क्रिया जागकर करने लगेँगे उस दिन आपका नींद में भी सचेतन प्रवेश होगा ।



रचे । घर जाएँ तो तय करके जाएँ कि टूट पडना है किसी के ऊपर । पूरी तरह क्रोध करें तो आप देख पाएँगे क्रोध को । इधर क्रोध चलेगा, उधर आप देखते रहेंगे कि क्रोध चल रहा है । अगर एक बार भी हम क्रोध का अभिनय कर मके तो फिर कभी क्रोध बिना अभिनय के नहीं होगा । अभिनय ही हो जायगा । तो जो चीजे गहरी हैं उनको अभिनय से शुरू करें । जो चीजे गहरी हैं यदि उनपर होगपूर्वक अभिनय करें तो आप जाग सकेंगे और अगर जागने के क्षणों में जागना आ जायगा तो फिर नींद के क्षणों में जागना शुरू हो जायगा । जिस दिन आप नींद में जाग जाएँगे, उस दिन आप अचेतन में प्रवेश करेंगे । कृष्ण ने गीता में यही बात कही है । रात में जब योगी सोते हैं तब भी वे जागते रहते हैं । अगर आप नींद में जागे हुए मो सके तो एक अद्भुत, चमत्कारपूर्ण घटना घटेगी—दूसरे दिन सुबह आप जैनी ताजगी का अनुभव करेंगे वैसी ताजगी का आपको कभी पता भी न रहा होगा । उस ताजगी का शरीर से कोई सम्बन्ध न होगा । बहुत गहरे में वह आपकी आत्मा की ताजगी होगी । आपके स्वप्न तिरोहित हो जायँगे, क्योंकि आप स्वप्नों के प्रति जाग जायँगे । ऐसा नहीं कि आपको बाद में पता चलेगा कि स्वप्न आए थे । जब स्वप्न आने लगेंगे तभी आपको इसकी जानकारी हो जायगी ।

चेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागने से अचेतन मन में प्रवेश होता है, अचेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागने से समष्टि अचेतन में प्रवेश । स्वप्न अचेतन मन की ही क्रिया है । स्वप्न के प्रति जागते ही आप पाएँगे कि एक दरवाजा और खुल गया जो समष्टि अचेतन का दरवाजा है । इस समष्टिगत अचेतन की अपनी क्रियाएँ हैं जिनको धर्मों ने बड़ा महत्त्व दिया है । इस सामूहिक अचेतन से ही दुनिया के सभी निथक पैदा हुए हैं । सृष्टि का जन्म, प्रलय की सम्भावना, परमात्मा का रूपरंग, आकार, नाद आदि का सम्बन्ध इसी अचेतन से है । नृत्य भी सामूहिक अचेतन से पैदा होता है, इसलिए नृत्य को समझने के लिए दूसरे की भाषा का ज्ञान अनिवार्य नहीं । जो फ्रांसीसी भाषा नहीं जानता वह भी पिकासो की पेंटिंग का आनन्द ले सकता है । चूँकि बहुत गहरे में हम सब एक हैं इसलिए दुनिया के सारे धर्मों के प्रतीक कई बातों में समान हैं । दुनिया की भिन्न-भिन्न भाषाओं में जो समानता है वह समष्टिगत अचेतन की समानता है । सागर की लहरों की तरह हम अलग-अलग हैं, लेकिन बहुत गहरे में हम परस्पर अभिन्न हैं ।

समष्टिगत या सामूहिक अचेतन की क्रियाओं के प्रति जागने से ब्रह्म-अचेतन में प्रवेश होता है । ब्रह्म-अचेतन में उतरने का अर्थ प्रकृति में उतरना है । प्रकृति अर्थात् वह जो कृति के भी पहले था, अर्थात् प्री-क्रीएशन । जो सृष्टि के पहले था, जिससे सब पैदा हुआ, जो पैदा होने के पहले भी था वह है प्रकृति । जिसे ब्रह्म-अचेतन कहा जाता है वह है प्रकृति । उससे ही सब आया । चेतन और अचेतन मन तो मेरा है,

लेकिन समष्टि-अचेतन हमारा है, मेरा नहीं । ब्रह्म अचेतन हमारा भी नहीं, सबका है । उसमें पत्थर, पहाड़ पशु-पक्षी, नदी-नाले सब सम्मिलित है । वह प्रकृति है । वहाँ जो उतर जाय उसके लिए जागे उतरने को नहीं रहता । वह अनन्त है, अथाह है शून्य साई है । उसमें उतरने की प्रक्रिया अप्रमाद है । जहाँ आप हैं वहाँ से जागना शुरू करें । जिस दिन आप वहाँ जाग जाणगे उस दिन आपको नीचे के दरवाजे की कुजी मिल जायगी । फिर वहाँ जागना शुरू करें और नीचे की कुजी मिल जायगी । जब तक आप चेतन में हैं, तब तक आप अति चेतन में नहीं जासकते ऊपर नहा बैठ सकते । आप की जड़ को अचेतन में उतरना ही पड़ेगा । जिस दिन आपकी जड़ अचेतन में उतर जायगी उस दिन आपकी सायाएँ अति चेतन में फैल जायगी । आप जितना नीचे उतरेंगे उतना ही बढ़ता चला जायगा । ब्रह्म अचेतन में, प्रकृति में पूर्ण अधिकार है, अधिकार ही अधिकार है । इसके विपरीत आप जितना ही ऊपर बढ़ेंगे प्रकाश उतना ही बढ़ता जायगा । वह जो ब्रह्म चेतन है ब्रह्म है, वह पूर्ण प्रकाश है प्रकाश ही प्रकाश है । लेकिन ऊपर जाने का रास्ता नीचे होकर जाता है । जो नीचे साई है उसके द्वारा ही चोटी तक पहुँचा जाता है । साधना की यही सबसे बड़ी कठिनाई है । यही समझना सबसे ज्यादा कठिन हो जाता है कि ऊपर जाने के लिए नीचे जाने की आवश्यकता होती है ।

अतः जिस धर्म के अनुभव में जाना है उसे पहले नीचे उतरना पड़ेगा । जिसे मन होना हो उसे बहुत गहरे अर्थों में पापी होना पड़ता है । जो व्यक्ति गहरे अर्थों में पापी होने से बच गया, वह गहरे अर्थों में सुत नहीं हो सकता । नीत्से ने ठीक ही कहा है कि जिस बक्ष को आकाश छूना है उसे अपनी जड़ें पाताल तक पहुँचाने की हिम्मत जुटानी पड़ती है ।

इसलिए ऊपर की फिक्र छोड़ दें, नीचे की फिक्र करें और एक एक कदम पर प्रमाद को तोड़ते चल जायें । वहाँ से शुरू करेंगे ? शुरू सदा वही से करना पड़ता है जहाँ आप हैं । जागने में जागना शुरू करना पड़ेगा । महावीर अपने भिक्षुओं से निरन्तर कहते थे—विवेक से उठो, विवेक से चलो विवेक से बढो । विवेक का अर्थ है होश, 'अवयरनेस' । महावीर कहते हैं—जानत हुए चलो, होश में चलो । होश पूर्वक जो भी किया जाता है वह सदा ठीक होता है । होशपूर्वक पुण्य ही किया जा सकता है, पाप नहीं । जो विवक में जीता है वह गलती नहीं करता, गलती नहीं करने की वसम भी नहीं खाता । व्रत सिर्फ जधे लेते हैं । आँखवाले लोग व्रत नहीं लेते । वे जिस ढंग से जीते हैं, वही व्रत है ।

महावीर जब कहते हैं कि विवेक से चलो, तो इसका मतलब है कि चलने की क्रिया हाशपूर्वक हो अप्रमादी हो । पैर उठे तो जानो कि उठा । जमीन पर गिरे तो जानो कि गिरा । कोई भी क्रिया <sup>१</sup> गाय । इसलिए महावीर से

जब किसी ने पूछा कि आप साधु किसे कहते हैं, तो उन्होंने यह नहीं कहा कि जो मुँह पर पट्टी बाँधता है उसे मैं साधु कहता हूँ। अगर महावीर ऐसा कहते तो दो कीड़ी के आदमी हो जाते। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि जो नगा रहता है उसे मैं साधु कहता हूँ। अगर वे ऐसा कहते तो बड़े नासमझ मिद्ध होते। उन्होंने कहा कि मैं 'सुरुता मुनि को साधु कहता हूँ। जो सोया हुआ नहीं है, उसे मैं मुनि कहता हूँ। जो सोया हुआ है, उसे मैं असाधु कहता हूँ'—'सुत्ता अमुनि'। अगर आप जाग-कर जी रहे हैं तो आपकी जिन्दगी में साधुता उतर आयगी। अगर आप सोकर जी रहे हैं तो आपकी जिन्दगी में असाधुता के मिवा और कुछ भी नहीं हो सकता। आप सोये-सोये भी साधु बन सकते हैं, लेकिन तब वह साधुता बनी हुई—कृत्रिम—होगी और बने हुए साधु असाधुओं से भी बदतर होते हैं, क्योंकि उन्हें वह भ्रम पैदा हो जाता है कि वे साधु हैं। जब असाधु को साधु होने का भ्रम पैदा हो जाय तब जनम-जनम लग जायेंगे इस भ्रम से छूटने में।

अप्रमाद साधना का सूत्र है। अप्रमाद साधना है। प्रत्येक क्रिया स्मरण-पूर्वक हो। एक भी क्रिया ऐसी न हो जो कि बेहोशी में हो रही हो। वन आपकी धर्म-यात्रा गुरु हो जायगी। जाये पाताल में ताकि पहुँच सकें मोक्ष में। उतरे गहरे ताकि छू सके उँचाई को। जागने की कोशिश करे और जागने की कोशिश जब गहरी हो जाय तब रुक न जायँ, अन्यथा दूसरे चरण पर नींद पकड़ लेगी। स्मरण रखें कि यात्रा लम्बी है परन्तु असम्भव नहीं, कठिन है। नीचे-नीचे उतरते जायँ, ऊपर की फिक्र छोड़ दें। सात मजिलों का यह मकान जिस दिन पूरा जान लिया जाता है, उस दिन फिर इसमें सात मजिले नहीं रह जाती। बीच के सब परदे गिर जाते हैं। दीवाल हट जाती है और एक भवन रह जाता है। उस एक का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है। उस एक का अनुभव ही मोक्ष का अनुभव है।





तृतीय खंड

जापान के एक पर्वत-शिखर पर पच्चीस हजार वर्ष पुरानी मूर्तियों का एक समूह है। ये मूर्तियाँ 'दोवु' कहलाती हैं। अब तक उन मूर्तियों को समझना सम्भव नहीं हुआ था, किन्तु जिस दिन हमारे यात्री अतरिक्ष में गए, उन्ही दिन 'दोवु' मूर्तियों का रहस्य खुल गया। अतरिक्ष में यात्रियों ने जिन दम्तुओं का उपयोग किया, वे ही इन मूर्तियों के ऊपर हैं। पत्थर में खुदे हैं। अब मानना ही पड़ता है कि पच्चीस हजार साल पहले आदमी ने अतरिक्ष की यात्रा की थी और अतरिक्ष या किन्हीं ओर ग्रहों से आदमी जमीन पर आता रहा है। आदमी जो जानता है वह पहली बार जान रहा है, ऐसी भूल में पड़ने का कारण नहीं है। आदमी बहुत बार जान लेता है और भूल जाता है। बहुत बार गिरकर छू लिये गए हैं और खो गए हैं।

महावीर एक बहुत बड़ी सस्कृति के अन्तिम व्यक्ति हैं। उन सस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ष है। महावीर जैन-विचार और परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर हैं—चौबीसवें। आज इन नूतनों को समझना इसलिए कठिन है कि वह पूरा-का-पूरा वातावरण जिसमें ये मूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं है। हो सकता है कि तीसरे महायुद्ध के बाद जब सारी सभ्यता बिखर जायगी, लोगों के पास हवाई जहाज में उड़ने की याददास्त भर रह जायगी। हवाई जहाज तो बिखर जायेंगे, याददास्त रह जायगी। यह याददास्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हँसेंगे, कहेंगे कि कहाँ है हवाई जहाज? ऐसा मालूम होता है कि ये कहानियाँ हैं, पौराणिक कथाएँ हैं, मिथ्य हैं।

(३) चौबीस जैन तीर्थंकरों की ऊँचाई, शरीर की ऊँचाई आज बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है। केवल महावीर की ऊँचाई सामान्य आदमी की ऊँचाई है। शेष तेईसो तीर्थंकर बहुत ऊँचे थे। इतनी ऊँचाई हो नहीं सकती। अब तक लोग ऐसा ही सोचते थे। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गई है वैसे-वैसे जमीन का गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया है और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होता है, उसी मात्रा में लोगों की ऊँचाई कम होती जाती है। छिपकिली आज से दस लाख पहले हाथी से बड़ा जानवर थी। वह अकेली बची, उसकी जाति के अन्य सारे जानवर खो गए। अगर जमीन का गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जायगा। अगर आदमी चाँद पर रहने लगे तो उसकी ऊँचाई चौगुनी हो जायगी, क्योंकि चाँद पर चौगुना कम है गुरुत्वाकर्षण।

नमोकार को जैन-परम्परा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस-पाँच ही ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि इसके इर्दगिर्द ही सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।

ये महामंत्र करते क्या है? इनका प्रयोजन क्या है?

आज ध्वनि-विज्ञान बहुत-से नए तथ्यों के करीब पहुँच रहा है। उसमें एक तथ्य

यह है कि इस उगत म पदा की गई कोई भी ध्वनि कभी भी नष्ट नही होती। वह अनन्त आकाश म सगर्भीत होती चली जाती है, आकाश म भी मूँम तल पर घूँझ बन जात ह।

(४) अगर सदभाव आर मंगल-भावना से भरा हुआ कोई आदमी जल की एक मटकी को कुछ देर हाथ म लिये रहे तो उस मटकी का जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है। रूसी वैज्ञानिक कामेनियाव और अमरीकी वैज्ञानिक डॉ० रुडाल्फ किर ने अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि ऐसे जल म रासायनिक परिवर्तन नही होता लेकिन गुणात्मक परिवर्तन अवश्य हो जाता है। अगर उस जल को बीजा पर छिड़का जाय तो व जल्द अकुरित होत ह। उनमें बड़े फल लगत है उनके पीछे ज्यादा स्वस्थ हात है। अगर रुग्ण, विक्षिप्त और 'नेगेटिव इमोशन' से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में रखा गया जल बीजा पर छिड़का जाय तो बीज अकुरित ही नही होते, या अकुरित हाते ह तो रुग्ण अकुरित होते ह। यदि मंगल-अमंगल भावनाओं के कारण जल म यह रूपान्तरण हो सकता है तो हमारे चारा ओर फल हुए आकाश म भी हो सकता है। किमी मंत्र की प्राथमिक आधारशिला यही है। मंगल भावनाओं से भरा हुआ मंत्र हमारे चारा ओर आकाश म गुणात्मक अन्तर पैदा करता रहता है। और उस मंत्र से भरा हुआ व्यक्ति भी जब आपके पास में गुजरता है तब आपमें तत्काल परिवर्तन हो जाता है।

(५) एक दूसरे रूसी वैज्ञानिक किरिलियान ने हाइ प्रिक्वेंसी की फोटोग्राफी विकसित की है। अगर ऐसी फोटोग्राफी से मेरे हाथ का चित्र लिया जाय तो उससे मेरे हाथ का ही चित्र नही आता इससे जा किरणें निकल रही हैं उनका भी चित्र आता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निपेधात्मक विचारा से भरा हूँ तो मेरे हाथ के आसपास जो विद्युत् ऐटमस ह उनका चित्र अस्वस्थ, रुग्ण और अराजक होता है, माना किसी पागल आदमी द्वारा खींची गई लकीरें ह। शुभ भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ के आसपास जो किरणें ह उनका चित्र लयबद्ध, सुंदर और सानुपातिक होता है। किरिलियान का कहना है कि बहुत जल्द ही वह समय आन-वाला है जब किसी के बीमार हान के पहले ही हम यह बताने में समर्थ हो जायेंगे कि वह बीमार होनेवाला है। शरीर पर बीमारी व उतरन के पहले विद्युत् के वतुल पर बीमारी उतर जाती है। इसके पहले कि आदमी मरे, उसके विद्युत् के वतुल का सिकुडना आरम्भ हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे, उस विद्युत् के वतुल म ही हत्या के लक्षण दीख पड़न लगत हैं।

प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास एक आभासमंडल लेकर चलता है। आप अकेल ही नही चलते, आपका आसपास एक विद्युत् वतुल, एक इलेक्ट्रोडायनामिक फील्ड भी चलता है। यह आभासमंडल पशुओं और पक्ष-पौधों के भी आसपास होता है। रूसी



लेकिन अरिहत शब्द नकारात्मक है। इससे उम व्यक्ति का बोध होता है जिनके सभी शत्रु समाप्त हो गए। असल में इस जगत् में जो भी श्रेष्ठतम अवस्था है, उसे निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है। इसका कारण है। सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती। 'नहीं' की कोई सीमा नहीं, 'है' की तो सीमा है। 'नहीं' बहुत विराट् है। इसलिए अरिहत को परम गिखर पर रखा है।

(१०) चूँकि अरिहत बहुत वायवीय और सूक्ष्म शब्द है, इसलिए ठीक दूसरे शब्द में विधायक का उपयोग किया गया है—'नमो सिद्धाणम्'। सिद्ध का अर्थ होता है वह जिसने पा लिया। अरिहत का अर्थ होता है वह जिसने कुछ छोड़ दिया। जिसने खो दिया उसे सिद्ध के ऊपर रखा गया है। क्यों? सिद्ध अरिहत से छोटा नहीं होता: सिद्ध वही पहुँचता है जहाँ अरिहत पहुँचता है। फिर भी, मापा में विधायक का स्थान दूसरा ही होगा। सिद्ध के सम्बन्ध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना है कि पहुँच गए। कुछ और कहा नहीं गया, कोई विगेषण भी नहीं जोड़ा।

तीसरे सूत्र में कहा है—आचार्यों को नमस्कार।

(११) आचार्य उस व्यक्ति को कहते हैं जिनमें केवल पाया ही नहीं, वरन् आचरण से भी प्रकट किया। आचार्य वह व्यक्ति है जिसका आचरण और ज्ञान एक है। ऐसा नहीं कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है, लेकिन शून्य हो सकता है। ऐसा भी नहीं कि अरिहत का आचरण भिन्न होता है। लेकिन अरिहत इतना निराकार हो जाता है कि हो सकता है, उसका आचरण हमारी पकड़ में न आए। आचार्य से शायद निकटता मालूम पड़ती है, ज्ञान और आचरण के अर्थों में। आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन जहाँ से हमारी पकड़ शुरू होती है, वही से खतरा शुरू होता है। खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि वह आचार्य मालूम पड़ने लगे। जहाँ से सीमाएँ बननी शुरू होती हैं वही से हमें दिखाई पड़ता है और जहाँ से हमें दिखाई पड़ता है वही से हमारे अवे होने का डर है।

पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करें जिनका ज्ञान और आचरण अभिन्न है।

(१२) आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है और हम स्थूल बुद्धि के लोग हैं। आचरण को पकड़ पाना आसान नहीं। उदाहरणार्थ—महावीर का नग्न खड़ा हो जाना निश्चित ही लोगों को अच्छा नहीं लगा। गाँव-गाँव से उन्हें खदेड़कर भगाया गया। गाँव-गाँव में महावीर पर पत्थर फेंके गए। महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, उन्होंने कहा कि यह आचरण-हीनता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आचरण को ठीक-ठीक पकड़ पाना मुश्किल है। महावीर का नग्न हो जाना निर्दोष आचरण है जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। उनकी हिम्मत अद्भुत है। वे इतने सरल



हा गए हैं कि छिपान का कुछ नहीं बचा है। ऐसा नहीं कि उन्होंने कपड़े छोड़े हैं। उनके कपड़े गिर गए हैं।

एक दिन राह से गुजरते समय एक झाड़ी में उनकी चादर उलट गई। इसलिए कि चाटी के फूल गिर न जायें, पत्ते टूट न जायें काटा का चाट न लग जाय, उन्होंने आधी चादर फाड़कर वहाँ छोड़ दी। आधी रह गई शरीर पर, फिर भी वह गिर गए। वह कब गिर गई, इसका महावीर को पता न चला। लोग को पता चला कि महावीर गन खड़े हैं। आचरण सहा मुश्किल हो गया। आचरण के रास्ते सुगम हैं, किन्तु आचरण के सम्बन्ध में हमारे बंधे बंधाए गए हैं।

चौथे चरण में उपाध्याय का नमस्कार कहा गया है। उपाध्याय—अर्थात् आचरण ही नहीं, उपदेश भी। उपाध्याय जानता है, जानकर वैसा ही जीता है और जसा वह जीता है और जानता है, वैसा ही बताता भी है।

(१३) ये चार स्पष्ट रेखाएँ हैं। लेकिन इन चार के बाहर भी कुछ जानने वाले छूट सकते हैं क्योंकि जाननेवाला का वर्गीकरण नहीं हो सकता। इसलिए पाँचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है—नमो लोके सर्वसाहूणे। लोक में जो भी साधु है उन सबको नमस्कार। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो बहुत सरल हैं और उपदेश देने में सकाच करें। हो सकता है कि वे आचरण को भी छिपाएँ। पर उनका भी हमारे नमस्कार पहुँचने चाहिए। ऐसी बात नहीं कि हमारे नमस्कार से उनका कुछ फायदा होगा। बात यह है कि हमारा नमस्कार हम स्थावरित करता है। न अरिहता को फायदा होगा न मित्र आचार्या, उपाध्याय और साधुजा को ही। पर आपको फायदा जरूर होगा।

लेकिन हम अदभुत लोग हैं। अगर अरिहत भी सामने खड़ा हो जाय तो हम पहले इस बात का पता लगाएँगे कि वह अरिहत है भी या नहीं? महावीर के बारे में भी लोग यही पता लगाते लगाते जीवन नष्ट करते रहें। वे जाच करने आते कि महावीर अरिहत है या नहीं तीर्थंकर हैं या नहीं। आप जाच भी कर लेंगे और यह मित्र भी हो जायगा कि महावीर भगवान नहीं हैं, तो आपका क्या मिलेगा? असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान हैं या नहीं। असली सवाल यह है कि आपको क्या भगवान दीप्त करने हैं या नहीं—कहाँ भी? पथरा में, पर्वत में? असली राज तो नमन में है चुक जान में है। वह जा चुक जाता है उसके भीतर सबकुछ बदल जाता है। महावीर मित्र है या नहीं, यह वे खुद साचें और समझें। आपके लिए चिन्तित होने का काम भी तो कारण नहीं है।

(१४) ध्यान में रख लें कि सब आपके लिए है। मन्दिर में मूर्ति के चरणों में जब आप सिर रखते हैं तब सवाल यह नहीं होता कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं। सवाल इतना ही होता है कि चरण के समान शुक्लवाता सिर परमात्मा के

समक्ष झुक रहा है या नहीं। चरण तो निमित्त-मात्र हैं। लेकिन झुकने में पीड़ा होती है। अगर महावीर आएँ और आपके चरणों पर सिर रखे तो आपका चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। फिर आप महावीर को पत्थर न मारेगे। मारेगे? लेकिन याद रहे, अगर महावीर आपके चरणों में सिर रख दे तो आपको इससे कोई लाभ न होगा। आपकी अकड़ और गहन हो जायगी।

महावीर ने अपने साधुओं से कहा है कि वे गृहस्थों को नमस्कार न करे। बड़ी अजीब-सी बात है। साधु को तो विनम्र होना चाहिए। लेकिन महावीर अपनी अगाध करुणा के कारण ही ऐसा कहते हैं ताकि गृहस्थ और गैर साधु में नमस्कार पैदा हो—साधु उनको नमस्कार न करे। यदि साधु गृहस्थों को नमस्कार करेगा तो इससे गृहस्थों की अस्मिता और अहंकार को प्रोत्साहन मिलेगा।

नमोकार नमन का सूत्र है। नमन है ग्राहकता। जैसे ही आप नमन करते हैं वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार हो जाते हैं। जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसे आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे, उसे निमंत्रण देंगे। लेकिन अगर भरोसा नहीं है तो नमन असम्भव है और नमन असम्भव है तो समझ असम्भव है।

(१५-१६) माँस्को यूनिवर्सिटी में १९६६ तक एक अद्भुत व्यक्ति था, डॉ० वासिलिएव। उसने एक अनूठा प्रयोग किया है जिसका नाम है कृत्रिम पुनर्जन्म—आर्टिफिशियल री-इनकार्नेशन। ई० जी० नामक यंत्र से पहले वह इस बात का पता लगाता था कि व्यक्ति कितनी गहरी निद्रा में है। जब व्यक्ति अचेतन मन की अतल गहराइयों में उतर आता तब वह उसे सुझाव देना शुरू करता। जिस व्यक्ति पर वह प्रयोग करता उसे—यदि वह व्यक्ति चित्रकार होता तो—बताता कि तुम पिछले जन्म में माइकेल एन्जेलो या वानगाँग थे। यदि वह व्यक्ति कवि होता तो उसे समझाता कि तुम पिछले जन्म में शेक्सपियर थे। तीस दिन में उस व्यक्ति का चित्त उस सुझाव को सचमुच ग्रहण कर लेता। उस साधारण-से चित्रकार में यह भरोसा हो जाता कि मैं माइकेल एन्जेलो हूँ। और जब उसके भीतर भरोसा हो जाता तब तत्काल वह विशेष चित्रकार बन जाता। वासिलिएव कहता है कि अगर हमें भरोसा दिला दिया जाय कि हम बड़े हैं तो हमारे चित्त की खिडकी बड़ी हो जाती है। इसलिए आनेवाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे। सच तो यह है कि वासिलिएवोके अनुसार नब्बे प्रतिशत बच्चे प्रतिभा की क्षमता लेकर ही पैदा होते हैं, पर दुर्भाग्यवश हम उनकी खिडकी छोटी करते जाते हैं। माँ-बाप, स्कूल, शिक्षक—सब मिलकर उन्हें साधारण आदमी बना डालते हैं। कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं, वे जीनियस बन जाते हैं, बाकी नष्ट हो जाते हैं। पर उसका कहना है कि असली सूत्र है ग्राहकता। इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त कि उसे जो कहा जाय वह उसके भीतर प्रवेश कर जाय।

आप यह जानकर हैरान होंगे कि गहन सम्मोहन, निद्रा, ध्यान और श्रद्धा में ई० जी० नामक मशीन एक मा ग्राफ बनाती है। श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी गति की अवस्था में होता है जिस गति की अवस्था में वह गहन ध्यान में होता है। आपको टेलिपथिक जगत में प्रवेश कराने में मन्त्र उद्योगी सिद्ध होता है। अगर आप हृदय से अपने को छोड़ पाएँ और उस गहराई से कह पाएँ जहाँ सब आपकी अचेतना में डूब जाता है—

नमा अरिहताण ।  
नमा सिद्धाण ।  
नमो आयरियाण ।  
नमा उवत्थायाण ।  
नमा लाए सवसाहूण' ।

तब आप अपने अनुभव से कह पाएँगे—एसो पच नमुक्कारो, स वपावप्पणासणो ।'





## द्वितीय अध्याय

### धम्मो लोगुत्तमो

केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।<sup>१</sup>

—पचप्रति० सयारा० सू०

(१) महावीर ने कहा है कि जिसे पाना हो उसे देखना गुरु करना चाहिए, क्योंकि हम उसे ही पा सकते हैं जिसे हम देखने में समर्थ हो जायँ । जिसे हमने देखा नहीं, उसे पाने का भी कोई उपाय नहीं । जिसे खोजना हो, उसकी भावना करनी प्रारम्भ कर लेनी चाहिए, क्योंकि इस जगत् में हमें वही मिलता है, जिसके लिए हम अपने हृदय में जगह बना लेते हैं । यदि स्वयं में अरिहत को निर्मित करना हो, कभी सिद्ध को पाना हो, किसी क्षण स्वयं भी केवली बन जाना हो तो उसे देखने, उसकी भावना करने, उसकी आकाक्षा और अभीप्सा की ओर चरण उठाना जरूरी है ।

(२) जो मगल है, उसकी कामना स्वाभाविक है । हम वही चाहते हैं जो मगल है । अरिहत मगल है, सिद्ध मगल है, साहू मगल है । केवलिपन्नत्तो धम्मो मगलम् । जिन्होंने स्वयं को जाना और पाया, उनके द्वारा निरूपित धर्म मगल है ।

अरिहता मगल ।

सिद्धा मगल ।

साहू मगल ।

केवलिपन्नत्तो धम्मो मगल ।

इनमें सिर्फ मगल का भाव है । जो भी मगल है, उसका भाव गहन हो जाय तो उसकी आकाक्षा शुरू हो जाती है— आकाक्षा को पैदा नहीं करना पड़ता । मगल की धारणा को पैदा करना पड़ता है । आकाक्षा मगल की धारणा के पीछे छाया की भाँति चली आती है । धारणा पतजलि योग के आठ अंगों में कीमती अंग है जहाँ से अन्तर्यात्रा शुरू होती है । धारणा, ध्यान, समाधि । छठा सूत्र है धारणा, सातवाँ ध्यान और आठवाँ समाधि । मगल की यह धारणा पतजलि योग का छठा सूत्र है और महावीर के योगसूत्र का पहला । महावीर का मानना यह है कि धारणा से सब शुरू हो जाता है । धारणा जैसे ही हमारे भीतर गहन होती है, वैसे ही हमारी चेतना रूपान्तरित होती है । न केवल हमारी, वरन् उसकी भी जो हमारे पड़ोस में

१. केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञ-कथित धर्म लोकोत्तम है ।

वै । है । यह जानकर आपका आश्चर्य होगा कि आप अपनी ही धारणाओं से प्रभावित नहीं होने आपके निकट धारणाओं के जो प्रवाह हैं उनसे भी होते हैं । इसलिए महावीर ने कहा है कि अज्ञानी से दूर रहना मंगल है जानी के निकट रहना मंगल है । चेतना जिपकी स्वस्थ है उसके सान्निध्य में रहना मंगल है । जिस वातावरण में धारणाएँ धुम हो उराम रहना हितकर है ।

(३) इस के एक विचारक का नाम है डॉ० सिलोव । उनके यात्रिक आविष्कारों से पता चलता है कि पड़ोसी की धारणाएँ भी हम प्रभावित किए बिना नहीं रहती । उनका कहना है कि जो धारणा एक के मन में पढ़ा हुई, उसके वतुल आसपास फैल जाते हैं और दूसरा को पकड़ लेते हैं । आपको शायद पता नहीं कि आपको जो क्रोध हुआ है वह आपका नहीं है । शायद वह आपके पड़ोसी का है ।

(४) जिस राष्ट्र के हाथ में धारणा का प्रभावित करने के मौलिक सूत्र आ जाएँगे, उस राष्ट्र का अणु की शक्ति से हराया नहीं जा सकता । सच तो यह है कि जिनके हाथ में अणु बम है, उनका भी धारणा में ऐसा प्रभावित किया जा सकता है कि वे उन्हें अपने ऊपर ही फेंक दें । यदि कोई हवाई जहाज बम फेंकने आ रहा हो तो उसके चालक का प्रभावित किया जा सकता है कि वह वापस लौट जाय और अपनी ही राखानी पर बम गिरा दे । इसलिए नामार नामक विचारक का कहना है कि धारणा की शक्ति ही अब युद्ध में आखिरी अस्त्र सिद्ध होने जा रही है । वैज्ञानिक धारणा की शक्ति पर काम करने में जुटे हैं । स्टालिन जैसे लोग की उभरना तो इस शक्ति के बिनाकारी पक्ष को आरंभ थी, पर महावीर जमे लाग इसके निर्माण और सृजनवाले पक्ष में ही दिलचस्पी रखते थे । इसलिए उनकी मंगल की धारणा है । महावीर ने कहा है—भूलकर भी, कभी स्वप्न में भी कोई बुरी धारणा मत करना क्योंकि उसका परिणाम बुरा ही होता है ।

आप राह में गुजर रहे हैं । आपके माँ में खयाल भर आता है कि इस आदमी की हत्या कर दूँ । आपने कुछ किया नहीं, बस खयाल किया या मन में साधा कि इस दुकान से अमुक चीज चुरा लूँ । आपने न हत्या की आरंभ नहीं चोरा लेकिन क्या आप निश्चित हो सकते हैं कि राह में किसी हत्यारे या चोर ने आपका धारणा न पकड़ ली होगी ?

(५) माँ अपने बच्चे के जाने की कामना करती है कहती है कि वह बड़ा हो, जाए । लेकिन किसी क्षण प्रायः में वह यह भी कह देता है कि यह जनम ही भर जाता तो ठीक था । बचारी माँ का पता चला है कि बार दफा उसने गुन का कामना की है बार एक दफा अंगुम का भी । उसकी सभी गुन कामनाएँ इस अंगुम कामना के कारण विगत हो उठी हैं मर गई हैं । उसे जानना चाहिए कि मनुष्य का कोई भी धारणा व्यर्थ नहीं जाती ।

(६) महावीर अपने साधुओं से कहते हैं कि चौबीस घटे मगल की कामना में डूबे रहो—उठते-बैठते, साँस लेते-छोड़ते। स्वभावतः मगल की कामना शिखर से गुरु करनी चाहिए। इसलिए वे कहते हैं कि अरिहत मगल है। जिनके समस्त आन्तरिक रोग समाप्त हो गए, वे मगल हैं। सिद्ध मगल हैं, साधु मगल हैं। जिन्होंने जाना, उन्हें जैन-परम्परा में केवली कहते हैं। जानने की दिशा में वे उस जगह पहुँच जाते हैं जहाँ जाननेवाला भी नहीं रह जाता, जानी जानेवाली वस्तु भी नहीं रह जाती—सिर्फ जानना रह जाता है, केवल ज्ञानमात्र रह जाता है। जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गया और वहाँ पहुँच गया जहाँ ज्ञान-मात्र रह गया है और जहाँ न कोई जाननेवाला वचा, न जानी जानेवाली वस्तु बची, उसे केवली कहते हैं !

जैन-परम्परा कहती है कि जिस चीज का भी स्रोत होता है, वह कभी न कभी चूक जाती है, चूक ही जायगी, कितना भी बड़ा स्रोत क्यों न हो। मूर्य भी चूक जायगा एक दिन।

(७) लेकिन महावीर कहते हैं कि चेतना अनन्त है, यह कभी चूक नहीं सकती। यह स्रोतरहित है। इसमें जो प्रकाश है वह किसी मार्ग से नहीं आता। वह बस, है—‘इट जस्ट इज’। कहीं से आता नहीं, अन्यथा एक दिन वह भी चूक जायगा। सागर भी चम्मचों से उलीचकर सुखाए जा सकते हैं। एक चम्मच थोड़ा तो काम कर ही जाती है। महावीर कहते हैं कि चेतना स्रोतरहित है, इसलिए उन्होंने ईश्वर को मानने से इनकार कर दिया, क्योंकि अगर हम ईश्वर को मानते हैं तो ईश्वर स्रोत हो जाता है और हम सब उसी के स्रोत से जलनेवाले दीए हो जाते हैं जो कभी-न-कभी चूक जाएँगे।

इसमें सन्देह नहीं कि महावीर ने आत्मा को जितनी प्रतिष्ठा दी, उतनी प्रतिष्ठा इस पृथ्वी पर किसी अन्य व्यक्ति ने कभी नहीं दी। उन्होंने इतनी प्रतिष्ठा दी कि यह कहने में सकोच न किया कि परमात्मा अलग नहीं, आत्मा ही परमात्मा है। इसका स्रोत अलग नहीं, यह ज्योति ही स्वयं स्रोत है। भीतर जलनेवाला जो जीवन है, वह कहीं से शक्ति नहीं पाता। वह स्वयं ही शक्तिमान् है। वह न तो किसी के द्वारा निर्मित है और न किसी के द्वारा नष्ट हो सकता है। वह स्वयं में समर्थ और सिद्ध है। जिस दिन ज्ञान उस सीमा पर पहुँचता है, जहाँ हम स्रोतरहित प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, उसी दिन हम मूल को उपलब्ध होते हैं। जैन-परम्परा ऐसे ही व्यक्ति को केवली कहती है। ऐसा व्यक्ति कहीं भी पैदा हो सकता है। वह क्राइस्ट हो सकता है, बुद्ध, कृष्ण या लाओत्से हो सकता है। इसलिए इस सूत्र में यह नहीं कहा गया कि महावीर मगलम् या कृष्ण मगलम्। कहा गया—‘केवलपन्नत्तो धम्मो मगलः।’ जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गए, उनके द्वारा जो प्ररूपित धर्म है, वह मगल है।



यदि मगल की यह धारणा प्राणा की अतल गहराइया में बठ जाय तो अमगल की सम्भावना कम हो जाती है। जो जैसी भावना करता है धीरे धीरे वह वसा ही हो जाता है। जो हम मांगत हैं वह हमें मिल जाता है। लेकिन हम सदा गत मांगत हैं। यही हमारा दुभाग्य है। हम उसी की तरफ आँख उठाकर देखत हैं जो हम हाना चाहते हैं। अगर आप किसी राजनीति के आस-पास भीड़ लगाकर दबठे हा जात हैं तो यह सिर्फ इस बात की सूचना नहीं है कि किसी नेता का पदापण हुआ है। गहन रूप से यह इस बात की सूचना है कि आप वही राज नीतिक पद पर होना चाहत हैं। हम उसी को आदर देत हैं जो हम होना चाहते हैं। अगर आप किसी अमिनेता के पास भीड़ लगाकर खड़े हो जाते हैं तो यह आपकी भीतरी आकांक्षा की खबर देती है। आप भी वही हो जाना चाहत हैं। अगर महावीर ने कहा कि कहो—

अरिहता मगल ।

सिद्धा मगल ।

साह मगल ।

केवलपन्नता धम्मो मगल ।

ता ये इस बात पर बल दे रहे हैं कि तुम यह कह ही तब पाओगे जब तुम अरिहत, सिद्ध और साधु होना चाहोगे। या जब तुम यह कहना शुरू करोगे तब तुम्हारे अरिहत होने की यात्रा गुरु हो जायगी। और घड़ी से बड़ी यात्रा बड़े छोट बंदम में गुरु होती है। धारणा पहला बंदम है।

कभी आपने साक्षात् कि आप क्या हाना चाहत हैं ?

जो आप होना चाहत हैं वह सचेतन में न सही, पर अचेतन में तो अवश्य ही घूमता रहता है। उसी के प्रति आपके मन में आदर पैदा होता है जो आप होना चाहत हैं। तो आप होना चाहत हैं, उसी के सम्यक् मन आपके मन में चित्ता के घतुल बनते हैं। वही आपके स्वप्ना में उतर आता है, आपका सौसा में समा जाता है।

( ८ ) मगल भावना और खून के कणों में अयायाश्रय सम्बन्ध है। मेडिकल साइंस कहती है कि आपके स्वास्थ्य की रक्षा का मूल आधार रक्त में सफेद कणों की अधिकता है। मगल भावना से भर व्यक्ति के पास बढने पर इन सफेद कणों में १५०० सफेद कण ताल बढ जात हैं। जो व्यक्ति आपके प्रति दुर्भाव रखता है उसके पास मात्र १६०० कम हो जाते हैं।

( ९ ) अमरीकी वनानिक बैकमटर ने सिद्ध किया है कि पीछे अपना मित्र का पहचानत हैं और अपना शत्रु का भी। वे अपने मालिक का पहचानत हैं और अपना माली का भी। अगर मालिक मर जाता है तब उनकी प्राणधारा क्षीण हो



जाती है और वे बीमार हो जाते हैं। वेक्सटर ने यह भी सिद्ध किया है कि पीवों में स्मरण-शक्ति होती है। जब आप अपने गुलाब के पीवों के पास जाकर प्रेम से खड़े हो जाते हैं तब वह कल फिर उसी समय आपकी प्रतीक्षा करता है। वेक्सटर का यह भी कहना है कि जिन पीवों के प्रति हममें प्रेम का भाव होता है वे हमारी ओर बड़ी पॉजिटिव भावनाएँ छोड़ते हैं। उसने अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन को सुझाव दिया है कि शीघ्र ही हम मरीजों को खास-खास तरह के पीवों के पास ले जाकर स्वस्थ करने में समर्थ हो सकेंगे। पीवों के पास अपना हृदय है। माना कि वे अशिक्षित हैं, लेकिन उनके पास हृदय है। आदमी बहुत शिक्षित होता चला जाता है, लेकिन हृदय खोता चला जाता है।

(१०) धर्म शब्द का जैन-परम्परा में वह अर्थ नहीं है जो अंग्रेजी के 'रिलीजन' का है या उर्दू के 'मजहब' का। मत, पथ या क्रीड को मजहब कहते हैं और जोड़ने को 'रिलीजन'। अर्थात् अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द का अर्थ करीब-करीब वही है जो योग का है। वह जिस सूत्र से बना है वह है 'रिलिगेयर' जिसका अर्थ होता है जोड़ना—आदमी को परमात्मा से जोड़ना। लेकिन जैन-चिन्तन परमात्मा के लिए जगह ही नहीं रखता। इसलिए आप यह जानकर हैरान होंगे कि जैन योग का अर्थ अच्छा नहीं मानते। वे कहते हैं कि केवली अयोगी होता है, योगी नहीं। महावीर को कुछ भूल से भरे लोग अपनी नासमझी में महायोगी कहते हैं। महावीर कहते हैं कि धर्म का लक्ष्य जोड़ना नहीं है किसी से, जो गलत है उससे टूटना है, अलग होना है—अयोग, ससार से अयोग। योग बल देता है परमात्मा से मिलन पर, स्वरूप की उपलब्धि पर। किन्तु महावीर कहते हैं कि स्वरूप तो उपलब्ध ही है, जो हमें पाना है, वह हमें मिला ही हुआ है। सिर्फ हम गलत चीजों से चिपके खड़े हैं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। जरूरत है कि गलत को छोड़ दे, अयुक्त हो जायें। इसलिए जैन-परम्परा में अयोग का वही मूल्य है जो हिन्दू परम्परा में योग का है। महावीर कहते हैं कि वस्तु का जो स्वभाव है, 'नेचर' है, वही धर्म है। महावीर की दृष्टि में धर्म का वही अर्थ है जो लाओत्से के 'ताओ' का है।

(११) वस्तु का जो स्वभाव है, जो उसकी स्वयं की परिणति है, वही धर्म है। अगर कोई व्यक्ति किसी से प्रभावित हुए बिना सहज आचरण कर पाए तो वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए प्रभाव को महावीर अच्छी बात नहीं मानते। किसी से भी प्रभावित होना बंधना है। पूर्णतया अप्रभावित हो जाना ही स्वयं हो जाना है। इस निजता को—स्वयं होने को—महावीर धर्म कहते हैं। जब कोई व्यक्ति केवल ज्ञान-मात्र या चेतना-मात्र रह जाता है, तब वह जैसे जीता है, वही धर्म है।

महावीर कहते हैं कि जब कोई धुआँ नहीं है तब अग्नि अपने धर्म में है, जब

चेतना बिल्कुल शुद्ध होती है और पदार्थ का कोई प्रभाव नहा होता और न शरीर का पता होता है, तब चेतना अपने धर्म में हाती है। महावीर कहते हैं कि प्रत्येक का अपना धर्म होता है। अग्नि का अपना है जल का अपना है, पदार्थ का अपना है। अपने धर्म में शुद्ध हो जाना आनन्द है, अशुद्ध रहना दुःख है। अपने स्वभाव में चले जाना धार्मिक हो जाना है। वे कहते हैं—

अरिहता लोगुत्तमा ।

सिद्धा लोगुत्तमा ।

साधू लोगुत्तमा ।

केवलपिपनत्ता धम्मा लोगुत्तमो ।

अरिहत उत्तम है लोक में, सिद्ध उत्तम है लोक में, साधु उत्तम है लोक में, केवली-प्ररूपित धर्म उत्तम है लोक में। लेकिन मगल कह दन के बाद उत्तम कहने की क्या जरूरत है ? कारण है हमारे भीतर। हम दस्तन नासमझ हैं कि जो उत्तम नहा है, उसे भी हम मगलरूप मान सकते हैं। हमारी वासनाएँ ऐसी हैं कि जो याग में निवृष्ट है वे उसी की ओर बहती हैं।

रामकृष्ण कहा करते थे कि चील आकाश में भा उठे तो यह मत समझना कि उसका ध्यान आकाश में है। हमारी वासनाएँ चील की तरह नीचे दगती हैं। उनका ध्यान कचरा पर या घर में पड़े भास पर रगा होता है।

महावीर के उत्तम शब्द का अर्थ स्पष्ट है। अरिहत उत्तम हैं। वे जीवा क निखर हैं, श्रेष्ठ हैं पाने और चाहने योग्य हैं।

(१२) जब महावीर कहते हैं 'अरिहता लोगुत्तमा', तब लोग इसे समझ गहा पात। उन्हें क्या पता कि अरिहत कौन हैं सिद्ध और साधु कौन हैं ? वे मजबूरी में इन्हें मान लेते हैं यद्यपि अपना भीतर उहान वैसे काइ अनुमूति नहा जानी जसी अरिहतो, सिद्धा और साधुआ का उपलब्ध हाता है। अपनी मजबूरी को ही वे धर्म की सजा देते रहे हैं। जन धर्म में पटा हो जाना उका मजबूरी है इसमें उनका काइ दुःख गही है। पयुपण भी उनकी मजबूरी है उनका मंदिर जाना उपवास करना वन करना—सब मजबूरी है। उनमें कही काइ स्फुरण, कोइ सहज भाव नहीं होता। वे मंदिर की ओर अपना परा का धसिटे जाते हैं। मंदिर जाना, माना एक मजबूरी है काम है। प्रफुल्लता नहा हाती उनके चरणों में। वमा नृत्य भी नहीं होता जैसा सिनेमागृह जाने में होता है।

(१३) हा सरता है नमीतार आपने आम-आम पढ़ा जा रहा हा जेकिन आपके भीतर उका कोइ प्रवेग नहीं हो पाना। जिहोने उनके प्रवेग की तयारा गहा की, वे आर साचन हा कि क्षण में उका प्रवेग भी जापगा ता वे मृत् में हैं हनाग

लोक में उत्तम है', वह भले ही इसे यो ही दुहराता रहा हो, फिर भी उसे निराश होना नहीं पड़ता। यदि वह तोते की नाई इसे रटता भी है तो उसके चित्त पर निशान बनते हैं, ग्रन्थ निर्मित होते हैं जो किसी भी प्रकाश के क्षण में सक्रिय हो सकते हैं। जिसने निरन्तर कहा है कि अरिहत लोक में उत्तम है, उसने अपने भीतर एक धारा प्रवाहित की है। जब वह अरिहत होने के विपरीत जाने लगेगा तब उसके भीतर कोई उससे कहेगा कि तुम जो कर रहे हो वह उत्तम नहीं है, लोक में श्रेष्ठ नहीं है। सिर्फ पुनरुक्ति भी हमारे चित्त में रेखाएँ छोड़ जाती है, ऐसी रेखाएँ जो किसी भी क्षण सक्रिय हो सकती हैं। जानकर, समझकर कहा गया लाभप्रद तो होता ही है, न समझकर कहा हुआ सूत्र भी लाभदायी होता है।

( १४ ) महावीर ने जिस परम्परा-धारा का उपयोग किया है उसमें श्रेष्ठतम स्थान मनुष्य की शुद्ध आत्मा को मिला है। उन्होंने मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा को परमात्मा माना है। इसलिए उनके हिसाब से इस जगत् में जितने लोग हैं, उतने भगवान् हो सकते हैं, जितनी चेतनाएँ हैं, वे सभी भगवान् हो सकती हैं। दुनिया के सारे धर्मों में भगवान् की जो धारणा है वह ऐरिस्टोक्रैटिक है—वह सिर्फ एक सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् भगवान् की धारणा है। महावीर की धारणा डेमोक्रेटिक है—प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से भगवान् है। वह जाने-न जाने, पाये-न पाये, फिर भी वह भगवान् है। और किसी-न-किसी दिन वह, जो उसमें छिपा है, प्रकट होकर रहेगा, सम्भावना सत्य बनकर रहेगी। अतः कहने की जरूरत नहीं है कि महावीर अनन्त भगवत्ताओं को मानते हैं। जिस दिन सारा जगत् अरिहत तक पहुँच जाय, उस दिन जगत् में अनन्त भगवान् होंगे। महावीर का मतलब भगवान् से है—उससे है जिसने अपने स्वभाव को पा लिया। स्वभाव भगवान् है।

भगवान् की यह धारणा अनूठी है। महावीर के अनुसार न कोई जगत् को बनानेवाला है और न जगत् को चलानेवाला। वे कहते हैं कि कोई बनानेवाला नहीं है—बनाने की धारणा ही वचकानी है। वचकानी इसलिए है कि इसमें कुछ हल नहीं होता। हम कहते हैं कि जगत् को भगवान् ने बनाया। फिर सवाल खड़ा हो जाता है कि भगवान् को किसने बनाया? हम जवाब देते हैं कि भगवान् ने जगत् को बनाया, लेकिन भगवान् को किसी ने नहीं बनाया। महावीर कहते हैं कि जब यह मानना ही पड़ता है कि भगवान् को किसी ने नहीं बनाया तो फिर सारे जगत् को ही अनवना—अनक्रिएटेड—मानने में कौन-सी अड़चन है? अड़चन एकही थी मन को कि बिना बनाए कोई चीज कैसे बनेगी? फिर नास्तिक के पास जो उत्तर है वह तथ्याकथित ईश्वरवादी के पास नहीं है। नास्तिक पूछता है कि तुम्हारे भगवान् ने सृष्टि क्यों की? ईश्वरवादी के लिए यह बड़ा कठिन प्रश्न है। उसे मानना पड़ता है कि ईश्वर में जगत् को बनाने की वासना उठी। जब भगवान् तक में वासना



उठती है चाह है, तब आदमी का वासना जोर चाह से मुक्त कस किया जा सकता है ?

इश्वरवादी निवृत्त म रहता है। उसने स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर म वामना और चाह है। और तब अनक अनगर बातें उस स्वीकार करनी पडती हैं। उस मानना पडता है कि ब्रह्मा न स्या को जन्म दिया और वह उसका पिता हो गया। फिर उसने अपनी बेटी को चाहा आर सम्भोग के लिए आतुर हो गया। परिणाम स्वरूप वह अपनी बेटी के पीछे भागन लगा। बेटी अपने पिता से बचने के लिए गाय बन गई। वह बल हा गया। तब बेटी उससे बचन के लिए कुछ और हा गई तो वह भी कुछ जोर हा गया। बेटी जो जा हाता चली गई, वह उसी-उसी जाति का हाता चला गया। अगर ब्रह्मा भी चाह म ऐसा भाग रहा होता तो आपका सिनेमा घरा म जाना विलकुल ब्रह्मस्वरूप है, आप विलकुल ठीक चये जा रह ह। स्त्री फिल्म अभिनत्री हो गई तो आप फिल्म-दशक हा गए। फिर सारा जगत वासना का फैलाव हा गया।

महावीर ने इस धारणा का जड से काट दिया। उन्होंने कहा कि अगर लोग का भगवान् बनाना है तो भगवान को इस धारणा का अलग करो। उन्होंने कहा कि अगर पहले भगवान् म भी चाह रख दाग तो फिर आदमी की चाह का गाय करने का कारण क्या बचेगा ? जगत अनिमित्त है अनबना है। किसी ने बनाया नहा है इस। विज्ञान के लिए भी यही तकयुक्त मालूम पडता है, क्याकि जगत म काइ चीज बनायी नही मालूम पडती और न काई चीज नष्ट होती मालूम पडती है—सिफ रूपांतरित हाता मालूम पडती है। इसलिए महावीर ने पन्था की जा परिमापा को है वह इस जगत् की सर्वाधिक ब्रह्मानिक परिमापा है। उन्होंने 'मटर' के लिए एक अद्भुत शब्द का प्रयोग किया है —'पुद्गल'। एसा शब्द जगत की रिसा भी भापा म नहीं है। 'पुद्गल' का अर्थ है—जो बनता और मिटता रहता है आर फिर भा है। जा प्रतिपल बन रहा है मिट रहा है और है नयी की नाई। तदी भागी जा रही है, चली जा रही है, फिर नी है। 'पुद्गल' का अर्थ है 'बियमिंग', वह जा प्रतिपल जन्म ल रहा है और प्रतिपल मर रहा है, फिर भी कभी न ता निमित्त हाता है और न समाप्त हाता है। चल्ता रहता है, गत्यात्मक है।

( १५ ) मत्तधार १ कहा कि यह जगत् पुद्गल है। इसम सभी चीजें सदा मे हैं, ब बन रही हैं मिट रही हैं, न काई चीज कभी समाप्त हाती है और न निमित्त होती है। इसलिए विमाना का प्रश्न नही उठता और न परमात्मा म वासना की कल्पना ही तकयुक्त है।

कहते हैं। महावीर का अन्तिम अंतिम मज्जि है। व्यक्ति भगवान् तब होता है जब वह वहाँ पहुँच जाता है जिससे आगे और कोई यात्रा नहीं है। दूसरे धर्मों का भगवान् आरम्भ है, वहाँ है जहाँ दुनिया शुरू होती है। महावीर का भगवान् वहाँ है जहाँ दुनिया समाप्त होती है। सब कहते हैं कि दुनिया को बनानेवाला भगवान् है; महावीर कहते हैं कि दुनिया को पार कर जानेवाला भगवान् है। दुनिया का भगवान् बीज की तरह है, महावीर का भगवान् फूल की तरह।

महावीर यह नहीं कहते कि शान्ध मे लिखा हुआ धर्म लोकोत्तम है। वेदों को माननेवाला कहता है कि उनमें प्ररूपित धर्म ही लोक में उत्तम है। वाइविल और कुरान को माननेवाले लोग वाइविल तथा कुरान में प्ररूपित धर्म को ही लोकोत्तम मानते हैं। लेकिन महावीर कहते हैं—केवलप्रपन्नतो धम्मो लोकोत्तमो। नहीं, शान्ध मे कहा हुआ धर्म लोकोत्तम नहीं है। केवल ज्ञान के क्षण में जो करता है वही श्रेष्ठ है, जीवन्त है। महावीर ने कभी नहीं कहा कि शास्त्रों में प्ररूपित धर्म लोकोत्तम है। ऐसा भी नहीं कहा कि मेरे शान्ध में कहा हुआ धर्म श्रेष्ठ है। उन्होंने खुद कोई शास्त्र निर्मित नहीं किया। केवलप्ररूपित जो धर्म है वह शास्त्र में लिख लिया गया है। इसलिए जैन उस शास्त्र को सिर पर वैसे ही टाँये चलाते हैं जैसे कोई कुरान या गीता को ढोता है। यह महावीर के प्रति ज्यादाती है। उन्होंने कभी कोई शास्त्र निर्मित नहीं किया, कभी कुछ नहीं लिखवाया। उनके मरने के सैकड़ों वर्ष बाद उनके वचन लिखे गए। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि महावीर बराबर मौन रहे। अतः उनकी जो वाणी है वह कही हुई नहीं है, सुनी हुई है। महावीर का जो धर्म-प्ररूपण है वह मौन सम्प्रेषण है, टेलिपथिक ट्रांसमिशन है। बात पुराण-जैसी जरूर लगती है, लेकिन उसे वैज्ञानिक आधार मिलते चले जा रहे हैं। महावीर जब बोलते थे तब वे बोलते नहीं थे, बैठते थे। न तो वे होठ का उपयोग करते थे और न कंठ का। उनके अन्तर-आकाश में ध्वनि जरूर गुंजती थी।

( १६ ) मैं कहता हूँ कि महावीर बोले नहीं, सुने गए। वे मौन बैठे और पास बैठे लोगो ने उन्हें सुना। जो जिस भाषा में उन्हें समझ सकता था, उसने उस भाषा में ही सुना और समझा। वहाँ पशु भी इकट्ठे थे और पौधे भी खड़े थे। कथा कहती है कि उन्होंने भी सुना। वेक्सटर भी तो कहता है कि पौधों के भाव होते हैं और वे समझते हैं आपकी भावनाएँ। पौधों को प्रेम करनेवाला व्यक्ति जब दुखी होता है तब वे भी दुखी होते हैं और जब उसके घर में उत्सव मनाया जाता है तब वे प्रफुल्लित होते हैं। जब घर में कोई मर जाता है तब वे मातम मनाते हैं, जब उनका प्रेमी उनके पास खड़ा होता है तब उनमें आनन्द की धाराएँ बहती हैं। अचेतन पर जो वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि अपने अचेतन में हम कोई भी भाषा समझ सकते हैं। यदि आपको गहन रूप से सम्मोहित किया जाय,

इतना बेहाग किया जाय कि आपका अपना कोई पता न रह जाय तो आपसे किसी भी माया में बात की जा सकती है और आप उस समय लेंगे ।

(१७) चैतन्य वैज्ञानिक डॉ० राज डेक का कहना है कि हम महासागर में निकले हुए छोटे छोट द्वीपों की भांति हैं । ऊपर से अलग-अलग, किंतु जमीन पर अपनी अलग गहराइयाँ में परस्पर जुड़े हुए । ऊपर हमारी मायाएँ पृथक् पृथक् हैं । लेकिन हमारे अचेतनकी माया एक है । गहरे उतर जायें तो पशुओं और मनुष्यों की भी मायाएँ एक हैं । अचेतन की गहराइयाँ में हम पौधा में भी जुड़े हुए हैं और हमारा अचेतन मनुष्यों की ही माया नहीं समझता, पशु-पक्षियों और पौधों की वाली भी मुनता समझता है । जब आनवाले बीम बर्षों में विज्ञान बताएगा कि महावीर ने निःशब्द विचार-संचरण का जो प्रयोग किया था वह पुराण-कथा मात्र नहीं है । इस पर काम तर्जों से चल रहा है और स्पष्ट हाँती जा रही है बहुत-सी अँधेरी गलियाँ जो पहले साफ़ नहीं थी । इसका अर्थ यह भी हुआ कि अगर हम किसी व्यक्ति को दूसरी माया मिलानी हो तो उसके चेतन का नहीं, प्रत्युत अचेतन का सहारा उपयुक्त होगा । राज डेक कहता है कि चेतन रूप से मिथ्यात्व में आप धर्म का दुरुपयोग करते हैं व्यर्थ की परगानियाँ माल लेते हैं । वह ठीक कहता है कि चेतन रूप से जो माया आप दास्य में सीखेंगे, उसे ही वलारिया के डा० लॉरेजो आपका सम्मोहित हालत में बीस दिन में सिखा सकते हैं । उनका कहना है कि जब कोई व्यक्ति सचेतन रूप में सुनता है तब उसका ऊपरी मन सुनता है इसलिए वे कहते हैं कि ऊपरी मन का तो लगा दासगीत सुनने में और भीतरी मन के द्वार से सुना वह जो सुनना चाहिए । इस तरह दो साल का कोस बीस दिन में ही पूरा किया जा सकता है ।

बात क्या है ? बात कुल इतनी ही है कि नीचे गहरे में हमारी बहुत सारी क्षमताएँ छिपी पड़ी हैं । आप अपने घर में यहाँ तक आ गए । अगर आप पैदल चल कर आए हों, तो क्या आप बता सकते हैं कि रास्ते में कितने घर और खम्भे मिले ? आप कहेंगे क्या मैं कोई पागल हूँ जो इसकी गिनती करता ? लेकिन आपका बेहाग करके पूछा जाय तो आप इनकी संख्या बता सकते हैं । जब आप आ रहे थे इधर तब आपका ऊपरी मन आन में लगा था और नाचे का मन सब-कुछ अक्षित करता जा रहा था । पानी के ऊपर निकला हुआ जो द्राप है, उसे इसका कुछ भाग पता नहीं है लेकिन नीचे जो जुड़ी हुई भूमि का विस्तार है उसका पता है ।

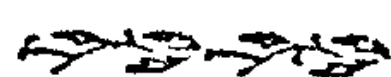
(१८) चूँकि महावीर वाले नहीं, इसलिए उनका धर्म बहुत व्यापक नहीं हो पाया, बहुत योगों तक नहीं पहुँच पाया । यदि वे बाल्य में ही सचका समझ में आता । उनके न बाल्य के कारण केवल वे ही समय पाए जा उन गहरे जान को तयार थे । इसलिए महावीर के वक्त जो श्रेष्ठतम लाभ थे केवल वे ही उनका सुन पाए— वे श्रेष्ठतम लाभ चाह पौधा में ही या पशु-पक्षियों में, या मनुष्यों में । महावीर का



मुनने के पहले प्रणिधान से, ध्यान की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता था, ताकि आपका वाचाल मन शान्त हो जाय और आपकी गहन आत्मा महावीर के सामने आ जाय । संवाद हो सके उस आत्मा से । इसलिए महावीर की वाणी को पाँच सौ वर्ष तक फिर लिखा नहीं गया । तब तक लिखा नहीं गया, जब तक ऐसे लोग मौजूद थे जो महावीर के शरीर के गिर जाने ने बाद भी महावीर के सन्देश लेने में समर्थ थे । जब ऐसे लोग भी समाप्त होने लगे तब पचराहट फैली और तब महावीर-वाणी को सगृहीत करने की कोशिश की गई । इसलिए जैनो का एक वर्ग—दिगम्बर—महावीर की किसी भी वाणी को विश्वसनीय नहीं मानता । उनका कहना है कि चूंकि वह उन लोगों के द्वारा सगृहीत हुई है जो दुविधा में पड़ गए थे, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं कही जा सकती । श्वेताम्बरों के पास भी जो शास्त्र हैं, वे भी पूर्ण नहीं हैं ।

लेकिन महावीर की पूरी वाणी को कभी भी पुनः पाया जा सकता है । उसके पाने का ढंग यह नहीं है कि महावीर के ऊपर लिखी गई किताबों में उसे खोजा जाय । उसके पाने का बस एक ही रास्ता है । ऐसा ग्रुप, ऐसा स्कूल कायम किया जाय जिसमें थोड़े-से लोग, जो चेतना को गहराई तक ले जा सकें, महावीर से आज भी सम्बन्ध स्थापित कर सकें । महावीर ने कहा है कि वही धर्म उत्तम है जो तुम केवली से सम्बन्धित होकर जान सको, बीच में शास्त्र से सम्बन्धित होकर नही । केवली से कभी भी सम्बन्धित हुआ जा सकता है । शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं, किन्तु केवली से सम्बन्धित होना हो तो बड़ी गहरी कीमत चुकानी पड़ती है । स्वयं के भीतर बहुत-कुछ रूपान्तरित करना पड़ता है । महावीर कहते थे, विना कीमत चुकाए कुछ भी नहीं मिलता और जितनी बड़ी चीज पानी हो, उतनी ही बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है ।

इसलिए जब वे बार-बार कहते हैं कि अरिहत्त उत्तम है, सिद्ध उत्तम है, साधु उत्तम है, केवली-प्ररूपित धर्म उत्तम है, तब वे यह कह रहे हैं कि इतने उत्तम को पाने के लिए सब-कुछ निछावर करने की तैयारी रखना, सब-कुछ खोना पड़ेगा, स्वयं को भी । जब भी कोई स्वयं को खोने को तैयार होता है तब वह केवली-प्ररूपित धर्म से सीधे सयुक्त हो जाता है । वही धर्म जो जाननेवाले से सीधे मिलता हो अथवा विना मध्यस्थ के प्राप्त होता हो, श्रेष्ठ है ।





## तृतीय अध्याय

### शरण की स्वीकृति

वेवल्लिपन्नत्त धम्म शरण पवज्जामि ।<sup>१</sup>

—प्रचप्रति० सधारा० सू०

(१) कृष्ण न गोता में कहा है—

सबधर्मापरित्यज्य मामेक शरणं ब्रज । (१८ ६६) "हे अजुन ! तू सभी धर्मों का छोड़कर एक मरी ही शरण में आ ।" कृष्ण जिस युग में बोल रहे थे वह युग अत्यंत सरल एवं मृदुल श्रद्धा का युग था । किसी का ऐसा न लगा कि कृष्ण अहंकार की बात कह रहे हैं कि तू सब छोड़कर मरी ही शरण में आ । वस्तुतः इससे ज्यादा अहंकारग्रस्त घोषणा दूसरी नहीं हो सकती । लेकिन बुद्ध और महावीर तब आतमान आदमी को चित्त-दशा में बहुत परेशान होता है । इसलिए जहाँ हिंदू चित्त में माम एवम् शरणम् ब्रज का वाक्य भागकर पड़ा है वहाँ बुद्ध और महावीर को अपनी दृष्टि में आमूल परिवर्तन करना पड़ा । महावीर न नहीं कहा कि तुम सब छोड़कर मरी शरण में आ जाओ । बुद्ध ने भी ऐसी बात नहीं कही । जो महावीर और बुद्ध का सूत्र है वह माघक की ओर से है गिद्ध की ओर से नहीं । अरिहत, सिद्ध और ब्रह्मचारी प्रवर्तित धर्म को स्वीकार करता है—यह दूसरा छार है शरणागत का । दो ही छार ही माने हैं । चाहता गिद्ध कह कि मरी शरण में आओ या माघक कह कि मैं आपकी शरण में आता हूँ ।

(२) हिंदू और जो विचार में यही मौलिक भेद है । हिंदू विचार में सिद्ध कहा है आओ मरी शरण में, जो विचार में माघक कहता है कि मैं आपकी शरण में आता हूँ । इसमें पता चलता है कि जहाँ कृष्ण का युग श्रद्धा का युग था वहाँ महावीर का युग श्रद्धा का युग था । यदि महावीर कहता कि मरी शरण में आ जाओ या आओ या शरण लो तो वे बड़े अहंकारी हैं ।

बुद्ध का परमार्थ में जो ज्ञान ही सूत्र है—बुद्धम् शरणम् गच्छामि सपम् शरणम् गच्छामि सपम् शरणम् गच्छामि । फिर जो महावीर और बुद्ध का सूत्र में जो जोड़ा पड़ा है—मम शरणम् गच्छामि । यह भ्रम श्रद्धा और परमार्थ का भेद है । यद्यपि वे दोनों एक ही मातृभूत पदार्थ हैं । जब कोई कहता है—बुद्धम् शरणम्

१. धर्माः प्रवर्तित (सर्वान् धर्मान्-वर्तित) धर्म को शरण स्वीकार करता है ।

गच्छामि, तब वह पहला कदम उठाता है। जब कोई कहता है—अग्निहोत्रे गरणम् पवज्जामि, तब वह शरण जाने की अन्तिम स्थिति में है, वह अन्तिम कदम उठाता है। जब कोई कहता है कि गरण में आता हूँ, तब वह बीच में लौट भी सकता है। यह भी हो सकता है कि यह उनकी यात्रा का प्रारम्भ हो, यात्रा पूरी न हो या उनके बीच में व्यवधान हो जाय—यात्रा के मध्य में ही कोई तर्क द्वारा समझाकर वापस लौटा दे, कारण कि तर्क गरण में जाने का नितान्त विरोधी है।

(३) महावीर का नूत्र है—अग्निहोत्र को गरण स्वीकार करता हूँ। उनसे लौटना नहीं हो सकता। यह 'प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न' है। यदि 'शरण में जाता हूँ' वहाँ तो इसमें अभी काल का व्यवधान होगा, समय लगेगा गरण तक पहुँचने-पहुँचते। आज जो कहता है कि गरण में जाता हूँ, वह हो सकता है कि कितने जन्मों के बाद गरण में पहुँचे। अपनी-अपनी गति और अपनी-अपनी मति पर निर्भर होगा यह। लेकिन 'स्वीकार करता हूँ' की सूची यह है कि यह 'मडेन जम्प' है, नम्र छलांग है। 'स्वीकार करता हूँ'—अर्थात् स्वयं को तत्काल अस्वीकार करता हूँ क्योंकि गरण स्वीकार करता हूँ। अगर आप अपने को स्वीकार करते हैं तो शरण को स्वीकार नहीं कर सकेंगे। शरण की स्वीकृति अहंकार की हत्या है। चेतना में धर्म का विकास अहंकार के विसर्जन से शुरू होता है।

कृष्ण के युग में सत्य को उपलब्ध कर लेना जितना आसान था उतना महावीर के युग में नहीं। हमारे युग में सत्य को उपलब्ध कर लेना अत्यधिक कठिन है। आज न तो सिद्ध कह सकता है कि मेरी शरण में आ और न साधक कह सकता है कि मैं आपकी शरण में आता हूँ। महावीर चुप रह गए। आज अगर साधक किसी सिद्ध की शरण जाए और सिद्ध मौन रहे तो साधक समझेगा कि अच्छा है, मौन सम्मति का लक्षण है। मतलब कि साधक की दृष्टि में सिद्ध अहंकारी है। आश्चर्य नहीं कि कुछ दिनों बाद साधक से सिद्ध को ही कहना पड़े कि मैं आपकी शरण में आता हूँ, मुझे स्वीकार कीजिए। गायद साधक तभी यह मानने को तैयार होगा कि यह आदमी ठीक है।

शरण की स्वीकृति का मूल्य क्या है, इसे हम दो-तीन दिशाओं से समझने की कोशिश करें।

(४) पहले तो शरीर के समर्पण को ही समझने की कोशिश करें। भारतीय योग में श्वासन का प्रयोग शरीर के पूर्ण समर्पण का प्रयोग है। श्वासन का अर्थ है पूर्ण समर्पित शरीर की दशा, जब आदमी ने अपने शरीर को विलकुल छोड़ दिया हो, जब उसने अपने शरीर को पूरी तरह 'रिलैक्स' कर दिया हो। यह बहुत ही अद्भुत वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ प्रयोग है। बल्गेरियन डॉक्टर लोज़ानोव का कहना है कि जब हम पृथ्वी के साथ समानान्तर लेट जाते हैं तब जगत् की शक्ति हममें सहज ही प्रवेश कर जाती है। जब हम खड़े होते हैं तब शरीर ही खड़ा नहीं होता, भीतर

यहवार भी उसका साथ गड़ा हा जाता है। जब हम लेट जाते हैं तब हमारा अहवार भा लट जाता है। हमारा टिफेस के तत्त्व गिर जाते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई है उसका सहे होना से। यह सच है। सभी पशु पक्षी के समानांतर जाते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का पर पर खड़ा हो जाना ही उसकी तयावधित बुद्धि का विकास है। लेकिन साथ ही जीवन के अन्तरतम से जाग-निक शक्तियां से, उसका तब गहरा मन्व-य निविन और धीन हा गए हैं। उस लेट-कर वह सम्य-य पुन स्थापित करना पड़ता है। इसलिए अगर मंदिरों में मूर्तियों के सामने, गिराधरा में, मस्जिदों में लोग झुककर जमीन पर लेट जाते हैं तो उनका वैज्ञानिक कारण है। लेटने पर हमारा टिफेस टूट जाता है हमारी अकड़ छूट जाता है। तब या तो समपन कर देता है तब वह अपने का सच भांति छोड़ देता है एम ही तब बोध तदी की धार में अपना को छोड़ दे और धार बहान लग तर रहा बहन दे। तो धरणागति बहाव है फलाना करना है और जम ही काई बहता है कम ही नित्त के समान तनाव छूट जाते हैं।

(५) धरणागति आन्तरिक आहृति का यद्गन का यद्गन है। जब आप गढ़े होते हैं तो आपने भीतर की आहृति काय किम्म का होता है और जब आप पक्षी पर लट जाते हैं तब वह कुछ और होती है। नित्त की भी विशेष आहृतियां हानी हैं। अगर का पक्षिपूण भाव में का तब कि मैं अरिहन्त की गण आता हूँ गिद्ध की गरण आता हूँ कम की गरण आता हूँ तो यह भाव उमरी आन्तरिक आहृति को बल देता है और आन्तरिक आहृति के बल ही उमरे जावन में गन्तारण भुग हाता है। आपका जन्म में आपका भाता भी रूप देता है। आप जिस तरह से भाव करता है, आपका भाता उसी तरह का रूप प्रकट करती है।

(६) विविधो दोन्नाय तामक एर येक विगत जमीन में पार पूर ऊपर उठ जाता है और ग्रा मिट तक जानन से पार पूर उतर मुन्नावरण के पार ग्रा उठ जाता है। वैज्ञानिकों द्वारा की गई जांच-पड़ताल से ज्ञात है कि यह बाद घाता जाता है। विविधो का कहना है कि इन उठा का रहस्य उनका समान भाव में है। कि परमाणु में क्या है कि मैं तर हाथ : अन्त का नीरता हूँ तरा धरण अन्ता हूँ। कि तानी गावन त उतर तही उन्ता, उन्ता तावन में उतर आता हूँ। जब तक कि उन्ता नै, मरा अन्ता रन्ता है तब तक मैं उतर नहा उठ पाता।

गन्तागति का अर्थ हा पूरा समान है।

क्या परमाणु पर गन्तागति उठ हा तब जीवा के गन्तागति नित्त में उन्ता क्या करता उन्ता उठ है? उन्ता अन्ता कन्ता उठा देता है? अगर उन्ता अन्ता कन्ता उठा उन्ता है तो क्या अन्ता उठा है कि यदि कन्ता उठा की गन्ता उन्ता तो गन्ता का कन्ता उठा अन्ता उठा उन्ता अन्ता अन्ता अन्ता उठा उन्ता



शरीर की माँग—भूख, प्यास आदि—छूट जाए ? अगर जमीन कगिरा छोड़ सकती है, अगर प्रकृति का एक नियम टूट सकता है, तो सब नियम टूट सकते हैं।

यह भी स्मरण रहे कि सिद्धासन में बैठना शरीर में पिरामिड की ही आकृति पैदा करना है। बुद्ध और महावीर की सारी मूर्तियाँ जिस आसन में हैं, वह पिरामिडिकल है। जमीन पर दोनों पैर का आधार बड़ा हो जाता है और ऊपर सब छोटा होता जाता है, सिर पर शिखर हो जाता है, एक त्रिकोण बन जाता है। ऐसे आसन को सिद्धासन कहते हैं। क्यों ? क्योंकि इस आसन में सरलता से प्रकृति के नियम अपना काम छोड़ देते हैं और प्रकृति के ऊपर परमात्मा के जो गहन सूक्ष्म नियम हैं, वे भी काम नहीं करते।

( ७ ) शरणागति की अपनी आकृति है, अहंकार की अपनी आकृति। अहंकार को हम सदा खड़ा हुआ ही सोच सकते हैं। शरण का भाव लेट जाने का भाव है, किसी विराट् शक्ति के समक्ष अपने को छोड़ देने का भाव है।

महावीर ने बारह वर्षों में केवल तीन सौ पैसठ दिन भोजन किया। ग्यारह वर्ष बिल्कुल नहीं। फिर भी महावीर से ज्यादा स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है। महावीर के पीछे चलनेवाले व्यक्ति इसके रहस्य को समझ नहीं पाए। इस सम्बन्ध में राबर्ट पावल्लिता द्वारा किए गए कुछ प्रयोग बड़े प्रासंगिक हैं। उसने वरफिलाव नामक व्यक्ति को तीन सप्ताह के लिए सम्मोहित रखा और सम्मोहन की अवस्था में उसे बार-बार झूठा भोजन दिया। वरफिलाव की जाँच के लिए डॉक्टर नियुक्त किए। वे रोज आते और बताते कि वरफिलाव का शरीर और भी स्वस्थ होता चला जा रहा है। उसको जो शारीरिक तकलीफ थी, वह पाँच दिन के बाद विलीन हो गई, उसका शरीर पूर्ण स्वस्थ हो गया। सातवें दिन के बाद शरीर की सामान्य क्रियाएँ भी बन्द हो गईं। उसका वजन बढ़ गया।

इस प्रयोग के बाद महावीर को समझना आसान होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि जिन लोगों को भी उपवास करना हो, वे तथाकथित जैन साधुओं के उपवास के पागलपन में न पड़े। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सिर्फ भूखे मरवा रहे हैं, अनगन को उपवास कह रहे हैं। उपवास की तो कोई और ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर इस भ्रांति प्रयोग किया गया तो वजन नहीं गिरेगा। परन्तु महावीर का वह सूत्र खो गया। सम्भव है, राबर्ट पावल्लिता-जैसे लोग उस सूत्र को फिर से पैदा कर लें। लेकिन हम अभागे लोग धर्म की बातों और विवादों में इतना समय नष्ट करते और करवाते हैं कि सार्थक बातों को करने के लिए समय और सुविधा नहीं बच रहती।

पावल्लिता का प्रयोग बेहोश और सम्मोहित आदमी पर किया गया है। महावीर तो पूर्ण जाग्रत पुरुष थे। वे उन जाग्रत लोगों में से थे जो निद्रा में भी जाग्रत रहे। तो महावीर का सूत्र क्या था ?

( ८ ) असत्तम सम्माहन में और महावीर के सूत्र में एक आन्तरिक सम्बन्ध है। सम्माहित व्यक्ति वेदानी में विप्रश होकर समर्पित हो जाता है, उसका अहकार गाय जाता है। महावीर जानकर उस अस्मिता और अहकार को खा देते हैं और समर्पित हो जाते हैं। अगर आप होनापूर्वक भी, जागे हुए भी समर्पित हो सकें और वह सकें कि 'अरिहत शरणम पवज्जामि' तो आप उसी रहस्य-लाव में प्रवेश कर जाएंगे जहाँ रजलिव और पावलित प्रयोग करता है।

ध्यान रह मनुष्य के चित्त में जब तक अहकार है तब तक भय होता है। भय और अहकार एक ही ऊँचा के नाम हैं। अहकारी अत्यन्त भयातुर होता है। महावीर कहते हैं कि भय तो वही हो सकता है जो समर्पित है शरणागत है। जिसने अपने का छाड़ा उसके भय का कोई कारण नहीं रहा।

( ९ ) यह सूत्र शरणागति का है। इस सूत्र के साथ नमोकार पूरा हो जाता है। नमस्कार से शुरू होकर वह शरणागति पर पूरा होता है और इस अर्थ में नमो-कार पूरे धर्म की यात्रा बन जाता है।

शरणागति का पहला सम्बन्ध उस आन्तरिक ज्यामिति में है जो आपके भीतर की चेतना की आवृत्ति बदलती है। दूसरी बात—आप प्रवृत्ति के साधारण नियमों के बाहर चले जाते हैं, किसी गहन अर्थ में आप निर्व्य हो जाते हैं। और तीसरी बात—शरणागति आपके जीवन-द्वारा का परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है। विश्व-ऊर्जा के स्रोतों की ओर स्वयं का खाली होना शरण में जान के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

( १० ) इसलिए अहकारी व्यक्ति दीन-से-दीन व्यक्ति है जिसने अपने को समस्त सत्ता से तोड़ लिया है जो सिर्फ अपने पर ही चरोता कर रहा है। उसका जीवन सिर्फ सड़न का एक प्रसंग होगा, मरने की एक प्रक्रिया होगा। रस पाता है फूल अपना जल में, मूल में चान्दनी-पारा से। अगर फूल समर्पित है तो प्रफुल्लित हो जाता है। मय द्वारा में उमर रोगी और प्रकाश मिलता है। जीवन-ऊँचा के परम सत्ता की तरफ अपने को मोलना ही शरणागति है।

( ११ ) अगर आप में भी ऊँचा प्रवाहित हो जाती है, तो क्या परम शक्ति का प्रति समर्पित होकर आप उसकी ऊँचा को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकते? ऊँचा का प्रवाह हमारा जाना तर्क होता है। जो ऊँचा आपसे वह सक्ती है वह आपकी तरफ ही वह सक्ती है। अगर गंगा सागर की तरफ बहती है तो क्या सागर गंगा की तरफ नहीं बह सकता? यह शरणागति सागर का गंगा की गंगा की तरफ बहने की प्रक्रिया है। शरणागति बहती है सत्ता में, गिर जाओ और तुम पाओगे कि जिसकी शरण में तुम गिर गए हो, उससे तुम खुद साया हो, पाया है। ऐसा समझना चाहिए कि जो भी अपना का बचाएगा वह मिट जायगा, तब तो यह है कि जो अपने को मिला देन है क्याकि छाया मिटाने की फिर किसी में सामर्थ्य नहीं है।

वह जो अमृत तथा जीवन का अनन्त रहस्य-स्रोत है चारों तरफ, उसके प्रतीक-शब्द है अरिहत, सिद्ध, साधु आदि । ये उस स्रोत की आकृति हैं हमारे पास । परमात्मा तो निराकार में खड़ा है ।

( १२ ) लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखाई पड़ती है—कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध या क्राइस्ट में । लेकिन हम उस निराकार को पहचान नहीं पाते और उस आकृति में कोई-न-कोई दोष निकाल लेते हैं । कहते हैं—क्राइस्ट की आकृति थोड़ी कम लम्बी है, यह परमात्मा की नहीं हो सकती । महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं ? आपको खयाल नहीं कि आप आकृति की भूले निकाल रहे हैं और आकृति के भीतर जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं । आप वैसे आदमी हैं जो दीए की मिट्टी की भूले निकालता है और उसकी देदीप्यमान ज्योति की ओर दृक्पात नहीं करता । दीये की निराकार स्रोतरहित ज्योति ही मुख्य है, न कि दीये की मिट्टी, उसकी आकृति । लेकिन हम यह नहीं देखते कि कृष्ण ने क्या कहा, हम इसकी फिक्र करते हैं कि उनकी वाणी में व्याकरण की भूले तो न थी । वे शास्त्र-सम्मत बातें करते हैं अथवा नहीं ! जब तक हम दीये की नाप-जोख करते हैं तब तक ज्योति विदा हो जाती है और हम मरे हुए दीयों को हजारों साल तक पूजते रहते हैं । मरे हुए दीयों का हम बड़ा आदर करते हैं । इस जगत् में जिन्दा तीर्थंकर का उपयोग नहीं होता, सिर्फ मुर्दा तीर्थंकर का उपयोग होता है, क्योंकि मुर्दा तीर्थंकर के साथ भूल-चूक निकालने की सुविधा नहीं रह जाती । अगर आप महावीर के साथ रास्ते में चलते हो और महावीर थककर वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे तो आपको शक होगा और आप कहेंगे—‘अरे, महावीर तो कहते थे कि भगवान् अनन्त ऊर्जा, अनन्त शक्ति और अनन्त वीर्य है । कहाँ गई अनन्त ऊर्जा ? ये तो थक गए । दस मील चले और पसीना निकल आया ।’ असल में दीया थकता है । महावीर जिस अनन्त ऊर्जा की बात कर रहे हैं, वह ज्योति की बात है । दीए तो सभी के थक जायेंगे और गिर जायेंगे ।

( १३ ) लेकिन हम दीये की भूलों पर ही ध्यान क्यों देते हैं ? हम यह इसलिए करते हैं कि हमें शरणागति से बचने का कोई वहाना मिल सके । आकृति के दोष कारण बनकर हमें शरण में जाने से रोक सके । बुद्धिमान् वह है जो कारण खोजता है शरण में जाने के लिए, बुद्धिहीन वह है जो कारण खोजता है शरण से बचने के लिए । दोनों प्रकार के कारण खोजे जा सकते हैं । महावीर जिस गाँव से गुजरते हैं उस गाँव के सभी लोग उनके भक्त नहीं हो जाते । उस गाँव में भी उनके शत्रु होते ही हैं और वे भी अकारण नहीं होते होंगे । वे कहते होंगे कि अगर महावीर सर्वज्ञ हैं तो वे उस घर के सामने भिक्षा क्यों माँगते हैं जिसमें कोई है ही नहीं ? यदि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति सर्वज्ञ होता है—महावीर खुद ऐसा ही कहते थे—तो उन्हें पता होना



हो चाहिए कि घर में कोई भी नहीं है। नहीं, वे सब नहीं हैं। वस, बात यही खत्म हो गई, शरण से रुकने का उपाय हो गया। जिन्हें कारण ढूँढना होगा व यह भी कहते होंगे कि शास्त्रों में तीर्थकरों के कई लक्षण वर्णित हैं जिनमें एक लक्षण यह है कि जहाँ जहाँ तीर्थकरों के चरण जाते हैं वहाँ वहाँ से घणा का भाव तिरोहित हो जाता है, शत्रुता का भाव मिट जाता है। यदि महावीर तीर्थकर होते तो उनके कान में कोई कीलें कैसे ठोका पाता? कान में कीलें तो बहुत दूर से नहीं ठोकी जा सकती, बहुत पास आना पड़ता है। यदि महावीर के पास आकर भी शत्रुता का भाव बच रहता है तो बात गड़बड़ है, सदिग्ध है मामला, महावीर तीर्थकर नहीं हैं। मगर महावीर तीर्थकर हैं या नहीं इससे आप क्या पा लेंगे? हा उसकी शरण जाने में आप बच सकेंगे, बस इतना ही। ऐसा प्रतीत होता है कि आपके शरण जाने से महावीर को कुछ मिलनेवाला है, जो आपने रोक लिया। भूल रहे हैं आप। शरण जाने से आपका ही कुछ मिल सकता था, जो आप चूक गए।

अगर आपको शरण नहीं जाना है तो आप कारण खोज ही लेंगे न जान के। और अगर आपका शरण जाना है तो पत्थर की मूर्ति में भी आप कारण खोज सकते हैं जाने के। मजा यह है कि शरण में जाएँ तो पत्थर की मूर्ति भी आपके लिए उसी परम वात का द्वार खोल देगी, शरण न जाएँ तो खुद महावीर सामने खड़े रहेंगे और वह द्वार बन्द रहेगा। धार्मिक आदमी में उसे कहता हूँ जो कहीं भी शरण जाने का कारण खोजता ही रहता है।

( १४ ) अगर इसा मसीह मूली पर चमत्कार दिखा दें और तब आप उनकी शरण में जाएँ, तो, ध्यान रखना यह शरणागति नहीं है। इसमें कारण ईसा मसीह हैं, आप नहीं। यह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है, इसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब होती है जब कारण आप हो, ईसा मसीह या बुद्ध या महावीर का चमत्कार नहीं। इस फक को ठीक से समझ लें नहीं तो सूत्र का राज चूक जायगा। शरणागति उसी मात्रा में गहन होती है जिस मात्रा में शरणागति जाने का कोई कारण नहीं होता। अगर कारण हाता है तो वह सौदा हो जाती है, शरणागति नहीं रह जाती। अगर बुद्ध मुँह को ढिंका रहे हैं तो उस नमस्कार करना ही पड़ेगा। इसमें खूबी आपकी नहीं है इसमें तो कोई भी नमस्कार कर लेगा। परंतु जब महावीर-जैसा आदमी आपके सामने खड़ा हो जाता है जिसमें कोई चमत्कार नहीं है जिसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपका ध्यान खींचे या जिससे आपको तत्काल लाभ दिखाई दे, जिसमें कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट-जैसा प्रमाण बन जाय, और आप उसकी शरण चले जाते हैं तब आपके भीतर शक्ति घटित होती है, आपका अहंकार विलीन होने लगता है। सब तक, सब प्रमाण सब चालाकों की बातें अहंकार के ईद गिद हैं।



## चतुर्थ अध्याय

धर्म का परम सूत्र : अहिंसा और स्वभाव

धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिंसा सजमो तवो ।

देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो ॥<sup>१</sup>

—दण० अ० १ गा० १

(१) महावीर कहते हैं कि धर्म सर्वश्रेष्ठ मगल है । जीवन में आनन्द की जो भी सम्भावना है वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है । जीवन में सौन्दर्य के जो फूल खिलते हैं वे धर्म की जड़ों में पोषित होते हैं । जीवन में जो भी दुःख है वह किसी-न-किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में या अधर्म में सलग्न हो जाने में है । महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है—जो मैं हूँ उस होने में ही जीना, जो मैं हूँ उससे जरा भी च्युत न होना ।

जो मेरा अस्तित्व है उससे बाहर जाते ही मेरे दुःख का प्रारम्भ हो जाता है । दुःख का प्रारम्भ इसलिए हो जाता है कि जो मैं नहीं हूँ, उसे कितना ही चाहूँ तब भी वह मेरा नहीं हो सकता । जो मैं नहीं हूँ, उसे मैं कितना ही वचाना चाहूँ, उसे मैं वचा नहीं सकता । वह खोएगा ही । मैं केवल उसे ही पा सकता हूँ जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पा रखा है । मैं केवल उसका ही मालिक हो सकता हूँ जिसका मैं जाने-न-जाने अभी भी मालिक हूँ । मृत्यु जिसे मुझसे छीन नहीं सकेगी, वही केवल मेरा है । रुग्ण हो जायगा सब-कुछ, नष्ट हो जायगा सब-कुछ, फिर भी जो विलीन नहीं होगा, वही मेरा है । गहन अधकार छा जाए, अमावस आ जाए जीवन में चारों तरफ, फिर भी जो अँधेरा न होगा, वही मेरा प्रकाश है । लेकिन हम स्वयं को खोजते हैं उसमें जो हम नहीं हैं, वही से विफलता और विवाद जनमता है, निराशा उत्पन्न होती है । इस जगत् में बहुत कम लोग हैं जो स्वयं को चाहते हैं ।

(२) हम स्वयं को पा सकते हैं और कुछ पा नहीं सकते । सिर्फ दौड़ सकते हैं । सत्य केवल एक है और वह यह कि मैं स्वयं के अतिरिक्त इस जगत् में और कुछ भी नहीं पा सकता । हाँ, पाने की कोशिश कर सकता हूँ, श्रम कर सकता हूँ, आशा बाँध सकता हूँ । पाने के स्वप्न देख सकता हूँ । अधर्म का अर्थ है—स्वयं को छोड़कर

१. धर्म सर्वश्रेष्ठ मगल है । (कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तप ।

जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा सलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

और कुछ भी पान का प्रयास । अघम का अय है—स्वय का छोड़कर अय पर दृष्टि । सच पूछिए ता हमारी दृष्टि सदा दूसरे पर लगी हाती है, यहाँ तक कि हम अपनी गरज भी भेगते हैं तो वह भी दूसरे के लिए । घम ता स्वय को सीधा चाहन से उत्पन्न होता है कयाकि घम का अय है—स्वभाव, 'नि अट्टीमेट न चर ।

(३) सात्र न कहा है कि दि अदर इग हेल , अयात वह जो दूसरा है वही नक है हमारा । 'दूसरा नक है,' महावीर यह भीने नही कहत, कयाकि इतना रहन म भी दूसरे का चाहने की आकाशा और फिर निपलता छिपी है । दूसरा नक इसीलिए मालूम पडता है कि हमन दूसरे को स्वय मानार गोज की । हम दूसरे के पीछे गए माना कहा—उसके पास—स्वय है । सात्र कहता है कि दूसरा नक है कयाकि उसम स्वय खोनन की कोणिग की गद है । जब स्वय नही मिलता ता वह व्यक्ति तब मालूम पडता ह । महावीर नही कहत कि दूसरा नक है । यह जानता कि दूसरा नक है, दूसरे म स्वय का मानन स निगान पडता है । अगर मैंन दूसरे से कमा सुख नही चाहो तो मुये दूसरे स कमी दुःख नहा मिग सकता । हमारी अपेक्षाएँ ही दुःख बनती ह । अपेक्षाओं का भ्रम जब टूटता है तब निराशा हाथ लगती है । इसलिए हमरा नक नहा है । चरि तुमन दूसरे को स्वय माना, इसलिए हमरा नक हो जाता है । लेकिन तुम तो स्वय स्वय हा ।

स्वय को स्वय मानन की जरूरत नही है । स्वय का स्वय होना स्वभाव है ।

महावीर का वक्तव्य बहुत पाणिदिव है । वे कहते हैं घम मगल है स्वभाव मगल है, स्वय का होना मान है और स्वय को मानने की जरूरत नही है कि मान है । ध्यान रह, मानना हमे वही पडता है जहाँ नही हाता । कल्पनाएँ हम वहा करनी होनी ह जहा कि सत्य कुछ और है । स्वय को सत्य घम या आनंद मानने की जरूरत नही है । स्वय म है मोक्ष—यह तत्र दिसाई पडता शुरू हाता है, जब ध्यान की धारा दूसरे स हट जाती है और स्वय पर लीट जाती है ।

(४) महावीर की यह घोषणा कि घम मगल है, कोई परितृपनात्मक सिद्धान्त नहा है और न यह कोई दाशनिक् वक्तव्य है । जिन अथ म हीगल, बाट या बट्टेड गभत दाशनिक् हैं उस अथ म महावीर दाशनिक् नही हैं । महावीर का यह वक्तव्य मिक एक अनुभव एक तथ्य की सूचा है । महावीर सोचत नहा कि घम मगल है व जानते हैं कि घम मगल ह । अगर पश्चिम म किसी दाशनिक् ने यह कहा हाता तो दूसरा वक्तव्य हाता—क्या ? ह्वाई ? लेकिन महावीर का दूसरा वक्तव्य ह्वाई का नही, ह्वाट का उत्तर देता है । वे कहत हैं—घम मगल है । कौन सा घम ? अहिंसा सत्तमो तवा । यदि अरस्तू ऐसा कहता तो वह तत्काल बताता कि मैं घम का मगल क्या कहता हूँ । महावीर कोई कारण नहा देत । वस्तुन अनुमति क लिए कोई प्रमाण नहा हाता, सिद्धान्ता के लिए तर्क और प्रमाण हाते हैं ।

(५) महावीर-जैसे लोग प्रमाण नहीं देते, सिर्फ वक्तव्य देते हैं। उनके वक्तव्य वैसे ही वक्तव्य हैं जैसे आइस्टीन के या किसी और वैज्ञानिक के। अगर हम आइस्टीन से पूछते कि पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर क्यों बना है, तो वह कहता कि क्यों का सवाल नहीं है, हम इतना ही कह सकते हैं कि वह बना है, ऐसा हुआ है। विज्ञान दूसरे के, अर्थात् पर के, सम्बन्ध में वक्तव्य देता है, धर्म स्वयं के सम्बन्ध में।

क्या आपको पता है कि जब भी आपके जीवन में कोई दुख आता है तो दूसरे के द्वारा ही आता है? चिन्ता भीतर से नहीं, बाहर से आती मालूम पड़ती है। क्या कभी आप भीतर से चिन्तित हुए हैं? आपकी चिन्ता का केन्द्र सदा बाहर रहा है। वह धन हो, बीमार मित्र हो, टूटती हुई दुकान हो, हारा हुआ चुनाव हो, कुछ भी हो—वह सदा दूसरा ही होता है।

(६) कभी-कभी ऐसा लगता है कि दूसरा सुख का भी कारण बनता है। इस भ्रान्ति का टूट जाना जरूरी है। इसी से सब उपद्रव शुरू होते हैं। ऐसा तो लगता ही है कि दूसरा दुख का कारण है, लेकिन ऐसा भी लगता है कि दूसरे से सुख मिल सकता है। सुख भी दूसरे से आते मालूम पड़ते हैं। ध्यान रखें कि दूसरे से दुख मिलने का कारण यही है कि हम दूसरे से सुख की आशा करते हैं। दूसरे से दुख आता ही इसलिए है कि हमने उनसे एक भ्रान्ति का सम्बन्ध बना रखा है और समझ रखा है कि उनसे सुख आ सकता है। सुख का आना सदा भविष्य में होता है।

क्या कभी आपने जाना कि दूसरे से सुख आ रहा है? सदा ऐसा लगता है कि आएगा, आता कभी नहीं। जिस मकान के लिए लालसा थी और कभी लगता था कि उसके मिल जाने से सुख मिलेगा, उसके मिलते ही सुख गायब हो जाता है। जब तक वह नहीं मिलता तब तक सुख की सम्भावना रहती है। यही बात अन्य चीजों पर भी लागू होती है। जिस दिन आपकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जायँगी उस दिन पृथ्वी कितनी दुखी हो जायगी। इसलिए जिस मुल्क में सुख की जितनी सुविधाएँ बढ़ती हैं उसमें उतना ही दुख भी बढ़ता है। गरीब मुल्क कम दुखी होते हैं। मेरे इस कथन से आपको थोड़ी हैरानी होगी, लेकिन यह न भूलें कि गरीब कम दुखी होता है, क्योंकि अभी उसकी आशाओं का पूरा का पूरा जाल जीवित है—अभी वह अपनी आशाओं में जी सकता है, वह अभी सपने देख सकता है।

वर्तमान में सदा दुख है दूसरे के साथ। दूसरे के साथ सुख होता है सिर्फ भविष्य में। अगर सारा भविष्य नष्ट हो जाय और जो-जो भविष्य में मिलना चाहिए वह आपको अभी, इसी क्षण मिल जाय, तो आप सिवा आत्महत्या करने के कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए जितना सुख बढ़ता है, उतनी आत्महत्याएँ बढ़ती



हैं। महावीर अपने घर में तितने दुखी हुए, उनके घर के मामने भीख मागनेवाला मिचारी भी उनका दुखी न था। महावीर का दुख इस बात से पैदा हुआ है कि उस युग में जो भी मिल सकता था वह मिला हुआ था। उनके लिए कोई भविष्य नहीं बचा था। जब भविष्य न बचे तो सपन कहा खटा कीजिएगा? जब भविष्य न बचे तो कामज की नाव किस सागर में चलाइएगा? भविष्य के सागर में ही चलती है कामज की नाव। अगर भविष्य न बचे तो किस भूमि पर ताशा का भवन बनाइएगा? अगर ताशा का भवन बनाना हो तो भविष्य की नाव चाहिए।

(७) हम भी अनुभव हैं लेकिन हम पीछे लौटकर नहीं देखते। हम आगे ही देखे चले जाते हैं। जो आदमी आगे ही देखे चला जाता है वह कभी घाँस नहीं हो सकेगा। उस अनुभव से कोई लाभ न होगा। भविष्य में कोई अनुभव नहीं है अनुभव तो अतीत में है। आदमी की स्मृति भी बहुत अदभुत है। उसे खयाल नहीं रहता कि जिस कपड़े का गाँगा विण्डो में दबकर उसे कितना गुत्तगुदी मालूम पड़ी थी, वही जब उसके शरीर पर पहना है तब उसमें कोई भाँति घटित नहीं होती कोई स्वग उतर नहीं आता। वह उतना का उतना ही दुखा रहता है। हाँ जब दूसरी दुखान का गाँगा विण्डो में उसका मुख रटक जाता है। अब दूसरी दुखान की शो विण्डो उसकी नाद छराव कर देती है। पीछे लौटकर अगर देखें तो आप पाएँगे कि आपने जिन-जिन सुखों की कामना की भी वे सभी दुख सिद्ध हो गए। आप एक भी ऐसा सुख नहीं बता सकते जिसकी आपने कामना की थी और जो मिलने पर सचमुच सुख सिद्ध हुआ हो। आश्चर्य है कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्ति किए चला जाता है और कल के लिए पहली-जसी योजनाएँ बनाता है। वह जिस गड्ढ में कल गिरा था आज फिर उसी की तलाश करता है। ऐसा नहीं कि वह केवल कल ही गिरा था। वह रोज रोज गिरता है फिर भी उसकी भाँति नहीं टूटती।

(८) असल में दूसरा पटकता है तो हम हँसते हैं लेकिन हम अपने का ही पकड़ते चले जाते हैं। जितनी भर ऐसा ही चलता है और आखिर में दुख के घाव के अनिरिक्त हमारी कोई उपरान्वि नहीं होती। घाव ही घाव रह जाते हैं।

इतना हम जानते हैं कि अधम अमगल है और अधम का मतलब समझ लेना—दूसरे में सुख पाकर की आकांक्षा। दुख ही अमगल है। और कोई अमगल नहीं। जब भी दुख मिले तो आप जानना कि आपने दूसरे से कहा सुख पाना चाहा था। अगर मैं अपने शरीर से ही सुख पाना चाहूँ तो भी मुझे दुख ही मिलेगा—कल कामारी आयगी शरीर रुग्ण होगा बूढ़ा होगा परसा मरगा। यह शरीर जो इतना निरुद माँलूम होता है, पराया है। महावीर कहते हैं कि जिससे भी दुख मिल, जानना कि वह और है वह तुम नहीं हो।

(९) सुख अपरिचित है, क्योंकि हमारा सारा परिचय ‘पुर’ न है दूसरे से

है। सुख सिर्फ कल्पना में ही एक अनुभव है। लेकिन दुख, जो कि अनुभूत है, हम मुलाए जाते हैं और सुख, जो कि कल्पना है, हमें खींचे चला जाता है। महावीर का यह सूत्र इस पूरी बात को बदल देना चाहता है। धर्म मंगल है। आनन्द की तलाश स्वभाव में है। आपके जीवन में कभी अगर आनन्द की कोई छोटी-मोटी किरण उतरी होगी, तो वह तभी उतरी होगी जब आप जाने-अनजाने किसी भाँति एक क्षण के लिए स्वयं से सवद्ध होंगे।

( १० ) एक पत्नी को बदलकर दूसरी पत्नी के साथ जो क्षण भर का सुख मिलता है, वह सिर्फ बदलाहट का सुख है। बदलाहट का सुख भी सिर्फ इसलिए कि दो चीजों के बीच से क्षण भर के लिए आपको अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। अनिवार्य है कि जब मैं एक से टूटूँ और दूसरे से जुड़ूँ, तो टूटने और जुड़ने के बीच में जो गैप या अन्तराल है, उसमें कहीं तो रहूँगा। उसमें मैं अपने में रहूँगा। वही अपने में रहने का क्षण प्रतिफलित होगा और लगेगा कि हमारे से सुख मिला। सभी बदलाहट अच्छी लगती है। वस, बदलाहट का—यानी 'चेन्ज' का—जो सुख है, वह क्षण भर के लिए अचानक अपने से गुजर जाने का सुख है। इसलिए आदमी गहर से जंगल भागता है, भारत से यूरोप जाता है और यूरोप से भारत आता है।

( ११ ) सभी बदलाहटें आपके भीतर एक ऐसी स्थिति ला देती हैं कि आपको अनिवार्यरूपेण कुछ देर के लिए अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। उसका ही प्रतिविम्ब आपको सुख मालूम पड़ता है। अपने भीतर से क्षण भर गुजरते ही यदि आप सुखी हो जाते हैं तो जो सदा अपने भीतर जीने लगता है, उसके सुख की क्या सीमा होगी।

आधा सत्य हमारे पास है कि 'दूसरा' ही दुख है। कामना दुख है, वासना भी दुख है, क्योंकि कामना और वासना सदा दूसरे की तरफ दौड़ानेवाले होते हैं। वासना का अर्थ है—दूसरे की तरफ दौड़ती हुई चेतन-धारा, मविष्य की ओर उन्मुख जीवन की नोका। अगर दूसरा दुख है तो उसकी ओर ले जानेवाला जो सेतु है, वह नर्क का सेतु है। उसको महावीर वासना कहते हैं। वही बुद्ध के लिए तृष्णा है।

वासना का न दौड़ना आत्मा का हो जाना है। आत्मा उस शक्ति का नाम है जो अपने में खड़ी है। अहिंसा, सयम और तप दौड़ती हुई ऊर्जा को ठहराने की विधियों के नाम हैं। धर्म के दो रूप हैं। धर्म स्वभाव है और धर्म विधि है स्वभाव तक पहुँचाने की। धर्म का जो आत्यन्तिक रूप है वह है स्वभाव, स्वधर्म। चूँकि हम स्वभाव से भटक गए हैं, इसलिए यह कहने की जरूरत पड़ती है। स्वस्थ व्यक्ति चिकित्सक से नहीं पूछता कि मैं स्वस्थ हूँ या नहीं।

( १२ ) धर्म का परम सूत्र है स्वभाव।

अहिंसा धर्म की आत्मा है, केन्द्र है। तप धर्म की परिधि है और सयम केन्द्र को

परिधि से जोड़नेवाला सेतु है । अहिंसा आत्मा है तप शरीर है और सयम प्राण है, यह दोना का ताडता है साँस है । साम टूट जाय तो शरीर होगा आत्मा भी होगी, लेकिन आप न होगी । सयम टूट जाय तो तप हो सकता है अहिंसा भी हा सकती है, लेकिन धम नहीं हा सकता ।

महावीर की दृष्टि में अहिंसा धम की आत्मा है । अगर हम महावीर से पूछें कि एक ही शब्द में यह बतला दें कि धम क्या है, तो व कहेंगे—अहिंसा । दूसरे लोग कहेंगे—परमात्मा, आत्मा सेवा, न्याय समाधि याग, पूजा प्रार्थना आदि-आदि । लेकिन महावीर के लिए धम का पर्याय है अहिंसा । पर महावीर की अहिंसा वह बचकानी अहिंसा नहीं है जो उनके माननवाले समझते रह ह ।

( १३ ) धम की परिभाषा स्वभाव है । महावीर यह नहा कह्य कि दूसरे का सुख देना ही धम है क्योंकि इससे दूसरा जा खडा होता है । महावीर कहत है कि धम तो वही है जहाँ दूसरा है ही नहा । दूसरे को दुख मत दो—यह भी महावीर की परिभाषा नहीं हो सकती कारण महावीर मानन को तैयार नहीं कि हम दूसरे का दुख दे सकत है जब तक दूसरा लना ही न चाहे । यह भ्रान्ति है कि मैं दूसरे का दुख द सकता हूँ । यह भ्रान्ति इस पर खड़ी है कि मैं दूसरे से दुख पा सकता हूँ । मैं दूसरे से सुख पा सकता हूँ, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूँ—य सब भ्रान्तियाँ एक ही आधार पर खड़ी हैं । क्या कोई महावीर को दुख द सकता है ? नहीं, आप महावीर का दुख नहीं दे सकत, क्योंकि वे दुख लेने को तयार नहीं हैं । आप उसी को दुख दे सकते हैं जो दुख लेने को तयार हा । आप यह जानकर हैरान हाने कि आप हमेशा दुख लेने को उत्सुक रहत ह । अगर कोई आदमी आपकी चीवीसा घटे प्रशंसा करे तो आपको सुख नहीं मिलेगा लेकिन अगर वह एक गाली द द तो आप आजीवन दुखी रहेंगे । कोई आपकी धरमा सेवा करे आपका सुख नहीं मिलेगा, लेकिन एक दिन वह आपके खिलाफ एक गल्लद वाल दे तो आप बहुत दुखी हा जायेंगे, उसकी सारी सेवा व्यर्थ हा जायगी । इससे क्या सिद्ध हाता है ?

( १४ ) इससे यही सिद्ध होना है कि आप सुख लेने को उतना आतुर नहा है जितना दुख लेने को । यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुख लेने में है उतनी सुख लेने में नहीं है । अगर मुझे किसी न उनीस बार नमस्कार किया और एक बार नमस्कार नहीं किया तो उनीस बार के नमस्कार से मैं न जितना सुख नहीं लिया है उससे अधिक दुख एक बार के नमस्कार न करने से ल लेता ह । जाश्चय है । हम दुख के लिए जो इतन सबदनालील ह, उसका कारण क्या है ? उसका कारण यह है कि हम दूसरा में सुख चाहत हैं । इतना ज्यादा कि वही चाह हमारे दुख का द्वार बन जाती है । महावीर नहीं कह सकत कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुख न देना । दूसरे का कौन दुख द सकता है अगर दूसरा लेना न चाह तो ? जा लेना



चाहता है उसको कोई न भी दे तो भी वह ले लेगा—यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूँ ।

( १५ ) जितने दुख आपको मिल रहे हैं, उनमें से ९९ प्रतिशत आपके आविष्कार हैं । जरा सोचे, किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं दुख का ! असल में बिना दुखी हुए आप रह नहीं सकते । दुख भी जीने के लिए काफी वहाना है । देखते हैं न कि दुखी लोग कितने रस से जीते हैं और अपने दुख की कथा कितने रस से कहते हैं और उसे किस प्रकार बड़ा-चढ़ाकर सुनाते हैं ! यदि मुई लग जाय तो तलवार से कम नहीं लगती वह उन्हें !

( १६ ) वे अपनी सारी इन्द्रियो को चारों तरफ सजग रखते हैं एक ही काम के लिए कि कहीं से दुख आ रहा हो तो चूक न जाएँ, उसे जल्दी से ले ले । कहीं अवसर न खो जाय ! यही दुख हमारे जीने की वजह है ।

तो महावीर की अहिंसा का अर्थ यह नहीं है कि दूसरे को दुख मत देना । महावीर तो कहते हैं कि दूसरे को न तो कोई दुख दे सकता है और न कोई सुख दे सकता है । महावीर की अहिंसा का यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरे को मार मत डालना । महावीर भलीभाँति जानते हैं कि इस जगत् में कौन किसको मार सकता है ? मृत्यु असम्भव है ।

( १७ ) लेकिन महावीर के पीछे चलनेवालों ने अत्यन्त साधारण परिभाषाओं का ढेर इकट्ठा कर लिया है । क्या अहिंसा का अर्थ यही है कि मुँह में पट्टी बाँध ली जाय ? अहिंसा का अर्थ यही है कि रात में पानी न पिया जाय ? यह सब ठीक है; मुँह पर पट्टी बाँधने में या पानी छानकर पीने में कोई हर्ज नहीं है । लेकिन इस भ्रम में न रहिए कि आप किसी को मार सकते हैं । किसी को दुख मत दीजिए, लेकिन इस भ्रम में भी न रहिए कि आप किसी को दुख दे सकते हैं । मैं यह नहीं कहता कि आप जाएँ और मार-पीट करे (क्योंकि मार तो कोई सकता नहीं) । मैं आप से यह नहीं कह रहा हूँ । महावीर की अहिंसा का अर्थ यह नहीं है । महावीर के लिए अहिंसा वही अर्थ रखती है जो बद्ध के लिए तथाता रखती थी । तथाता का अर्थ है 'टोटल एक्सेटिविलिटी' । जो जैसा है, वह वैसा ही हमें स्वीकार है । हम उसमें कुछ हेर-फेर नहीं करेंगे । मान लीजिए कि एक चीटी चल रही है रास्ते पर । हम कौन हैं जो उसके रास्ते में किसी तरह का हेर-फेर करने जाएँ ? शायद वह अपने बच्चों के लिए भोजन जुटाने में लगी है । हो सकता है, योजनाओं का उसका निजी जगत् हो । महावीर कहते हैं कि मैं अपनी ओर से उसके बीच में न आऊँ । जरूरी नहीं है कि मैं ही चीटी पर पैर रखूँ तो वह मरे । चीटी खुद मेरे पैर के नीचे आकर मर सकती है । यह चीटी जाने और उसकी योजना जाने । योजना छोटी नहीं है, यह जन्मो-जन्मों की है, कर्मों का विस्तार है । चीटी के अपने कर्मों और फलों



की लम्बी यात्रा है। मैं किसी की यात्रा में किसी भी कारण बाधा न दूँ। मैं चुपचाप अपनी पगडंडी पर चलता रहूँ। मैं ऐसा हो जाऊँ जैसे हूँ ही नहीं।

(१८) महावीर की अहिंसा का यही गहनतम अर्थ है—मैं ऐसा हो जाऊँ जैसे मैं हूँ ही नहीं। मेरी उपस्थिति कहीं प्रगाढ़ न हो जाय, मेरा होना कहीं किसी के हीन में जरा सा भी अडचन और व्यवधान न बने। मैं जीते जी मर लाऊँ।

अपनी उपस्थिति का अनुभव करवाना ही महावीर की दृष्टि में हिंसा है। जब मैं चाहूँगा कि आप मेरी उपस्थिति का अनुभव कर लें तो मैं यह भी चाहूँगा कि आपकी उपस्थिति का मुझे पता न चले। मेरी उपस्थिति का आपका पता चले, यह तभी हो सकता है जब मैं आपकी उपस्थिति का एम मिटा दूँ जस आप हैं ही नहीं। हम सबकी कोशिश यही होती है कि दूसरे की उपस्थिति मिट जाय और हमारी उपस्थिति कायम रहे लोग का महसूस हो—यही हिंसा है।

अहिंसा इसके विपरीत है। दूसरा उपस्थित हो और इतनी अच्छी तरह उपस्थित हो कि मेरी उपस्थिति से उसकी उपस्थिति में कोई बाधा न पड़े। अहिंसा का गहन अर्थ यही है—अनुपस्थित व्यक्तित्व। चाहे हम हीरे का हार पहन कर खड़े हो गए हो या हमन लाखों क वस्त्र डाल रखे हो या हम नग्न खड़े हो गए हो—हमारी कोशिश यही है कि दूसरा अनुभव कर कि मैं हूँ। मैं चन स बैठने नहीं दूँगा। आपका मानना ही पड़ेगा कि मैं हूँ। छोटे-छोटे बच्चे भी ऐसा हिंसा में निष्णात होना शुरू हो जाते हैं और मेहमानों के सामने अपना हान की घावणा किए बिना नहीं रहते। इसका कारण यह है कि हमारा पूरा-का पूरा आयोजन, हमारा पूरा समाज हमारी पूरी सम्पत्ति अहंकार पर निर्मित है, अधम की नींव पर खड़ी है।

(१९ २०) अहिंसक वह है जो परिवर्तन के लिए जरा भी चेष्टा नहीं करता। उसके लिए जो हो रहा है वह ठीक है। जीवन रहे ता ठीक, मृत्यु आ जाए ता ठीक। हमारी हिंसा किस बात से पदा हाती है? इससे कि जो हो रहा है वह नही, जो हम चाहते हैं वह हा। इसलिए जिस युग में परिवर्तन का जितनी ज्यादा आवश्यकता पड़ती है, वह युग उतना ही हिंसक होता चला जाता है।

(२१) महावीर की अहिंसा का अर्थ यह है कि जो है उसके लिए हम राजी हैं। कोई बदलाव नहीं करना है। आपने चाँटा मार दिया, ठीक है हम राजी हैं। हम अब कुछ भी नहीं करना है, बात समाप्त हो गई। हमारा कोई प्रत्युत्तर नहीं है। जाजम कहते हैं दूसरा गाँव सामने नर दो। महावीर इतना भी नहीं कहते, क्योंकि दूसरा गाँव सामने करना भी एक उत्तर है। महावीर कहते हैं कि करना ही हिंसा है कम ही हिंसा है जवम अहिंसा। तुम चुपचाप गुजरते जाना। पानी में लहर उठती है उसे मिटाती नहीं पड़ती, वह अपने आप मिट जाती है। इस जगत में जा

तुम्हारे चारों तरफ हो रहा है, उने होने देना—वह अपने आप उठेगा और गिर जायगा। उसके उठने और गिरने के नियम हैं। तुम बीच में व्यर्थ मत आना।

(२२) लाओत्से ने कहा है कि श्रेष्ठतम सम्राट् वह है जिसकी प्रजा को पता ही नहीं चलता कि वह है भी या नहीं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है—ऐसे हो जाओ कि तुम्हारे होने का पता ही न चले।

लेकिन हमारी सारी चेष्टा यह दिखाने में लगी है कि हम भी कुछ हैं। हम चाहते हैं कि नारी दुनिया का ध्यान हम पर ही केन्द्रित रहे, सभी हमें देखें। यही हिंसा है। पूरे वक्त हमारा यह चाहना कि ऐसा हो, ऐसा न हो, हिंसा है। यदि हम दौड़ रहे हैं कि वह मकान मिले, वह वन-यज्ञ और पद मिले, तो हमें हिंसा में गुजरना ही पड़ेगा। वासना हिंसा के बिना नहीं हो सकती। इसलिए समझिए कि आदमी जितना वासनाग्रस्त है, वह उतना ही हिंसक भी है, वह जितना वासनामुक्त है, उतना ही अहिंसक भी। यदि आपमें मोक्ष पाने की वासना है तो आपकी अहिंसा भी हिंसक हो जायगी। बहुत-से लोगों की अहिंसा हिंसक है। अहिंसा भी हिंसक हो सकती है। जो मोक्ष की वासना से अहिंसा के पीछे जायगा, उसकी अहिंसा हिंसक हो जायगी। इसलिए तथ्याकथित अहिंसक नावको को अहिंसक नहीं कहा जा सकता।

महावीर कहते हैं कि पाने को कुछ भी नहीं है। जो पाने योग्य है, वह पाया ही हुआ है। बदलने को कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह जगत् अपने ही नियमों से बदलता रहता है। क्रान्ति करने का कोई कारण नहीं है, क्रान्ति होती ही रहती है। कोई क्रान्ति-वान्ति करता नहीं, क्रान्ति होती ही रहती है। लेकिन क्रान्तिकारी को ऐसा लगता है कि वह क्रान्ति कर रहा है। उसका यह दावा उन तिनके के दावे की तरह है जो सयोग से सागर की एक बड़ी लहर पर चढ़ जाता है और कहता है कि लहर मैंने ही उठाई है।

## पंचम अध्याय

### जीवेपणा और महावीर की अहिंसा

अहिंसा ममय चैव, एयावन्त त्रियाणिया ।<sup>१</sup>

—सू० श्रु० १ ज० ११, गा० १०

(१) हिंसा पैदा ही क्या होता है ? हिंसा जन्म के साथ ही क्या जुड़ी है ? जिसे हम जीवन कहते हैं वह हिंसा का ही तो विस्तार है । ऐसा क्या ? पहली बात, और अत्यधिक आधारभूत बात—वह है जीवेपणा । जीने की जो आकांक्षा है, उससे ही हिंसा जन्म लेती है । अकारण भी हम जीने को आतुर हैं । जीवन से कुछ फलित न भी होता हो तो भी जीना चाहते हैं । जीने का एक अत्यन्त पागल और विक्षिप्त भाव है हमारे मन में । मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं दूसरे का जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं । जीवेपणा की इस विक्षिप्तता से ही हिंसा के मय रूप जन्म लेते हैं ।

(२) महावीर यही पूछते हैं कि जीना क्या है ? बड़ा गहन सवाल उठता है । मष्टि किसने रखी, मांस कहाँ है—य सवाल नायद इतने गहरे नहीं हैं । महावीर पूछते हैं—जीना ही क्या है ? इसी प्रश्न से महावीर का सारा चिन्ता और सारी साधना निकलती है ।

महावीर कहते हैं कि जीने की यह बात ही पागल्पन है । जीने की इस आकांक्षा में जीवन बचता ही ऐसा नहीं है बल्कि दूसरे का जीवन को नष्ट करने की दौड़ पैदा होती है । जीवन बच जाता, तो भी ठीक था । बचता भी नहीं है । अन्ततः मौत ही साथ लगती है । महावीर कहते हैं कि ऐसे जीवन का पागल्पन को मैं छोड़ता हूँ निम्नके लिए मैं दूसरे के जीवन का नष्ट करने के लिए तैयार होता हूँ और अपना बचा भी नहीं पाता । जो व्यक्ति जीवेपणा छोड़ देता है, वही अहिंसक हो सकता है । जब उसमें जीने का कोई आग्रह नहीं रहता तब वह किसी का विनाश के लिए भी नहीं होता ।

एक दिन इसका यह अर्थ नहीं कि महावीर मरने की आकांक्षा रखते थे । प्रॉपंड कहना था कि जिस लागा की जीवेपणा रण हो जाती है वह फिर मृत्यु की आकांक्षा



में मर जाते हैं। लेकिन फ्राँयड की समझ उतनी गहरी नहीं है जितनी महावीर की है। महावीर कहते हैं कि आत्महत्या करनेवाला भी जीवेपणा में ही पीड़ित रहता है।

(३) इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। कभी आपने किसी ऐसे आदमी को आत्महत्या करते देखा है जिसकी जीवेपणा नष्ट हो गई हो? नहीं। मैं किसी स्त्री को चाहता हूँ और जब वह नहीं मिलती तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूँ। अगर वह मुझे मिल जाय तो मैं आत्महत्या न करूँ। मैं चाहता हूँ कि बड़े सम्मान, धन और इज्जत के साथ जीऊँ। मेरी इज्जत चली जाती है, प्रतिष्ठा मिट जाती है, तो मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूँ। मेरी प्रतिष्ठा वापस लौट आए तो मैं मौत के आखिरी किनारे से वापस लौट सकता हूँ। महावीर कहते हैं कि यह मृत्यु की आकांक्षा नहीं है, जीवन का प्रबल आग्रह है कि मैं इस टग में जीऊँ। अगर यह टग मुझे नहीं मिलता तो मैं मर जाऊँगा। मैं इस स्त्री, इस धन, इस सम्मान, इस पद के साथ ही जीऊँगा, अन्यथा नहीं। जीने की आकांक्षा ने एक दिशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है।

महावीर इस जगत् में अकेले चिन्तक हैं जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूँगा, अगर तुममें जीवेपणा बिलकुल न हो।

(४) महावीर ने सथारा की आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि किसी व्यक्ति में अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गई हो, तो वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन पहले वह भोजन और पानी छोड़ दे—भोजन और पानी छोड़कर भी आदमी ९० दिन तक नहीं मरता। जितनी भी आत्महत्याएँ की जाती हैं, वे क्षण के आवेश में की जाती हैं। क्षण खो जाय तो आत्महत्या नहीं हो सकती।

महावीर ध्यानपूर्वक मर जाने की आज्ञा देते हैं और कहते हैं कि भोजन-पानी छोड़ देना ९० दिन। अगर उस आदमी में थोड़ी भी जीवेपणा होगी तो वह भाग खड़ा होगा। अगर जीवेपणा बिलकुल न होगी तो वह ९० दिन रुक सकेगा। फ्राँयड को माननेवाले मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि महावीर में कहीं-न-कहीं आत्महत्यावाले तत्त्व अवश्य थे। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि बात ऐसी नहीं है। असल में जिस व्यक्ति में जीवेपणा नहीं है, उसमें मरने की भी एपणा न होगी। मृत्यु की एपणा जीवेपणा का दूसरा पहलू है ( विरोधी नहीं, उसी का अंग है )। इसलिए महावीर ने मृत्यु की कोई चेष्टा नहीं की। महावीर के अनुसार सथारा का अर्थ आत्महत्या नहीं, बल्कि जीवेपणा का इतना खो जाना है कि पता ही न चले और व्यक्ति शून्य में लीन हो जाय। आत्महत्या की इच्छा नहीं, क्योंकि जहाँ तक इच्छा है, वहाँ तक जीवन की भी इच्छा होगी। मृत्यु की इच्छा में ही जीवन की इच्छा भी छिपी होती है। महावीर कोई आत्मघाती नहीं हैं, ससार के सबसे बड़े आत्मज्ञानी हैं।

(५) लेकिन यह बात जरूर है कि अनेक आत्मघाती उनके विचार में उत्सुक हुए

को उहात महावीर क पीछे एक् लम्बी परम्परा मडी की जिसका महावीर म बाई म्बध नहा है। नीला की आकाशा क त्याग न य लाग महावीर के बरीब नही आण मरन की आराधा के कारण य उनक निवट आए। जो मरन की इच्छा म आण वे महावीर की परम्परा म बहुत अग्रणी हो गए। ग्वनावत जो मरन की सँदार है उसका ना होन म बाई अमुपिधा नहा हाती। पर इसम महावीर क रिगार को आज का दुनिया म पहुँचा म बडी कठिनाई हो गइ, क्याकि एका गालूम पन्ना एका कि महावीर का चिन्तन आत्मपीडका के लिए है उाक िण है जा अपन का तानाशाह है। लेकिन महावीर क रिग हुए यमक जम गरीर का दायर एका नहा लगता कि इन आत्मी ने अपनी जडा क भाव ज्यादा की हाता। महावीर रघ भाव भी आत्मपीडक न थ। लेकिन उाक पीछे आत्मपीडका की लम्बी परम्परा इतरा हो गइ, य नमर मय है।

( ८ ) मगवार को नष्टि न जा म्वय का मताता है वह ना दूगर का सताता है, यद्यपि वह अपन म ना गिन कर गता है। यह गरीर का मतात गता है ना जि गता दूतरा है। यह गरीर जो मर जातपाम है, उतना ही दूतरा है मर लिए गिता आपका गरीर ना जरा दूर है। मरा यह गरीर उतना ही दूतरा है जिनना आपका गरीर। पर गित दूतरा है कि अपने गरीर का गतात यत्त पाई पातूनी छाया ना पनेगी, पाई नैतिता वाधा गहों बनगी। नमलिए जा हागियार है व गतात का मरा अपन ही गतात का मतावर ना है। ऐसिन गतात का मता कव हा है। गितात ना गतात दया पात है गतात है कि हम नाके म्यामी हा गता।

[illegible][illegible]

नहीं रह जाता जो मेरे जीवन को चोट पहुँचाता है। मेरे जीवन को चोट पहुँचा कर कोई क्या कर सकता है ? मृत्यु तो होने ही वाली है, वह निर्विवाद निमित्त बन सकता है। अगर कोई आपकी हत्या भी कर जाय तो वह सिर्फ निमित्त है, कारण नहीं। कारण तो मृत्यु है, जो जीवन के भीतर ही छिपी है। जो होने ही वाला था, उसमें वह सहयोगी हो गया। इसलिए उस पर नाराज होने की भी कोई जरूरत नहीं।

महावीर कहते हैं कि मृत्यु को अंगीकार करो, इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्त्वपूर्ण चीज है, बल्कि इसलिए कि वह विलकुल ही मामूली चीज है। जब जीवन ही साधारण और महत्त्वहीन है तब फिर मृत्यु महत्त्वपूर्ण कैसे हो सकती है ? आप जितना मूल्य जीवन को देते हैं, उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है और ध्यान रहे कि जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतने ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं कि जब जीवन का कोई मूल्य नहीं तब मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है और न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने जायगा ? क्या वह आपको सताने में रस लेगा ?

( ७ ) जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए महल का कोई मूल्य होगा ? जीवन का मूल्य शून्य हुआ कि सारे विस्तार का मूल्य शून्य हो जाता है, सारी माया ढह जाती है। जितना लगता था कि जीवन को बचाऊँ, उतना मृत्यु से बचने का सवाल उठता था। जीवेपणा इसलिए बाधा है कि इसके चक्कर में आप वास्तविक जीवन की खोज से वंचित रह जाते हैं।

( ८ ) महावीर कहते हैं कि जीवेपणा जीवन की वास्तविक तलाश से हमें वंचित कर देती है। वह सिर्फ मरने से बचने का इन्तजाम बन जाती है, अमृत को जानने का नहीं। महावीर मृत्युवादी नहीं हैं। वे जीवेपणा की इस दौड़ को रोकते ही इसलिए हैं कि हम उस परम जीवन को जान सकें जिसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है—जो बचा ही हुआ है।

( ९ ) हिंसा दूसरे को भयभीत करती है। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। महावीर कहते हैं कि सिर्फ अहिंसक ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। जिसने अभय नहीं जाना, वह अमृत को कैसे जानेगा ? भय को जानने-वाला मृत्यु को ही जानता रहता है।

महावीर की अहिंसा का आधार है जीवेपणा से मुक्ति। जीवेपणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती है।

लाओत्से ने जिसे 'टोटल ऐक्सेप्टिविलिटी' कहा है, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा ?

( १० ) जितने जोर से हम अपने को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेपणा 'मेरे' का फैलाव बनती है। यह



मरा है, य मेरे पिता हैं, यह मरा मा है यह मरी पत्नी है, यह मरान मरा है यह धन मेरा है—हम मर का एक जाल खाना करने हैं अपने चारों तरफ । उसे इसलिए बड़ा करते हैं कि उसके भीतर ही हमारा 'मैं' बच सकता है । अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला महसूस करके बहुत भयभीत हो जाऊँगा । कोई मरा है तो सहारा है, सुरक्षा है । इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेने हैं आपकी अकड़ उतनी ही ज्यादा बढ़ जाती है ।

( ११ ) हम मरे के फलवाला महावीर हिंसा कहने हैं । उनकी दृष्टि में परिग्रह हिंसा है । उनका बन्धुआ से कोई विरोध नहीं है, पर इससे जरूर प्रयोजन है कि आपका उनमें कितना मोह है किस हद तक आपने उन वस्तुओं को अपनी आत्मा बना लिया है ।

( १२ ) मालिकियत के लिए हम इतने उत्सुक हैं कि अगर जिंदा आदमी के हम मालिक न हो सकें तो उसे मारकर भी मालिक होना चाहते हैं ।

( १३ ) हमारे जीवन की अधिकतर हिंसा इसीलिए है । जब कोई अपनी पत्नी का मालिक होता है तब वह मर्त्री तो प्रायः नब्बे प्रतिशत मर ही जाती है । बिना मारे मालिक होना मुश्किल है । अहिंसक की कोई मालिकियत नहीं हो सकती । अगर कोई अपनी लगाटी पर भी मालिकियत बनाता है तो वह हिंसक है । महल मेरा है और लगाटी मेरी है दोनों के मूल में मालिकियत का भाव है और मालिकियत हिंसा है । इस लगाटी पर भी गरदनें कट सकती हैं ।

( १४ ) एक जन साधु ने मेरे एक मित्र से 'अपने' महावीर को उस महावीर से भिन्न कहा है जिसके सम्यक् धर्म में पालना रहा हूँ । 'अपने' महावीर ! महावीर पर भी मालिकियत ! यानी हिंसा का हम वहाँ तक भी नहीं छोड़ेंगे, कहेंगे कि यह धर्म मेरा है यह साम्य मेरा है, जहाँ जहाँ मरा है वहाँ-वहाँ हिंसा है । इसे ऐसा समझें कि अहिंसा मूल्य है आत्मा का जानने का, क्योंकि जब 'मेरे' का सारा भाव गिर जाता है तब फिर मैं ही बनता हूँ और वास्तव में नहीं बचता । बचता है निपट 'मैं' । और तभी व्यक्ति यह जान पाता है कि मैं क्या हूँ कौन हूँ वहाँ से आया हूँ वहाँ जाऊँगा । तब रहस्य के सार द्वार खल जाते हैं ।

महावीर ने अवधारण ही अहिंसा का परम धर्म नहीं कहा है । परम धर्म कहा है इसलिए कि इस कृत्ति से जीवित रहस्य के सार द्वार खल जाते हैं ।



(१६) वे कहते हैं कि विचार की सम्पदा को भी अपना मानना हिंसा है, क्योंकि जब भी आप किसी विचार को अपना कहते हैं, तभी आप सत्य से च्युत हो जाते हैं। जब भी मैं कहता हूँ कि यह विचार मेरा है इसलिए ठीक है, तभी मैं सत्य से विलग हो जाता हूँ।

(१७) जब हम कहते हैं कि यही है सत्य, तब हम यह नहीं कहते कि जो हम कह रहे हैं वह सत्य है, अमल में हम कहते हैं कि जो कह रहा है, वह सत्य है। जब हम सत्य हैं, तब हमारे विचार सत्य होंगे ही। जगत् में जितने विवाद हैं वे सत्य के विवाद नहीं हैं, 'मैं' के विवाद हैं। महावीर से अगर कोई विलकुल विपरीत बात भी कहता तो वे कहते—यह भी ठीक हो सकता है। ज्ञात इतिहास के पृष्ठों में यह आदमी अकेला है जो अपने विरोधी को भी ठीक कहता है।

(१८) महावीर को इस बात का पता है कि ऐसी कोई भी चीज नहीं हो सकती जिसमें सत्य का कोई अंश न हो। नहीं तो वह होती ही कैसे? स्वप्न भी सही है, क्योंकि स्वप्न होता तो है। स्वप्न में क्या होता है वह सत्य भले न हो, लेकिन स्वप्न होता है, इतना तो सत्य है ही। असत्य का तो कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने किसी का विरोध नहीं किया। इसका अर्थ नहीं कि महावीर को सत्य का पता न था। महावीर को सत्य का पता था। लेकिन उनका चित्त इतना अनाग्रहपूर्ण था कि वे अपने सत्य में विपरीत सत्य को भी समाविष्ट कर लेते थे। वे कहते थे कि सत्य इतनी बड़ी घटना है कि वह अपने से विपरीत को भी समाविष्ट कर सकता है। सत्य बहुत बड़ा है, सिर्फ असत्य छोटे-छोटे होते हैं। उनकी सीमा होती है। यही वजह है कि महावीर के विचार बहुत दूर तक, ज्यादा लोगों तक नहीं पहुँच सके। सभी लोग निश्चित वक्तव्य चाहते हैं, कोई सोचना नहीं चाहता। सब लोग उधार चाहते हैं। महावीर इतनी निश्चितता किसी को नहीं देते।

(१९) वे कहते हैं कि दूसरा भी सही है। आग्रह मत करो, अनाग्रही हो जाओ। इसलिए महावीर ने किसी सिद्धान्त का आग्रह नहीं किया। उन्होंने हर वक्तव्य के सामने स्यात् लगा दिया—'परहैप्स'। महावीर को पता है कि मोक्ष है, लेकिन उनको यह भी पता है कि अहिंसक वक्तव्य स्यात् के साथ ही हो सकता है। महावीर को यह भी पता है कि स्यात् कहने से शायद आप समझने को ज्यादा आसानी से तैयार हो जायँगे। अगर महावीर कहते कि मोक्ष है, तो वे जितनी अकड़ से कहते, आपके भीतर तत्काल उतनी ही अकड़ प्रतिध्वनित होती और कहती—कौन कहता है कि मोक्ष है? मोक्ष नहीं है, विलकुल नहीं है। अगर कोई महावीर के प्रतिद्वंद्वी गोशालक के पास जाता तो गोशालक कहता—महावीर गलत हैं, मैं सही हूँ। वही आदमी महावीर के पास आता तो महावीर कहते—गोशालक

मही हो सकता है। अगर आप ही होते तो सोचिए आप गोशालक के पीछे जाते कि महावीर के पीछे ? मरा खयाल है कि आप गोशालक के पीछे जाते। जि हाने दसा कि अनाग्रहपूर्ण होना बडे माहस की बात है व अप न बुद्धिमान लोग ही महावीर के पास आ सके। मैं बुद्धिमान उसे कहता हूँ जो सय के सम्व व स अनाग्रह पूर्ण है। महावीर की अहिंसा का जो अन्तिम प्रयोग है वह अनाग्रहपूर्ण विचार है—अथातु विचार भी मेरे नहा हैं। जिस विचार के साथ आर 'मेरे ला न्ग' उसम आग्रह जुड जायगा।



## पष्ठ अध्याय

### समस्वरता और सम्यगाजीव

जया य पूडमो होइ, पच्छा होइ अपूडमो ।<sup>१</sup>

—दश० चू० १, गा० ४

एक मित्र ने पूछा है कि महावीर रास्ते से गुजरते हो और किमी प्राणी की हत्या हो रही हो तो महावीर क्या करेंगे ? किमी स्त्री के साथ बलात्कार की घटना घट रही हो तो महावीर क्या करेंगे ? क्या वे ऐसा व्यवहार करेंगे जैसे कि वे अनुपस्थित हो ?

इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी बातें समझ लेनी चाहिए ।

एक तो यह कि हत्या में हम जो देख पाते हैं, वह महावीर को दिखाई न देगा । जो महावीर को दिखाई पड़ेगा उसे हम देखने में असमर्थ होंगे । इस भेद को समझ लेना जरूरी है । हम सोचेंगे कि कोई मारा जा रहा है । लेकिन महावीर जानते हैं कि जीवन का जो भी तत्त्व है वह मारा नहीं जा सकता, वह अमृत है । दूसरी बात—किसी की हत्या होते देख हम सोचते हैं कि मारनेवाला ही जिम्मेवार है, जबकि महावीर कहेंगे कि जो मारा जा रहा है वह भी बहुत गहरे अर्थों में जिम्मेवार है, हो सकता है कि वह केवल अपने ही किए गए किसी कर्म का प्रतिफल पा रहा हो ।

(१) हमें मारनेवाला दोषी और मारा जानेवाला हमेशा निर्दोष मालूम पड़ता है । हमारी दया और करुणा उसी की तरफ बहेगी जो मारा जा रहा है । महावीर के लिए ऐसा जरूरी न होगा । उनकी दृष्टि बहुत गहरी है और वे जानते हैं कि कोई भी कर्म अपने में पूरा नहीं है । हो सकता है कि जो मार रहा है वह केवल एक प्रतिकर्म पूरा कर रहा हो, क्योंकि इस जगत् में कोई अकारण नहीं मारा जाता । किसी का मारा जाना उसके ही कर्मों के फल की शृंखला का हिस्सा होता है । इसका यह अर्थ नहीं कि जो मार रहा है वह जिम्मेवार या दोषी नहीं है । लेकिन हमारे और महावीर के देखने में फर्क पड़ेगा । जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है, तो सोचते हैं कि निश्चित ही पाप हो रहा है, बुरा हो रहा है, कारण कि हमारी दृष्टि बहुत सीमित है । महावीर की दृष्टि इतनी सीमित

---

१. जब मनुष्य संयमी होता है, तब पूज्य बनता है; परन्तु जब समय से च्युत होता है तब अपूज्य बन जाता है ।



नहीं। वे देखते हैं जीवन की अनन्त शृंखला का और जानते हैं कि यहाँ प्रत्येक कम पीछे में जुड़ा है आर आगे से भी। हम जिन्दगी को अवकार और प्रकाश में ताड़ देते हैं। महावीर ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें पता है कि पृथ्वी पर अच्छे और बुरे का चुनाव नहीं है बस घुरा और ज्यादा घुरा का ही चुनाव है। वे जानते हैं कि इस जीवन में चौबीस घंटे अनेक तरह की हत्याएँ हो रही हैं। जब आप चलते हैं मास लेते हैं भोजन करते हैं तब भी आप हत्या कर रहे होते हैं। जब आपकी पलक झपकती है, तब हत्या हो गई होती है। लेकिन जब कभी कोई किसी को छूती है छुरा भावता है तभी हम हत्या दिखाई पड़ती है।

(२) महावीर देखते हैं कि जीवन की वा व्यवस्था है वह हिंसा पर ही खड़ी है। यहाँ चौबीस घंटे प्रतिपल हत्या ही हो रही है। मेरे एक मित्र का खयाल है कि महावीर जहाँ गया जाते थे वहाँ वहाँ अनेक अनेक मीला तक बीमार लोग तत्काल चगे हो जाते थे। मर मित्र को बीमारी के पूरे रहस्या का पता नहीं है। जब आप बीमार हात हैं तो अनेक कीटाणु आपके भीतर जीवा पाते हैं। अगर महावीर के जाने से आप मर चगे हो जायेंगे तो हजारों कीटाणु तत्काल मर जायेंगे। इस लिए महावीर इस चयन में पड़ने से रहे। यह ध्यान रखना और यह भी कि आप कुछ विशिष्ट हैं ऐसा महावीर नहीं मानते। यहाँ प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है, हर प्राण का मूल्य है। आप उतने मूल्यवान नहीं हैं जितना आप सोचते हैं। आपके शरीर में जब किसी रोग के कीटाणु पड़ते हैं तब उन्हें पता भी नहीं होता कि आप भी हैं। आप सिर्फ उनका भाजन हाते हैं।

महावीर के लिए जीवघणा ही हिंसा है हत्या है। वह जीवघणा किसी है, इसका खयाल नहीं उठता। जो जाता चाहता है, वह हत्या करेगा। ऐसा भी नहीं कि जो जीवघणा छोड़ देता है उससे हत्या बंद हो जाती हो। जब तब वह जिंदा तब तक उससे हत्या होती रहेगी।

ज्ञान प्राप्ति के बाद महावीर चालीस वर्ष जीवित रहे। उन चालीस वर्षों में जब वे चले जाते तो कोई जरूर मरा होगा, उठे जाते तो कोई जरूर मरा होगा, यद्यपि वे इतने गंभीर से जीवा यापन करते थे कि रात एक ही करवट साते थे दूसरी करवट नहीं उठे थे। लेकिन सारा ता लेनी ही पड़ती है और कोई न-कोई मरता ही है। हम यह सोचते हैं कि वह कूदकर मर क्यों नहीं गए? अपने को समाप्त ही क्यों न कर दिया? लेकिन जब अपने को समाप्त करेंगे तब उनके शरीर में पलनेवाले जीवा का क्या होगा? इसलिए हिंसा का खयाल उतना आसान नहीं जितना कि आपका आँखें देखती हैं। अगर महावीर किसी पहाड़ से कूदकर अपने को मार देते तो उतने शरीर में पलनेवाले सात करोड़ जीवन भी नष्ट हो जाते।

हत्या प्रतिपल चल रही है। प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, इसलिए जब उग

पर हमला होता है तब उसे लगता है कि हत्या हो रही है। वाकी समय हत्या नहीं होती। अगर जंगल में जाकर आप शेर का गिकार करते हैं तो वह आपके लिए खेल है और जब शेर आप का गिकार करता है तब आप उसे हत्या कहते हैं। आपके लिए वह जंगली जानवर है और आप बहुत सभ्य जानवर हैं ! और मजा यह कि शेर आपको तब तक नहीं मारेगा जब तक उसे भूख न लगी हो।

(३) गैर-अनिवार्य हिंसा कोई जानवर नहीं करता, सिवा आदमी को छोड़ कर। लेकिन हमारी हिंसा हमें हिंसा मालूम नहीं पड़ती। जो जितना हमारे निकट पड़ता है, उसकी हत्या हमें उतनी ही ज्यादा महसूस होती है। मुसलमान मर रहा हो तो जैनी को तकलीफ नहीं होती। जैनी मर रहा हो तो हिन्दू को तकलीफ नहीं होती ! अपने परिवार का कोई मर रहा हो तो तकलीफ होती है, दूसरे परिवार का कोई मर रहा हो तो सहानुभूति दिखाई जाती है।

(४) 'मैं' केन्द्र है सारे जगत् का। अपने को वचाने के लिए मैं सारे जगत् को दाँव पर लगा सकता हूँ। यही हिंसा है, यही हत्या है। महावीर जिस व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, उसमें वह हत्या दिखाई नहीं पड़ती जो आपको हत्या दिखाई पड़ गई है। इसलिए महावीर के लिए हत्या का प्रश्न बहुत जटिल है। आप किसको बलात्कार कहते हैं ? पृथ्वी पर सौ में ९९ मौकों पर बलात्कार ही हो रहा है, लेकिन बलात्कार का क्या मतलब ? पति करता है तो बलात्कार नहीं होता, लेकिन अगर पत्नी की इच्छा न हो तो पति उसके साथ जो भी करता है वह बलात्कार है। दूसरे की इच्छा के बिना कुछ करना ही बलात्कार है। हम सब दूसरे की इच्छा के बिना बहुत कुछ कर रहे हैं। सच तो यह है कि दूसरे की इच्छा को तोड़ने की ही चेट्टा में सारा मजा है। जबर्दस्ती से अहंकार की जो वृत्ति होती है वह सहज में कहाँ होती है !

अगर महावीर से पूछते तो वे कहते कि जहाँ-जहाँ अहंकार चेट्टा करता है, वहाँ-वहाँ बलात्कार हो जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी स्त्री के माथ रास्ते में बलात्कार करता है तब सदा बलात्कार करनेवाला ही हमें जिम्मेवार मालूम पड़ता है। लेकिन हम भूल जाते हैं कि स्त्री बलात्कार करवाने के लिए कितनी चेट्टाएँ करती है। अगर पुरुष को इसमें रस आता है कि वह स्त्री को जीत ले तो स्त्री को भी इसमें रस आता है कि वह किसी को इस हालत में ला दे !

(५) हमें खयाल नहीं आता कि इस जगत् में किसी को जिम्मेवार ठहराना इतना आसान नहीं। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी और सूक्ष्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तब पूरा देखेंगे और उस पूरे देखने में और हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर की जो दृष्टि है वह टोटल है, पूर्ण है।

(६) जब बलात्कार की घटना हा रही हो उस समय महावीर केवल द्रष्टा रहेंगे या कुछ करेंगे भी ? मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि महावीर कुछ भी न करेंगे । जो हाता होगा उसे वे होन देंगे । आप उस अवस्था में पञ्चीम बातें साचेंगे तब करेंगे । लेकिन महावीर से कुछ होगा साचेंगे वे नहा । जो हो जायगा, वह हो जायगा । महावीर लोटकर भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया क्याकि उन्होंने कुछ किया नहीं । इसलिए महावीर कहते हैं कि पूण कृत्य कम का बन्धन नहीं बनता—टोटल ऐक्ट कोई बन्धन नहा लाता । कुछ उनसे होगा कि नहीं, इसे हम प्रिडिक्ट नहा कर सकते । हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे । महावीर भी नहा कह सकते पहले से कि मैं क्या करूँगा । हमारे विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है । जितनी गहरी नासमझी होगी, हमारे काय उतने ही अधिक सुनिश्चित हाने । जैसे-जैसे जीवन चेतना विकसित होती है वैसे वैसे मनुष्य के काय-कलाप भुक्त और अनिश्चित होते जाते हैं । साधारण आदमी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वह बल सुबह क्या करेगा । महावीर या बुद्ध के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती । वे क्या करेंगे, यह बहुत अज्ञात और रहस्यपूर्ण है । उनको पूण दृष्टि में न जानें क्या दिखाई पड़ जायगा । पर वे साचकर कुछ करने नहीं जायेंगे । वहा दिखाई पड़ेगा और यहाँ कृत्य घटित हो जायगा । और उसका दायित्व महावीर पर बिल्कुल न होगा । अगर वे किसी की हत्या में रूकावट डालेंगे भी तो यह नहा कहेंगे कि मैंने किसी की हत्या हाने न दी । वे कहेंगे कि मैंने देखा था हत्या हा रही थी और मैंने यह भी देखा था कि इस गरीर ने बाधा डाली थी । मैं साक्षी था इस घटना का ।

महावीर गहर में सार्थी ही बन रहेंगे बलात्कार के भी और बलात्कार के राज जाने के भी । तभी वे बाहर हाने कम वे । विचार से वासना और इच्छा से किया गया कम फल लाता है । महावीर जो भी करते हैं वह प्रयोजन रहित लक्ष्य रहित, फल रहित, विचार रहित और गून्ध से निवृत्त हुआ काम होता है । गून्ध से तब कम निवृत्तता है तब वह भविष्यवाणी का बाहर हा जाना है । मैं नहीं कह सकता कि महावीर क्या करेंगे । अगर आपने महावीर से पूछा हाता तो महावीर भी नहीं कह सकते थे कि मैं क्या करूँगा ।

(७) प्रश्न है कि हम पूछना क्या चाहते हैं ? हम पूछना इसलिए चाहते हैं कि अगर हम पक्का पता चल जाय कि महावीर क्या करेंगे, तो वहा हम भी कर सकते हैं । लेकिन ध्यान रहे महावीर हुए बिना आप वही नहा कर सकते । हाँ, यही करते हुए मालूम पड़ सकते हैं । यही तो उपद्रव हुआ है । महावीर के पीछे उनके अनुयायियों की लम्बी कतार खड़ा है और वे महावीर की नकल कर रहे हैं । परन्तु इस नकल से आत्मा का कोई अनुभव नहीं उपजता । उनके-जैसे व्यक्तियों



की अनुकृति नहीं हो सकती । लेकिन सभी परम्पराएँ यही काम कर रही हैं और इसी से दुनिया में सारे धर्मों के जगड़े खड़े होते हैं । हम कर्मों में ज्ञान को नापते हैं, यही भूल हो जाती है । कर्म ज्ञान से पैदा होते हैं और ज्ञान कर्म से बहुत बड़ी घटना है ।

महावीर ने जो भी किया वह खास-खास स्थितियों में किया । कृष्ण और क्राइस्ट की स्थितियाँ उन स्थितियों से अलग थी । आपकी स्थितियाँ भी अलग हैं । फिर भी, आप शास्त्रों में खोजते हैं कि इन-इन स्थितियों में महावीर ने क्या किया, ताकि आप भी वैसा ही कर सकें । पर यह न भूलें कि न तो आज वह स्थिति है और न आप महावीर हैं । महावीर ने कभी लौटकर यह नहीं देखा कि किसने क्या किया था, वैसा ही मैं भी करूँगा । इसलिए ठीक से समझे तो महावीर जो कर रहे हैं वह कृत्य नहीं है, ऐकट नहीं है । वह घटना है, कोई नियमबद्ध बात नहीं । वह नियममुक्त चेतना से घटी हुई स्वतन्त्र घटना है । इसलिए उसमें कर्म का भी बन्धन नहीं है । महावीर से जरूर कुछ होगा, लेकिन क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता । कर्म उसका नाम नहीं है, वह घटना है । इसलिए मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता कि महावीर क्या करेंगे ।

(८) जीवन प्रतिपल बदल रहा है । वह भागती हुई फिल्म की भाँति है, चलचित्र की भाँति । वह डाइनैमिक है, उसमें सब बदल रहा है—सारा जगत् बदला जा रहा है । हर बार नई स्थिति है और हर बार नई स्थिति में महावीर नए ढंग से प्रकट होंगे । अगर महावीर आज हो तो जैनियों को जितनी कठिनाई होगी, उतनी किसी और को न होगी । जैन सिद्ध करेंगे कि यह आदमी—महावीर—गलत है । वे महावीर की २५०० साल पहलेवाली जिन्दगी उठाकर जाँच करेंगे कि यह आदमी वैसे ही कर रहा है कि नहीं कर रहा है, जबकि एक बात पक्की है कि महावीर वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि वैसी स्थिति नहीं है । सब बदल गया है । इसलिए महावीर को जैन लोग स्वीकार न कर सकेंगे । यही बुद्ध और कृष्ण के साथ होगा । होने का कारण है । हम कर्मों को पकड़कर बैठ जाते हैं । परन्तु कर्म तो राख की तरह है, धूल की तरह है । वृक्षों के सूख गए पत्तों से वृक्ष नहीं नापे जा सकते । वृक्ष में प्रतिपल नए अकुर आ रहे हैं । वे ही वृक्ष के जीवन हैं । सब कर्म आपके सूखे पत्ते हैं । वे बाहर गिर जाते हैं । वृक्ष का सम्बन्ध तो प्राण की सतत धारा से है जहाँ नए पत्ते प्रतिपल अकुरित हो रहे हैं । और नए पत्ते कैसे अकुरित होंगे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वृक्ष सोच-सोचकर पत्ते नहीं निकालता । वृक्ष से पत्ते निकलते हैं । सूरज कैसा होगा, हवाएँ कैसी होंगी, वर्षा कैसी होगी, चाँद-तारे कैसे होंगे, यह इन सब पर निर्भर करेगा । उन सबसे—समग्र से—पत्ते निकलेंगे ।



महावीर जस राग समग्र म जीत हैं । कुछ नहा बहा जा सकता कि व क्या  
गरे । हा सकता है, जिस पर बलात्कार हो रहा है उन डाँटें-उपटें । फिर भी  
बृछ नहा बहा जा जाता ।

(९) गिल्ली बहुत जटिल है। घटी जा पिट रहा है यह जरूरी नहा कि वह पिटने के योग्य हो और जा पीट रहा है यह भी जरूरी नहा कि वह गलत हो कर रहा हो। महावीर उस व्यक्ति किसी ना घटना का उसका पूरी जटिलता में दमन हैं। इसलिए व क्या करेंगे, यह कहना आसान नहा है।

(१०) समय के सम्बन्ध में कुछ भ्रम याद रखें। महावीर समय का धर्म या दूमरा महत्त्वपूर्ण सूत्र कहते हैं। अहिंसा धर्म की आत्मा है, समय सांस है और तप देह। महावीर ने गुरु किया अहिंसा स—अहिंसा मयमो तवा। तप का आखिर मरणा मयम का बीच में और अहिंसा को तब तक पहन। हम तप का पहले देखते हैं, मयम को पीछे। अहिंसा का गायत्री ही दिशाई पड़ती है। महावीर भीतर से बाहर का तरफ चलते हैं, हम बाहर से भीतर की तरफ। इसलिए हम तपस्वी की जितनी पूजा करते हैं उतनी अहिंसक की नही, क्योंकि तप हम दिशाई पड़ता है वह देह जगा बाहर है। अहिंसा गहर में है, अदृश्य है। समय का हम अनुमान लगाते हैं। जब हम थोड़ा तपस्वी जिताई पड़ता है तब हम समझते हैं कि वह समयी है नही तो तब बस मरगा। परन्तु तपस्वी भी असमयी हो सकता है और जगर में दिशाई पड़नेवाला गायत्री भी समयी हो सकता है। यद्यपि समयी के जीवन में तप होगा है फिर भी तपस्वी के जीवन में समय का हाना आवश्यक नहीं है। महावीर भीतर में जानते हैं क्योंकि यही प्राण है और वहीं चलता अग्नि है। धृष्ट से विराट की तरफ जाना में मग्न होते जाते हैं। विराट से धृष्ट का तरफ जाने में थका भूला नही हाना।

जान तोर स समझा जाता है कि समय का अर्थ है निराश, दमा, नियंत्रण, पड़ा आदि। जब बाद अपन का दयाता है अपनी पत्निया का बोधना है नियंत्रण न लगता है तब हम कहते हैं कि वह समय है। समय की यह परिभाषा क्या नियोज्य है? यही निगटिब है। एकिन महात्मा जैत व्यक्ति जीवन का नियम की परिभाषा नही है, बसकि जीवन नियम न ही चलता। जीवन का लक्ष्य उन्हा बिषय न चली है। मन्त्रालय न बिना मन्त्र का बात नही है उन्म जीवन का बिहित याना है वह आभासित हाता है। बिना जिनका ही मन्त्रालय नही है उनका जीवन का नही बसता हुआ बिना नही है, धीन हाता हुआ मन्त्रालय है। उन्ही बुद्धि का नही मन्त्रालय नही हाता जाता है।

(११) आश्रय को राख लेता है वह जगत् दर्शित न मयमी है । न क म्म  
म । उ अनायास का मुक्त है । नहीं जीवन व मार मृत मित्रार तीर फलप व है  
विनायक उपनिषद् व है विशेष व तथा । महाभारत व विष्णु मयम सी है ।

हमारे लिए सयमी है स्वयं से लड़ता हुआ आदमी । महावीर के लिए सयमी है अपने साथ राजी हुआ व्यक्ति । हमारे लिए सयमी है अपनी वृत्तियों को संभालता हुआ आदमी; महावीर के लिए सयमी है वह जो अपनी वृत्तियों का मालिक हो गया है । संभालता तो वही है जो मालिक नहीं है । लड़ना पड़ता इसलिए है कि आप वृत्तियों से कमजोर हैं । महावीर के लिए सयमी का अर्थ है आत्मवान्, इतना आत्मवान् की वृत्तियाँ उसके सामने खड़ी भी नहीं हो पाती । ऐसा नहीं कि उसे ताकत लगाकर क्रोध को दवाना पड़ता है । जिसे हम ताकत लगाकर दवाते हैं, वह दबता तो नहीं, उल्टे परेशान करता है और आज नहीं तो कल, फूट पड़ता ही है ।

( १२-१३ ) शक्ति जब स्वयं के भीतर होती है तो वृत्तियों से लड़ना नहीं पड़ता । वृत्तियाँ आत्मवान् व्यक्ति के सामने सिर झकाकर खड़ी हो जाती हैं । हम जिसे सयम कहते हैं वह दमन है और हमारा सयमी आदमी उस सारथी के समान होता है जो रथ में घोड़ों की लगाम पकड़े बैठा है । महावीर की दृष्टि में संयमी वह शक्तिवान् व्यक्ति है जो अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित है । उसका शक्ति में प्रतिष्ठित होना या अपनी ऊर्जा में होना ही वृत्तियों का निर्वल और नपुंसक हो जाना है । महावीर अपनी कामवासना पर वश पाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते, वे अपनी हिंसा से लड़कर अहिंसक नहीं बनते और न अपने क्रोध से लड़कर ही क्षमा करते हैं । ब्रह्मचर्य की भी ऊर्जा है, इससे काम-वासना सिर नहीं उठाती । चूँकि वे अहिंसक हैं, इसलिए हिंसा का वश नहीं चलता । क्षमा की इतनी शक्ति है कि क्रोध को उठने का अवसर नहीं मिलता । महावीर के लिए स्वयं की शक्ति से परिचित हो जाना ही सयम है ।

‘सयम’ नाम बहुत अर्थपूर्ण है । इसके लिए अंग्रेजी में ‘कंट्रोल’ शब्द का प्रयोग करते हैं, जो कि गलत है । अंग्रेजी में सिर्फ एक ही शब्द है जो सयम का पर्याय बन सकता है, यद्यपि भाषाशास्त्री उसे अनुपयुक्त कहेंगे । वह शब्द है ‘ट्राविवलिटी’ । सयमी वह है जो विचलित नहीं होता, जो अविचलित रहता है, निष्कम्प है, ठहरा हुआ है । गीता में कृष्ण ने जिसे स्थितप्रज्ञ कहा है, महावीर के लिए वही सयमी है । अमयम का अर्थ है कम्पन, वेमरिंग, ट्रेम्बलिंग । काँपते हुए मन का नियम है कि वह एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है । फिर ऊबेगा, परेशान होगा । सब वासनाएँ उवा देती हैं । उनसे मिलता कुछ नहीं है । मिलने के जितने सपने थे, वे और टूट जाते हैं । वासना से घिरा मन अति पर जाता है, फिर वासना से ऊब जाता है और तब दूसरी अति पर चला जाता है, जहाँ वह वासना के विपरीत खड़ा हो जाता है । कल तक ज्यादा खाता था, आज से एकदम अनशन करने लगता है ।

( १४ ) इसलिए ध्यान रखिए, अनशन की धारणा सिर्फ ज्यादा भोजन उपलब्ध

किए हुए समाजा में हानी है। अगर जैनियाँ को उपवास और आशन अपीत करना है तो इसका कारण यह है कि उनको ज्यादा खाने को मिला हुआ है। गरीब का जो धार्मिक दिन होता है उस दिन वह अच्छे भोजन करता है और अमीर अपने धार्मिक दिन का उपवास करता है। जहाँ जहाँ भोजन बन्ता है, वहाँ वहाँ उपवास का कट्टा बन्ता है।

( १५ ) सच तो यह है कि ज्यादा खानेवाला जब उपवास करता है तब उस कुछ उपलब्ध नहीं होता, सिवा इसके कि उसको भोजन करने का रस फिर से उपलब्ध होना लगता है जोम में स्वाद लौट आता है। महावीर कहते हैं कि उपवास में रस में मुक्ति होनी चाहिए, लेकिन उपवास के बाद साधारण लोग के लिए भोजन का रस और प्रगाढ़ हो जाता है। यहाँ तक कि उपवास में भी सिवा रस के आदमी और कुछ भी नहीं सोचता। वह रस पर चिन्तन करता है योजनाएँ बनाता है। उसकी मरी हुई भूख फिर सजीव हो उठती है। दस दिन के बाद आदमी टूट पड़ता है भोजन पर। अति पर जाता है मन। और असयम है एक अति से दूसरी अति पर जाना, दा अतियाँ के बीच डोल्त रहना। सयम का अर्थ है मध्यम हो जाना।

अगर हम समझें तो कि ज्यादा भोजन असयम है तो मैं आपसे कहना हूँ कि कम भोजन भी असयम है, दूसरी अति पर जाना है। सम्यक् आहार सयम है। ज्यादा खा लेना या कम खा लेना जानना है सम्यक् आहार अति कठिन है क्योंकि मा सम्यक् पर रुकता ही नहीं।

महावीर की गणनावली में अगर कोई गलत सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक् ही है। सम्यक् का अर्थ है—मध्यम, अति पर नहीं, वहाँ जहाँ सब चीजें सम हो जाती हैं। जहाँ अति का तनाव रहा रह जाता, वहाँ सब चीजें समस्वरता का उपलब्ध हो जाती हैं। इसी समस्वरता का नाम सयम है। निषेध सयम रहा है, क्योंकि निषेध में हम दूसरी अति पर हात है।

( १६ ) मन बीच में नहीं रुकता क्योंकि मन का अर्थ है तनाव, टेंशन। बीच में रहेंगे तो तनाव नहीं होगा। जब तक अति पर न हो, तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए मन एक अति से दूसरी अति पर टाँता रहता है। मन जीता हा है अति में और समाप्त हो जाता है मयम में। इसलिए जब आप कहते हैं कि अमुक आत्मीय के पास बहुत सयमी मन है तब आप बिल्कुल गलत कहते हैं। सयमी के पास न होना ही नहीं। अगर हम ऐसा कहें कि मन ही असयम है तो कोई अनिश्चयकित न होगी। जैनवाद में आफकीर हैं वे कहते हैं कि सयम तभी उपलब्ध होता है जब 'नो माइड का उपलब्धि होती है—जब माइड नहीं रह जाता। परीर न भी 'अ मन' की अवस्था को सयम की अवस्था कहा है।

लेकिन हम तनाव में ही जीते हैं। अगर चिन्तन में तनाव न हो तो हम सम्यक् हैं,



हम मर जायेंगे । जो लोग ध्यान में गहरे उतरते हैं, वे कहते हैं कि ऐसा लगता है, कहीं मर न जायँ । डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, वैसे-वैसे मन शून्य होता जाता है । जब मन शून्य होता है तब ऐसा महसूस होता है कि हम मर रहे हैं ।

( १७ ) तो सयम में निषेध का भाव नहीं है । जब दोनों अतियाँ साथ खड़ी हो जाती है तब दोनों एक-दूसरे को काट देती हैं और आदमी मुक्त हो जाता है । चूँकि लोभ और त्याग दोनों सम्भव हो जाता है, इसलिए आदमी न तो त्यागी होता है और न लोभी । अकेला लोभ उतना ही बेचैन करता है जितना त्याग, क्योंकि त्याग उलटा खड़ा हुआ लोभ है ।

( १८ ) काम-वासना में मन उतना ही बेचैन होता है जितना ब्रह्मचर्य में; क्योंकि ब्रह्मचर्य है क्या ? वह शीर्षासन करता हुआ काम है । वास्तविक ब्रह्मचर्य तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन ब्रह्मचर्य का पता भी नहीं रह जाता । वास्तविक त्याग तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन त्याग का बोध भी नहीं रह जाता । बोध कैसे रहेगा ? जिसके मन में लोभ ही न रहा, उसे त्याग का पता कैसे रहेगा ? जब तक आपको पता है कि मैं त्यागी हूँ तब तक जानना कि आपके भीतर लोभ मजबूती से खड़ा है । जब तक आप खड़ाऊँ बजाकर या चोटी-बोटी बाँवकर घोषणा करते फिरते हैं कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, तब तक आप इसकी ही घोषणा करते हैं कि आप खतरनाक आदमी हैं । खड़ाऊँ बजाकर की आवाज सुनकर लोगों को सचेत हो जाना चाहिए । ब्रह्मचर्य का दावा काम-वासना का ही रूप है । हम सयम को तब उपलब्ध होते हैं जब न काम रहता है और न ब्रह्मचर्य, न लोभ और न त्याग, न यह अति पकड़ती है और न वह अति—जब आदमी अनति में, मौन और शान्ति में थिर हो जाता है, जब दोनों बिन्दु समान हो जाते हैं और जब एक-दूसरे की शक्ति एक-दूसरे को काटकर शून्य कर देती है ।

( १९ ) इसलिए सयम सेतु है । इसके ही माध्यम से कोई व्यक्ति परम गति को उपलब्ध होता है । इसलिए सयम को मैंने श्वास कहा ।

आप श्वास लेने में भी असयमी होते हैं । चाहे तो आप ज्यादा श्वास लेते हैं या कम श्वास लेते हैं । पुरुष ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित है, स्त्रियाँ कम श्वास लेती हैं । जो आक्रामक है वे अधिक श्वास लेते हैं, जो सुरक्षा के भाव में पड़े हैं वे कम श्वास लेते हैं । कम लोग हैं जिन्होंने सच में ही सयमित श्वास लिया हो । हमारी साँस भी तनाव के साथ चलती है । कामवासना में वह तेज हो जाती है, इसलिए पसीना आ जाता है, शरीर थक जाता है । ब्रह्मचर्य साधने में कम श्वास लेना पड़ता है । असल में जो ब्रह्मचारी है वह एक अर्थ में सब मामलों में कजूस है । वह वीर्य-शक्ति के मामले में ही नहीं, श्वास के मामले में भी कजूस होता है, सब चीजों को भीतर रोक

तना चाहता है। य अतिर्या हैं। श्वास की सरलता उस क्षण म उपवन्ध होती है जब आपको पता ही नहीं लगता कि आप श्वास ले रहे हैं। जो व्यक्ति जितना समयी होता है उसकी सास भी उतनी ही समयित हो जाती है। ध्यान मे जो लाग गहरे जात हैं वे मुखसे आकर पूछत हैं कि कहा सास बंद तो नहीं हो जायगी ? बंद नहीं होती साम। लेकिन इतनी शान्त और समतुल हो जाती है कि इसका आना जाना पता ही नहीं चल्ता। जिस व्यक्ति की सास जितनी समयित हो जाती है उसके भीतर समय की सुविधा उतनी ही बढ जाती है। इसलिए महावीर न सास के ऊपर बडे गहर प्रयोग किए हैं।

( २० ) महावीर नही कहत कि कम खाओ, कम सोओ। व कहत हैं कि उतना ही खाओ जितना सम है खाओ लेकिन न ता भूख का पता चले और न माजा का। महावीर कहत हैं कि पता चलना बीमारी की पहचान है। असल म गरीर के उसी अंग का पता चल्ता है जा बीमार होता है। स्वस्थ अंग का पता नहा चल्ता। महावीर कहत हैं सम्यक् आहार करा कि पता ही न चले। भूख का भी नहा, भोजन का भी नहा सोन का भी नही जागन का भी नहीं, थम का भी नहा, विश्राम का भी नही। मगर हम दो म स एक् ही कर पात हैं। थुद्ध भी ज्यादा कर लेन का कारण क्या है ? कारण है कि ज्यादा कर लेन मे हम पता चलता है कि हम हैं। यह अहंकार है कि हम पता चलता रहे कि हम हैं। औरा को भी मेरी उपस्थिति का बोध होता रहे। इसलिए असयम के सिवा हमारे लिए और कोई भाग नही रह जाता।

( २१ ) कवि महावीर-जैस व्यक्ति अनुपस्थित होने का ही समय और अहिंसा कहत हैं। असयम अयान् हिंसा। हिंसा पर्याय है मालवियत की भावना का, अहंकार का, अपनी उपस्थिति का औरा पर जाहिर करने का। अगर हम महावीर की जिन्गी म पाँों ता किम बात का पता है हमें ? गुना है कि उनके वान म कीलें ठोकी गई थी। लेकिन यह महावीर की जिंदगी की घटना नही है यह तो उनकी जिन्गी का घटना है जिहाने कोलें ठाकी थी। सुना है कि किसी न चित्लाकर महावीर का तीयकर बह गिया था। यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। अगर हम महावीर के जीवन म घटनाओं की खोज करे ता कोरा कागज ही हाथ आयेगा। अल्ह आदमी की काद जिन्गी नहा होती। इसलिए कहानी लिउनी हो या उपयाग, धुरे आदमी का ही चुना पडता है।

( २२ ) रावण क बिना हम रामायण का पन्वना भी नहा कर सवत। तावक हाने क लिए बुरा होता किंकुल जम्री है। किन्तु समयी आत्मी क जीवन से सारी घटनाए बिना हा नानी हैं। असयमा आत्मी कहना चाहता है कि म हूँ। यमी वह ज्यादा सागर जाहिर करता है कि म हूँ और यमी उपमान, यमी बदचाल्य जाकर

और कभी मन्दिर जाकर । मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जगत् में जितना बुरे आदमी को नाम मिलता है, अगर उतना अच्छे आदमी को भी नाम मिलने लगे तो कोई आदमी बुरा न होगा । बुरा आदमी भी अस्मिता की, अहंकार की खोज में ही बुरा होता है ।

( २३ ) सयमी का अर्थ है—जो द्वन्द्व में कुछ भी नहीं करता, जो कहता है न दोस्ती करेगे, न दुश्मनी करेगे ! महावीर किसी से मित्रता नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि मित्रता एक अति है । वे किसी से शत्रुता भी नहीं करते, क्योंकि शत्रुता भी अति है । लेकिन हम ? हम उलटा सोचते हैं । हम सोचते हैं कि अगर दुनिया से शत्रुता मिटानी हो तो सबसे मित्रता करनी चाहिए । हम गलती में हैं । मित्रता एक अति है, उसमें शत्रुता पैदा होती है ।

( २४ ) जब महावीर कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है तो इसका मतलब है कि मेरी किसी से मित्रता नहीं, शत्रुता नहीं । कोई सम्बन्ध नहीं, एक निराकार भाव वचा है, एक सम्बन्धित स्थिति वची है । कोई पक्ष वचा नहीं है, एक तटस्थ दगा वची है । जब कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है तब हम इस मूल में न पडे कि वह हमारी-जैसी मित्रता है । हमारी मित्रता शत्रुता के बिना हो नहीं सकती और न हमारा-प्रेम घृणा के बिना हो सकता है । महावीर-जैसे लोगो को समझने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनका प्रयोग हम साधारण जन करते हैं । लेकिन वे भिन्न अर्थों में उन शब्दों का प्रयोग करते हैं । उनका भाव हमारे भाव से मेल नहीं खाता ।





# ससम अ याय

## सयम की विधायक दृष्टि

इह लोए निष्पिनासस्स, नत्थि किंचि विदुक्कर ।<sup>१</sup>

—उत्त० अ० १९, गा० ४४

(१) सयम मृत्यु के भय से सिकुट गए चित्त की रुग्ण दशा नहीं है वह अमृत की वषा में प्रफुल्लित हो गए तथा नृत्य करत हुए चित्त की दशा है। सयम किसी भय से रिया गया सहाच नहीं है और न किसी प्रलोभन से आरोपित की गई आदत। वह किसी अभय में चित्त का फलाव और विस्तार है, किसी आनन्द की उपलब्धि में अन्तर्वीणा पर पटा हुआ मगीत। सयम निगेटिव नहीं, पाजिटिव है। लेकिन परम्परा उसे निषेध मानकर चलती है क्योंकि निषेध जामान है। मरना आमान है जीना बहत कठिन है।

सिकुड जान से ज्याना आसान कुछ भी नहीं।

मिलने के लिए अंतर ऊना का जागरण चाहिए। सिकुडन के लिए किसी जागरण का अथवा किसी नई शक्ति का जन्म नहीं पड़ती।

महावीरता पूरा जस सिले हुए व्यक्तित्व हैं। हाँ, उनके पीछे जा परम्परा बनती है, उसमें सिकुड गए लागा की धारा की श्रृंखला बनती है। पीछे के युगों में इन सिकुडे हुए लागा का देखकर महावीर के सम्प्रदाय में निणय होने लगते हैं। लगता है, महावीर कुछ छोटे रहे हैं, यही सयम है। नही लगता कि महावीर कुछ पा रहे हैं वही सयम है। और ध्यान रखें पाए बिना लाडना असम्भव है। जा पाए बिना छोड़ता है बट गगन हो जाता है सिकुट जाता है। पाए बिना लाडना असम्भव है।

(२) महावीर का पाना इतना विराट है कि उसकी तुलना में जो बल तक उनके हाथ में था, वह सूखी और व्यर्थ हो जाता है।

(३) निषेधामय सयम से पूरा पदा नहीं हात देकर बाँटे उपजते हैं। और जो बाँट बाहर जाकर प्रकट होकर से रह जाते हैं वभातर आत्मा में छिप जाते हैं। इसलिए जिसे हम सयमी कहते हैं वह पीछे निगाह पड़ता है किसी पहाड़ को ढाता हुआ मानस पड़ता है। उसका चारा तरफ आँखों की धाराएँ दबटती



हो जाती है। जो सयमी परिपूर्ण चित्त से हँस न सके, वह अभी सयमी नहीं है। निषेध और दमन उसके व्यक्तित्व को खडित कर डालते हैं। उसके भीतर अनेक द्वेष हो जाते हैं। वह अपने आपको ही वाँटकर लडना शुरू कर देता है। उनमें कभी जीत नहीं होती। स्वयं से लडनेवाले कभी नहीं जीतते। परन्तु महावीर का रास्ता जीत का रास्ता है।

(४) सयम से लडना अपने ही दोनों हाथों को लडाने-जैसा है। न बायाँ जीत सकता है और न दायाँ, क्योंकि दोनों के पीछे मेरी ही ताकत लगती है। खडित व्यक्तित्व विक्षिप्तता की ओर जाता है।

अगर आप चोरी करे तो कभी अखड न होंगे। आपके भीतर का एक हिस्सा चोरी के खिलाफ ही खडा रहेगा। इसी तरह झूठ के साथ पूरी तरह राजी हो जाना असम्भव है। लेकिन अगर आप सत्य बोलें, चोरी न करें, तो आप अखड हो सकते हैं। महावीर ने उन्ही-उन्ही बातों को पुण्य कहा है जिनसे हम अखड हो सकते हैं। वह पाप है जो हमें खडित करता है, आदमी को टुकड़ों में बाँटता है। आदमी का जुड जाना ही पुण्य है।

महावीर लडने को नहीं कहते, जीतने को जरूर कहते हैं। जीतने का रास्ता यह नहीं कि मैं अपनी इन्द्रियो से लडने लगूँ; जीतने का रास्ता यह है कि मैं अपने अतीन्द्रिय स्वरूप की खोज में सलग्न हो जाऊँ, अपने भीतर छिपे हुए खजाने की खोज में जुट जाऊँ। जैसे-जैसे वे खजाने प्रकट होंगे, वैसे-वैसे कल की महत्वपूर्ण चीजें गैर-महत्वपूर्ण हो जायँगी।

(५) महावीर जिसे सयमी कहते हैं, वह व्यक्ति इसके पागलपन से मुक्त हो जाता है। महावीर एक और भीतरी रस खोजते हैं, एक ऐसा रस जो भोजन से नहीं मिलता। एक और रस भी है जो भीतर सम्बन्धित होने से मिलता है। हमारी इन्द्रियो का काम संयोजन करना है, जोड़ना है--वे सेतु का, संयोजक कडी का, काम करती है। स्वाद की इन्द्रिय हमें भोजन से और आँख की इन्द्रिय दृश्य जगत् से जोड देती है। महावीर कहते हैं कि जो इन्द्रिय हमें बाहर के जगत् से जोड सकती है, वह हमें भीतर के जगत् से भी जोड सकती है। भीतर भी ध्वनियों का एक अद्भुत जगत् है। कान उससे भी हमें जोड सकता है। भीतर भी रस का सागर लहराता होता है। जीभ भीतर के इस रस से हमें जोड सकती है।

(६) आपने सुना होगा कि साधक और योगी अपनी जीभ उलटा कर लेते हैं। साधक और योगी का यह काम सिर्फ प्रतीक है। इसका अर्थ यह है कि जीभ का जो रस बाहर पदार्थों से जुडता था, वह अब भीतर आत्मा से जुड जाता है। साधक अपनी आँख उलटी चढा लेता है। इसका कुल अर्थ इतना ही है कि वह जो बाहर देखता था, अब भीतर देखने लगता है। और एक बार भीतर का स्वाद आ जाय

तो बाहर के सब स्वाद वस्वाद हो जाते हैं। इन्द्रिया को भीतर की तरफ मोड़ना समय की प्रक्रिया है।

कम भाडेंगे ? कभी छोटा सा प्रयाग करें तो बात समझ में आ जायगी।

घर में बठ हा तो सुनना शुरू करें बाहर की आवाज का। जागरूक होकर सुनें कि कान क्या-क्या सुन रहे हैं ? सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जाग जाय। जन्न मारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जागे हा तो एक बात यह भी खयाल करें कि बाइ ऐसी भी आवाज है जो बाहर से नहीं आ रही है। आप एक सन्नाट में अलग ही सुनना शुरू कर देंगे। बाजार की भीड़ में भी एक आवाज सुनाइ पड़ेगी जो आपके भीतर पूरे समय गूजती रहती है।

(७) इसकी प्रतीति जन्मे ही हागी वैसे ही बाहर की आवाजें कम रसपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी जोर भीतर का संगीत आपके रस का पकड़ना शुरू कर देगा। जैसे जैसे हम भीतर जाते हैं, बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है जब न कुछ बाहर रह जाता है और न कुछ भीतर। जिस दिन यह घड़ी आती है जब जा बाहर है वही भीतर और जो भीतर है वही बाहर उस दिन आप जयन्त का उत्पन्न हो जा गये, उस इक्वालिब्रियम की स्थिति में सब सम हो जाता है, जिसमें सब ठहर जाता है, मोन हो जाता है, जिसमें कोई भाग दौड़ नहा होती, कोई कम्पन रहा होता।

(८) किसी भी इन्द्रिय से शुरू करें और भीतर की ओर बढ़ते चले जायें। फौरन ही यह इन्द्रिय आपको भीतर से जाड़ने का कारण बन जायगी। आँख से देखना शुरू करें फिर आँख बन्द कर लें। बाहर के दृश्य देखें, देखते रहें और धीरे-धीरे अन्तर के दृश्य के प्रति जायें। बहुत शीघ्र आपका बाहर के दो दृश्यों के बीच में भीतर के दृश्यों की शक्तों जानी शुरू हो जायेंगी। कभी भीतर ऐसा प्रकाश भर जायगा, जो बाहर मूल में देने में असमर्थ होगा, कभी भीतर ऐसी रंग पैदा पायेंगे जो इन्द्रियनुषा में भी नहीं हैं।

( ९ ) प्रत्येक इन्द्रिय भीतर ल जान का द्वार बन सकती है। स्वप्न बहुत विद्या है आपन। तो बठ जायें, आँखों का बन्द कर लें और स्वप्न पर ध्यान कर। सब स्वप्न पड़े हा जान दें सब चारा बार बार फिर साजना शुरू करें कि क्या बाइ ऐसा ना स्वप्न है जो बाहर से न आया हो ? और थोड़े ही थम जोर सक्त्प से आपका ऐसा स्वप्न की अनुभूति हा लमगी जो बाहर से नहीं आई है। जिस दिन आपका उस स्वप्न का बोध हागा, उस दिन समझ लालिए कि आपने भीतर का स्वप्न पा लिया। उस दिन बाहर के स्वप्न व्यर्थ हो जायेंगे। आपकी जा इन्द्रिय सबम ज्ञाना तीव्र है उसे आप दुर्मा बना लत हैं। अगर आपके लिए समय बाइ जिसे धारमक म्मा नहा है तो आपकी जो इन्द्रिय सर्वाधिक सक्रिय है वही आपकी मित्र

है। आप उसी के द्वारा भीतर पहुँच सकेंगे। जिस व्यक्ति ने अभी बाहर के रंगों को भी नहीं जिया और जाना, उसे भीतर के रंगों तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होगी।

(१०) आपकी जो इन्द्रिय सर्वाधिक संवेदनशील है, उनसे अगर आप लड़ेंगे तो वह कुठित हो जायगी। समझ लें कि आपने अपने हाथों ही अपना नेतु तोड़ लिया है। अगर आप विधायक समय की धारणा से चले तो आप उसी इन्द्रिय को मार्ग बना लेंगे, उसी पर आप पीछे लौट आएँगे। और ध्यान रहे, जिस रास्ते से हम बाहर जाते हैं, उसी रास्ते से भीतर आना सम्भव होता है। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। यह आपको अजीब लगेगा, लेकिन मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि लोग इन्द्रियों के कारण बाहर नहीं भटकते, उन इन्द्रियों के कारण बाहर भटक जाते हैं जिनके रास्ते वे तोड़ देते हैं।

महावीर ने आत्मा की तीन स्थितियाँ कही हैं। एक को वे कहते हैं वहिर् आत्मा अर्थात् वह आत्मा जो अभी इन्द्रियों को बाहर की ओर उपयोग कर रही है। दूसरी को महावीर अन्तरात्मा की संज्ञा देते हैं। यह वह आत्मा है जो अब इन्द्रियों का भीतर की तरफ उपयोग कर रही है। और तीसरी को महावीर कहते हैं परमात्मा—अर्थात् वह आत्मा जिसका वहिर् और अन्तर मिट गया है, जो न बाहर जा रही है और न भीतर आ रही है। जो बाहर जा रही है वह वहिर् आत्मा है, जो भीतर आ रही है वह अन्तरात्मा है, जो कहीं नहीं जा रही है और अपने स्वभाव में प्रतिष्ठित है, वह परमात्मा है।

इन्द्रियों का यह वहिरूप हमें पदार्थ से जोड़ता है। इन्द्रियाँ जब बाहर जोड़ती हैं तब वे पदार्थ से जोड़ती हैं और भीतर चेतना से जोड़ती हैं। जिस जगह वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं, उस जगह उनका रूप अति स्थूल होता है। लेकिन वे ही इन्द्रियाँ हमें स्वयं से भी जोड़ती हैं। इन्द्रियों का बहुत स्थूल रूप ही बाहर प्रकट होता है।

(११) परमात्मा तक पहुँचना हो तो अन्तरात्मा से गुजरना पड़ेगा। वहिर् आत्मा हमारी आज की स्थिति है, मौजूदा स्थिति। परमात्मा हमारी सम्भावना है, हमारा भविष्य, हमारी नियति। अन्तरात्मा हमारा यात्रा-पथ है। उससे हमें गुजरना पड़ेगा भीतर जाने के रास्ते वे ही है जो बाहर जाने के रास्ते हैं। दूसरी बात यह है कि बाहर इन्द्रियाँ स्थूल से जोड़ती हैं और भीतर सूक्ष्म से। इसलिए इन्द्रियों के दो रूप हैं। एक को हम ऐन्द्रिक शक्ति कहते हैं और दूसरी को अतीन्द्रिय शक्ति।

(१२) रूसी वैज्ञानिक वासिलिएव के प्रयोगों के परिणामस्वरूप कई अर्धे लडके हाथ से पढ़ने लगे हैं। रूस में ही एक अर्धे लडकी को पैर से पढ़वाने की कोशिश की गई। दो महीने में वह लडकी पैर से भी पढ़ने लगी। फिर वह दीवाल के पीछे रखे हुए बोर्ड को भी पढ़ने में सफल हुई। अन्त में उसे कई मील के फासले पर रखी हुई किताब को खोलकर पढ़वाया गया और वह उसे भी पढ़ने लगी। वासिलिएव ने



कहा कि हम जितनी शक्तियाँ के सम्बन्ध में जानते हैं, निश्चित ही उनसे भिन्न कोई अन्य शक्ति भी हम मिली होती है।

(१३) याग निरन्तर उस शक्ति का चचा करता है। महावीर की सयम प्रक्रिया का लक्ष्य उस अन्य शक्ति को जगाना है। जस-जसे वह अन्य शक्ति जगती है वस वस इन्द्रिया फीकी हो जाती है। जो श्रेष्ठतम है, आदमी उसे ही चुनता है। यदि आपका इन्द्रिया का अतीन्द्रिय रूप प्रकट होना शुरू हो जाय तो निश्चित ही आप इन्द्रिया का रस छोड़ देंगे और एक नए रस में प्रवेश कर जायेंगे। जो अभी इन्द्रिया में ही जीत हैं और जिनकी समझ की सीमा इन्द्रिया के पार नहीं है, वे आपका महा त्यागी कहेंगे। लेकिन आप केवल भाग की ओर गहनतम दिशा में आगे बढ़ते हैं और उस रस का पान लगत ही जा इन्द्रिया में जीनवाले आदमी को कभी पता ही नही चलता।

अतीन्द्रिय सम्भावनाओं को बढाने के लिए महावीर ने बहुत ही गहन प्रयोग किए हैं। अगर वे भाजन के बिना क्यों रह जाते हैं तो इसका कारण है। कारण यह है कि उन्होंने एक भाजन भीतर पाना शुरू कर दिया है। अगर वे पत्थर पर लेट जाते हैं तो इसका कारण यह है कि उन्होंने भीतर के एक नए स्पर्श जगत में रहना शुरू कर दिया है। अब उनके लिए बाहर की चीज़ों का महत्त्व नहीं है। इसलिए मत्त-वार मिकुड़े हुए मालूम नहीं पड़ते, फले हुए मालूम पड़ते हैं। वे आनन्दित हैं, तथा कथित तपस्विता-जस दुर्लभ नहीं है।

(१४) बुद्ध ने भी वही साधना की जो महावीर ने की है। लेकिन जहाँ महावीर आनन्द का उपलब्ध हुए वही बुद्ध को बहुत पीड़ा हुई। महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हुए बुद्ध केवल निरल हो गए। निरजना नदी को पार करते वक्त एक दिन वस्तुतः कमजोर थे कि उनमें किनारे को पकड़कर चढ़ने की शक्ति भी नहीं थी। एक वृद्ध की गड का पकड़कर वे साँचने लगे कि जिस उपवास से मैं नदी पार करनी शक्ति प्राप्त हुआ उसमें इस भयसागर का क्या पार कर सकूँगा? इसलिए बुद्ध इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तपस्चर्या व्यर्थ है। वे बुद्धिमान और ईमानदार थे। यदि वे नाममय होते तो इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते। अनेक नासमझ लोग उन दिशाओं में भी लगे चले जाते हैं जो उनके लिए नहीं हैं और जो उनके व्यक्तित्व से तालमेल नहीं खाती। ध्यान रहे कि जो आपकी दिशा नहीं है, उसमें आप पूरा प्रयास नही नही कर सकते। इसलिए यह भ्रम बना ही रहगा कि मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूँ।

अमल में वे लोग जिनसे बुद्ध प्रभावित हुए थे, निषेधमार्गी थे। जिस गुरु ने जा छानने का कहा, वे छोड़ते गए। साथ छोड़कर उन्होंने पाया कि गवता छूट गया मिला कुछ भी नहीं, मैं केवल दीन-हीन और दुःख हो गया।

इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा ? ऐसा लगता है कि अनुभव ने हम कुछ सीखते ही नहीं । और जो अनुभव से नहीं सीखता, वह समय में नहीं जा सकता । समय में जाने का अर्थ ही है कि अनुभव से असमय गलत दीखा, दुःख लगा । अनुभव ने बताया कि असमय पीडा है, नर्क है ।

(२०-२१) फिर भी लगता है कि असमय न हो तो जीवन में कुछ नहीं । न स्वाद में रस और न संगीत में रुचि । हमने जीवन को असमय का पर्याय बना लिया है और हमारी धारणा है कि अगर महत्त्वाकांक्षा न रही तो जीवन भी निस्सार हो गया । हमें लगता ही यह है कि पाप ही जीवन की विधि है, असमय ही जीवन का ढग है । इसलिए हम मुन लेते हैं कि समय की बात अच्छी है । लेकिन वह हमें छू नहीं पाती । इसका कारण है कि जब भी हमें संयम का खयाल उठता है तो लगता है, समय निषेध है । समय को निषेधात्मक मान लेने की वजह से हमारी तकलीफ है । मैं नहीं कहता कि यह छोड़ो, वह छोड़ो । मैं कहता हूँ, यह भी पाया जा सकता है, वह भी पाया जा सकता है । हाँ, इस पाने में कुछ छूट जायगा, निश्चित ही । लेकिन तब भीतर खाली जगह नहीं छूटेगी, वहाँ एक नई तृप्ति होगी, एक नया भराव होगा ।

हमारी सभी इन्द्रियाँ एक पैटर्न और व्यवस्था में जीती हैं । जब आपको अतीन्द्रिय दृश्य दिखाई पड़ने शुरू हो जायेंगे तब आपको केवल अपनी आँखों से ही छुटकारा नहीं मिलेगा । जिस दिन आँख से छुटकारा मिलता है, उस दिन कान के जगत् में भी भीतर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, कान से छुटकारा मिल जाता है ।

(२२-२३) आपकी एक वृत्ति समय की तरफ जाने लगे तो आपकी समस्त वृत्तियाँ उस ओर चल पड़ेगी । और ध्यान रहे, श्रेष्ठतर सदा शक्तिशाली होता है । अगर एक व्यक्ति घर में ठीक हो जाय तो वह उस पूरे घर को ठीक कर सकता है । प्रकाश की एक किरण अनन्त गुना अधिकार से भी शक्तिशाली हो सकती है, समय का एक छोटा-सा सूत्र असमय की अनन्त जिन्दगियों को मिट्टी में मिला देता है । हाँ विधायक दृष्टि होनी चाहिए । उस इन्द्रिय से काम शुरू करना चाहिए जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो । अपने व्यक्तित्व की समझ होनी चाहिए और अधानुकरणसे बचने का संकल्प । उसी मार्ग से लौटने का यत्न होना चाहिए जिस मार्ग से हम बाहर गए हैं । नहीं मालूम आपको किस जगह द्वार मिलेगा । आप पहुँचने की फिक्र करें, न कि यह जिद्द कि मैं प्रवेश करूँगा तो इसी दरवाजे से । हो सकता है, वह दरवाजा आपके लिए दीवाल सिद्ध हो, हो सकता है कि जीनेन्द्र के मार्ग से आप कहीं न पहुँचें । आप किसको माननेवाले हैं, यह उस दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप पहुँचेंगे ।

## अष्टम अध्याय

### तपश्चर्या

एव तव तु दुविह, जे सम्म आयरे मुणी ।  
सो सिप्प मव्वससारा, विप्पमुच्चड पटिओ ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० ३०, गा० ३७

अहिंसा है आत्मा, सयम है प्राण तप है शरीर । स्वभावतः अहिंसा और सयम  
के सम्बन्ध में भूले हुए हैं गलत व्याख्याएँ हुई हैं । लेकिन य भूलें इनसे अपरिचय  
के कारण हुए हैं । तप के सम्बन्ध में जो गलत व्याख्याएँ हुई हैं वे हमारी परिचय  
की भूलें हैं । तप से हम परिचित हैं—तप में हम आत्मा से परिचित हो जाते हैं ।  
जन्म में तप तब जान के लिए हम जपन का बदलना ही नहीं पड़ा । हम जस ह  
वस ही हम तप में प्रवेश कर जाते हैं । हम जन्म हैं वैसा ही अगर तप में चले जाएं  
तो तप हम बदल नही पाता, हम तप को ही बदल चाहते हैं ।

( १ ) तप की गलत व्याख्या निरन्तर होती रही है । इस समझ लेनी चाहिए  
तानि हम ठीक व्याख्या की ओर कन्म उठा सकें । हम भोग से परिचित हैं यानी  
दुःख की आकांक्षा से । सुख की सभी आकांक्षा दुःख में ल जाती है । इससे स्वभावतः  
एक भूल पैदा होता है और वह यह है कि यदि हम सुख की मांग करके दुःख में पहुँच  
जाते हैं तो क्या दुःख की मांग करके सुख में लही पहुँच सकते ? यदि सुख की  
आकांक्षा दुःख ला सकती है तो क्या न हम दुःख की आकांक्षा करें और सुख पा लें ।  
इसलिए तपस्वी की जो पहली भूल है, वह उसके भागी चित्त में निबलती है । भागी  
चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुःख में ले जाता है । यानि हम विपरीत करें तो सुख में  
पहुँच सकते हैं । सभी अपने का सुख देने की वागिश करते हैं हम अपना का दुःख देने  
का वागिश करें । यदि सुख की वागिश लुप्त जाता है तो दुःख की वागिश सुख ला  
जागी । तपस्वी ऐसा ही सीधे गणित में विश्वास करता है । लेकिन जिन्दगी इतनी  
साधी नहीं है और जिन्दगी का गणित इतना साफ नहीं है ।

( २ ) दुःख की आकांक्षा सुख नहीं ले आती यद्यपि ऐसी आकांक्षा के मूल  
में सुख की ही आकांक्षा है । सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती । ऊपर से

१ जो पंडित, मुनि ब्राह्मण और आर्यतर, दानों प्रकार के तपों का सम्यक् आचरण  
करता है, वह समस्त ससार से पाप ही मुक्त हो जाता है ।



दिखाई पड़ता है कि आदमी अपने को दुःख दे रहा है, लेकिन वह दुःख इसलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले वह सुख दे रहा था ताकि मुग्न मिले, अब दुःख दे रहा है ताकि सुख मिले। आकाक्षा का केन्द्र अब भी सुख ही है, इसलिए दुःख मिलेगा।

सच बात तो यह है—इसे न भूलें—कि दुःख चाहा ही नहीं जा सकता। हाँ, अगर कभी कोई दुःख चाहता है तो सुख के लिए ही। लेकिन वह चाह मुग्न की ही है। दुःख चाहा नहीं जा सकता। यह असम्भव है। जिनने दुःख के नाश चाह को जोड़कर तप बनाया, वह तपस्वी नहीं हो सकता और न उनका तप तप होता है।

( ४ ) आपने सुना होगा कि यूरप में ईसाई फकीरो का एक सम्प्रदाय था जिसके सदस्य अपने को कोड़ा मार-मारकर लहलुहान कर लेते थे। लोग उनकी तपश्चर्या देख चकित रह जाते थे। इस सम्प्रदाय की मान्यता थी कि जब भी काम-वासना उठे, तब अपने को कोड़ा मारो। धीरे-धीरे कोड़ा मारनेवालों को पता चला कि कोड़ा मारने में काम-वासना का ही आनन्द आता है। जब उनके शरीर में लहू बहता, तब उनके चेहरे पर ऐसा मग्न-भाव होता जो केवल सम्भोग-रत जोड़ों में ही देखा जा सकता है। इसलिए लोग तो उनकी तपश्चर्या से प्रभावित होकर उनके चरण छूते और वे तपस्वी स्वयं काम-वासना का आनन्द लेते।

लेकिन तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुःखवाद से उत्पन्न नहीं होता। तपस्वी कोड़े मारकर भी सुख ही चाहता है, दुःख नहीं। इसलिए यह न भूलें कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख ही। भूखे मरने और काँटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, घूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता है, वगैरें एक बार आपके भीतर की किसी वासना से कोई दुःख संयुक्त हो जाय। आदमी अपने को दुःख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जब हम शरीर से मुक्त होना चाहते हैं, इसकी सजावट की कामना से मुक्त होना चाहते हैं, तब या तो नंगे खड़े हो जाते हैं या शरीर में राख लपेटते हैं अथवा उसे कुरूप कर लेते हैं। लेकिन हमें पता नहीं कि राख लपेटना या नग्न हो जाना शरीर से ही सम्बन्धित है। यह भी सजावट है। यह देखकर आप चकित होंगे कि राख लपेटने वाले साधु भी एक छोटा आईना रखते हैं। राख ही लपेटना है तो आईने का क्या प्रयोजन? लेकिन आदमी अद्भुत है। उसके लिए राख लपेटना भी सजावट और शृंगार है। शरीर को सुन्दर बनानेवाले के लिए ही आईने की जरूरत नहीं होती, शरीर को कुरूप बनानेवाले को भी आईने की जरूरत पड़ जाती है।

( ५ ) शरीर को सतानेवाले की दृष्टि हमेशा शरीर पर लगी होती है। चूँकि शरीर से सुख नहीं मिलता, इसलिए इसे सताने की चेष्टाएँ होती हैं। शरीर को सताना कुछ वैसा ही है जैसा उस कलम को गाली देना, या जमीन पर पटककर तोड़ देना, जो ठीक न चले। कलम को तोड़ देने से कलम का कुछ भी नहीं टूटता, आपका



ही टूटता है। शरीर का सतानवाले तपस्वी की चेनता शरीर केन्द्रित ही होती है। उसे शरीर कभी नहीं मूलता। ध्यान रखें, भागी और तथाकथित तपस्वी के बीच शरीर के सम्बन्ध में कोई अंतर नहीं पड़ता।

(६) जो तप शरीर का माध्यम स जी रहा है वह भाग का ही विकृत रूप है। जो तप शरीर-केन्द्रित है वह भोग का ही दूसरा नाम है, भाग की शरीर का साथ बदला लेने की आकांक्षा है। इस ठीक से समझकर ही हम तप की दिशा में आँखें उठा सकते हैं।

आज के तथाकथित तपस्वी आत्म हिंसक हैं। अपने को ना जितना सता सकता है, वह उतना बुरा तपस्वी कहा जाता है। लेकिन मताने का, आत्मपीडन का कोई सम्बन्ध तप से नहीं है। ध्यान रखें जो अपने को सता सकता है वह दूसरे को सताने से बच नहीं सकता। जो अपने को तप में सता सकता है, वह किसी को भी सता सकता है। निश्चित ही भोगी का मताने का ढंग सीधा होता है त्यागी का पराश्र। अगर आपने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं और आपका त्यागी भभूत लगाए बैठा है तो वह आपके कपड़े को उसे दोगा जैसे वह कोई दुश्मन को देखता हो। उसकी आँखा में निंदा होगी, आप कीड़े मकोड़े मानूँ पड़ेंगे।

(७) तथाकथित तपस्वी आपको नुक भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके तक के सारे इतजाम कर रहा है। वे यह सोच नहीं सकते कि आपका भी गुण मिले। और बड़े गाने का दाव है कि उनके स्वर्ग का सुख आपने ही सुख का विमोक्षण रूप है। किसी कल्पना से नज़रना है यह सारी विचार धारा? सच में जो तपस्वी है वह किसी के लिए दुःख की कोई बात साच भी नहीं सकता। लेकिन तथाकथित तपस्वियों ने नुक की जो विवचना की है और अपने शास्त्रों में उसका जो चित्रण किया है वह उनकी रम्य कल्पना गति का ही परिचय देता है।

ध्यातव्य है कि तपस्वी आपका भोग की बड़ी निन्दा करते हैं और उस निन्दा में बहुत रस लेते हैं। यह एक रोचक तथ्य है कि वात्स्यायन ने अपने कामनूय में शास्त्रों के अंगों का बसा गुत्तर सरस चित्रण नहीं किया है जहाँ तपस्वियों ने भोगी के अंगों की निन्दा करने के लिए अपने शास्त्रों में किया है। यह भी कम भजे की बात नहीं है कि भागियों के आसपास गन अम्तराएँ आकर नहीं पाचता, वे सिर्फ तपस्वियों के ससमास आकर पाचती हैं। तपस्वी सोचते हैं कि वे उनका तप भण्ड करके के लिए आती हैं। लेकिन मनाविज्ञान का पता है कि इस जगत में अम्तराएँ ना कोई क्षणजाम नहीं है तपस्वियों को भण्ड करके के लिए। अम्निव तपस्वियों को भण्ड करके क्या चाहेगा? बचारा अम्तराएँ शास्त्रों के रूप में क्या एक ही घटा करेंगे—तपस्वियों का भण्ड करने का? उनका लिए और कोई काम ही नहीं है?

(८) सच तो यह है कि वे (अम्तराएँ) बिना स्वयं में नहीं उतरा, बरिष्ठ

तपस्वी के सघर्षरत मन से उतरती है, तपस्वी के मन में जो छिपा है उसे ही बाहर प्रकट करती हैं।

तप विकृत हो तो दमन होता है। और दमन मनुष्य को रुग्ण करता है, स्वस्थ नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर के तप में दमन का लेश भी न था। महावीर ने अगर दमन जैसे शब्दों का वही प्रयोग भी किया है तो किसी और ही अर्थ में। उनके लिए दमन का अर्थ था शान्त हो जाना। शान्त कर लेना भी नहीं, बल्कि शान्त हो जाना। जिस चीज से आपको दुख हुआ है, उसके विपरीत चले जाने से दमन पैदा होता है। यदि काम-वासना ने मुझे दुःख दिया है तो काम-वासना के विपरीत जाना और उससे लड़ना दमन कहलाएगा।

(९) महावीर कहते हैं कि अगर घणा से मुक्त होना है तो राग से भी मुक्त हो जाना पड़ेगा। अगर शत्रु से वचना है तो मित्र से भी वच जाना पड़ेगा। जीवन के सभी रूप अपने विपरीत से बँधे हुए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति जिस चीज से लड़ेगा वह उससे ही बँधा रहेगा। अगर आप धन से लड़ रहे हैं और धन के विपरीत जा रहे हैं, तो धन आपके चित्त को सदा घेरे रहेगा। तप इन्हीं भूलों में पड़कर रुग्ण हो गया है और जिन्हें हम तपस्वी कहते हैं उनमें से ९९ प्रतिशत मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार हैं।

(१०-११) पशु विकृत नहीं होता क्योंकि वह प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी दो कोशिशें कर सकता है। चाहे तो वह प्रकृति में लड़ने की कोशिश करे और आज नहीं तो कल विकृति में उतर आए, या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे और संस्कृति में प्रवेश कर जाए। अतिक्रमण तप है, न कि विरोध और सघर्ष। बुद्ध ने एक बहुत अच्छे शब्द का प्रयोग किया है। वह शब्द है पारमिता। वे कहते हैं—लड़ो मत, इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ।

(१२) मैं कहता हूँ कि अगर घाटी के अँधेरे से लड़ना है तो घाटी के अँधेरे में ही रहना पड़ेगा। अगर मैं घाटी के अँधेरे से नहीं लड़ता तो उस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। जहाँ मैं खड़ा हूँ वहाँ चारों ओर वृत्तियाँ हैं भोग की। वे भी हैं और आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है, सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर। गलत त्यागी कहता है कि मैं इस वृत्ति को कैसे मिटाऊँ; सही त्यागी कहता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठूँ? वृत्ति से जो लड़ता है, उसका ध्यान वृत्ति पर होता है। स्वयं को जो ऊँचा उठाता है, उसका ध्यान स्वयं पर होता है। वृत्ति से लड़नेवाले का ध्यान बहिर्मुखी होगा, स्वयं को ऊर्ध्वगमन की ओर प्रवृत्ति करने वाले का ध्यान अन्तर्मुखी।

(१३) तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान के लिए नए केन्द्र निर्मित करो। नए केन्द्र हमारे भीतर हैं। उन केन्द्रों पर ध्यान को ले जाओ। ध्यान को जैसे ही कोई नया केन्द्र मिलता है, वह वैसे ही नए केन्द्र में

गतिन को उँडेलने लगता है और पुराने बन्धों का मक्ति मिल जाती है, गिरने की ओर ऊँध्वगमन शुरू हो जाता है। काम-चामना का हमारा केन्द्र सबन नाने है। चर्ने से हम प्रकृत से जुड़े हैं। महसूस हमारा सबसे ऊँचा बन्ध है। वही से हम परमात्मा से—दिव्यता, भयता और भगवत्ता से—जुड़े हैं। आपन बन्धी खयाल दिया है कि आपने भस्तिप्य में विचार चलता है काम-चामना का और आपका काम-केन्द्र किस प्रकार तबाल सत्रिय हा जाता है? विचार चलता है भस्तिप्य में और तबाल सत्रिय हा उठता है जगम दूर आपका काम बन्ध। ठीक इसी प्रकार जस ही तपस्वी महसूस की ओर ध्यान देता है वैसे ही सन्सार का सत्रिय होना शुरू हा जाता है और जब गति ऊपर की ओर जाती है तब उसका नीचे की तरफ जाना असम्भव हा जाता है। जब गति को निच पर चढ़ा का माग भिन्न लगता है तब वह घाटियाँ छात्रन लगती है। जब प्रकाश के जगम में गति का प्रकाश होने लगता है तब वह अँधेरे के जगत् से चुपचाप उठने लगती है। उसके मन में तो अँधेरे की निन्हा हानी है और न विराघ। ध्यान का स्फांतरण है तप।

सुप्य के नातर जीवन का जो अग्नि है उस अग्नि का ऊँध्वगमन तपस्वी का स्फा होता है उस नीचे का ओर ल जाना योग का लय। माणा बन्ध है जो जीवन की अग्नि का नीचे की ओर प्रवाहित करता है। तपस्वी उस अग्नि का परमात्मा ओर गिद्धावस्था की ओर ल जाता है।

( १४ ) तब घूटिए ता अग्नि का स्वाय ही ऊपर की ओर जाता है। पानी नीचे की ओर बहता है लेकिन अग्नि? यह स्वाय में ऊँध्वगमन है। एक बार आपका जगम जाय अग्नि का ऊँध्वगमन हात का अनुभव हा जाय ता फिर आपका जगम ऊपर जान का गिद्धा प्रकाश नया करना पता। एक बार महसूस का तरफ तपस्वी का ध्यान मुट जाय ता फिर उस नया हा करती पढ़ती। फिर तो यह अग्नि अतन आप बहती रहती है।

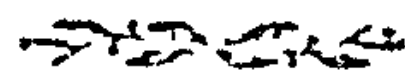
( १५ ) गमन तपस्वी जिस आदत घाता है तब की। ठीक तपस्वी स्वाय मोक्षता है, गमन ता बताना। गिद्धा गमन तपस्वी जाता है दग टान तपस्वी स्वीकार कर लाता है। जा नी स्वीकार हा जाती है, जा पर ध्यान जाय बन्ध हा जाता है उस ऊँचा मिनी पन्ध जो जाता है। गमन तपस्वी गमन शीला पर ध्यान लाता है जिस पर नाती लाता है। ताब तप का प्रक्रिया ध्यान का स्फांतरण है। गमन तपस्वी गमन शीला पर ध्यान लाता है जिस पर न माया ध्यान हाता। और न तदा कविता स्याती। ध्यान प्रक्रिया बन्ध सत्रिया है जिस नया दिष्ट उसका दिने पतिता। अतन गमन गमन जोर जायता ध्यान गमन तपस्वी जाय गमन जायता। तप की प्रक्रिया महसूस का अतन मोक्षता ता तप दिग्घा और बन्ध का स्फांतरण करती है



जहाँ ध्यान दीड जाय और जहाँ नए केन्द्र सशक्त होने लगे । इसलिए तपस्वी कम-जोर नहीं होता, शक्तिशाली होता है ।

(१६) ठीक विधायक तप कहता है—शक्ति पैदा करो, ध्यान को रूपान्तरित कर उसे नए केन्द्रों पर ले जाओ ताकि शक्ति वही जाए ।

(१७) तप ध्यान के केन्द्र को बदलने की प्रक्रिया है । महावीर ने तप के बारह हिस्से किए हैं और इनमें प्रत्येक हिस्सा स्वभावतः वैज्ञानिक प्रक्रिया है ।



## नवम अध्याय

### तप की वैज्ञानिक प्रक्रिया

खवेत्ता पुण्यम्साइ सजमेण तवेण य ।

सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पयकमति महेसिणो ॥\*

—उत्त० अ० २८, गा० ३६

धम विज्ञान ही नहा, परम विज्ञान है । जहा विज्ञान केवल पदार्थ का स्पर्श कर पाता है, वहाँ धम उस चैतन्य का भी जिसका स्पर्श करना धम्ममव मादूम पडता है । विज्ञान केवल पदार्थ को बदल पाता है, नए रूप दे पाता है, धम उस चैतना का भी रूपांतरित करता है जिस रूपा भी नहीं जा सकता छुआ भी नहा जा सकता । इसलिए धम परम विज्ञान है । विज्ञान का लक्ष्य होता है उस प्रक्रिया, पद्धति या व्यवस्था को जानना जिससे कुछ किया जा सकता है । बुद्ध कहते थे कि सत्य का अर्थ है वह जिससे कुछ किया जा सके । जो सत्य नपुमक है जिससे कुछ नहीं हो सकता, जो सिर्फ सिद्धांत है, वह सत्य व्यर्थ है । सत्य वही है जो कुछ कर सके—जो काइ बदलाहट, कोई क्रांति, काई परिवर्तन ला सके । धम ऐसा ही सत्य है । धम चित्तन नहीं है और न विचार, धम आमू—रूपांतरण है, म्यूटेगन है । तप धम के रूपांतरण की प्रक्रिया का प्राथमिक सूत्र है ।

(१) जगत में जा भी हम दिखाई पडता है, वह वैसा नहा है जैसा दिखाई पडता है । जा भी दिखाई पडता है वह स्थिर, ठहरा हुआ या जमा हुआ पदार्थ है । लेकिन विज्ञान कहता है कि इस जगत में काइ भी चीज ठहरी हुई वा जमी हुई नहा है, जा भी है वह गत्यात्मक है डाइनैमिक है । जिस कुर्सी पर आप बठे हैं वह पूरे समय नदा के प्रवाह की तरह वही जाना है । अगर गति अधिक हो जाय तो चीजें ठहरी हुई मालूम पडती हैं । अधिक गति के कारण, ठहराव के कारण नहीं । आपकी कुर्सी का एक एक परमाणु अपने केन्द्र पर उतनी ही गति से दौड़ रहा है जितनी गति से सूर्य का किरणें दौडती हैं—एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मी० । परमाणुओं का तीव्र गति की वजह से आप कुर्सी से नहीं गिरते ।

(२) याद रहे कि यह गति भा बहुआयामी है मल्टी डाइमेंशनल है । आपकी

\* महर्षिगण सधम और तप द्वारा जन्मे सभी पूव धर्मों को क्षीय करके सभी दुःखा से रहित मोक्षपद को पाने के लिए प्रयत्न करते हैं ।

कुर्सी के परमाणुओं का अपने भीतर घूमना कुर्सी की पहली गति है। प्रत्येक परमाणु अपने न्यूक्लियस पर—केन्द्र पर—चक्कर काट रहा है। फिर कुर्सी जिस पृथ्वी पर रखी है, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। इसलिए कुर्सी भी पूरे समय पृथ्वी के साथ घूम रही है। यह उसकी दूसरी गति है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है। यह कुर्सी की तीसरी गति है। उसकी चौथी गति का कारण यह है कि सूर्य अपनी कील पर घूम रहा है और उसके साथ उसका सारा सौर परिवार—कुर्सी भी—घूम रहा है। पाँचवी गति—वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य किसी महानूर्य का चक्कर लगा रहा है। बड़ा चक्कर है वह। कोई बीन करोड़ वर्षों में एक चक्कर पूरा होता है। यह पाँचवी गति कुर्सी भी कर रही है, क्योंकि वह भी सौर परिवार से बाहर नहीं है। वैज्ञानिकों का खयाल है कि जिन महानूर्य का परिभ्रमण हमारा सूर्य कर रहा है, वह महासूर्य भी अपनी कील पर घूम रहा है और उसके साथ हमारी कुर्सी भी गतिमान है। वैज्ञानिकों ने एक और गति की चर्चा की है, सातवी गति की। उनका कहना है कि वह महासूर्य जो अपनी कील पर घूम रहा है, दूसरे सौर परिवारों से प्रतिक्षण दूर हटता जा रहा है। पदार्थ की ये ही सात गतियाँ हैं। आदमी में प्राण अथवा जीवन में, एक आठवी गति भी है। जहाँ कुर्सी चल नहीं सकती वहाँ जीवन चल सकता है। धर्म की दृष्टि में नौवी गति भी है। वह कहता है कि आदमी तो चलता ही है, उसके भीतर की ऊर्जा भी नीचे या ऊपर की ओर जा सकती है। तप का संबंध इस नौवीं गति से ही है। आठ गतियों तक विज्ञान काम कर लेता है, किन्तु धर्म की सारी प्रक्रिया का केन्द्र नौवी गति है।

(३-५) हमारे भीतर की जो ऊर्जा है वह नीचे या ऊपर जा सकती है। जब हम काम-वासना से भरे होते हैं तब हमारी ऊर्जा नीचे जाती है, जब हम आत्मा की खोज से भरे होते हैं तब वह ऊपर की ओर जाती है। इसी प्रकार जब हम जीवन से भरे होते हैं तब हमारी ऊर्जा भीतर की तरफ जाती है। धर्म की दृष्टि में भीतर और ऊपर एक ही दिशा के नाम हैं।

(६-७) एक बड़े मजे की बात है कि ठहरी हुई कील पर ही चाक को चलना पड़ता है। अगर कील भी चल जाए तो गाड़ी गिर जाए। इसका अर्थ यह हुआ कि विपरीत से ही सतुल्य आता है। इसलिए तपस्वी की चेष्टा होती है कि वह अपने चारों ओर इतनी अग्नि पैदा कर ले कि उस अग्नि के अनुपात में उसके भीतर शीतलता का बिन्दु पैदा हो जाए, वह अपने चारों ओर इतनी गत्यात्मक गति को जनमा ले कि भीतर गूँथ का बिन्दु उपलब्ध हो जाए, वह अपने चारों ओर ऊर्जा के इतने तीव्र परिभ्रमण से भर जाए कि उसकी धुरी ठहर जाए, खड़ी हो जाए। तपस्वी वह है जो ताप से भरा हुआ है परन्तु जिसका केन्द्र शीतल है। तपस्वी वह है जिसके चारों ओर शक्ति जग जाती है परन्तु जिसके केन्द्र पर शीतलता आ जाती है। वैज्ञा-



निका का पहले सवाल था कि सूय जलती हुई अग्नि ही है, उबलती हुई अग्नि लेकिन अब वैज्ञानिक कहत है कि सूय अपने केन्द्र पर बिल्कुल शीतल है। जहा इतना प्रचंड अग्नि हो वहा उसका सन्तुलित करने के लिए केन्द्र पर गहन शीतलता होनी ही चाहिए, नहीं तो सन्तुलन टूट जायगा। ठीक ऐसी घटना तपस्वी के जीवन में घटती है। उसके चारों ओर ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है लेकिन उस उत्पन्न ऊर्जा को सन्तुलित करने के लिए केन्द्र बिल्कुल शीतल हो जाता है। इसलिए तप से भरे हुए व्यक्ति से ज्यादा शीतलता का बिन्दु इस जगत् में दूसरा नहीं है।

( ८-१२ ) तपस्वी का ताप बाह्य नहीं होता। वैसा ताप शरीर के आस-पास आग की अगीठी जला लेने से पैदा नहीं होगा। यह ताप आन्तरिक है। इसलिए महावीर ने यह निषेध किया है कि तपस्वी अपने चारों ओर आग न जलाए धूनी न रमाए। धूनी से मिला हुआ ताप बाह्य होता है उससे आन्तरिक शीतलता पैदा न होगी। ध्यान रह कि शीतलता आन्तरिक तभी होगी जब ताप भी आन्तरिक होगा। यदि ताप बाह्य होगा तो शीतलता भी बाह्य होगी। यदि अन्तर की यात्रा करनी है तो बाहर के मस्टीटयूट नहीं खोजने चाहिए—वे घोखे के हैं खतरनाक हैं।

( १३ १५ ) आम तौर से हम जिन्हें तपस्वी कहते हैं वे ऐसे लोग हैं जो—अपने भौतिक शरीर का ही सतान में लगे हैं। भौतिक शरीर से कुछ लेना-देना नहीं है। इस शरीर के भीतर छिपा हुआ जो दूसरा शरीर है—ऊर्जा-शरीर या एनर्जी बाडी—उसके ऊपर ही काम करना है। योग में निम्न चक्रों की बात की गई है, वे चक्र इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं। वे ऊर्जा शरीर के चक्र हैं। यही कारण है कि माल्य-चिकित्सक जब इस शरीर का वाटत हैं तब उन्हें ये चक्र कहीं नहीं मिलते। जिन्हें हम चक्र कहते हैं वे ऊर्जा शरीर के बिन्दु हैं यद्यपि इन बिन्दुओं के अनुरूप, इनसे कारिस्पोंड करने वाले स्थान इस शरीर में अवश्य हैं लेकिन ये स्थान चक्र नहीं हैं। हमारे शरीर के भीतर छिपा हुआ और इसके बाहर इसे चारों ओर घेरे हुए जो आभा मंडल है, वही हमारा वास्तविक शरीर है हमारा तप शरीर।

( १६ २१ ) इस भूमि पर हिंदुओं ने प्राण ऊर्जा के सम्बन्ध में सर्वाधिक गहरा अनुभव किया था इसलिए उन्होंने सर्वाधिक तीव्रता से शरीर को नष्ट करने के लिए आग का इतना काम किया गाढ़ने का नहीं। यदि शरीर गला गया तो उस गलने, टूटने और मिट्टी में मिलने में छह महीने लग जाएंगे। उन छह महीने तक आत्मा का भटकना हो सकता है। तब तब जला देने का प्रयोग उन्होंने सिर्फ इसलिए किया कि इसी क्षण आत्मा का पता चल जाए कि शरीर नष्ट हो गया है व्यक्ति मर गया है। जब तक यह अनुभव में न आए कि मैं मर गया हूँ तब तक नए जीवन की खोज शुरू नहीं होती। मैं मर गया हूँ—यह अनुभव कर लेने पर आत्मा नए जीवन की सृजन में निवृत्त पड़ती है।



( २२-२३ ) अब मैं तप का पहला सूत्र आपसे कहता हूँ—इस शरीर से अपना तादात्म्य छोड़े, यह मानना छोड़े कि मैं यह शरीर हूँ । अपने को शरीर मानने से ही सारा भोग फैलता है । जिस आदमी ने अपने को भौतिक शरीर समझा, वह दूसरे भौतिक शरीर को भोगने के लिए आतुर हो जाता है । इससे ही सारी काम-वासना पैदा होती है । जिस व्यक्ति ने अपने को यह भौतिक शरीर समझा वह भोजन में बहुत रसातुर हो जाता है, वह अपनी ही इन्द्रियो के हाथ विक जाता है । इसलिए तप का पहला सूत्र है कि मैं शरीर नहीं हूँ । शरीर के साथ अपने को तादात्म्य करने की आदत को तोड़े । यदि सचमुच इस तादात्म्य को तोड़ना है तो स्मरण रखे कि इसके किए सकल्प अनिवार्य है । इस सकल्प के बिना गति नहीं है । और सकल्प से ही तादात्म्य टूट जाता है क्योंकि वह सकल्प से ही निर्मित है । जन्म-जन्म के सकल्प का परिणाम है यह मानना कि मैं यह शरीर हूँ । इस सकल्प को तोड़े बिना तप की यात्रा नहीं हो सकती । इस सकल्प के साथ भोग की ही यात्रा होगी । यह संकल्प हमने किया ही इसलिए है कि हम भोग की ही यात्रा कर सके ।

( २४ ) अगर मुझे यह पता हो कि मैं यह शरीर नहीं हूँ तो हाथ के लिए यह भाव नहीं जगेगा कि मैं इससे किसी सुन्दर शरीर का स्पर्श करूँ । यह हाथ मैं हूँ ही नहीं । तपस्वी का हाथ डडे की भाँति हो जाता है । डडे से किसी शरीर का स्पर्श किया जाय तो इससे आनन्द नहीं मिलता । जैसे ही सकल्प टूटा और प्रतीति हुई कि मैं हाथ नहीं हूँ, तपस्वी का हाथ वैसे ही डडा हो जाता है । उस हाथ से किसी के सुन्दर चेहरे को छूना डडे से छूना-जैसा हो जाता है ।

भोग का सूत्र है कि मैं यह शरीर हूँ, तप का सूत्र है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ । भोग का सूत्र 'पाँजिटिव' है, तप का सूत्र नकारात्मक । जब आप कहते हैं कि मैं शरीर हूँ तो कुछ पकड में आता है, जब आप यह कहते हैं कि मैं शरीर नहीं हूँ तो कुछ पकड में नहीं आता । यदि तप का यही एक सूत्र हो कि मैं यह शरीर नहीं हूँ तो तप हार जायगा, भोग जीत जायगा । इसलिए तप का दूसरा सूत्र है कि मैं ऊर्जा-शरीर हूँ, एनर्जी वाँडी हूँ, प्राण-शरीर हूँ । तो दो काम करे । इस शरीर से तादात्म्य छोड़े और प्राण-ऊर्जा के शरीर से तादात्म्य स्थापित करे । बल इस बात पर पड़े कि मैं ऊर्जा-शरीर हूँ । अगर आपका जोर इस बात पर रहा कि यह शरीर मैं नहीं हूँ तो गलती हो जायगी ।

महावीर ने तप के दो रूप कहे हैं—आन्तरिक तप अथवा अतर तप और बाह्य तप । अन्तर और बाह्य तप के उन्होंने छह-छह हिस्से किए हैं । पहले हम बाह्य तप से बात शुरू करेंगे, फिर अन्तर तप पर आएँगे । अगर तप की प्रक्रिया खयाल में आ जाए और सकल्प में चली जाए तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस पर निकले बिना अमृत का कोई अनुभव नहीं हो सकता । हम जहाँ हैं वहाँ तो बार-



## दशम अध्याय

### महावीर की दृष्टि में अनगन

अत्यगयमि आडच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।

आहारमाडय सव्व, मणमा वि न पत्थए ॥'

दग० अ० ८ गा० २८

महावीर ने तप को दो रूपों में विभाजित किया है। इसलिए नहीं कि 'तप दो रूपों में विभाजित हो सकता है, बल्कि इसलिए कि हम उसे बिना विभाजित किए समझ ही नहीं सकते। इसका भी एक कारण है। वह यह है कि हम विभाजित मनुष्य हैं। हम अपने को ही छोड़कर, अपने से ही च्युत होकर, अपने में ही दूर खड़े हैं। ऐसा नहीं कि हम दूसरों से अजनबी हैं, सच तो यह है कि हम अपने से ही अजनबी हैं। इसलिए विभाजित मनुष्य को समझ के बाहर होगा अविभाज्य तप। महावीर तप को दो हिस्सों में बाँटते हैं हमारे कारण, अन्यथा उनकी-जैसी चेतना को बाहर और भीतर का कोई अन्तर नहीं रह जाता। महावीर तो वहाँ हैं जहाँ बाहर भी भीतर का ही एक छोर हो जाता है और भीतर बाहर का एक दूसरा छोर। वे वहाँ हैं जहाँ भीतर और बाहर एक ही अस्तित्व के दो अंग हो जाते हैं। इसलिए यह विभाजन हमारे लिए है।

(१) महावीर ने तप के दो रूप कहे हैं—बाह्य तप और अंतर तप। उचित होता कि महावीर अंतर तप को ही पहले रखते, क्योंकि वह जो आन्तरिक है वही प्राथमिक भी है। लेकिन उन्होंने अंतर तप को पहले नहीं रखा, पहले रखा है बाह्य तप को। इसका कारण यह है कि महावीर के सुननेवालों के लिए आन्तरिक द्वितीय स्थान रखता है, बाह्य ही प्रथम है। महावीर की करुणा कहती है कि वे वही से बोले जहाँ सुननेवाला खड़ा है। यद्यपि उनके लिए आन्तरिक प्रथम है, उनके सुननेवालों के लिए आन्तरिक का स्थान द्वितीय है। इसलिए वे बाह्य तप को पहले रखते हैं, कारण कि हम बाहर हैं। और चूँकि महावीर ने बाह्य तप को पहले रखा है, इसलिए उनके अनुयायियों ने बाह्य तप को ही प्राथमिक समझ लिया है। यही भूल हुई है और यही से बाह्य तप में लगे रहने की लम्बी धारा चल पड़ी है। अब तो स्थिति

---

१. सूर्य के उदय होने से पहले और सूर्य के अस्त हो जाने के बाद निर्ग्रन्थ मुनि को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की (मन से भी) इच्छा नहीं करनी चाहिए।



ऐसी आ गइ है कि बाह्य तप ही पूरा नहीं हो पाता इसलिए आन्तरिक तप तक जाने का सवाल ही नहीं उठता। बाह्य तप ही जीवन का दुगो लेता है। लेकिन इसे भी ध्यान में लें कि जब तक आन्तरिक तप पूरा नहीं हो जाता तब तक बाह्य तप भी पूरा न होगा।

अन्तर और बाह्य एक ही चीज हैं। इसलिए यह सोचना कि बाह्य तप पहले पूरा हो जाए तब मैं अन्तर तप में प्रवेश करूँगा, गलत है। इससे बाह्य तप कभी पूरा नहीं होगा, क्योंकि बाह्य तप मध्य बाधा हिंसा है। वह कभी पूरा नहीं हो सकता। जन-माघना नहीं भटक गई है वह यही जगह है। यही से इस विद्वान् का सूत्रपात होना है कि पहले बाह्य तप पूरा हो जाए तो फिर आन्तरिक तप में चतुरंगे। मैं कहता हूँ—बाह्य तप कभी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि बाह्य जो है वह अचूरा ही है। वह तो पूरा तभी होगा जब आन्तरिक तप भी पूरा हो। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर ये दोनों तप साथ-साथ चलें तभी पूरे हो पाते हैं अन्यथा पूरे नहीं हो पाते। लेकिन विभाजन न हम ऐसा समझा दिया कि पहले हम बाहर को पूरा कर लें, पहले बाहर को साध लें फिर भीतर को यात्रा करेंगे। ध्यान रहे कि तप एक ही है बाहरी और भीतरी तप सिर्फ कामचलाऊ विभाजन है।

✓ (२) अगर कोई अपने परा को स्वस्थ करना चाह और सोच कि पहले पैर स्वस्थ हो जाए फिर सिर स्वस्थ कर लेंगे, तो वह गलती में है। शरीर एक है और उपाय बाह्य भी अतः तब तक स्वस्थ नहीं हो सकता जब तक पूरा शरीर स्वस्थ न हो। अन्तर और बाह्य पूरे व्यक्तित्व के हिस्से हैं। इन सभी हिस्सों का इलाज एक साथ करना होगा। हाँ, जब हम विवेचन करने हैं तब उन्हें बायीं-बायीं से करना होता है। समाजिस्मों का बात एक साथ नहीं की जा सकती। ताया ‘वन-जाम्बून’ है इसकी अपनी भीमाएँ हैं। इसलिए विवेचन करते समय मैं पहले आपके सिर की बात करूँगा फिर आपके हृदय की बात करूँगा और अन्त में आपके पैर की बात। सीना की बात मैं एक साथ नहीं कर सकता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मानों एक साथ नहीं हैं। आपका सिर, आपका हृदय आपके पैर—सब एक साथ हैं अलग अलग नहीं हैं। यद्यपि इसी चया अलग अलग करने पड़ता है फिर भी व्यक्तित्व में ये एकटु हैं।

इसलिए तप के छह बाह्य और छह आन्तरिक हिस्सों की जा में चर्चा करूँगा उसमें नम होना चाहिए जिसे इसकी भाषा करनी है उनका सिर जो तप होता है। उन्हें एक साथ इसी भाषा करना होगी। ऐसी या साधना में पूज्यता उभरती होगी। भयभीत नहीं। और साथ ही निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी होंगी हैं कारण कि भाषा के पास एक साथ बाह्य का मार्ग उपलब्ध नहीं है। अगर मैं किसी को बाहर जाकर छोड़ दूँ और बताऊँ कि मेरे सामने का पति, किता सात पट धे, ता

सर्वप्रथम मैं पहले व्यक्ति का नाम लूंगा, फिर दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर चौथे का। इस प्रकार मेरे कथन में क्रम होगा, लेकिन जो लोग मेरे नामने बैठे थे, उनके बैठने में क्रम न था। वे एक साथ मौजूद थे। उनका अस्तित्व इकट्ठा था, एक साथ था। माया उनमें क्रम बना देगी। कोई आगे हो जाएगा और कोई पीछे। लेकिन अस्तित्व में कोई आगे-पीछे नहीं होता।

(३) बाह्य तप में महावीर ने अनशन को पहला स्थान दिया है।

अनशन के सम्बन्ध में जो भी समझा जाता है वह गलत है। उसमें छिपे हुए सूत्र पर ही आज मैं विचार करूँगा। इस सूत्र को समझ लेने पर आपको एक नई दिशा का बोध होगा।

मनुष्य के शरीर में दोहरे यंत्र हैं ताकि सकट के किसी क्षण में एक यंत्र काम न करे तो दूसरा उपयोगी हो। आप भोजन करते हैं, शरीर उस भोजन को पचाता है, खून और हड्डियाँ बनाता है। शरीर के साधारण यंत्रों से यह काम हो जाता है। लेकिन कभी कोई जगल में भटक जाता है, नदी में वह जाता है और कई दिनों तक किनारा नहीं पाता। ऐसी अवस्था में जब उसे भोजन नहीं मिलता तब शरीर के सकटकालीन यंत्र सक्रिय हो जाते हैं। शरीर को भोजन की आवश्यकता बनी ही रहती है, उसे ईंधन की जरूरत होती ही है। जब शरीर को भोजन नहीं मिलता तो वह उस ईंधन को ही उपयोग में लाने लगता है जो उसके भीतर पहले से इकट्ठा है। वह अपने भीतर की चर्बी को ही भोजन बनाना शुरू कर देता है। इसलिए उपवास में एक पाँड वजन रोज गिरता चला जाता है। फिर भी लगभग ९० दिन तक साधारण स्वस्थ आदमी उपवास से नहीं मरता। शरीर के पास इतना संगृहीत तत्त्व मौजूद होता है कि कम-से-कम तीन महीने तक वह अपने को बिना भोजन के जिन्दा रख सकता है। शरीर की ये दो व्यवस्थाएँ हैं। इनमें एक तो सामान्य है और दूसरी केवल सकट की घड़ी के लिए बनी है।

(४-५) अनशन की प्रक्रिया का राज यह है कि जब शरीर एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था पर सक्रमण करता है तब बीच में कुछ क्षण के लिए आप वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ शरीर नहीं होता। यही अनशन का सीक्रेट है। जब भी आप एक चीज से दूसरी पर बदलाव करते हैं, एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर जाते हैं, तब एक ऐसा क्षण होता है जब आप किसी भी सीढ़ी पर नहीं होते। जब आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर छलाँग लगाते हैं तब बीच में एक गैप—एक अन्तराल—हो जाता है। उस अन्तराल में आप किसी भी स्थिति में नहीं होते, फिर भी होते अवश्य हैं।

शरीर की एक व्यवस्था है सामान्य भोजन की। अगर यह व्यवस्था बन्द कर दी जाए तो अचानक आपको दूसरी व्यवस्था में रूपान्तरित होना पड़ेगा। इस बीच कुछ ऐसे क्षण होंगे जब आप आत्म-स्थिति में होंगे। उन्हीं क्षणों को पकड़ना अनशन

का उपयोग है। इसलिए जो आदमी अनशन का अभ्यास करेगा, वह उसका फायदा नहीं उठा पाएगा। अनशन 'सडेन' प्रयोग है आस्मिक और अचानक प्रयोग। वह जितना अचानक हागा, अंतराल का उतना ही बाध होगा। अगर आप अभ्यासी हैं तो एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने में आप इतने कुशल हो जाएंगे कि बीच के अंतराल का आपको पता ही नहीं चलेगा। इसलिए अभ्यासी को अनशन से कोई लाभ नहीं होता। हम रोज स्थिति बदलते हैं लेकिन अभ्यास के कारण अंतराल का पता नहीं चलता।

( ६ ) अनशन का प्रयोग सक्कालीन यत्र में प्रवेश का प्रयोग है। इस तरह के अनेक प्रयोग हैं जिनसे मध्य के गप का, अंतराल का बाध हाना है। सूफिया ने अनशन का उपयोग नहीं किया है, उन्होंने जागने का उपयोग किया है। प्रयोग अलग हैं किंतु परिणाम एक ही है। उन्होंने कहा है, सोना मत जागे रहना। इतना जागे रहना कि जब नींद आए तब नींद में मत जाना—जाग ही रहना। अगर जागने की चेष्टा उस समय भी जारी ही रही जब जागने का यत्र विलकुल थक गया, तब आप एक क्षण के लिए उस दिना में पहुँच जाएंगे जब जागना भी न रहा और नींद भी न रही—तब आप बीच के अंतराल में उतर आएंगे। इसलिए सूफिया ने रात्रि-जागरण को बड़ा महत्त्व दिया है। महावीर ने उसी प्रयोग को अनशन के द्वारा किया है।

तत्र के एक अद्भुत ग्रन्थ 'विज्ञान मैत्र' में शंकर ने पावती से ऐसे सक्कों प्रयोग कहे हैं। हर प्रयोग दो पक्तियाँ का है। हर प्रयोग का परिणाम वही है कि बीच का गप आ जाए। शंकर कहते हैं—साँस भीतर जाती है और बाहर आती है। पावती तू दोनों के बीच में ठहर जाना तो तू स्वयं का जान लेगी। वहाँ ठहर जाना जहाँ न प्रेम होता है और न घणा ही। दोनों के बीच में ठहर जाने पर तू स्वयं का उपलब्ध हो जायगी। अनशन उसी का एक व्यवस्थित प्रयोग है।

( ७ ) महावीर ने अनशन क्या चुना ? इसलिए कि साँसा के बीच ठहरना कठिन है लेकिन भोजन और अनशन के बीच ठहरना अपेक्षाकृत अधिक आसान है। साँस नान-बाल्टरी है वह आपको इच्छा से नहीं चलती। लेकिन भोजन करना 'बॉल्टरी' वृत्त्य है। सूफिया ने नींद चुनी है वह भी कठिन है, क्योंकि नींद भी 'नान-बॉल्टरी' है आप अपनी कोशिश से उस नहीं बुला सकते। जब वह नहीं आती तो लाख उपाय करो वह नहीं आ सकती। महावीर ने बहुत सरल सा प्रयोग चुना है जिसे बहुत लोग कर सकें। इसमें एक तो सुविधा यह है कि ९० दिना तक हम भोजन न भी करें तो कोई खतरा नहीं है। अगर ९० दिना तक बिना साए रहना पड़े तो हम पागल हो जाएंगे। आज माँसा के अनुयायी चीन में तो सबसे बड़ा पीड़ा रहे हैं वह यह है कि वे अपना विरोधिया का सोने न देंगे। नूखे रसकर ज्यादा



परेशान नहीं कर सकते, क्योंकि सात-आठ दिनों के बाद भूख वन्द हो जाती है, शरीर दूसरे यत्र पर चला जाता है—वह भीतर से भोजन पाने लगता है ।

मनुष्य के हाथ में दो यत्रों के बीच में ठहर जाने का जो सर्वाधिक सुविधापूर्ण और सरलतम प्रयोग है, वह है अनशन । लेकिन अगर आप अभ्यास कर लें तो फिर कोई अर्थ नहीं रह जाएगा । यह प्रयोग आकस्मिक है । अचानक आपने भोजन नहीं लिया और जब आपने भोजन नहीं लिया तब न तो ध्यान रखें भोजन का, न उपवास का, बस, ध्यान रखें उस मध्यम बिन्दु का कि वह कब आता है—आँखें बंद कर लें और भीतर ध्यान रखें कि शरीर का यत्र कब स्थिति बदलता है । तीन दिन में, चार दिन में, पाँच दिन में, सात दिन में । कभी तो स्थिति बदल ही जाएगी । और जब स्थिति बदलती है तब आप बिल्कुल दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं । आपको पहली दफा यह पता चलता है कि आप शरीर नहीं हैं । न तो वह शरीर जो अब तक काम कर रहा था और न यह जो अब काम कर रहा है । दोनों के बीच में एक क्षण का यह बोध भी कि मैं शरीर नहीं हूँ, मनुष्य के जीवन में अमृत का द्वार खोल देता है ।

( ८-९ ) लेकिन महावीर के पीछे जो परम्परा चल पड़ी है, वह अनशन का अभ्यास कर रही है । जो जितना अभ्यासी है उसे उतना ही अथा समझिए । अभ्यास अधा कर देता है ।

भोजन और अनशन के बीच जो सक्रमण है, ट्रांजिशन है, वह बहुत सूक्ष्म और वारीक है, बहुत नाजुक है । जरा से अभ्यास से आप उसको चूक जाएँगे । इसलिए अनशन का भूलकर अभ्यास न करें । कभी अचानक उसका प्रयोग बहुत कीमती सिद्ध होगा ।

( १० ) महावीर जानते हैं—और जिन्होंने भी इस दिशा में प्रयोग किया है वे जानते हैं—कि इस शरीर से आपका जो सम्बन्ध है, वह भोजन के द्वारा है । इस शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह भोजन है । अगर आपको यह जानना है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ तो उस क्षण में जानना आसान होगा जब आपके शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है । जब जोड़नेवाली कड़ी बिल्कुल नहीं है तभी यह जानना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूँ । भोजन ही संयोजक कड़ी है, वही जोड़ता है, इसलिए भोजन के अभाव में ९० दिन बाद सम्बन्ध टूट जाएगा, आत्मा अलग हो जाएगी, शरीर अलग हो जाएगा । तो महावीर कहते हैं कि जब तक शरीर में भोजन पड़ा है, तब तक जोड़ है । उस स्थिति में अपने को ले जाओ, जब शरीर में बिल्कुल भोजन नहीं हो । तभी तुम आसानी से जान सकोगे कि तुम शरीर से अलग हो, पृथक् हो । तभी तादात्म्य टूट सकेगा ।

( ११-१२ ) याद रहे कि शरीर में जितना ज्यादा भोजन होता है, उतना ही ज्यादा शरीर के साथ तादात्म्य भी होता है । इसलिए भोजन के बाद नींद तत्काल



आनी शुद्ध हो जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य बढ़ जाता है तो मूर्छा बढ़ जाती है, शरीर के साथ तादात्म्य टूट जाता है तो होश बढ़ता है। महावीर का सारा का सारा प्रयोग जागरण अमूर्छा और 'अवेयरनेस' का है। महावीर कहते हैं कि चूँकि भोजन मूर्छा को बढ़ाता है, तन्द्रा पैदा करता है इसलिए यदि भोजन न लिया गया हो तो इससे उल्टा परिणाम होता है, हाश बढ़ेगा, जागरण बढ़ेगा।

(१३) महावीर ने यह अनुभव किया कि जब शरीर में भोजन बिल्कुल नष्ट होता तो प्रज्ञा अपनी पूरी शुद्ध अवस्था में होती है क्योंकि तब सारे शरीर की ऊर्जा मस्तिष्क हो जाती है। पेट के लिए पचाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। महावीर कहते थे भोजन बिल्कुल बंद हो, शरीर की सारी क्रियाएँ बंद हो शरीर किसी मूर्ति की तरह ठहरा रह जाए, हाथ भी न हिले उँगलियाँ भी व्यर्थ न हिलें, सब क्रिया 'मिनिमम' पर आ जाए तो शरीर की पूरी ऊर्जा जो अलग अलग बँटी है, मस्तिष्क को उपलब्ध हो जाती है और मस्तिष्क पहली दफ़े जागने में समर्थ होता है। अगर महावीर न भोजन में भी आवाहार का पसंद किया, मासाहार का नष्ट तो यह सिर्फ अहिंसा के कारण नहीं। इसमें भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण दूसरा था और वह यह था कि मासाहार पचने में ज्यादा शक्ति माँगता है और बुद्धि की मूर्छा बढ़ती है।

यदि अहिंसा अकेला कारण होता तो महावीर कह सकते थे कि मरे हुए जानवर लेने में कोई हज़ नष्ट है। बुद्ध ने तो जाना दे दी थी कि मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है। लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवरों का मांस खाने को भी जाना नष्ट दा, क्योंकि उनका प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का गहरा प्रयोजन यह था कि मांस पचने में ज्यादा शक्ति माँगता है शरीर और पेट का ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है। इससे मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है और तन्द्रा गहरी होती है। यदि मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे तभी आप जाग्रत रह सकते हैं। इसलिए इसे बाह्य तप कहा आन्तरिक तप कहा। जो आदमी आन्तरिक तप का उपलब्ध हो जायगा वह नाद में भी जागा रहेगा।

तो महावीर ने कहा है कि यदि चेतना का बढ़ना है तो जब शरीर में भोजन नहीं है तभी यह आसानी में हो सकता है।

(१४) लेकिन कुछ लोग जब भोजन छोड़ते हैं तब उनकी चेतना नष्ट बढ़ती वेच-भाग का चिंतन बढ़ जाता है। अकेला भोजन छोड़ देना पुण्य नहीं है। अगर आपने सोचा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है तो भोजन छोड़कर आप भोजन का चिंतन करना रहेंगे। ध्यान रहे कि भोजन के चिंतन से भोजन ही बेहतर है। भोजन का चिंतन भोजन से बदतर है क्योंकि भोजन तो पेट भरता है और चिंतन मस्तिष्क। मस्तिष्क का काम भोजन करना नहीं है। अच्छा होगा कि आप पेट

को ही अपना काम करने दे । अगर मस्तिष्क में भोजन का चिन्तन न चले, तभी अनशन का कोई उपयोग है—यानी तब, जब भोजन भी नहीं और भोजन का चिन्तन भी नहीं ।

क्या आपको पता है कि आपके चिन्तन के दो ही हिस्से हैं ? चाहे तो काम या भोजन ? गहरे में तो स्वाद की वासना काम-वासना ही है, क्योंकि भोजन के बिना काम-वासना सम्भव नहीं है । महावीर से पूछेंगे तो वे कहेंगे कि जो आदमी भोजन के लिए बहुत आतुर होता है वह वस्तुतः काम-वासना से भरा है । भोजन इसका लक्षण है, क्योंकि भोजन काम-वासना की शक्ति को बढ़ाता है । इसलिए महावीर कहेंगे कि जो भोजन के चिन्तन से भरा है वह काम-वासना से भरा है । भोजन की वासना के छूटते ही काम-वासना शिथिल होने लगती है ।

(१५-१६) यह भी ध्यान रहे कि हमारे मन की गहरी में गहरी तरकीब परि-पूरक—‘सबस्टीट्यूट क्रिएशन’—पैदा करना है । अगर आपको भोजन नहीं मिलेगा तो आप मन ही मन भोजन का चिन्तन करने लगेंगे और इस चिन्तन में उतना ही रस लेने लगेंगे जितना भोजन में ।

✓ (१७) भोजन करते तो पन्द्रह मिनट में वह पूरा हो जाता । चिन्तन में पन्द्रह मिनट से काम चलने को नहीं । पन्द्रह मिनट का काम पन्द्रह घंटे करना पड़ेगा । चूंकि भोजन की शक्ति तो मिलेगी नहीं, इसलिए मन को चिन्तन में ही उलझाए रखना पड़ेगा । इसलिए महावीर ने कहा है कि आप कोई काम शरीर से करते हैं या मन से, इसमें मैं भेद नहीं करता । आपने चोरी की या चोरी की वास्तव सोचा, मेरे लिए दोनों बराबर हैं, दोनों पाप हैं । आपने हत्या की या हत्या के सम्बन्ध में सोचा, दोनों समान हैं । अदालत फर्क करती है । अगर आप हत्या के सम्बन्ध में केवल सोचें तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती । लेकिन महावीर कहते हैं कि धर्म भाव को भी पकड़ता है । आप धर्म की अदालत से बाहर नहीं हो सकते । भाव पर्याप्त हो गया । महावीर कहते हैं कि कृत्य तो भाव की बाह्य छाया मात्र है । मूल तो भाव ही है । अगर मैंने हत्या करनी चाही तो मैंने हत्या कर ही दी । अन्ततः आप भीतर तौले जाएंगे, आपकी परिस्थिति नहीं तौली जाएगी । अगर आपने भोजन का चिन्तन किया तो आपका उपवास नष्ट हो गया । इसका मतलब यह हुआ कि आप तब तक उपवास न कर पाएंगे जब तक अपने चिन्तन पर आपका नियंत्रण न हो । अभी तो हालत यह है कि आपका चिन्तन ही जो चलाना चाहता है, वही आपको चलाना पड़ता है, मन जहाँ ले जाता है, वही आपको जाना पड़ता है । आपके नौकर ही आपके मालिक हो गए हैं ।

(१८) सभी इन्द्रियाँ आपकी नौकर हैं, लेकिन मालिक हो गई हैं । आपने कभी अपनी इन्द्रियों को कोई आज्ञा नहीं दी, उन्होंने ही आपको आज्ञा दी है । तप का एक

अथ आपका बताता हूँ। तप का अर्थ है—अपनी इन्द्रिया की मालिकियत, उन्हें आनन्दन और उनसे आनापालन करवाने का सामर्थ्य। पट कहता है कि भूख लगी है लेकिन आप कहते हैं—भूख लगी है तो लगे, मैं आज भोजन देने की राजी नहीं हूँ और आप भोजन नहीं लेते और न भोजन का चिन्तन करते हैं। जब आपका सकल दृग् अवस्था का पहुँच जाता है और आपका अपनी इन्द्रिया पर शासन करने का क्षमता उत्पन्न हो जाती है तो आप अनशन करने के योग्य हो जाते हैं। उपवास हो सकता है तभी जब चिन्तन पर आपका वश हो। लेकिन चिन्तन पर आपका कोई वश नहीं है। विचार की मालिकियत का कोई प्रशिक्षण आपका नहीं दिया गया।

(१९) लेकिन अगर आप मुनिनिश्चित हैं और आपकी ना का मतलब नहीं और हाँ का मतलब हाँ होता है, और सच म होता है, तो इन्द्रिया इस बात का बहुत जल्द समझ जाती हैं। वे जल्द समझ जाता हैं कि आपकी ना का मतलब नहीं है और आपकी हाँ का मतलब हाँ है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर आप सकल्प करें तो उसे कभी न तोड़ें। यदि तोड़ना ही हो तो कभी सकल्प न करें। क्योंकि सकल्प करके तोड़ना आपको इतना दुःख कर जाता है जिसका बाद हिसाब नहीं है। आप अपनी ही आँखा में अपना हाँ सामन दीन हीन हो जाते हैं। इसलिए छोटे सकल्प से शुद्ध करें।

(२० २१) मरे पास लग आते हैं और कहते हैं कि कपड़े बदलने से क्या होगा, आत्मा बदलनी है। कपड़े बदलने की हिम्मत नहीं है और आत्मा बदलनी है। वे साबित हैं कि यह दलील उनकी अपनी है पर यह दलील उनके कपड़े दे रहे हैं। जो भूखा नहीं रह सकता, वह कहता है कि अनशन से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? कुछ नहीं होगा। लेकिन मैं पूछना हूँ कि उपवास से कुछ भी न होगा तो क्या भोजन करने से हो जायगा? नग्न सड़े होने से नहीं होगा तो क्या कपड़े पहनने से हो जायगा?

(२२) महावीर निश्चित नहीं करते थे कि क्या भोजन लेंगे। वे इस बात का नियति पर छाड़ देते थे। बहुत बठिन प्रयोग था वह। पृथ्वी पर ऐसा प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया। महावीर कहते थे कि भोजन मैं तब लूँगा जब मरे सकल्प की घटना घटे (जैसे—जब मैं रास्ते पर निबलूँ तब किसी बैलगाड़ी के सामने कोई आत्मी सड़ा होकर रास्ता रहे बल काल रंग के हा, उस आदमी की एक आँख फूटी हो और दूसरी आँख से जामू टपकत हो)। और वह भी तब जब वहाँ कोई भोजन देने के लिए निमन्त्रण दे, नहीं तो आग बूझ जाऊँगा। महावीर गाँवा में जाते और मन ही मन यह तय करके जाते कि कुछ विशेष सयाग होने पर ही भोजन लूँगा अन्यथा नहीं। यदि वह सयाग पूरा नहीं होता तो वे आनन्दित होकर वापस लौट आते। वे कहते कि जब नियति की हा इच्छा नहीं है तो हम क्या इच्छा करें! जब जागतिव शक्ति हा चाहती है कि आज मैं भोजन न लूँ तो बात सत्य हो गई। गाँव



मे अनेक लोग भोजन लेकर सड़े होते हैं और तरह-तरह के उन्तजान करते हैं । परन्तु महावीर भोजन नहीं लेते । गाँव के लोग दिगम्बर मुनियों के लिए आज भी ऐसा ही करते हैं । फिर भी उनके सकल्प जाहिर हो जाते हैं और लोग वैसा ही प्रवध कर लेते हैं । दिगम्बर मुनि पहले ही कह देते हैं कि वे भोजन बर्हा करेंगे जहाँ किनी घर के सामने केले लटके हो । वह बात लोगों को मालूम हो जाती है और सब लोग अपने घर के सामने केले लटका लेते हैं । दिगम्बर मुनि सकल्प करने हैं कि वे तभी भोजन लेंगे जब कोई स्त्री सफेद साड़ी पहनकर भोजन के लिए आमन्त्रित करे । उनका सकल्प प्रकट कर दिया जाता है और स्त्रियाँ सफेद साड़ी पहनकर उन्हें आमन्त्रित कर लेती हैं । इसलिए अब जैन मुनि कभी बिना भोजन लिये नहीं लौटते ।

महावीर की प्रक्रिया कुछ और थी । वे किसी से कुछ बहने नहीं थे । मन-ही-मन सकल्प कर लेते थे कि जब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होगी और जब नियति को मजूर होगा तभी मैं भोजन लूँगा । कभी-कभी तीन-तीन महीने उन्हें भोजन लिये बिना ही गाँव से लौट जाना पड़ता । जब मन के लिए कोई सीमा नहीं होती तो मन को तोड़ना बहुत आसान हो जाता है । इसका विपरीत, जब मन के लिए सीमा होती है, तो उसे बचाना बहुत सरल होता है । यदि सीमा है तो लगता है कि एक ही घटे की बात है, निकाल देंगे, चौबीस घटे की बात है, गुजार देंगे । लेकिन महावीर का जो अनशन था, उसकी कोई सीमा न थी । वह कब पूरा होगा कि न होगा, या वह जीवन का अन्तिम अनशन होगा—भोजन उसके बाद कभी न होगा—इनका कुछ पक्का पता नहीं होता ।

स्पष्ट है कि महावीर ने उपवास और अनशन पर जैसे गहरे प्रयोग किए, वैसे गहरे प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति ने इस पृथ्वी पर नहीं किए । मगर आश्चर्य है कि इतने कठिन प्रयोग करने पर भी महावीर को कभी-कभी भोजन मिल ही जाता था । उन्हें बारह वर्षों से ३६४ बार भोजन मिला । कभी पन्द्रह दिन बाद, कभी दो महीने बाद, कभी तीन महीने बाद । इसलिए महावीर कहते थे कि जो मिलनेवाला है, वह मिल ही जाता है । उसका त्याग भी कैसे किया जा सकता है ? त्याग तो उसी का किया जा सकता है जो नहीं मिलनेवाला होता है । महावीर कहते थे कि जो नियति से मिला है, उसका कोई भी सम्बन्ध मुझसे नहीं है, क्योंकि मैंने किसी से माँगा नहीं, मैंने किसी से कुछ कहा नहीं । छोड़ दिया अनन्त के ऊपर कि यदि जगत् को मुझे चलाने की कोई जरूरत होगी तो वह मुझे और चला देगा, यदि जरूरत न होगी तो बात खत्म हो जाएगी । मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है ।

(२३) ध्यान रहे कि महावीर की सारी प्रक्रिया जीवेष्णा छोड़ने की प्रक्रिया है । महावीर कहते हैं कि मैं जीवित रहने के लिए कोई एषणा नहीं करता । अगर इस अस्तित्व को ही—इस होने को ही—मेरी कोई जरूरत हो तो वह स्वयं इसका इन्त-

जम कर । मुझे कोई जरूरत नहीं । आवश्यक तो यह देखकर होता है कि इन शक्तों के बावजूद महावीर चालीस वर्ष लिए । व स्वस्थ रहे और आनंद से लिए । भूख न उन्हें मार न डाला । नियति पर स्वयं का छोड़ देने में वे दीन-हीन न हो गए । जावेष्णा को हटा दन से मोत नहीं आ गई ।

हमारी यह धारणा कि हम अपने को जिला रहे हैं, केवल विक्षिप्तता है, हमारा यह खयाल कि जब तक हम नहीं मरते तब तक हम मर कैसे सकते हैं, मात्र नासमझा है । बहुत कुछ हमारे हाथ के बाहर है । जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ के मानव समझने से ही अहंकार का जन्म होता है । जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ के बाहर ही समझने से अहंकार विसर्जित होता है ।

(२४) महावीर न तो अपना भोजन पदा करत थे और न अपनी ओर से स्नान ही करत थे । वर्षा का पानी उन्हें जितना घुला लेता, घुला लेता । लेकिन बड़ी मजेदार बात तो यह है कि महावीर के शरीर से कभी पसाने की दुग्ध नहीं आती थी । आपन कभी खयाल किया कि सक्का पशु-पक्षी हैं या कभी स्नान नहा करते ? उनके लिए वर्षा का पानी ही काफी है । उनके शरीर से दुग्ध नहीं आती । आदमी ही अकेला जानवर है जो बहुत दुग्ध देता है, जिसे डियाडरण्ट की जरूरत पड़ती है । राज सुगंध छिन्को, साबुन से नहाओ, सब तरह के इतजाम करो ताकि शरीर से दुग्ध न आए । महावीर व जा बहुत निवृत्त थे वे यह देखकर बहुत चकित थे कि उनके शरीर से दुग्ध नहीं आती । असल में महावीर वैसे ही जीते थे जैसे पशु पक्षी जीते हैं । उन्होंने प्रकृति पर, नियति पर, अपने को छोड़ दिया था । अनन्त सत्ता की मर्जी पर अपने का पूणतया निछावर कर दिया था । असल में राजा होने से एक नई तरह की सुगंध जीवन में आनी शुरू हो जाती है । जब हम प्रकृति पर अपने को छोड़ देते हैं उसकी दो हुई सभी चीज, चाहे वह पसीन हो या दुग्ध स्वीकार कर लेते हैं तो एक अनुठी सुगंध से जीवन भर लगता है । सब दुग्ध प्रकृति व अस्वीकार की दुग्ध है, सब कुरूपता नियति व अस्वीकार की कुरूपता है । स्वीकार के साथ ही एक अनुठा मोन्द्य आ जाता है, एक अनुठा सुगंध से जीवन भर जाता है । महावीर ने समस्त पर अपने का छोड़ दिया था । जब बादल बरसें तब स्नान हो गया । स्नान करना तो सिर्फ प्रताप है । बात कुछ इतनी है कि महावीर न छोड़ दिया है स्वयं को नियति पर । व नियति से, समस्त से माना रहते हैं—जा करना हो पर, मैं राजी हूँ । यह राजी होना अहिंसा है । और इस राजी हान के लिए ही उन्होंने अनन्त का प्रायमिय सून बहा है क्योंकि जब तक आपकी इन्द्रियाँ आपसे राजी नहीं हैं तब तक आप प्रकृति से राजी कैसे होंगे ?

आपकी इन्द्रियाँ ही आपसे राजी नहीं हैं । पट कहता है भ्रूज्जादा, गरीर कहता

है कपडे दो, पीठ कहता है विश्राम चाहिए । आपकी समस्त इन्द्रियो ने आपसे वगा-वत कर रखा है । वे कहती हैं—यह दो, वह लाओ, नहीं तो तुम्हारी जिन्दगी बेकार है, अकारथ है, तुम बेकार जी रहे हो । इतने छोटे-से शरीर में जब इतनी छोटी-छोटी इन्द्रियाँ आपसे राजी नहीं हो पाती तो इस विराट शरीर से—ब्रह्मांड से—आप कैसे राजी हो पाएँगे ? फिर, जब तक आपका ध्यान इन्द्रियो में ही उलझा रहेगा तब तक वह उस विराट पर जायगा भी कैसे ? वह यही छुद्र में अटका रह जायगा । महावीर कहते हैं—पहले इन्द्रियो को अपने से राजी करो । अनगन का यही अर्थ है कि पेट को अपने से राजी करो, तुम पेट से राजी मत हो जाओ । भली-भाँति जानो कि पेट तुम्हारे लिए है, तुम पेट के लिए नहीं हो । (२५) अनगन का अर्थ यही है कि हम इन्द्रियो को ऊपर बुलाएँ, उनके साथ कभी नीचे नहीं जाएँ ।





## एकादश अध्याय

### उणोदरी आदि शेष बाह्य तप

ठाणे निमीयणे चैव, तहेव य तुयदृणे ।

उल्लघणपल्लघणे, इन्द्रियाण य जुजणे ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० २४, शा० २८

अनशन के बाद महावार न दूसरा बाह्य तप उणोदरी कहा है। उणोदरी का अर्थ है अपूण भोजन, अपूण आहार। महावीर ने अनशन के बाद उणोदरी को क्या रखा ? आम तौर से जा लाग अनशन का अभ्यास करते हैं, वे पहले उणोदरी का अभ्यास करते हैं, व पहले आहार को कम करने की कोशिश करते हैं। जब कम आहार की आदत हो जाती है तब वे अनशन का प्रयोग शुरू करते हैं। यह बिल्कुल ही गलत है। महावीर ने जान-बूझकर पहले अनशन कहा और फिर उणोदरी की चर्चा की। उणोदरी का अभ्यास आसान है एक दिन एक बार उणोदरी का अभ्यास हो जाए तो उस अभ्यास के बाद अनशन का कोई अर्थ या प्रयोजन नहीं रह जाता।

उणोदरी का अर्थ बुरा इतना ही होता है कि पेट जितना माँगे उस उतना नहा देना। इसलिए उणोदरी बहुत कठिन है। कठिन इस लिहाज से है कि आपको पहले से यही पता नहीं कि स्वाभाविक भूख कितनी है। इसलिए आपको पहले अपनी स्वाभाविक भूख खोजनी पड़ेगी। इसलिए अनशन को पहले रखा गया है। अनशन आपकी स्वाभाविक भूख<sup>२</sup> का खोजने में सहायगी होगा। जब आप बिल्कुल भूखे रहेंगे और भूख रहने का संकल्प करेंगे, तब कुछ ही दिनों में पाएँगे कि आपको आदत की भूख भूल गई। वह असली भूख न थी। अनशन का महावीर ने पहले किया ताकि घड़ा भूख मिट जाए असली भूख का पता चल जाए और रोआ रोआ भोजन के लिए पुकारा जाए। (जीव विज्ञानी कहते हैं कि आदमी के भीतर एक जविक घड़ी<sup>३</sup> ही गहा आदत की ती एक घड़ी<sup>४</sup> होती है। स्वाभाविक भूख का

१ सयमी पुरुष खड़ा रहने में, बैठने में, सोने में, उल्लघन प्रलघन करने में तथा इन्द्रियों के प्रयोग में सदा जाया का नियंत्रण करे।

२ दूसरी भूख आदत की होती है, यह आदत की घड़ी से चालित होती है।

३ यायोत्ताजिबरा बनाव।

४ हैबिट बनाव।



बहुत मुश्किल से लगती है, पर नियम से बँधी हुई भूख रोज लगती है। अनशन से स्वाभाविक भूख का पता चलता है और नियम से बँधी हुई भूख मिट जाती है।) अनशन आपके भीतर वास्तविक भूख को उघाड़ने में सहयोगी होगा। जब वास्तविक भूख उघड़ आए तब, महावीर कहते हैं, उणोदरी में आइए। जब वास्तविक उघड़ आए तो वास्तविक से भी कम लीजिए और अवास्तविक भूख को तो कभी पूरा कीजिए ही मत। यह (अवास्तविक भूख) खतरनाक है। वास्तविक भूख को पूरा करते समय थोड़ी जगह खाली रखिए।

एक सीमा तक ही हमारी भूख, हमारी वासनाएँ ऐच्छिक होती हैं। इस सीमा के बाद वे 'नान-वालटरी' हो जाती हैं। जिस सीमा के पार भूख अनैच्छिक हो जाए, उसी सीमा पर रुक जाना उणोदरी है। तीन रोटी की जगह ढाईरोटी खा लेने से ही उणोदरी नहीं हो जायगी। उणोदरी का अर्थ है इच्छा के भीतर रुक जाना, अपनी सामर्थ्य के भीतर रुक जाना। (अपनी सामर्थ्य के बाहर जाते ही आप गुलाम हो जाते हैं।) महावीर कहते हैं कि चरम पर पहुँचने के पहले रुक जाना। जब क्रोध में किसी पर हाथ उठ जाए और उसके करीब पहुँच जाए, तब उसे रोक लेना। जहाँ मन सर्वाधिक जोर मारे, उसी सीमा से वापस लौट आना। स्मरण रहे कि कुछ न करना आसान है, लेकिन चरम सीमा से लौट आना बहुत मुश्किल। फिल्म न देखने में उतनी अडचन नहीं है जितनी अडचन इस बात में है कि उस समय उसे छोड़ दिया जाए जिस समय आपकी उत्सुकता चरम सीमा का स्पर्श करती रहे। किसी को प्रेम ही नहीं किया तो इसमें क्या अडचन हो सकती है? लेकिन प्रेम जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हो तब उसके पहले ही वापस लौटना अत्यन्त कठिन है।

उणोदरी अनशन का ही उपयोग है, लेकिन थोड़ा कठिन है। आम तौर से आपने सुना होगा कि यह सरल प्रयोग है और यह भी कि जिससे अनशन न बने वह उणोदरी करे। मैं आपसे कहता हूँ, अनशन से उणोदरी कठिन प्रयोग है। जिससे अनशन बन सकता है, वही उणोदरी कर सकता है।

महावीर का तीसरा बाह्य तप है वृत्ति-सक्षेप। इसका परम्परागत अर्थ यह है कि अपनी वृत्तियों और वासनाओं को सिकोड़ लो—जहाँ दस कपड़ों से काम चल सकता है, वहाँ ग्यारह कपड़े न रखना, अगर एक बार भोजन से काम चल सकता है तो दो बार भोजन न करना। लेकिन महावीर का अर्थ गहरा है और परम्परागत अर्थ से भिन्न है। उनकी दृष्टि में वृत्ति-सक्षेप एक प्रक्रिया है। आपके भीतर प्रत्येक वृत्ति का पृथक-पृथक केन्द्र है। सेक्स का एक निजी केन्द्र है, भूख का एक अलग केन्द्र। इसी प्रकार प्रेम का एक केन्द्र है और बुद्धि का एक केन्द्र। लेकिन साधारणतः हमारे सारे केन्द्रों के कार्य मिश्रित हो गए हैं, 'कन्फ्यूज्ड' है, कारण कि एक केन्द्र का काम हम दूसरे केन्द्र से लेते रहते हैं, दूसरे का तीसरे से, तीसरे का चौथे से। इस प्रकार

काम नहीं हो पाता और केन्द्र की शक्ति भी नष्ट होती है। गुजिएफ कहता था कि प्रत्येक केन्द्र को उसके काम पर सीमित कर दो। महावीर के वृत्ति संक्षेप का यही अर्थ है। प्रत्येक वृत्ति को उसके केन्द्र पर संक्षिप्त करना उस वही और—अपने केन्द्र के आसपास—मन भरकर दो। इससे व्यक्ति में एक सुघटना और स्पष्टता आती है और वह कुछ भी करने में समर्थ हो जाता है। उसकी प्रत्येक वृत्ति टोटल इंटेंसिटी में जीने लगती है। इसलिए वह व्यर्थ हो जाती है। याद रहे कि जिस वृत्ति का भी आप उसकी समग्रता में जीते हैं वह व्यर्थ हो जाती है। और आत्मदर्शन के पूर्व वृत्तियाँ का व्यर्थ हो जाना जरूरी है। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि साधारणतः हमारी सारी वृत्तियाँ बुद्धि या मन को घेर रहती हैं, क्योंकि हम मन से ही सारा काम करते हैं। भोजन भी मन से करना पड़ता है, सम्भोग भी मन से करना पड़ता है, कपड़े भी मन से पहनने पड़ते हैं। इसी कारण बेचारी बुद्धि निबल और निवीर्य हो जाती है, दुनिया में बुद्धिहीनता फैलती है।

वृत्ति-संक्षेप पर महावीर ने दो कारणों से बल दिया है। एक तो जो वृत्ति अपने केन्द्र पर संगृहीत या एकाग्र हो जाती है आपको उस वृत्ति के वास्तविक अनुभव मिलने शुरू हो जाते हैं। दूसरा यह कि वास्तविक अनुभव से मुक्त हो जाना बहुत आसान है क्योंकि वास्तविक अनुभव बहुत दुखद है। स्त्री की कल्पना से मुक्त होना बहुत कठिन है स्त्री से मुक्त हो जाना बहुत आसान। धन की कल्पना से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है, धन का डेर से मुक्त हो जाना बहुत सरल। कल्पना से मुक्त होना है क्योंकि कल्पना वहाँ टहरने नहीं देती, वह बहती बहाती चली जाती है। कहीं अंत ही नहीं आता। बुद्धि का निजी काम है ध्यान। जब बुद्धि अपने मन में ठहरती है, अपने में रुकती है तब बुद्धिमत्ता आती है। लेकिन हमने इस सब तरह से बौद्धिक कर रखा है। वह अपना काम क्या करे? इसीलिए हम बुद्धिमत्ता का षाड़ काम जीवन में नहीं कर पाते। इससे केवल साधन का ही काम लेते रहे हैं—कभी धन कमाने का काम कभी शादी करने का काम कभी रेडियो सुनने का काम। लेकिन बुद्धि की बुद्धिमत्ता पनपने नहीं देते। इसलिए महावीर ने कहा है कि प्रत्येक वृत्ति का उसके अपने केन्द्र पर संक्षिप्त करो। उसे फलन मत दो। मूख लगे तो पेट से लगाने दो बुद्धि से नहो। बुद्धि को यह दो कि तू चुप रह इसकी फिर छाड़ दे कि कितना बचना है पेट भर देगा कि मूख लगी है तब हम मुन लेंगे। इसी प्रकार नींद का यंत्र को अपना काम करो दो। काम-वासना के यंत्र का अपना काम करो दो। तब तुम्हें धन की दाँत छोड़नी नहीं पड़ेगी। तुम अचानक पाओगे कि जो जा व्यर्थ था वह गूँट गया। तुम्हें धन मवान बचान का पागलपन छोड़ना नहीं पड़ेगा, तुम्हें दिर जायगा कि कितना बचना मवान तुम्हारे लिए जरूरी है।

इसका अर्थ यह रहा कि अगर आप सब छाड़कर भाग जाएँ तो आप बदल

जाएँगे। यह जरूरी नहीं है। अगर चीजों को त्यागने से आप बचल सके तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। अगर चीजों को छोड़ने से मुझे मोक्ष मिलता है तो ठीक है, मोक्ष का भी सौदा हो जाता है। चीजों की ही कीमत चुकाकर मोक्ष मिल जाता है। महावीर वस्तुओं को मूल्य नहीं दे सकते। इसलिए मैं कहता हूँ कि उनकी दृष्टि में वस्तुओं के त्याग का नाम वृत्ति-संक्षेप नहीं है। कुछ लोग परेशानी को ही तप समझ लेते हैं। जो परेशानी को तप समझ लेते हैं उनकी नासमझी का कोई हिसाब नहीं है। तप से ज्यादा आनन्द की कल्पना नहीं की जा सकती। तपस्वी के आनन्द का कोई अन्त नहीं होता। जिस दिन आपकी सारी शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर बुद्धि को मिल जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन समस्त शक्तियाँ बुद्धि की तरफ उसी तरह प्रवाहित होने लगती हैं जिस तरह नदियाँ सागर की तरफ प्रवाहित होती हैं, उसी दिन बुद्धि का महासागर आपके भीतर फलित होता है। उस महासागर का आनन्द, उस महासागर की प्रतीति और अनुभूति दुख की नहीं, परेशानी की नहीं, परम आनन्द की है। वह परम प्रफुल्लता की अनुभूति है, किसी फूल के खिल जाने-जैसी या किसी मृतक में जीवन आ जाने-जैसी।

वाह्य तप का चौथा चरण है 'रस-परित्याग'। रस-परित्याग किन्हीं रसों या स्वादों का निषेध नहीं है। वस्तुतः साधना के जगत् में स्थूल से स्थूल दिखाई पड़ने-वाली बात भी स्थूल नहीं होती। चूँकि सूक्ष्म के लिए कोई शब्द नहीं होता, इसलिए स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। वाह्य-जगत् के शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है।

रस की पूरी प्रक्रिया क्या है? स्वाद आपकी जिह्वा में होता है या आपके मन में? स्वाद कहाँ है? रस कहाँ है? यह जान ले, तभी रस-परित्याग का अर्थ खयाल में आ सकेगा। जो स्थूल में देखते हैं, उन्हें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु को छोड़ देना ही उनकी दृष्टि में रस-परित्याग है। वस्तुतः वस्तु में स्वाद नहीं होता। वस्तु केवल निमित्त बनती है। अगर भीतर रस की पूरी प्रक्रिया काम न कर रही हो तो वस्तु निमित्त बनने में भी असमर्थ होती है। जैसे—यदि आपको फाँसी की सजा दी जा रही हो, और उसी समय खाने को मिष्ठान्न, तो वह मिष्ठान्न आपको मीठा नहीं लगेगा, यद्यपि वह अभी भी मीठा ही है। पर जो मीठे को भोग सकता है, वह विलकुल अनुपस्थित हो गया है। स्वाद-यत्र के संवेदनशील तत्त्व अब भी भीतर खबर पहुँचाएँगे कि मिठाई मुँह पर है, जीभ पर है, लेकिन मन उस खबर को लेने की तैयारी नहीं दिखाएगा। हो सकता है कि मन उस खबर को ले ले, फिर भी मन के पीछे जो चेतना है उसके और मन के बीच का सेतु टूट गया है, सम्बन्ध टूट गया है। मृत्यु के क्षण में वह सम्बन्ध नहीं रह जाता। आपके व्यक्तित्व को बदलने के लिए चिकित्सक शॉक-ट्रीटमेंट का उपयोग करते रहे हैं। शॉक-



ट्रायमट का कुरा इतना ही अथ है कि आपकी चेतना और आपके मन का संतु क्षण भर को टूट जाए।

वस्तु में रस नहीं होता, सिर्फ रस का निमित्त होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी वस्तु में वाइ रग भी नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है किसी रग का आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं हाते, जब कोई देखनवाला नहीं होता तब वस्तु रगहीन हो जाती है। इसी प्रकार इस बात को खयाल में ले लें कि हमारे मन रस वस्तुओं और हमारी जीम के बीच सम्बन्ध हैं। लेकिन बात इतनी ही नहीं है। यदि रस वस्तुओं और जीम के बीच सम्बन्ध-मात्र है तो रस-त्याग बहुत सरल हो जाता है। आप अपनी जीम का संवेदनहीन कर लें या वस्तु का त्याग कर दें तो रस नष्ट हो जायगा। क्या इस ही रस-त्याग कहेंगे? साधारणतः महावीर की परम्परा में चलनेवाले साधु तो यही करते हैं। वे वस्तु को छोड़ देने हैं और सोचते हैं कि रस से मुक्ति हो गई। लेकिन रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी उतना ही रस है और जीम में अभी भी उतनी ही संवेदनशीलता। महावीर ने रस को अप्रकट करने की सलाह नहीं दी है। रस-परित्याग करने को कहा है। अक्सर तो बात ऐसा होती है कि जो छिप जाता है, वह छिपकर और भी प्रबल तथा सशक्त हो जाता है।

मन को मार डालने से रस-त्याग नहीं हो सकता। हम सोचते हैं कि मन का दबा-दबाकर मार डालना सम्भव है। लेकिन मन का नियम यह है कि जिस बात को हम मन से नष्ट करना चाहते हैं मन उसी बात में ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है। अगर आपको कोई समझाए कि मर जाओ तो जीम का मन पैदा होता है। मन विपरीत में रस लेता है। इसलिए मन को मारने से रस परित्याग नहीं हो सकता और न वस्तुओं को छोड़ने से ही यह सम्भव है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन हमन कौन से रस का परित्याग किया है? मात्राओं के भेद भले हैं लेकिन है हम मना मन से लड़नेवाले। लेकिन कभी इस लड़ाई से कोई फल नहीं पड़ता।

इसलिए महावीर मन से लड़ने का नहीं रहते। जो भी मन से लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा।

रस-परित्याग अथवा रस विसर्जन का सूत्र है कि चेतना और मन का सम्बन्ध टूट जाय। यह सम्बन्ध क्या टूटगा? जब तक मैं यह साचता हूँ कि मैं मन हूँ तब तक यह सम्बन्ध कायम रहेगा। इस सम्बन्ध में टूट जान का अर्थ है यह जानना कि मैं मन नहीं हूँ। इससे रस छिन्न भिन्न हो जाता है खो जाता है। रस-परित्याग का प्रणिया है—मन के प्रति भाक्षा नाय। जब आप भोजन कर रहे हैं तब मैं यह नहीं कहूँगा कि आप भोजन न करें यह रसपूर्ण है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूँगा कि आप अपनी जीम का जला से क्याकि जान रस नहीं है। मैं आपसे कहूँगा कि आप भोजन करें, जीम का स्वाद लेते हैं, मन का पूरा विश्वास होने दें कि यह बहुत

स्वादिष्ट है। सिर्फ भीतर इस सारी प्रक्रिया के साक्षी बनकर खड़े रहे। देखते रहे यह मानकर कि मैं सिर्फ देखनेवाला हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, साक्षी हूँ। इससे रस का आकर्षण खो जायगा पर इन्द्रियाँ वही रहेगी, उन्हें नष्ट करना नहीं पड़ेगा। जब क्रोध आए तब कहिए कि क्रोध आया, मैं इसे देखता हूँ। जब क्रोध आए तब रस-परित्याग की साधना करनेवाला व्यक्ति कहेगा कि क्रोध आ रहा है, क्रोध जल रहा है लेकिन मैं देख रहा हूँ।

लेकिन साक्षी होना भी बाह्य तप है। अगर मैं साक्षी हो रहा हूँ तो भी बाहर का हो रहा हूँ, वस्तुओं, इन्द्रियों और मन का हो रहा हूँ। ये सब पराए हैं। ध्यान रहे, महावीर कहते हैं कि साक्षी होना भी बाहर है। इसलिए जब कोई केवली होता है तब वह साक्षी भी नहीं होता। किसका साक्षी होना है ! साक्षी में भी द्वैत है, कोई है जिसका मैं साक्षी हूँ। जब तक मैं ज्ञाता होता हूँ तब तक कोई ज्ञेय मौजूद होता है। इसलिए केवली ज्ञाता भी नहीं होता, वह ज्ञान-मात्र रह जाता है।

रस-परित्याग के बाद काया-क्लेश और सलीनता नामक बाह्य तपों का स्थान है।

महावीर के साधना-सूत्रों में काया-क्लेश को सबसे ज्यादा गलत समझा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि काया-क्लेश का साधक शरीर को नष्ट करता है, काया को क्लेश देता है, काया को सताता है। लेकिन महावीर किसी भी सतानेवाली बात में गवाह नहीं हो सकते, कारण कि सब तरह का सताना हिंसा है। अपने शरीर को सताना भी हिंसा है। फिर भी महावीर की परम्परा ने ऐसा ही समझा कि काया को सताओ और इस तरह आत्मपीडकों का एक बड़ा दल उनकी धारा में सम्मिलित हो गया।

महावीर यह नहीं कहते कि तुम अपनी काया को सताओ। उसे सताने की जरूरत नहीं है। काया खुद ही इतना सताती है कि अब तुम उसे क्या सताओगे ? काया के अपने ही दुख पर्याप्त है, इसलिए और दुख इजाद करने की जरूरत नहीं। लेकिन काया के दुख पता न चले, इसलिए हम सुख ईजाद करते हैं, सुखका आयोजन करते हैं। आज नहीं मिला, कल मिलेगा, परसो मिलेगा। इस तरह आज के दुख को भुलाने के लिए हम कल के दुख का निर्माण करते रहते हैं। आज पर परदा पड़ जाए, इसलिए कल की तस्वीर बनाते हैं। इसलिए कोई आदमी वर्तमान में जीना नहीं चाहता। महावीर जानते हैं कि जैसे ही साधना में प्रवेश होगा, कल टूटने लगेगा, आज में जीना होगा। और सारे दुख प्रगाढ़ होकर चुभेंगे, सब ओर बुढ़ापा और मौत दिखाई देगी। न नाव होगा, न सहारा और न किनारा। तब बड़ा क्लेश होगा। उस क्लेश को महना और स्वीकार करना—जानना कि यह जीवन की निर्यात है, जानना कि यह प्रकृति का स्वभाव है। काया-क्लेश का अर्थ है कि जो आए, उसे स्वीकार करना। उससे बचने की कोशिश भविष्य के स्वप्न में ले जाती है। उसके विपरीत सुख बनाने

की चिन्ता में मन पड़ना। ध्यान रह कि इस जगत में जिसे मुक्त होना है उस दुःख से ही मुक्त होना है। सुख है ही नहीं उससे मुक्त क्या होइएगा ? वह भ्रम है। दुःख से मुक्त होना होता है और दुःख से मुक्ति दुःख की स्वीकृति में छिपी है, उसके समग्र स्वीकार में निहित है। काया दुःख है, इसके समग्र स्वीकार को ही काया-क्लेश कहते हैं। काया क्लेश का अर्थ है कि स्वीकार कर लो दुःख को। इतना स्वीकार कर लो कि तुम्हें क्लेश का बोध हो मिट जाए। क्लेश का बोध उसी दिन मिट जाएगा जिस दिन पूर्ण स्वीकृति होगी। इसलिए महावीर सब दुःखा के बीच आनन्द से भरे घूमते रहते हैं। काया-क्लेश की स्वीकृति इतनी गहन हो गई है कि उन्हें दुःख का कोई पता भी नहीं चलता। काया-क्लेश की साधना गुरु होती है दुःख के स्वीकार से पूर्ण होनी है दुःख के विसर्जन से। दुःख वस्तुतः विसर्जित नहीं हो जाता। जब तक जीवन है तब तक तो वह रहेगा ही, लेकिन जिस दिन स्वीकार पूरा हो जाता है उस दिन आपके लिए दुःख नहीं रह जाता।

दुःख की स्वीकृति द्वारा दुःख से मुक्ति का उपाय करना ही काया-क्लेश की साधना है। काया को कष्ट देने की वांछ काया-क्लेश की साधना नहीं कहो जा सकती, क्योंकि जो व्यक्ति काया को दुःख देने में लगा है, वह किसी-न किसी सुख की आकांक्षा से प्रोत्साहित होता रहता है। जब तक हम काइ सुख के लिए प्रयत्न करते हैं तब तक हम सुख की ही आकांक्षा से करते हैं। हम अपने शरीर का भी सत्ता सकते हैं सिर्फ इस उम्मीद में कि हम मोक्ष मिलेगा, आत्मा मिलेगी। किन्तु महावीर की दृष्टि में किसी सुख के लिए शरीर को दुःख देना काया क्लेश नहीं है।

बाह्य तप का अन्तिम सूत्र है सलीनता। सलीनता सेतु है बाह्य तप और अन्तर तप के बीच, वह सीमान्त है। वहीं से बाह्य तप समाप्त होता है और अन्तर तप का आरम्भ होता है। परम्परा के अनुसार अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना सलीनता है। लेकिन बात इतनी ही नहीं है, बल्कि यह तो कुछ भी नहीं है। सलीनता तब घटित होती है जब भीतर सब शान्त हो जाता है जब भीतर से ऐसी कोई तरंग नहीं जाती जो शरीर पर कम्पन बने।

सलीनता के अभ्यास में जिसका उत्तरना है उस पहले अपने शरीर की गति विधियाँ का निरीक्षण करना होता है। सलीनता का पहला प्रयाग है सम्यक् निरीक्षण। जब आपका मन शान्त हो तब आईने के सामने खड़े हो जाएँ। जब कोई गान्त चित्त से अपने शोध का निरीक्षण करता है तो शोध विलीन हो जाता है, निरीक्षण से शान्ति और गहरी हो जाती है। शोध इसलिए विलीन हो जाता है कि प्रायः से आपका सम्बन्ध टूट जाता है। शोध से सम्बद्ध हान के लिए वेचैन होना जरूरी है किन्तु अध्ययन के लिए शान्त होना आवश्यक है। महावीर ने सलीनता का उपयोग नहीं किया है। सलीनता सदा दूसरे में लीन होना का नाम है और



मलीनता अपने में लीन होने का पवार । महावीर कहते हैं : मलीन हो जाना, अपने में लीन हो जाना ताकि दूगम बने ही नहीं । उनका एक बहन प्यारा शब्द है आत्म-रमण—अर्थात् अपने में ही रमना । महावीर के निम्र लो देखें । ऐसा प्रतीत होगा कि वे एक ऐसे फूल हैं जिसकी पगुड़ियाँ बन्द हो गई हैं । महावीर अपने भीतर हैं, जैसे फूल के भीतर कोई भँवरा बन्द हो गया हो । उनकी मारी चेतना मलीन हो गई है अपने में ।

---



# द्वादश अध्याय

## अतर्-तप

सरभसमारभे, आरभे तहेव य ।

वाय पवत्तमाण तु नियत्तिज्ज जय जई ॥<sup>१</sup>

—उत्त० अ० २४, गा० २५

तप के छ बाह्य अंगों की चर्चा हो चुकी । अब आइए, हम छह अतर तपों की चर्चा करें । ये छ अतर् तप हैं (१) प्रायश्चित्त (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, और (६) कायोत्सग ।

(१) प्रायश्चित्त, शाल्वकाशा के अनुसार, पश्चात्ताप का पर्याय है । असल में प्रायश्चित्त का अर्थ यह नहीं है । पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त में उतना ही अन्तर है जितना जमीन और आसमान में । पश्चात्ताप का अर्थ है—जा आपने किया उसके लिए पछतावा । आपस एक छोटी सी भूल हो गई थी, उसे आपने पश्चात्ताप करके पाउ दिया । आप हैं बहुत अच्छे आदमी । गाली आप दे नहीं सकते । किसी परिस्थिति में गाली निकल गई होगी, इसलिए आप पछता लेते हैं और फिर से अच्छे आत्मी बन जाते हैं । पश्चात्ताप आपको बदलता नहीं, जो आप थे, आप वही रह जाते हैं । इसलिए पश्चात्ताप आपके अहंकार को बचान की प्रक्रिया है । आप राज पश्चात्ताप करेंगे और आप रोज पाएँगे कि आप वही कर रहे हैं जिसके लिए आपने कल पश्चात्ताप किया था । पश्चात्ताप आपकी अंतरात्मा में कोई परिवर्तन नहीं लाता ।

जब महावीर के पास कोई साधक आता तो वे उसे पिछले जन्म के स्मरण में ल जाते, सिर्फ इसलिए कि उसे इस बात का पता चल जाए कि उसने कितनी बार एक ही भूल की है और उसके लिए पश्चात्ताप किया है । पश्चात्ताप काम के गलत होने के बोध से सम्बन्धित है, प्रायश्चित्त इस बोध से सम्बन्धित है कि मैं गलत हूँ । पश्चात्ताप करनेवाला वही का वही बना रहता है, प्रायश्चित्त करनेवाले का अपनी जाया चेतना रूपांतरित कर देनी होती है । पश्चात्ताप तो जीवन का सहज क्रम है । हर आदमी पश्चात्ताप करता है इसलिए पश्चात्ताप को साधना बनाने की क्या जरूरत है ? वस्तुतः यह साधना नही केवल मन का नियम है ।

१ समयमी पुट्ठ सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त होती काया को सावधानी से नियंत्रण करे ।

प्रायश्चित्त बहुत अद्भुत घटना है। पञ्चात्ताप देख लेता है कि कर्म की कोटी भूल है, प्रायश्चित्त देखता है कि मैं गलत हूँ, कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा ? गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं—कर्म कभी गलत नहीं होते। उन-लिए पञ्चात्ताप में सजग हो। पञ्चात्ताप आपको बदलेगा नहीं, बदलने का बोझ देगा। प्रायश्चित्त को महावीर ने अन्तर तप का पहला हिस्सा इसी कारण बताया कि वही व्यक्ति अन्तर्यामि पर निकल सकता है जो कर्म की गलती छोड़कर स्वय की गलती देखना शुरू करे। देखिए, तीन तरह के लोग होते हैं। एक वे लोग हैं जो दूसरों की गलती देखते हैं, दूसरे वे हैं जो कर्म की गलती देखते हैं और तीसरे वे हैं जो स्वयं की गलती पर ही ध्यान देते हैं। जो दूसरों की गलती देखते हैं, वे तो पञ्चात्ताप भी नहीं करते। जो कर्म की गलती देखते हैं, वे पञ्चात्ताप करते हैं और जो स्वयं की गलती देखते हैं, वे प्रायश्चित्त में उतरते हैं। अन्तर्यामि के पथिक को यह समझ लेना होगा कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। वह गलत होता है तो स्वयं के लिए। आप गलत होते हैं स्वयं के लिए। दूसरों के लिए आप गलत नहीं हो सकते। दूसरा गलत नहीं है, इस स्मरण से ही अन्तर्यामि शुरू होती है। दूसरा गलत है, यह दृष्टि ही गलत है। प्रायश्चित्त तब शुरू होता है जब मैं मानता हूँ कि मैं गलत हूँ। सच तो यह है कि जब तक मैं हूँ तब तक गलत होऊँगा ही। मेरा होना ही मेरी गलती है। जब तक मैं 'नहीं' न हो जाऊँ, तब तक प्रायश्चित्त फलित नहीं होगा। और जिस दिन मैं नहीं हो जाता हूँ—शून्यवत् हो जाता हूँ—उसी दिन मेरी चेतना रूपान्तरित हो जाती है और नए लोक में प्रवेश करती है।

प्रायश्चित्त जाग्रत चेतना का लक्षण है, पञ्चात्ताप सोई हुई चेतना का लक्षण। प्रायश्चित्त में वही उतर सकता है जो अपने को झकझोर कर पूछ सके कि इस जिन्दगी का मतलब क्या है ? यह सुबह से शाम तक का चक्कर, क्रोध और क्षमा का चक्कर, प्रेम और घृणा का चक्कर—यह सब क्या है ? धन, यश, अहंकार, पद, मर्यादा—यह सब क्या है ? मैं कहता हूँ कि प्रायश्चित्त जागरण का सकल्प है, पञ्चात्ताप नींद में की गई गलतियों की क्षमा-याचना है। प्रायश्चित्त सोये व्यक्तित्व को जगाने का निर्णय है, इस बात का बोध है कि मैंने आज तक जो भी किया, वह गलत था, क्योंकि मैं गलत हूँ। अब मैं अपने को बदलता हूँ, कर्मों को नहीं। तथ्य की स्वीकृति प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त में स्वीकार है, पूर्ण स्वीकार है। "कहीं कोई चुनाव नहीं। मैं चोर हूँ तो चोर हूँ, बेईमान हूँ तो बेईमान हूँ। इसलिए जहाँ पञ्चात्ताप दूसरों के सामने प्रकट करना पड़ता है, वहाँ प्रायश्चित्त स्वयं के समक्ष। और ध्यान रहे कि महावीर प्रायश्चित्त को इतना मूल्य दे पाए क्योंकि उन्होंने परमात्मा को कोई जगह नहीं दी, नहीं तो पञ्चात्ताप ही रह जाता। तुम ही हो, और कोई नहीं। कोई आकाश में सुननेवाला नहीं, जिससे तुम कहो कि मेरे पाप क्षमा कर देना।

काइ क्षमा करेगा नहीं, कोई है ही नहीं। इसलिए चिल्लाना मत। इस घोषणा से कुछ भी न होगा। दया की मिथा मत मागना, क्योंकि कोई दया नहीं हो सकती। काइ दया करनेवाला नहा है सलिए प्रायश्चित्त दूसरे के समक्ष नहीं, अपना ही समक्ष हाता है।

महावीर पहर आदमी हैं इस पृथ्वी पर जिहाने कहा कि स्वर्ग और नव मनो दशाए हैं, मान्ड की स्टेटस हैं, चित्त दशाए हैं। मोक्ष काइ स्थान नहा है। इसलिए महावीर ने कहा है कि मोक्ष स्थान के बाहर है वह सिर्फ एक अवस्था है। जहा हम गड़े ह वहीं नक है। इस नक की प्रताति जितनी स्पष्ट हो जाए, उतने ही आप प्रायश्चित्त में उतरेंगे। अगर आप प्रायश्चित्त नहा कर सकत तो अंतर तप में आपका प्रवेश नहा हा सकता। यह निश्चित जानिए क्वाकि प्रायश्चित्त ही इस तप का द्वार है।

( २ ) विनय के पदा होने की सम्भावना प्रायश्चित्त के बाद ही है, क्वाकि जब तक मन दूसरे के दाप दग्गता रहता है, तब तक विनय पदा नहीं हा सकती। विनय ता तमो पदा हा सकती ह जब अहंकार दूसरा के दोष दसकर अपने को भरना बन्द कर द। अहंकार का भोजन है दूसरा के दोष देखना। असल में दूसरा का दोष हम म्पते ही इसलिए हैं कि दूसरा का दोष जितना ही निपाई पडता है हम उता ही निर्दोष मालूम पडत हैं। दूसरे की निंदा में रस मालूम होता है। स्तुति में पीडा मालूम हाती है। इसलिए अगर मजबूर होकर आपको किसी की स्तुति करनी पडती है ना आप बहुत मोघ्र कहा जाकर उसकी निंदा करके वैक बनें म बराबर कर गत हैं। जब तक सन्तुलन न आ जाए तब तक आपके मन को चम नहीं पडता। जब काई किनी की हत्या भा कर नेता है तब भी यह नहीं मानता कि मैं अपराधी हूँ। वह मानता ह कि उन आदमी ने ऐसा काम ही किया था कि हत्या करनी पडी दापो वही है मैं नहा। मूज गद ही दूसरे की तरफ तीर बनकर चलता है। वह बभी अपनी हाती ही नहा। जब अपनी नहा हाती तो विनय का प्रश्न ही नहा उठता। इसलिए महावीर ने प्रायश्चित्त को पहला अंतर तप कहा और इस बात पर बल दिया कि पहल यह जान लेना जरूरी है कि न केवल मेरे कृय गग्न हैं, बल्कि मैं भा—मैं ही—गग्न हूँ। अगर तीर सब बदल गए, रग सब बदल गए। व दूसरे का तरफ न जाकर अपनी तरफ मुड़ गए। ऐसी स्थिति में विनय का साधा जा सकता ह।

महावीर ने विनय की जगह निर-अहंकारिता' नहीं वही। कहा विनय, क्वाकि निरहंकार नकारात्मक है और उसमें अहंकार की स्वीकृति है अहंकार को इनकार करने के लिए ही उसका स्वाकार है। विनय है 'पाजिटिव'। महावीर विधायक पर जार दे रहे हैं कि आपके भीतर वह अवस्था जाग जिसमें दूसरा दापो न जान पड़े।



आपके क्रोध को बाहर निकाल लेता है, वस! वह निमित्त बनता है। तो निमित्त पर इतना क्रोध क्यों? वाल्टी को भला गाली देगे कि उसमें पानी है? पानी तो कुएँ से ही आता है, वाल्टी तो पानी को लेकर सिर्फ बाहर दिखा देती है। इसलिए विनयपूर्ण आदमी उसे धन्यवाद देगा जिसने गाली दी, क्योंकि अगर वह गाली न देता तो वह आदमी अपने भीतर के क्रोध के दर्शन न करता। गाली देनेवाला वाल्टी बन गया। उसने क्रोध को बाहर निकालकर उसके दर्शन करा दिए। इसीलिए कवीर ने कहा है—‘निन्दक नियरे रासिए, आँगन फुटी छवाय।’

महावीर कहते हैं कि दूसरा अपने कर्मों की शृंखला में नया कर्म करता है, तुमने उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इतना ही सम्बन्ध है कि तुम माँके पर उपस्थित थे और उसके भीतर विस्फोट के लिए निमित्त बने। इस बात को दूसरी तरह भी सोच लेना है कि तुम जब किसी के लिए विस्फोट करते हो तब वह भी निमित्त ही है। तुम भी अपनी शृंखला में जीते और चलते हो। यह न भूलो कि विनय बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में दोष दूसरे में नहीं होता। दूसरा मेरे दुख का कारण नहीं है। दूसरा श्रेष्ठ अथवा अश्रेष्ठ नहीं है। दूसरे से मैं कोई तुलना नहीं करता। दूसरे पर मैं कोई शर्त नहीं बाँधता। मैं जीवन को वेगर्त सम्मान देता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म में चल रहा है। अगर मुझसे कोई भूल होती है तो मैं उसे अपने भीतर अपने कर्मों की शृंखला में खोजूँ। अगर दूसरे से कोई भूल होती है तो यह उसका काम है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। वही इसका फल पाएगा। यदि नहीं पाता तो यह भी उसकी ही बात है। यह मेरा काम नहीं है। महावीर इतना जरूर कहते हैं कि अगर कोई मेरी छाती में छुरा भोकता है, तो इससे मेरा इतना सम्बन्ध हो सकता है कि अपनी पिछली यात्रा में मैंने यह तैयारी करवाई हो कि मेरी छाती में कोई छुरा भोके। छुरे का मेरी छाती में जाना मेरे पिछले कर्मों की कुछ तैयारी होगी। वस, उससे मेरा इतना ही सम्बन्ध है। लेकिन उस आदमी के मेरी छाती में छुरा भोकने से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। इससे उसकी अपनी अन्तर्यात्रा का सम्बन्ध है। हम सबके सब समानान्तर दौड़ रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है। इसलिए जब-जब हम अपने से दूसरे की धारा को जोड़ लेते हैं तब-तब कष्ट शुरू होता है और अविनय आकार ले लेती है।

विनय केवल इस बात को सूचना है कि अब मैं अपने से किसी को जोड़ता नहीं। इसलिए महावीर ने विनय को अन्तर तप कहा है। स्वयं को दूसरे से तोड़ लेना ही विनय है। मैं ही अपना नर्क हूँ, मैं ही अपना स्वर्ग और मैं ही अपनी मुक्ति हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई निर्णायक नहीं है मेरे लिए। ऐसे भाव के जगते ही एक विनम्रता का भाव पैदा होता है। महावीर यह भी नहीं कहते कि गुरुजनों को, अपने बड़ों को, माता-पिता को आदर न दो। मैं भी नहीं कहता कि उन्हें आदर न दो।

बराबर दो। यही समाज का खेल है। साधुओं को आदर दो। खेल जारी रखो। उसमें कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसे विनय न समझ लो।

(३) वैयावृत्य का अर्थ होता है—सेवा। शायद पृथ्वी पर अकेले ईसाइयत ने धर्म में सेवा का प्राथम्य और साधना के रूप में विकसित किया। लेकिन वैयावृत्य का अर्थ वह नहीं है जो ईसाइयों की सेवा का है। महावीर के अनुयायी भी समझते रहें हैं कि वैयावृत्य का अर्थ है बद्ध या रण साधुओं की सेवा। ऐसा अर्थ लगाने का एक कारण है। साधु असाधु की सेवा करने की बात सोच ही नहीं सकता। जो साधु नहीं हैं वे ही साधु की सेवा करने आते हैं। ईसाइयत द्वारा दिया गया अर्थ भी ठीक नहीं है। भारत में विवेकानन्द से लेकर गांधी तक जो भी सेवा-काय किया है, वह ईसाइयत की सेवा है।

पंडित बेचरदास दोगी ने महावीर वाणी में पारिभाषिक शब्दों के जो अर्थ दिए हैं उनमें वैयावृत्य का वही अर्थ बताया है जो ईसाइयत का है। उन्होंने कहा है कि वैयावृत्य का अर्थ है बाल बद्ध रोगी यदि अपने समान धर्मिया की सेवा। ईसाई भी सेवा का यही अर्थ बताते हैं। असल में ईसाइयत जकेला धर्म है जिसने सेवा को केन्द्रीय स्थान दिया है। विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन का जा गति दी, वह ठीक ईसाई मिशनरी की नकल थी। वस्तुतः विवेकानन्द से लेकर गांधी या विनोबा तक जिन लोगों ने भारत में सेवा का विचार किया है वे सब ईसाइयत से प्रभावित हैं। ईसाइयत की सेवा की जो धारणा है वह भविष्योन्मुख है, 'फ्यूचर ओरिएण्टेड' है। ईसाइयत मानती है कि सेवा के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है सेवा के द्वारा ही मुक्ति होती है। सेवा एक साधन है साध्य मुक्ति है। ऐसी सेवा में प्रयोजन छिपा है। वह कुछ पान के लिए है। वह पाना बुरा भी हो सकता है अच्छा भी हो सकता है नैतिक हो सकता है अनैतिक हो सकता है। किंतु एक बात निश्चित है कि ऐसी सेवा की धारणा वासना प्रेरित है। इसलिए ईसाई प्रचारक एक पैगन, एक तो ब्र वासना में मरा हुआ हाता है। उसने सारी वासना को सेवा बना दिया है और यही कारण है कि उसके सामने दुनिया के अर्थ धर्मों के प्रचारक ठिक नहीं सकते।

भारतीय धर्म ईसाइयत की नकल मले हो करें, परंतु वे ईसाइयत की धारणा का नहीं पकड़ सकते। इसका कारण यह है कि भारतीय मन का खयाल है कि जिस सेवा में प्रयोजन है वह सेवा ही नहीं रहती। महावीर भी यही कहते हैं। सेवा होनी चाहिये निःप्रयोजन। उनका अनुसार सेवा अतीता-मुक्त हो 'पास्ट ओरिएण्टेड' हो भविष्य के लिए न हो। महावीर कहते हैं कि अतीत में हमने जो काम किए हैं, उनका विमर्जन के लिए सेवा है। इसका और कोई प्रयोजन नहीं है। इससे कुछ मिलेगा नहीं बल्कि जो कुछ गलत झपट्टा हो गया है उसकी निजरा होगा उसका विमर्जन होगा।

यह दृष्टि बहुत उलटी है। महावीर कहते हैं कि अगर सेवा करने में थोड़ी-सी भी वामना है, इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूँ, तो फिर मैं नए कर्मों का संग्रह करता हूँ। फिर सेवा भी पाप बन जाएगी, क्योंकि वह भी कर्म-बन्धन लाएगी।

महावीर की दृष्टि में अगर पुण्य भी भविष्योन्मुख है तो वह पाप बन जाता है। यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भविष्योन्मुख होने से पाप बन जाता है, क्योंकि वह भी बन्धन बन जाता है। महावीर कहते हैं कि पुण्य भी पिछले किए गए पापों का विसर्जन है। यदि मैंने आपको एक चाँटा मार दिया है तो मुझे आपके पैर दवा देने पड़ेंगे। इससे वह जो जागतिक गणित है, उसमें सन्तुलन हो जाएगा। ऐसा नहीं कि पैर दवाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, बल्कि सिर्फ पुराना कट जाएगा। और जब मेरे सब पुराने कर्म कट जाएँगे तब मैं गून्यवत् हो जाऊँगा—मेरे खाते में दोनों तरफ़ आँकड़े बराबर हो जाएँगे। महावीर कहते हैं कि यही गून्यावस्था मुक्ति कहलाती है। मोक्ष तो तब तक नहीं हो सकता जब तक धन या ऋण कोई भी ज्यादा है। मुक्ति का अर्थ ही यही है कि अब मुझे न कुछ लेना है और न कुछ देना। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है।

निर्जरा के सूत्रों में वैयावृत्य बहुत कीमती है। महावीर नहीं कहते हैं कि दया करके सेवा करो, क्योंकि दया ही बन्धन बनेगा। कुछ भी किया हुआ बन्धन बनता है। महावीर कहते हैं कि खुला रखो अपने को, कहीं कोई सेवा का अवसर हो और सेवा की भावना भीतर उठती हो तो रोको मत, सेवा हो जाने दो और चुपचाप विदा हो जाओ। पता भी न चले किसी को कि तुमने सेवा की। तुमको भी पता न चले कि तुमने सेवा की। यह वैयावृत्य है। वैयावृत्य का अर्थ है—उत्तम सेवा, साधारण सेवा नहीं। अगर किसी की सेवा करने में रस लिया तो फिर सम्बन्ध निर्मित होगा और यह भी समझ लेना चाहिए कि रस लेकर सेवा करना एक तरह का गोपण है महावीर की दृष्टि में। अगर कोई दुखी है, पीड़ित है और मैं उसकी सेवा करके स्वर्ग जाने की चेष्टा कर रहा हूँ तो मैं उसके दुख का शोषण कर रहा हूँ, मैं उसके दुख को स्वर्गजाने का साधना बना रहा हूँ। अगर वह दुखी न होता तो मैं स्वर्ग न जाता। जब धनपति धन चूसता है तब आप उससे कहते हैं कि वह दूसरों के दुख पर सुख इकट्ठा कर रहा है। लेकिन जब एक पुण्यात्मा दीन-दुखियों की सेवा करके अपना स्वर्ग खोज रहा है तब आपको खयाल नहीं आता कि वह भी किसी गहरे अर्थ में गोपण कर रहा है।

महावीर कहते हैं कि सेवा से मिलेगा कुछ भी नहीं, केवल कुछ कटेगा, कुछ छुटेगा, कुछ हटेगा। महावीर की दृष्टि में सेवा मेडिगनल है, दवाई की तरह है। दवा से कुछ मिलेगा नहीं, सिर्फ बीमारी कटेगी। ईसाइयत की सेवा टॉनिक की तरह है,



उससे कुछ मिलेगा। उसका भविष्य है। महावीर की सेवा मेडिसिन की तरह है। उसमें बीमारी कटेगी, कुछ मिलेगा नहीं। वे कहते हैं कि अगर कोई सेवा करता है तो वह इसलिए करता है कि उसके किसी पाप का प्रक्षालन होना है। अगर नहीं है पाप का प्रक्षालन, तो बात समाप्त हो गई—ता कोई मेरी सेवा नहीं कर रहा है। इसलिए आप जब भी सेवा कर रहे हैं तब ध्यान रखें कि वह भविष्योन्मुख न हो। तभी आप अतरतप कर सकते हैं। जब आप सेवा कर रहे हैं तो वह निष्प्रयाजन हो, अर्थात् आपकी सेवा अतरतप न होगी। व्यावृत्त्य अतरतप इसी कारण है कि इसका करना कठिन है। वह सेवा सरल है जिसमें कोई रस आ रहा हो। वह सेवा व्यावृत्त्य नहीं है जिससे सेवा करनेवाले के मन में किसी तरह के गौरव की भावना का उमीलन हो।

(४) महावीर ने व्यावृत्त्य के बाद ही जा तप कहा है वह है स्वाध्याय। व्यावृत्त्य के सम्यक् प्रयोग के बाद स्वाध्याय में—इस चौथे तप में—उतरना अत्यंत सरल है। लेकिन स्वाध्याय का अर्थ शास्त्रों का अध्ययन या पठन मनन नहीं है। महावीर इसकी जगह अध्ययन गच्छ का प्रयोग कर सकते थे, लेकिन उन्होंने स्वाध्याय का ही प्रयोग किया। अध्ययन में 'स्व' जाड़ने की क्या आवश्यकता थी? अध्ययन काफी था। वस्तुतः स्वाध्याय का अर्थ होता है स्वयं का अध्ययन, शास्त्रों का अध्ययन नहीं। लेकिन साधु शास्त्र सारे बड़े हैं। उनसे पूछिए सुधह से क्या कर रहे हैं? वे कहेंगे स्वाध्याय कर रहे हैं। शास्त्र, निश्चित ही, किसी जीर का होगा। 'स्व' का शास्त्र नहीं बन सकता और अगर गुरु के ही शास्त्र पढ़ रहे हैं तो बिल्कुल बकार पढ़ रहे हैं।

स्वाध्याय का अर्थ है—स्वयं का अध्ययन। यह बड़ा कठिन है (इसीलिए इस अतरतप कहा है) जब कि शास्त्र पढ़ना बड़ा सरल है। आप बहुत जटिल हैं, उत्पन्ना में भरे हैं ग्रन्थियां का जाल है एक पूरी दुनिया है। हजार तरह के उपद्रव हैं वही। उन सबका अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। अगर आप अपने प्राण का अध्ययन कर रहे हैं तो भी स्वाध्याय कर रहे हैं। लेकिन अगर आप ब्रोध में सम्बन्ध में शास्त्रों का अध्ययन कर रहे हैं तो यह स्वाध्याय नहीं है। जो भी किसी शास्त्र में लिखा है वह सब आपने भीतर भोजित है। इस जगत में जितना भी जाना गया है यह प्रत्यक्ष आत्मीय कातर वतमान है। आदमी स्वयं एक शास्त्र है, परम शास्त्र, अन्तीमट मित्रावर। इस बात का समर्थन तो महावीर का स्वाध्याय ममज्ञ में आ जाएगा।

मनुष्य परम शास्त्र है, परावि जा भी जाना गया है यह मनुष्य नहीं जाना है और जा भी जाना जायगा यह मनुष्य ही जानता। इसलिए महावीर ने कहा है कि एक का—मनुष्य का—ज्ञान लेने में सबसे जाया लिया जाता है। स्वाध्याय का अर्थ



है—स्वयं में उतरो और स्वयं का अध्ययन करो । पूरा जगत्—आत्मा का जगत्—पूरा भीतर है । उसे जानने चलो । लेकिन इसके लिए रुख बदलना पड़ेगा । वस्तु के अध्ययन को छोड़ो, अध्ययन करनेवाले का अध्ययन करो । शास्त्र में जो मिलता है, वह सत्य नहीं हो सकता । स्वयं से जो मिलता है, वही सत्य होता है । वह स्वयं से मिला सत्य शास्त्र में लिखा जाता है, लेकिन शास्त्र से जो मिलता है, वह स्वयं का नहीं होता । शास्त्र कोई और लिखता है । वह किसी और की खबर है जो आकाश में उड़ा है, जिसने प्रकाश के दर्शन किए हैं, जिसने सागर में डुबकी लगाई है ।

इसका मतलब यह नहीं कि महावीर शास्त्रों के अध्ययन को इनकार करते हैं । वे केवल इतना ही कहते हैं कि ऐसा अध्ययन स्वाध्याय नहीं है । यदि यह बात खयाल में रखी जाय तो शास्त्राध्ययन भी उपयोगी हो सकता है । हाँ, उपयोगी हो सकता है अगर यह खयाल में रहे कि शास्त्र का सागर सागर नहीं है, उसका प्रकाश प्रकाश नहीं है । यह भी स्मरण रहे कि शब्दों में कहते ही सत्य खो जाता है, केवल छाया रह जाती है । यह सब स्मरण रहे तो शास्त्र को फेंककर किसी दिन सागर में छलाँग लगाने का मन हो जाएगा । इसलिए कई बार अज्ञानी कूद जाते हैं परमात्मा में और ज्ञानी वंचित रह जाते हैं ।

जब हम अपने को भूलते हैं तभी स्वाध्याय बन्द होता है । इसका आरम्भ तब होता है जब हम अपने को स्मरण करते हैं । महावीर कहते हैं कि, जब तुम मौजूद होते हो तो वह जो गलत है, कभी नहीं घटता । स्वाध्याय में गलत कभी घटता ही नहीं । अगर शराब पीते वक्त भी तुम मौजूद रहो तो हाथ से गिलास छुटकर गिर जाएगा, तब शराब पीना असम्भव हो जाएगा, कारण कि जहर सिर्फ बेहोशी में ही पिया जा सकता है । जब मैं आपसे कहता हूँ कि क्रोध करते वक्त मौजूद रहें तो मैं यह नहीं कहता कि आप क्रोध करें और मौजूद रहे, वस, शर्त इतनी है कि मौजूद रहे और क्रोध करें, फिर कोई हर्ज नहीं । मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि आप क्रोध करते वक्त अगर मौजूद रहे तो इन दो में से एक ही हो सकता है—चाहे तो क्रोध होगा या फिर आप होंगे । जब क्रोध करते वक्त आप मौजूद होंगे तो क्रोध खो जाएगा, आप होंगे, क्योंकि आपकी मौजूदगी में क्रोध-जैसी रद्दी चीज नहीं आ सकती । जब घर का मालिक जगा हो तो चोर प्रवेश नहीं करते । जब आप जगे हो तब क्रोध घुस जाए, यह हिम्मत भला क्रोध कैसे कर सकता है !

महावीर कहते हैं कि रोशनी कर लो और निकल जाओ, क्योंकि अँधेरे में मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे । परमात्मा को भी खोजोगे तो टकराओगे । अँधेरे में कुछ भी करोगे, टकराओगे । हमारा सारा ध्यान बाहर की तरफ है, इसलिए भीतर अँधेरा है । ध्यान वस्तुओं की तरफ है । स्वाध्याय करनेवाला इस रोशनी को भीतर की तरफ मोड़ता और भीतर की तरफ देखना शुरू करता है । जब उसे कोई गाली

देना है तब वह गाली पर ध्यान नहीं देता, वह अपने शोध पर ध्यान देता है। जब कोई सुंदर स्त्री रास्ते पर निसाई पड़ती है तब वह उस स्त्री से ध्यान हटाकर अपने भीतर जाता है और समझता है कि काम वासना किस तरह भीतर उठ रही है। अगर आपका भागी दी जाय तो आपने भीतर क्या-क्या होगा, आप उस देखें। आप उसकी क्या क्या व्यवस्था करते हैं? आपको भीतर शोध कैसे उठता है? आप गाली देने वाले से क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं गाली देना चाहते हैं, मर्णा चाहते हैं? क्या करना चाहते हैं? इन सभी बातों पर ध्यान ले जाएँ और तब आप पाएँगे कि आपका स्वाध्याय किया है। इस स्वाध्याय से आप अपनी बनकर बाहर लौटेंगे। आपको अपने सम्बन्ध में जानकारी बढ़ जाएगी। आपको यह भी पता चल जाएगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि किसी ने गाली दी, महत्वपूर्ण यह है कि मैं क्या अनुभव किया। और मैं यह कि आप उस गाली का उत्तर देने बजा बस नहीं जाएँ, क्योंकि आप बढ़ गए होंगे। इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से आप वहीं आदमी नहीं रह गए जिस गाली दी गई थी।

(५) ग्यारहवाँ तप या पंद्रहवाँ उत्तर तप है ध्यान। जो दस तपों से गुजरते हैं, उन्हें ध्यान का समझना कठिन नहीं होता। ध्यान का तात्पर्य ही समझा जा सकता है। वह प्रेम ज्ञान है या तरुण ज्ञान। उसे जो करता है वही जानता है। प्रेम एक स्वरूप है, एक अनुभव, एक अस्तित्वगत प्रतीति। तरुण भी एक सत्तागत प्रतीति है। दूसरे व्यक्ति को तरुण हुए देखकर भी आप नहीं जान सकते कि वह अनुभव क्या होता है। दूसरे को प्रेम में डूबा हुआ देखकर भी आप नहीं जान सकते कि प्रेम उसे किस मांमाजा के पार हो जाता है। ध्यान में सड़े महावीर को देखकर आप नहीं जान सकते कि ध्यान क्या है। ध्यान के सम्बन्ध में स्वयं महावीर कुछ भी कहें तो भी ठीक से समझा नहीं पाने कि ध्यान क्या है। ठीक ध्यान की बात तो बहुत दूर है मूलतः ध्यान का भी हम बाद स्वरूप नहीं हैं जिसने आधार पर समझाया जा सके कि टीका क्या है।

महावीर इस पृथ्वी पर अकेले आदमी हैं जिन्होंने मूलतः ध्यान का भी बताया। ठीक ध्यान को बचा तो बहुत जमाना नहीं है। यह बनी विविध ध्यान है कि महावीर के अनुसार तीव्र शोध में ही जाता भी एक तरह का गहन ध्यान में आ जाना है। जिसमें हम तीव्र शोध में ही नहीं आते बल्कि गुनगुन जीते हैं यही उच्चतरी ध्यान में होता आता है। अगर आप इनके गहन शोध में भी जाएँ कि जीवन की मारी जगत् शोध के सिद्धांतों को समझें जीवन और मरणा का मारा किरणों का पार हो टूट जाएँ तो आपका 'निर्वाण' तरा हुआ ध्यान' का अनुभव हो जाएगा। जिसका ध्यान मनुष्य का स्वभाव पर होता है, उदात्त ही मनुष्य का मनुष्य पर होता जाए तो ठीक ध्यान ही होता है। ध्यान का भी आधार धर्म का ध्यान पर धर्म का ध्यान ही होता है। धर्म

के बल खड़े हुए ध्यान में कोई गति नहीं हो सकती। सिर के बल कोई चलेगा कैसे? यात्रा करनी हो तो पैर के बल होगी। चेतना जब पैर के बल खड़ी होती है तब अपनी ओर उन्मुख होती है, तब गति करती है। ध्यान 'डायनेमिक फोर्स' है, गत्यात्मक शक्ति है। उसे सिर के बल खड़े करने का मतलब है उसकी हत्या कर देना। इसलिए जो लोग गलत ध्यान करते हैं, वे आत्मघात में लगते हैं, रुक जाते हैं। मजनू ठहरा हुआ है लैला पर, बुरी तरह ठहरा हुआ है उस पर, मानो तालाब बन गया हो। वह अब ऐसी सरिता नहीं रहा जो सागर तक पहुँच पाए। इसलिए उसे लैला कभी नहीं मिल सकती।

गलत ध्यान के सम्बन्ध में यह न भूले कि जिस पर आप ध्यान लगाते हैं, उसकी उपलब्धि कभी नहीं होती। 'पर' पर केन्द्रित चेतना कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाती, क्योंकि दूसरे को पाने का कोई उपाय ही नहीं है। इस अस्तित्व में सिर्फ एक ही चीज पाई जा सकती है, और वह है मोक्ष। वह मैं स्वयं हूँ। उसको ही मैं पा सकता हूँ। शेष सारी चीजों को मैं पाने की कितनी ही कोशिश करूँ, वह सारी कोशिश असफल होगी। जो मेरा स्वभाव है वही केवल मेरा हो सकता है। इसलिए गलत ध्यान नर्क में ले जाता है।

गलत ध्यान का अभाव ध्यान की शुरुआत है। गलत ध्यान का अर्थ है—अपने से बाहर किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाना। दूसरे की ओर बहती हुई चेतना गलत ध्यान है। इसलिए महावीर ने परमात्मा की तरफ बहती हुई चेतना को भी गलत ध्यान कहा है। परमात्मा को आप दूसरे की तरह ही सोच सकते हैं और अगर स्वयं की तरह सोचेंगे तो बड़े साहस की जरूरत होगी। अगर आप यह सोचेंगे कि मैं परमात्मा हूँ तो बड़ा साहस चाहिए। न तो आप ही ऐसा सोच पाएँगे और न आपके आसपास के लोग यह सोचने देंगे कि आप परमात्मा हैं। जब कोई सोचेगा कि मैं परमात्मा हूँ तो उसे परमात्मा की तरह जीना पड़ेगा, क्योंकि सोचना खड़ा नहीं हो सकता जब तक आप जिये नहीं। सोचने में खून नहीं आएगा जब तक आप जियेंगे नहीं। अगर परमात्मा की तरह जीना हो, तब तो ध्यान की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। इसलिए महावीर कहते हैं कि परमात्मा को आप सदा दूसरे की तरह सोचेंगे। यही कारण है कि परमात्मा को मान कर शुरू होनेवाले धर्मों में ध्यान विकसित नहीं होता, प्रार्थना विकसित होती है।

प्रार्थना और ध्यान के मार्ग विलकुल भिन्न-भिन्न हैं। प्रार्थना का अर्थ है दूसरे के प्रति निवेदन। ध्यान में कोई निवेदन नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है दूसरे की सहायता की माँग। ध्यान में सहायता की माँग नहीं है, क्योंकि महावीर कहते हैं दूसरे से जो मिलेगा वह मेरा नहीं हो सकता। पहले तो वह मिलेगा ही नहीं, लेकिन मैं मान लूँ कि वह मिल गया। तब तो स्पष्ट है कि दूसरे से मिला हुआ 'माना हुआ'



मिला हुआ है। वह आज नहीं कल छूटेगा, दुख लाएगा, पीडा होगी। इसलिए महावीर कहते हैं कि अगर पीडा के बिल्कुल पार हो जाना है तो दूसरे से ही छूट जाना पड़ेगा। दूसरे के साथ जो भी सम्बन्ध है वह टूट सकता है। परमात्मा के साथ भी सम्बन्ध टूट सकता है। महावीर कहते हैं कि जो बन सकता है वह बिगड़ सकता है, इसलिए बनाने की कोशिश ही मत करो।

महावीर कहते हैं कि ईश्वर हो या न हो इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि दूसरे का जब भी मैं ध्यान में लाता हूँ तो गलत ध्यान हो जाता है। निश्चित ही ईश्वरवादियों को महावीर गहन नास्तिक मालूम पड़े नास्तिका से भी ज्यादा। इसलिए तथाकथित आस्तिकों ने चार्वाक से भी ज्यादा निंदा महावीर की है।

महावीर मूर्च्छा विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एसी किसी भी पद्धति की सलाह नहीं दी जिससे मूर्च्छा आने की जरा भी सम्भावना हो। यह महावीर की और भारत की दूसरी पद्धतियाँ का भेद है। भारत में ध्यान की दो ही पद्धतियाँ रही हैं। कहना चाहिए कि सारे जगत में ध्यान की दो ही पद्धतियाँ रही हैं। एक पद्धति को हम ब्राह्मण-पद्धति कह सकते हैं और दूसरी का श्रवण पद्धति। महावीर की पद्धति श्रवण पद्धति है। जहाँ ब्राह्मण पद्धति विश्राम की पद्धति है वही श्रवण पद्धति—महावीर की पद्धति—श्रम की पद्धति है। चूँकि विश्राम और नींद का गहरा अतः सम्बन्ध है, इसलिए महावीर ने विश्रामवाली पद्धति का उपयोग नहीं किया। वे कहते हैं कि श्रमपूर्वक ध्यान में जाना है, विश्रामपूर्वक नहीं। विश्रामवाली ब्राह्मण पद्धति के प्रस्तावता कहते हैं—हाथ पाव ढीले छाड़ दो, मुस्त हा जाओ, निथिल हो जाओ ऐसे हो जाओ जैसे मुर्दा हो गए। श्रवण-पद्धति कहती है कि जितना तनाव पैदा कर सकते हो उतना ही अच्छा है। अपने को इतना खींचो इतना खींचो जमे कि काँईवीणा के तार को खींचता चला जाए और ट्वार पर छोड़ दे—अपने को तीव्रतम स्वर तक खींच दो। निश्चित ही एक सीमा आती है जब अत्यधिक तनाव के कारण सितार का तार टूट जाता है। लेकिन चेतना के टूटने का प्रश्न नहीं उठता वह कभी टूटती ही नहीं। इसलिए—महावीर कहते हैं—खींचते चले जाओ, चेतना का अपनी अति पर पहुँचा दो। तब अनजाने तुम्हारी चेतना विश्राम को उपलब्ध हो जाएगी। यह विश्राम बहुत अनूठा होगा। ऐसा विश्राम कभी नींद में नहीं ले जा सकता। वह सीधा विश्राम में ले जाता है।

ठीक ध्यान के लिए कुछ प्रारम्भिक बातें स्मरणीय हैं। उनके बिना इस ध्यान में नहीं उतरा जा सकता। एक तो उपरिलिखित दस तप अनिवार्य हैं उनके बिना इस प्रयोग को नहीं किया जा सकता। उन दस सूत्रों के प्रयोग से आपका व्यक्तित्व में वह ऊर्जा और शक्ति आ जाती है जिनसे आप चरम तक अपने का तनाव में ले जाते हैं। इतनी सामर्थ्य और क्षमता आ जाती है कि आप विक्षिप्त नहीं हो सकते। अथवा

अगर कोई महावीर के ध्यान को सीखा शुरू करे तो वह विक्षिप्त हो सकता है। इसलिए भूलकर भी इस प्रयोग को सीखें न करें। पहले के दस हिस्से अनिवार्य हैं।

पूरे मुल्क में घूमकर मैंने देखा है कि जैन साधुओं में एक आदमी भी नहीं है जो महावीर के ध्यान को समझ सका हो, करने की बात तो दूर है। वे नित्य प्रवचन करते हैं, लेकिन मैं यह देखकर चकित हुआ कि उनके गणी, प्रमुग्ग और आचार्य एकान्त में मुझसे पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें? तब उन बेचारे साधुओं को क्या कराया जा रहा होगा जबकि उनका गुरु ही पूछता है कि ध्यान कैसे करें? उनमें इतना साहस नहीं कि वे चार लोगों के सामने यह प्रश्न करें।

पश्चिम के एक बहुत विचारशील वैज्ञानिक 'रान हुब्बार्ड' ने ध्यान की प्राथमिक प्रक्रिया में प्रवेश के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया है। ये तीनों शब्द महावीर के हैं, यद्यपि हुब्बार्ड को महावीर के शब्दों का कोई पता नहीं है। उनके तीन शब्द हैं—रिमेम्बरिंग, रिविविंग, और रि-लिविंग। महावीर ने इनके लिए स्मृति, प्रतिक्रमण और जाति-स्मरण (पुनर्जीवना, उसको जो जिया जा चुका है) का प्रयोग किया है। महावीर के ध्यान में अगर उतरना हो तो जब रात सोने लगे और नींद करीब आने लगे तो उस दिन के पूरे जीवन को 'रि-लिव' कर लें। जीवन की घटनाओं का स्मरण ही न करें, बल्कि उन्हें इस तरह देखें मानो आपने उन्हें फिर से भोग लिया है। मृत्यु के क्षण में—आकस्मिक मृत्यु के क्षण में—जब बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता, तब ऐसी घटना घटती है। पहले स्मृति से शुरु करें। सुबह से लेकर शाम तक की घटनाओं का स्मरण करें। एक महीने के गहरे प्रयोग से आपको पता चलेगा कि स्मृति धीरे-धीरे प्रतिक्रमण बन गई। अब पूरी स्थिति याद आने लगी। प्रतिक्रमण पर तीन महीने और प्रयोग करें। तब आप पाएंगे कि अब प्रतिक्रमण पुनर्जीवन बन गया—अब आप 'रि-लिव' करने लगे। कोई नौ महीने के प्रयोग के बाद आप पाएंगे कि सुबह से लेकर शाम तक की घटनाओं को आप फिर से जी सकते हैं, दुबारा। मजे की बात यह है कि जिस जीवन को आप फिर से जियेंगे वह दिन के जीवन की तुलना में ज्यादा होगा, क्योंकि दिन में और भी पच्चीस उलझाव थे। हुब्बार्ड कहता है कि यह ट्रेक पर वापस लौटना है और फिर से यात्रा करनी है उलटी दिशा में।

अगर महावीर के ध्यान में, सामायिक में प्रवेश करना हो तो कोई नौ महीने का समय—तीन-तीन महीने एक-एक प्रयोग पर—बिताना जरूरी है। आप स्मरण करना शुरू करें, पूरी तरह स्मरण करें कि सुबह से शाम तक क्या हुआ, फिर प्रतिक्रमण करें। पूरी स्थिति को याद करें कि किस-किस घटना में कौन-कौन सी पूरी स्थिति थी। आप बहुत हैरान होंगे और आपकी संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाएगी।

दूसरे दिन आपके जीने का रस भी बहुत बढ़ जाएगा। दूसरे दिन धीरे धीरे आप बहुत-सी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएंगे, जिनके प्रति आप अभी भी जागरूक नहीं थे। अगर आप प्रतिक्रमण की पूरी यात्रा करते हैं तो आपके जीवन में सौंदर्य और रस का अनुभव का एक नया आयाम खुलना शुरू हो जाएगा। पूरा घटना आप जी सकने में समर्थ होंगे। और जब भी पूरा घटना को जी लिया जाता है तब आप उस घटना का दुबारा जीने की आकांक्षा से मुक्त होने लगते हैं। अगर कोई व्यक्ति एक बार भी किसी घटना को पूर्णतया भागदर निबल जाता है तो उसकी इच्छा उसे दुहराने की नहीं होती। इस प्रकार प्रतिक्रमण नविष्य और अतीत, दोनों से छुटकारे की विधि है। इस प्रतिक्रमण को इतना गहरा करते जाएं कि एक घड़ी ऐसी आ जाए जब आप याद न करें, केवल घटनाओं को 'रिलिव' करें, उन्हें पुनरुज्जीवित करें उन्हें फिर से लियें। आप यह पाकर हैरान होंगे कि वे घटनाएँ फिर से जीयी जा सकती हैं।

जिस दिन आप दिन की घटनाओं का फिर से जीने में समर्थ हो जाएंगे उस दिन रात में सपना का आना बंद हो जाएगा, क्योंकि सपने में आप वही घटनाओं को फिर से जीने की कोशिश करते हैं, और कुछ नहीं करते। अगर आपने रात सोने से पहले होशपूर्वक पूरे दिन को पूरा जी लिया है तो आपने उससे निपटारा कर लिया है अब वह अध्याय समाप्त हो गया है। अब कुछ न तो याद करने की जरूरत रही और न पुनः जीने की जरूरत। ध्यान का अभाव ही विक्षिप्तता है। ध्यान को उपरुद्ध व्यक्ति के सपने गूँथे होते हैं। जब रात स्वप्न समाप्त हो जाता है, तब आप सुबह ऐसे उठते हैं जैसे सूरज जगा है। उस जागी हुई चेतना में विचार आपके गुलाम हो जाते हैं मालिक नहीं होते। महावीर कहते हैं कि जब तक विचार मालिक है तब तक ध्यान कस हो पाएगा? विचार की मालिकियत आपकी होनी चाहिए तभी ध्यान हो सकता है।

दूसरा प्रयोग सुबह जागने के समय करें। जैसे ही जागें वैसे ही पढ़े विचार की प्रतीक्षा करें। जब पढ़ा विचार आए उसे तत्काल पकड़ें देखें कि वह क्या आता है। धीरे धीरे आप हैरान होंगे कि आप उसे पकड़ने की जितनी ही कोशिश करते हैं वह उतनी ही देर से आता है। कभी घटा लग जाएंगे और पहला विचार नहीं आएगा। विचार रहित यह एक घटा आपकी चेतना का शीपासन से हटाकर सीधा खड़ा करने में सहायगी बनेगा। आप पैर के बल खड़े हो सकेंगे। घटा भर तो बहुत दूर की बात है, अगर एक मिनट के लिए भी कोई विचार न आए तो आपको अनुभव होना शुरू हो जाएगा कि विचार नक है और निविचार होना स्वयं में होना है। जिस दिन कोई व्यक्ति निविचार हो जाता है उस दिन उसका ध्यान चेतना पर जाता है और एक बार चेतना पर ध्यान चला जाए तो फिर चेतना का विस्मरण नहीं



होता। चाहे आप कुछ भी करते रहें—दुकान में हो, बाजार में काम कर रहे हों, कहीं भी हो—चेतना की स्पष्ट प्रतीति बनी रहती है। तब शरीर को कोई दुख नहीं होता, क्योंकि आप शरीर नहीं रहे। जब महावीर के कान में कीले ठोकी जा रही थी तब वे शरीर को नहीं देख रहे थे, वे अपनी चेतना को देख रहे थे। जब ध्यान चेतना पर होता है तब कीले ठोकी भी जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी और ही शरीर में ठोकी जा रही हैं।

महावीर ने पृथक्त्व या साक्षी भाव का प्रयोग किया है। इसके लिए उनका शब्द है 'भेद विज्ञान' अर्थात् चीजों को अपने-अपने हिस्सों में तोड़कर देखने का विज्ञान। भोजन वहाँ है, शरीर यहाँ है, मैं दोनों के पार हूँ—इतना भेद स्पष्ट हो जाए तो साक्षी भाव हो जाता है।

तो तीन बातें स्मरण रखें रात नींद के समय—स्मरण, प्रतिक्रमण और पुनर्जीवन, सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा, ताकि अन्तराल दिखाई पड़े और अन्तराल में सारा गेस्टाल्ट बदल जाए (धूलकण नहीं दिखाई पड़ें, प्रकाश की धारा स्मरण में आ जाए), और पूरे समय, चौबीसो घंटे, चेतना पर ध्यान, यह होगा कि न तो मैं भोजन हूँ और न भोजन करनेवाला हूँ। मैं दोनों से अलग हूँ, मैं त्रिभुज के तीसरे कोण पर हूँ। इस तीसरे कोण पर चौबीसो घंटे रहने की कोशिश साक्षी भाव है।

(६) महावीर के माधना-मूत्रो में बारहवाँ और अन्तिम तप है कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग का मतलब काया को सत्ताना नहीं है। हाथ-पाँव काट-काटकर चढाते जाना कायोत्सर्ग नहीं है। कायोत्सर्ग तब होता है जब ध्यान परिपूर्ण शिखर पर पहुँच जाता है और गेस्टाल्ट बदल जाता है, काया का उत्सर्ग हो जाता है। उसका कहीं कोई पता नहीं रह जाता। निर्वाण या मोक्ष क्या है? ससार का खो जाना है। ठीक इसी तरह आत्मानुभव काया का खो जाना है। आप कहेंगे, महावीर तो चालीस वर्ष जिए; ध्यान के अनुभव के बाद भी उनकी काया सुरक्षित थी। असल में वह आपको दिखाई पड़ती है, लेकिन महावीर के लिए अब कोई काया न थी, कोई शरीर न था। उनका कायोत्सर्ग हो गया था, यद्यपि यह घटना हमें दिखाई नहीं पड़ती।

परम्परा कायोत्सर्ग का कुछ और ही अर्थ करती रही है। उसके अनुसार कायोत्सर्ग का अर्थ है—काया पर आने वाले दुखों को सहज भाव से सहना। कायोत्सर्ग का यह असली अर्थ नहीं है। परम्परा जिसे कायोत्सर्ग कहती है वह तो बाह्य तप है। कायोत्सर्ग का अर्थ है काया को चढा देने की तैयारी, काया को छोड़ देने या उससे दूर हो जाने की तैयारी, यह जान लेने की तैयारी कि मैं काया से भिन्न हूँ, ऐसा हो जाने की तैयारी कि काया मरती भी हो तो मैं देखता रहूँगा। जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ मालूम पड़ता है कि शरीर मेरा है और मैं शरीर हूँ। हमें कभी कोई एहसास नहीं होता कि शरीर से अलग भी हमारा कोई होना होता है। इसलिए जब शरीर पर कष्ट आते



है तब मुझ पीटा होती है, शरीर को भूख लगती है तब मुझे भी भूख लगती है, शरीर को थकान हाती है तो मैं थक जाता हूँ। शरीर और मर बीच में तादात्म्य है हम जुड़े हैं संयुक्त हैं। हम यह भूल ही गए हैं कि हम शरीर नहीं, चेतना हैं आत्मा हैं। कायात्मग का अर्थ भी आगे केवल इतना ही रह गया है कि अपनी काया पर नष्ट जाए तो उस सह लेना। यह काया अपनी है, यह बात नहीं छटती।

महावीर का यह मतलब नहीं है कि काया का उत्सर्ग करना क्या कि जा अपनी नहीं है उस तुम उत्सर्ग करोगे ही कैसे? अपने को उत्सर्ग किया जा सकता है, लेकिन ना मरा नहीं है, उस में उत्सर्ग करेगा ही कैसे? महावीर कहते हैं—काया तुम्हारी नहीं है यह जानना कायोत्सर्ग है। मैं काया चंगा दूंगा, ऐसा भाव कायात्मग नहीं है क्योंकि तब तो इस उत्सर्ग में भी ममत्व की धारणा भी भूद है। आत्महत्या करने वाला भी काया को मिला डालता है लेकिन उसका त्याग कायोत्सर्ग नहीं है। शहीदा का मूरी पर चढ़ना भी कायात्मग नहीं है, क्योंकि वह मानता है कि शरीर मेरा है। एक तपस्वी आपने शरीर को नहीं मताता, अपने शरीर का ही सत्ता लेता है। लेकिन वह भी मानता है कि शरीर मेरा है। महावीर कहते हैं कि यह जानना कि शरीर मेरा नहीं है, कायोत्सर्ग है। लेकिन यह बाध बहुत बठिन है। इसीलिए आम्तिना ने एक उपाय निकाला है। व कहते हैं कि शरीर मेरा नहीं, परमात्मा का है। महावीर के लिए तो वह भी उपाय नहीं है क्योंकि व परमात्मा का नहीं मानते। तबकथित आम्तिना चार चतुर हान हैं। व कहते हैं—शरीर मेरा नहीं है, परमात्मा का है और परमात्मा मरा नहीं। मर प्राण धूम फिखर तब अपना हा हा जाता है। महावीर के लिए परमात्मा भी नहीं है।

यस्तु महावीर की धारणा बहुत अद्भुत है। व कहते हैं कि तुम अपना हा शरीर शरीर का ?—यह परमात्मा का नहीं हो सकता। शरीर शरीर का ही है। प्रत्येक यन्त्र अपनी है अपने स्वभाव की है, किसी और की नहीं हो सकती। मान लियत झूठ है इस जगत् में। परमात्मा की भी मालूमियत ही तो झूठ है। इस तथ्य का अच्छी तरह समझ लें।

आप प्रतिपन्न मान ले लें। एक क्षण पढ़ जा सोस आपकी या वह दूगर हा क्षण लिंग और का हा जातो है। क्षण भर पहचान वह आपका पडासा की थी। तब शरीर में—किम आप अपना शरीर कहते हैं—मिट्टी व अग्नितन वण हैं। क्या व लिंग और व शरीर में रहे हाग। क्या लिंग वक्ष में रहे हागे अभी किमी पत्र में। न जानूँ उठते किनी यात्राएँ की है। अगर हा हा क्या में पूर्ण कि तुम लिंग हा ता व करेंगे—हम अपने हैं हम यात्रा करते हैं तुम स्थान हा जिनमें हम गुजरते हैं। स्थान तब क्या कि यात्रा भग है। तब हम तम्हार भग हा मानते